विज्ञान भैरव तंत्र—ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र—ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र का जगत बौद्धिक नहीं है। वह दार्शनिक भी नहीं है। तंत्र शब्द का अर्थ है। विधि, उपाय, मार्ग। इस लिए यह एक वैज्ञानिक ग्रंथ है। विज्ञान ''क्यों'' की नहीं, ''कैसे'' की फिक्र करता है। दर्शन और विज्ञान में यही बुनियादी भेद है। दर्शन पूछता है। यह अस्तित्व क्यों है? विज्ञान पूछता है, यह आस्तित्व कैसे है? जब तुम कैसे का प्रश्न पूछते हो, तब उपाय, विधि, महत्वपूर्ण हो जाती है। तब सिद्धांत व्यर्थ हो जाती है। अनुभव केंद्र बन जाता है।

विज्ञान का मतलब है चेतना है। और भैरव का विशेष शब्द है, तांत्रिक शब्द, जो पारगामी के लिए कहा जाता है। इसीलिए शिव को भैरव कहते है, और देवी को भैरवी—वे जो समस्त द्वैत के पार चले जाते है।

पार्वती कहती है—

आपका सत्य रूप क्या है?

यह आपका आश्चर्य-भरा जगता क्या है?

इसका बीज क्या है?

विश्व चक्र की धूरी क्या है?

यह चक्र चलता ही जाता है—महा परिवर्तन, सतत प्रवाह।

इसका मध्य बिंदु क्या है?

इसकी धूरी कहां है?

अचल केंद्र कहां है?

रूपों पर छाए लेकिन रूप के परे यह जीवन क्या है?

देश और काल, नाम और प्रत्यय के परे जाकर हम इसमे कैसे पूर्णत: प्रवेश करे?

मेरे संशय निर्मूल करे……

लेकिन संशय निर्मूल कैसे होंगे? किसके ऊपर से? क्या कोई उत्तर है जो कि मन के संशय दूर कर दे? मन ही तो संशय है। जब तक मन नहीं मिटता है, संशय निर्मूल कैसे होंगे?

शिव उत्तर देंगे। उनके उत्तर में सिर्फ विधियां है—सबसे पुरानी, सबसे प्रचीन विधियां। लेकिन तुम उन्हें अत्याधुनिक भी कह सकते हो। क्योंकि उनमें जोड़ा नहीं जा सकता। वे पूर्ण है, एक सौ बारह विधियां। उनमें सभी संभावनाओं का समावेश है; मन को शुद्ध करने के, मन के अतिक्रमण के सभी उपाय उनमें समाएँ है। शिव की एक सौ बारह विधियों में एक और विधि नहीं जोड़ी जा सकती। कुछ जोड़ने की गुंजाईश ही नहीं है। यह सर्वांगीण है, संपूर्ण है, अंतिम है। यह सब से प्राचीन है और साथ ही सबसे आधुनिक, सबसे नवीन। पुराने पर्वतों की भांति ये तंत्र पुराने है, शाश्वत जैसे लगते है। और साथ ही सुबह के सूरज के सामने खड़े ओस-कण की भांति ये नए है। ये इतने ताजे है।

ध्यान की इन एक सौ बारह विधियों से मन के रूपांतरण का पूरा विज्ञान निर्मित हुआ है। एक-एक कर हम उनमें प्रवेश करेंगे। पहले हम उन्हें बुद्धि से समझने की चेष्टा करेंगे। लेकिन बुद्धि को मात्र एक यंत्र की तरह काम में लाओ, मालिक की तरह नहीं। समझने के लिए यंत्र की तरह उसका उपयोग करों। लेकिन उसके जरिए नए व्यवधान मत पैदा करो। जिस समय हम इन विधियों की चर्चा करेंगे। तुम अपने पुराने ज्ञान को पुरानी जानकारियों को एक किनारे धर देना। उन्हें अलग ही कर देना। वे रास्ते की धूल भर है।

इन विधियों का साक्षात्कार निश्चित ही सावचेत मन से करो; लेकिन तर्क को हटा कर करो। इस भ्रम में मत रहो कि विवाद करने वाला मन सावचेत मन है। वह नहीं है। क्योंकि जिस क्षण तुम विवाद में उतरते हो, उसी क्षण सजगता खो जाती है। सावचेत नहीं रहते हो। तुम तब यहां हो ही नहीं।

ये विधियां किसी धर्म की नहीं है। वे ठीक वैसे ही हिंदू नहीं है जैसे सापेक्षवाद का सिद्धांत आइंस्टीन के द्वारा प्रतिपादित होने के कारण यहूदी नहीं हो जाता है। रेडियों टेलीविजन ईसाई नहीं है। ये विधियां हिंदुओं की ईजाद अवश्य है, लेकिन वे स्वयं हिंदू नहीं है। इस लिए इन विधियों में किसी धार्मिक अनुष्ठान का उल्लेख नहीं रहेगा। किसी मंदिर की जरूरत नहीं है। तुम स्वयं मंदिर हो। तुम ही प्रयोगशाला हो, तुम्हारे भीतर ही पूरा प्रयोग होने वाला है। और विश्वास की भी जरूरत नहीं है।

तंत्र धर्म नहीं है। विज्ञान है। किसी विश्वास की जरूरत नहीं है। कुरान या वेद में, बुद्ध या महावीर में आस्था रखने की आवश्यकता नहीं है। नहीं, किसी विश्वास की आवश्यकता है। प्रयोग करने का महा साहस पर्याप्त है, प्रयोग करने की हिम्मत काफी है। एक मुसलमान प्रयोग कर सकता है। वह कुरान के गहरे अर्थों को उपलब्ध हो जाएगा। एक हिंदू अभ्यास कर सकता है। और वह पहली दफा जानेगा कि वेद क्या है? वैसे ही एक जैन इस साधना में उतर सकता है, बौद्ध इस साधना में उतर सकता है, एक ईसाई इस साधना में उतर सकता है...वे जहां है तंत्र उन्हें आप्तकाम करेगा। उनके अपने चुने हुए रास्ते जो भी हो, तंत्र सहयोगी होगा।

यहीं कारण है कि जनसाधारण के लिए तंत्र नहीं समझा गया। और सदा यह होता है कि जब तुम किसी चीज को नहीं समझते हो तो उसे गलत जरूर समझते हो। क्योंकि तब तुम्हें लगता है। कि समझते जरूर हो। तुम रिक्त स्थान में बने रहने को राज़ी नहीं हो।

दूसरी बात कि जब तुम किसी चीज को नहीं समझते हो, तुम उसे गाली देने लगते हो। यह इसलिए कि यह तुम्हें अपमानजनक लगता है। तुम सोचते हो, मैं और नहीं समझूं, यह असंभव है। इस चीज के साथ ही कुछ भूल होगी। और तब तुम गाली देने लगते हो। तब तुम ऊलजलूल बकने लगते हो। और कहते हो कि अब ठीक है।

इस लिए तंत्र को नहीं समझा गया। और तंत्र को गलत समझा गया। महान राज भौज ने पवित्र उज्जैन नगरी में तंत्र के विद्यि पीठ को खत्म कर दिया। एक लाख तांत्रिक जोड़ों को काट दिया। क्यों ये क्या है, हमारी समझ में नहीं आता। कुछ सालों पहले वहीं पर राजा विक्रमादित्य ने उन्हीं तांत्रिकों कितना सम्मान दिया.....यह इतना गहरा और उँचा था कि यह होना स्वाभाविक था।

तीसरी बात कि चूंकि तंत्र द्वैत के पार जाता है, इसलिए उसका दृष्टिकोण अति नैतिक है। कृपया कर इन शब्दों को समझो: नैतिक, अनैतिक, अति नैतिक। नैतिक क्या है हम समझते है; अनैतिक क्या है हम समझते है; लेकिन जब कोई चीज अति नैतिक हो जाती है, दौनों के पार चली जाती है। तब उसे समझना कठिन है।

तंत्र अति नैतिक है। तंत्र कहता है। कोई नैतिकता जरूरी नहीं है। कोई खास नैतिकता जरूरी नहीं है। सच तो यह है कि तुम अनैतिक हो, क्योंकि तुम्हारा चित अशांत है। इसलिए तंत्र शर्त नहीं लगता कि पहले तुम नैतिक बनो तब तंत्र की साधना कर सकते हो। तंत्र के लिए यह बात ही बेतुकी है। कोई बीमार है, बुखार में है, डाक्टर आकर कहता है: पहले अपना बुखार कम करो, पहले पूरा स्वस्थ हो लो और तब मैं दवा दूँगा।

यही तो हो रहा है, चौर साधु के पास जाता है। और कहता है, मैं चौर हूं, मुझे ध्यान करना सिखाएं। साधु कहता है, पहले चौरी छोड़ो, चौर रहते ध्यान कैसे कर सकते हो। एक शराबी आकर कहता है, मैं शराब पीता हूं, मुझे ध्यान बताएं। और साधु कहता है, पहली शर्त कि शराब छोड़ो तब ध्यान कर सकोगे।

तंत्र तुम्हारी तथा कथित नैतिकता की, तुम्हारे समाजिक रस्म-रिवाज आदि की चिंता नहीं करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि तंत्र तुम्हें अनैतिक होने को कहता है। नहीं, तंत्र जब तुम्हारी नैतिकता की ही इतनी परवाह नहीं करता। तो वह तुम्हें अनैतिक होने को नहीं कह सकता। तंत्र तो वैज्ञानिक विधि बताता है कि कैसे चित को बदला जाए। और एक बार चित दूसर हुआ कि तुम्हारा चरित्र दूसरा हो जाएगा। एक बार तुम्हारे ढांचे का आधार बदला कि पूरी इमारत दूसरी हो जाएगी।

इसी अति नैतिक सुझाव के कारण तंत्र तुम्हारे तथाकथित साधु-महात्माओं को बर्दाश्त नहीं हुआ। वे सब उसके विरोध में खड़े हो गए। क्योंकि अगर तंत्र सफल होता है तो धर्म के नाम पर चलने वाली सारी नासमझी समाप्त हो जाएगी।

तंत्र कहता है कि उस अवस्था का नाम भैरव है जब मन नहीं रहता—अ-मन की अवस्था है। और तब पहल दफा तुम यथार्थत: उसको देखते हो जो है। जब तक मन है, तुम अपना ही संसार रचे जाते हो, तुम उसे आरोपित, प्रक्षेपित किए जाते हो, इसलिए पहल तो मन को बदलों और तब मन को अ-मन में बदलों।

और ये एक सौ बारह विधियों सभी लोगों के काम आ सकती है। हो सकता है, कोई विशेष उपाय तुमको ठीक न पड़े, इसलिए तो शिव अनेक उपाय बताए चले जाते है। कोई एक विधि चुन लो जो तुमको जंच जाए।

और यह जानना कठिन नहीं है। कि कौन सी विधि तुम्हें जँचती है। हम यहां प्रत्येक विधि को समझने की कोशिश करेंगे। तुम अपने लिए वह विधि चुन लो जो कि तुम्हें और तुम्हारे मन को रूपांतरित कर दे। यह समझ, यह बौद्धिक समझ बुनियादी तौर से जरूरी है। लेकिन अंत नहीं है। जिस विधि की भी चर्चा में यहां करूं उसको प्रयोग करो। सच में यह है कि जब तुम अपनी सही विधि का प्रयोग करते हो तब झट से उसका तार तुम्हारे किसी तार से लगाकर बज उठता है।

एक विधि लो उसके साथ तीन दिन खेलो। अगर तुम्हें उसके साथ निकटता की अनुभूति हो, अगर उसके साथ तुम थोड़ा स्वस्थ महसूस करो, अगर तुम्हें लगे कि यह तुम्हारे लिए है तो फिर उसके प्रति गंभीर हो जाओ। तब दूसरी विधियों को भूल जाओ, उनमें खेलना बंद करो। और अपनी विधि के साथ टीको, कम से कम तीन महीने टीको। चमत्कार संभव है, बस इतना

होना चाहिए कि वह विधि सचमुच तुम्हारे लिए हो। यदि तुम्हारे लिए नहीं है तो कुछ नहीं होगा। तब उसके साथ जन्मों-जन्मों तक प्रयोग करके भी कुछ नहीं होगा।

लेकिन ये एक सौ बारह विधियां तो समस्त मानव-जाति के लिए है। और वे उन सभी युगों के लिए है जो गुजर गए है और आने वाले है। और किसी भी युग में एक भी एका आदमी नहीं हुआ और न होने वाला ही है। जो कह सके कि ये सभी एक सौ बारह विधियां मेरे लिए व्यर्थ है। असंभव , यह असंभव है।

प्रत्येक ढंग के चित के लिए यहां गुंजाइश है। तंत्र में प्रत्येक किस्म के चित के लिए विधि है। कई विधियां है जिनके उपयुक्त आदमी अभी उपलब्ध नहीं है, वे भविष्य के लिए है। और ऐसी विधियां भी है जिनके उपयुक्त मनुष्य रहे ही नहीं। वे अतीत के लिए है। लेकिन डर मत जाना। अनेक विधियां है जो तुम्हारे लिए ही है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

प्रवचन—1
भाग—1(तंत्र सूत्र)

तंत्र-सूत्र–विधि—01

शिव कहते है:
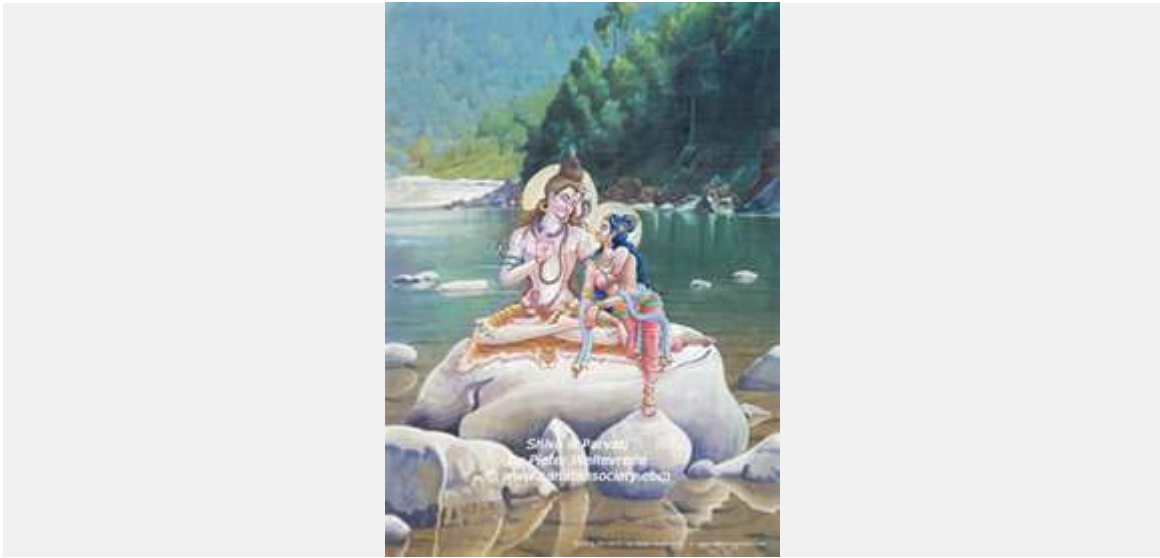
विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो
तंत्र-सूत्र, ध्यान विधि–

हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है।

श्वास के भीतर आने के पश्चात और बाहर लौटने के ठीक पूर्व–

श्रेयस् है, कल्याण है।

आरंभ की नौ विधियां श्वास-क्रिया से संबंध रखती है। इसलिए पहले हम श्वास-क्रिया के संबंध में थोड़ा समझ लें और विधियों में प्रवेश करेंगे।

हम जन्म से मृत्यु के क्षण तक निरंतर श्वास लेते रहते है। इन दो बिंदुओं के बीच सब कुछ बदल जाता है। सब चीज बदल जाती है। कुछ भी बदले बिना नहीं रहता। लेकिन जन्म और मृत्यु के बीच श्वास क्रिया अचल रहती है। बच्चा जवान होगा, जवान बूढ़ा होगा। वह। बीमार होगा। उसका शरीर रूग्ण और कुरूप होगा। सब कुछ बदल जायेगा। वह सुखी होगा, दुःखी होगा, पीड़ा में होगा, सब कुछ बदलता रहेगा। लेकिन इन दो बिंदुओं के बीच आदमी श्वास भर सतत लेता रहेगा। श्वास क्रिया एक सतत प्रवाह है, उसमें अंतराल संभव नहीं है। अगर तुम एक क्षण के लिए भी श्वास लेना भूल जाओं तो तुम समाप्त हो जाओगे। यही कारण है कि श्वास लेने का जिम्मा तुम्हारी नहीं है। नहीं तो मुश्किल हो जायेगी। कोई भूल जाये श्वास लेना तो फिर कुछ भी नहीं किया जा सकता।

इसलिए यथार्थ में तुम श्वास नहीं लेते हो, क्योंकि उसमे तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम गहरी नींद में हो और श्वास चलती रहती है। तुम गहरी मूर्च्छा में हो और श्वास चलती रहती है। श्वासन तुम्हारे व्यक्तितत्व का एक अचल तत्व है।

दूसरी बात यह जीवन के अत्यंत आवश्यक और आधारभूत है। इस लिए जीवन और श्वास पर्यायवाची हो गये। इस लिए भारत में उसे प्राण कहते है। श्वास और जीवन को हमने एक शब्द दिया। प्राण का अर्थ है, जीवन शक्ति, जीवंतता। तुम्हारा जीवन तुम्हारी श्वास है।

तीसरी बात श्वास तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच एक सेतु है। सतत श्वास तुम्हें तुम्हारे शरीर से जोड़ रही है। संबंधित कर रही है। और श्वास ने सिर्फ तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच सेतु है, वह तुम्हारे और विश्व के बीच भी सेतु है। तुम्हारा शरीर विश्व का अंग है। शरीर की हरेक चीज, हरेक कण, हरेक कोश विश्व का अंश है। यह विश्व के साथ निकटतम संबंध है। और श्वास सेतु है। और अगर सेतु टूट जाये तो तुम शरीर में नहीं रह सकते। तुम किसी अज्ञात आयाम में चले जाओगे। इस लिए श्वास तुम्हारे और देश काल के बीच सेतु हो जाती है।

श्वास के दो बिंदु है, दो छोर है। एक छोर है जहां वह शरीर और विश्व को छूती है। और दूसरा वह छोर है जहां वह विश्वातीत को छूती है। और हम श्वास के एक ही हिस्से से परिचित है। जब वह विश्व में, शरीर में गति करती है। लेकिन वह सदा ही शरीर से अशरीर में गति करती है। अगर तुम दूसरे बिंदू को, जो सेतु है, धुव्र है, जान जाओं। तुम एकाएक रूपांतरित होकर एक दूसरे ही आयाम में प्रवेश कर जाओगे।

लेकिन याद रखो, शिव जो कहते है वह योग नहीं है। वह तंत्र है। योग भी श्वास पर काम करता है। लेकिन योग और तंत्र के काम में बुनियादी फर्क है। योग श्वास-क्रिया को व्यवस्थित करने की चेष्टा करता है। अगर तुम अपनी श्वास को व्यवस्था दो तो तुम्हारा स्वास्थ सुधर जायेगा। इसके रहस्यों को समझो, तो तुम्हें स्वास्थ और दीर्घ जीवन मिलेगा। तुम ज्यादा बलि, ज्यादा ओजस्वी, ज्यादा जीवंत, ज्यादा ताजा हो जाओगे।

लेकिन तंत्र का इससे कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र स्वास की व्यवस्था की चिंता नहीं करता। भीतर की और मुड़ने के लिए वह श्वास क्रिया का उपयोग भर करता है। तंत्र में साधक को किसी विशेष ढंग की श्वास का अभ्यास नहीं करना चाहिए। कोई विशेष प्राणायाम नहीं साधना है, प्राण को लयवद्ध नहीं बनाना है; बस उसके कुछ विशेष बिंदुओं के प्रति बोधपूर्ण होना है।

श्वास प्रश्वास के कुछ बिंदु है जिन्हें हम नहीं जानते। हम सदा श्वास लेते है। श्वास के साथ जन्मते है, श्वास के साथ मरते है। लेकिन उसके कुछ महत्व पूर्ण बिंदुओं को बोध नहीं है। और यह हैरानी की बात है। मनुष्य अंतरिक्ष की गहराइयों में उतर रहा है, खोज रहा है, वह चाँद पर पहुंच गया है। लेकिन वह अपने जीवन के इस निकटतम विंदु को समझ नहीं सका। श्वास के

कुछ बिंदु है, जिसे तुमने कभी देखा नहीं है। वे बिंदु द्वार है, तुम्हारे निकटतम द्वार है, जिनसे होकर तुम एक दूसरे ही संसार में, एक दूसरे ही अस्तित्व में, एक दूसरी ही चेतना में प्रवेश कर सकते हो।

लेकिन वह बिंदु बहुत सूक्ष्म है। जो चीज जितनी निकट हो उतनी ही कठिन मालूम पड़ेगी, श्वास तुम्हारे इतना करीब है, कि उसके बीच स्थान ही नहीं बना रहता। या इतना अल्प स्थान है कि उसे देखने के लिए बहुत सूक्ष्म दृष्टि चाहिए। तभी तुम उन बिंदुओं के प्रति बोध पूर्ण हो सकते हो। ये बिंदु इन विधियों के आधार है।

शिव उत्तर में कहते है—हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। श्वास के भीतर आने के पश्चात और बाहर लौटने के ठीक पूर्व—श्रेयस् है, कल्याण है।

यह विधि है: हे देवी, यह अनुभव दो श्वासों के बीच घटित हो सकता है। जब श्वास भीतर अथवा नीचे को आती है उसके बाद फिर श्वास के लौटने के ठीक पूर्व—श्रेयस् है। इन दो बिंदुओं के बीच होश पुर्ण होने से घटना घटती है।

जब तुम्हारी श्वास भीतर आये तो उसका निरीक्षण करो। उसके फिर बाहर या ऊपर के लिए मुड़ने के पहले एक क्षण के लिए, या क्षण के हज़ारवें भाग के लिए श्वास बंद हो जाती है। श्वास भीतर आती है, और वहां एक बिंदु है जहां वह ठहर जाती है। फिर श्वास बाहर जाती है। और जब श्वास बाहर जाती है। तो वहां एक बिंदु पर ठहर जाती है। और फिर वह भीतर के लौटती है।

श्वास के भीतर या बाहर के लिए मुड़ने के पहले एक क्षण है जब तुम श्वास नहीं लेते हो। उसी क्षण में घटना घटनी संभव है। क्योंकि जब तुम श्वास नहीं लेते हो तो तुम संसार में नहीं होते हो। समझ लो कि जब तुम श्वास नहीं लेते हो तब तुम मृत हो; तुम तो हो, लेकिन मृत। लेकिन यह क्षण इतना छोटा है कि तुम उसे कभी देख नहीं पाते।

तंत्र के लिए प्रत्येक बहिर्गामी श्वास मृत्यु है और प्रत्येक नई स्वास पुनर्जन्म है। भीतर आने वाली श्वास पुनर्जन्म है; बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु का पर्याय है; अंदर जाने वाली श्वास जीवन का। इसलिए प्रत्येक श्वास के साथ तुम मरते हो और प्रत्येक श्वास के साथ तुम जन्म लेते हो। दोनों के बीच का अंतराल बहुत क्षणिक है, लेकिन पैनी दृष्टि, शुद्ध निरीक्षण और अवधान से उसे अनुभव किया जा सकता है। और यदि तुम उस अंतराल को अनुभव कर सको तो शिव कहते है कि श्रेयस् उपलब्ध है। तब और किसी चीज की जरूरत नहीं है। तब तुम आप्तकाम हो गए। तुमने जान लिया; घटना घट गई।

श्वास को प्रशिक्षित नहीं करना। वह जैसी है उसे वैसी ही बनी रहने देना। फिर इतनी सरल विधि क्यों? सत्य को जानने को ऐसी सरल विधि? सत्य को जानना उसको जानना है। जिसका न जन्म है न मरण। तुम बहार जाती श्वास को जान सकते हो, तुम भीतर जाती श्वास को जान सकते हो। लेकिन तुम दोनों के अंतराल को कभी नहीं जानते।

प्रयोग करो और तुम उस बिंदु को पा लोगे। उसे अवश्य पा सकते हो। वह है। तुम्हें या तुम्हारी संरचना में कुछ जोड़ना नहीं है। वह है ही। सब कुछ है; सिर्फ बोध नहीं है। कैसे प्रयोग करो? पहले भीतर आने वाली श्वास के प्रति होश पूर्ण बनो। उसे देखो। सब कुछ भूल जाओ और आने वाली श्वास को, उसके यात्रा पथ को देखो। जब श्वास नासापुटों को स्पर्श करे तो उसको महसूस करो। श्वास को गति करने दो और पूरी सजगता से उसके साथ यात्रा करो। श्वास के साथ ठीक कदम से कदम मिलाकर नीचे उतरो; न आगे जाओ और ने पीछे पड़ो। उसका साथ न छूटे; बिलकुल साथ-साथ चलो।

स्मरण रहे, न आगे जाना है और न छाया की तरह पीछे चलना है। समांतर चलो। युगपत। श्वास और सजगता को एक हो जाने दो। श्वास नीचे जाती है तो तुम भी नीचे जाओं; और तभी उस बिंदु को पा सकते हो, जो दो श्वासों के बीच में है। यह आसान नहीं है। श्वास के साथ अंदर जाओ; श्वास के साथ बाहर आओ।

बुद्ध ने इसी विधि का प्रयोग विशेष रूप से किया; इसलिए यह बौद्ध विधि बन गई। बौद्ध शब्दावली में इसे अनापानसति योग कहते है। और स्वयं बुद्ध की आत्मोपलब्धि इस विधि पर ही आधारित थी। संसार के सभी धर्म, संसार के सभी द्रष्टा किसी न किसी विधि के जरिए मंजिल पर पहुंचे है। और वह सब विधियां इन एक सौ बारह विधियों में सम्मिलित है। यह पहली विधि बौद्ध विधि है। दुनिया इसे बौद्ध विधि के रूप में जानती है। क्योंकि बुद्ध इसके द्वारा ही निर्वाण को उपलब्ध हुए थे।

बुद्ध न कहा है। अपनी श्वास-प्रश्वास के प्रति सजग रहो। अंदर जाती, बहार आती, श्वास के प्रति होश पूर्ण हो जाओ। बुद्ध अंतराल की चर्चा नहीं करते। क्योंकि उसकी जरूरत ही नहीं है। बुद्ध ने सोचा और समझा कि अगर तुम अंतराल की, दो श्वासों के बीच के विराम की फिक्र करने लगे, तो उससे तुम्हारी सजगता खंडित होगी। इसलिए उन्होंने सिर्फ यह कहा कि होश रखो, जब श्वास भीतर आए तो तुम भी उसके साथ भीतर जाओ और जब श्वास बहार आये तो तुम उसके साथ बहार आओ। विधि के दूसरे हिस्से के संबंध में बुद्ध कुछ नहीं कहते।

इसका कारण है। कारण यह है कि बुद्ध बहुत साधारण लोगों से, सीधे-सादे लोगों से बोल रहे थे। वे उनसे अंतराल की बात करते तो उससे लोगों में अंतराल को पाने की एक अलग कामना निर्मित हो जाती। और यह अंतराल को पाने की कामना बोध में बाधा बन जाती। क्योंकि अगर तुम अंतराल को पाना चाहते हो तो तुम आगे बढ़ जाओगे; श्वास भीतर आती रहेगी। और तुम उसके आगे निकल जाओगे। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि अंतराल पर है जो भविष्य में है। बुद्ध कभी इसकी चर्चा नहीं करते; इसीलिए बुद्ध की विधि आधी है।

लेकिन दूसरा हिस्सा अपने आप ही चला आता है। अगर तुम श्वास के प्रति सजगता का, बोध का अभ्यास करते गए तो एक दिन अनजाने ही तुम अंतराल को पा जाओगे। क्योंकि जैसे-जैसे तुम्हारा बोध तीव्र, गहरा और सघन होगा, जैसे-जैसे तुम्हारा बोध स्पष्ट आकार लेगा। जब सारा संसार भूल जाएगा। बस श्वास का आना जाना ही एकमात्र बोध रह जाएगा—तब अचानक तुम उस अंतराल को अनुभव करोगे। जिसमें श्वास नहीं है।

अगर तुम सूक्ष्मता से श्वास-प्रश्वास के साथ यात्रा कर रहे हो तो उस स्थिति के प्रति अबोध कैसे रह सकते हो। जहां स्वास नहीं है। वह क्षण आ ही जाएगा जब तुम महसूस करोगे। कि अब श्वास न जाती है, न आती है। श्वास क्रिया बिलकुल ठहर गई है। और उसी ठहराव में श्रेयस् का वास है।

यह एक विधि लाखों-करोड़ों लोगों के लिए पर्याप्त है। सदियों तक समूचा एशिया इस एक विधि के साथ जीया और उसका प्रयोग करता रहा। तिब्बत, चीन, जापन, बर्मा, श्याम, श्रीलंका। भारत को छोड़कर समस्त एशिया सदियों तक इस एक विधि का उपयोग करता रहा। और इस एक विधि के द्वारा हजारों-हजारों व्यक्ति ज्ञान को उपलब्ध हुए। और यह पहली ही विधि है। दुर्भाग्य की बात कि चूंकि यह विधि बुद्ध के नाम से संबंद्ध हो गई। इसलिए हिंदू इस विधि से बचने की चेष्टा में लगे रहे। क्योंकि यह बौद्ध विधि की तरह बहुत प्रसिद्ध हुई। हिंदू इसे बिलकुल भूल गये। इतना ही नहीं, उन्होंने और एक कारण से इसकी अवहेलना की। क्योंकि शिव ने सबसे पहले इस विधि का उल्लेख किया, अनेक बौद्धों ने इस विज्ञान भैरव तंत्र के बौद्ध ग्रंथ होने का दावा किया। वे इसे हिंदू ग्रंथ नहीं मानते।

यह न हिंदू है और न बौद्ध, और विधि मात्र विधि है। बुद्ध ने इसका उपयोग किया, लेकिन यह उपयोग के लिए मौजूद ही थी। और इस विधि के चलते बुद्ध-बुद्ध हुए। विधि तो बुद्ध से भी पहले थी। वह मौजूद ही थी। इसको प्रयोग में लाओ। यह सरलतम

विधियों में से है—अन्य विधियों की तुलना में। मैं यह नहीं कहता कि यह विधि तुम्हारे लिए सरल है। अन्य विधियां अधिक कठिन होंगी। यही कारण है कि पहली विधि की तरह इसका उल्लेख हुआ है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन—2,

तंत्र-सूत्र—विधि—02

जब श्वास नीचे से ऊपर की ओर मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की ओर मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।

विज्ञान भैरव तंत्र ;;;;तंत्र-सूत्र—विधि—02 (ओशो)

थोड़े फर्क के साथ यह वही विधि है; और अब अंतराल पर न होकर मोड़ पर है। बाहर जाने वाली और अंदर जाने वाली श्वास एक वर्तुल बनाती है। याद रहे, वे समांतर रेखाओं की तरह नहीं है। हम सदा सोचते है कि आने वाली श्वास और जाने वाली श्वास दो समांतर रेखाओं की तरह है। मगर वे ऐसी है नहीं। भीतर आने वाली श्वास आधा वर्तुल बनाती है। और शेष आधा वर्तुल बाहर जाने वाली श्वास बनाती है।
इसलिए पहले यह समझ लो कि श्वास और प्रश्वास मिलकर एक वर्तुल बनाती है। और वे समांतर रेखाएं नहीं है; क्योंकि समांतर रेखाएं कही नहीं मिलती है। दूसरी यह कि आने वाली और जाने वाली श्वास दो नहीं है। वे एक है। वही श्वास भीतर आती है, बहार भी जाती है। इसलिए भीतर उसका कोई मोड़ अवश्य होगा। वह कहीं जरूर मुड़ती होगी। कोई बिंदु होगा, जहां आने वाली श्वास जाने वाली श्वास बन जाती होगी।

लेकिन मोड़ पर इतना जोर क्यों है?

क्योंकि शिव कहते है, ''जब श्वास नीचे से ऊपर की और मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की और मुड़ती है—इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो।''

बहुत सरल है। लेकिन शिव कहते है कि मोड़ों को प्राप्त कर लो। और आत्मा को उपलब्ध हो जाओगे। लेकिन मोड़ क्यों?

अगर तुम कार चलाना जानते हो तो तुम्हें गियर का पता होगा। हर गियर बदलते हो तो तुम्हें न्यूट्रल गियर से गुजरना पड़ता है जो कि गियर बिलकुल नहीं है। तुम पहले गियर से दूसरे गियर में जाते हो और दूसरे से तीसरे गियर में। लेकिन सदा तुम्हें न्यूट्रल गियर से होकर जाना पड़ता है। वह न्यूट्रल गियर घुमाव का बिंदु है। मोड़ है। उस मोड़ पर पहला गियर दूसरा गियर बन जाता है। और दूसरा तीसर बन जाता है।

वैसे ही जब तुम्हारी श्वास भीतर जाती है और घूमने लगती है तो उस वक्त वह न्यूट्रल गियर में होती है। नहीं तो वह नहीं धूम सकती। उसे तटस्थ क्षेत्र से गुजरना पड़ता है।

उस तटस्थ क्षेत्र में तुम न तो शरीर हो और न मन ही हो; न शारीरिक हो, न मानसिक हो। क्योंकि शरीर तुम्हारे अस्तित्व का एक गियर है और मन उसका दूसरा गियर है। तुम एक गियर से दूसरे गियर में गति करते हो, इस लिए तुम्हें एक न्यूट्रल गियर की जरूरत है जो न शरीर हो और न मन हो। उस तटस्थ क्षेत्र में तुम मात्र हो, मात्र अस्तित्व–शुद्ध, सरल, अशरीरी और मन से मुक्त। यही कारण है कि घुमाव बिंदु पर, मोड़ पर इतना जोर है।

मनुष्य एक यंत्र है—बड़ा और बहुत जटिल यंत्र। तुम्हारे शरीर और मन में भी अनेक गियर है। तुम्हें उस महान यंत्र रचना का बोध नहीं है। लेकिन तुम एक महान यंत्र हो। और अच्छा है कि तुम्हें उसका बोध नहीं है। अन्यथा तुम पागल हो जाओगे। शरीर ऐसा विशाल यंत्र है कि वैज्ञानिक कहते है, अगर हमें शरीर के समांतर एक कारखाना निर्मित करना पड़े तो उसे चार वर्ग मिल जमीन की जरूरत होगी। और उसका शोरगुल इतना भारी होगा कि उससे सौ वर्ग मील भूमि प्रभावित होगी।

शरीर एक विशाल यांत्रिक रचना है—विशालतम। उसमे लाखों-लाखों कोशिकांए है, और प्रत्येक कोशिका जीवित है। तुम सात करोड़ कोशिकाओं के एक विशाल नगर में हो; तुम्हारे भी तर सात करोड़ नागरिक बसते है; और सारा नगर बहुत शांति और व्यवस्था से चल रहा है। प्रतिक्षण यंत्र-रचना काम कर रही है। और वह बहुत जटिल है।

कई स्थलों पर इन विधियों का तुम्हारे शरीर और मन की एक यंत्र-रचना के साथ वास्ता पड़ेगा। लेकिन याद रखो। कि सदा ही जोर उन बिंदुओं पर रहेगा जहां तुम अचानक यंत्र-रचना के अंग नहीं रह जाते हो। जब एकाएक तुम यंत्र रचना के अंग नहीं रहे तो ये ही क्षण है जब तुम गियर बदलते हो।

उदाहरण के लिए, रात जब तुम नींद में उतरते हो तो तुम्हें गियर बदलना पड़ता है। कारण यह है कि दिन में जागी हुई चेतना के लिए दूसरे ढंग की यंत्र रचना की जरूरत रहती है। तब मन का भी एक दूसरा भाग काम करता है। और जब तुम नींद में उतरते हो तो वह भाग निष्क्रिय हो जाता है। और अन्य भाग सक्रिय होता है। उस क्षण वहां एक अंतराल, एक मोड़ आता है। एक गियर बदला। फिर सुबह जब तुम जागते हो तो गियर बदलता है।

तुम चुपचाप बैठे हो और अचानक कोई कुछ कह देता है, और तुम क्रुद्ध हो जाते हो। तब तुम भिन्न गियर में चले गए। यही कारण है कि सब कुछ बदल जाता है। तुम क्रोध में हुए श्वास क्रिया बदल जायेगी। वह अस्तव्यस्त हो जायेगी। तुम्हारी श्वास क्रिया में कंपन आ जाएगा। किसी चीज को चूर-चूर कर देना चाहेगा, ताकि यह घुटन जाए। तुम्हारी श्वास क्रिया बदल जाएगी, तुम्हारे खून की लय दुसरी होगी। शरीर में और ही तरह का रस द्रव्य सक्रिय होगा। पूरी ग्रंथि व्यवस्था ही बदल जाएगी। क्रोध में तुम दूसरे ही आदमी हो जाते हो।

एक कार खड़ी है, तुम उसे स्टार्ट करो। उसे किसी गियर में न डालकर न्यूट्रल गियर में छोड़ दो। गाड़ी हिलेगी, कांपेगी, लेकिन चलेगी नहीं। वह गरम हो जाएगी। इसी तरह क्रोध में नहीं कुछ कर पाने के कारण तुम गरम हो जाते हो। यंत्र रचना तो कुछ करने के लिए सक्रिय है और तुम उसे कुछ करने नहीं देते तो उसका गरम हो जाना स्वाभाविक है। तुम एक यंत्र-रचना हो, लेकिन मात्र यंत्र-रचना नहीं हो। उससे कुछ अधिक हो। उस अधिक को खोजना है। जब तुम गियर बदलते हो तो भीतर सब कुछ बदल जाता है। जब तुम गियर बदलते हो तो एक मोड़ आता है।

शिव कहते है, ''जब श्वास नीचे से ऊपर की और मुड़ती है, और फिर जब श्वास ऊपर से नीचे की और मुड़ती है। इन दो मोड़ों के द्वारा उपलब्ध हो जाओ।''

मोड़ पर सावधान हो जाओ, सजग हो जाओ। लेकिन यह मोड़ बहुत सूक्ष्म है और उसके लिए बहुत सूक्ष्म निरीक्षण की जरूरत पड़ेगी। हमारी निरीक्षण की क्षमता नहीं के बराबर है; हम कुछ देख ही नहीं सकते। अगर मैं तुम्हें कहूं कि इस फूल को देखो—इस फूल को जो तुम्हें मैं देता हूं। तो तुम उसे नहीं देख पाओगे। एक क्षण को तुम उसे देखोगें और फिर किसी और चीज के संबंध में सोचने लगोगे। वह सोचना फूल के विषय में हो सकता है। लेकिन वह फूल नहीं हो सकता। तुम फूल के बारे में सोच सकते हो। कि देखो वह कितना सुंदर है। लेकिन तब तुम फूल से दूर हट गए। अब फूल तुम्हारे निरीक्षण क्षेत्र में नहीं रहा। क्षेत्र बदल गया। तुम कहोगे कि यह लाल है, नीला है, लेकिन तुम उस फूल से दूर चले गए।

निरीक्षण का अर्थ होता है: किसी शब्द या शाब्दिकता के साथ, भीतर की बदलाहट के साथ न रहकर मात्र फूल के साथ रहना। अगर तुम फूल के साथ ऐसे तीन मिनट रह जाओ, जिसमे मन कोई गति न करे, तो श्रेयस् घट जाएगा। तुम उपलब्ध हो जाओगे।

लेकिन हम निरीक्षण बिलकुल नहीं जानते है। हम सावधान नहीं है, सतर्क नहीं है, हम किसी भी चीज को अपना अवधान नहीं दे पाते है। हम ता यहां-वहां उछलते रहत है। वह हमारी वंशगत विरासत है, बंदर-वंश की विरासत। बंदर के मन से ही मनुष्य का मन विकसित हुआ है। बंदर शांत नहीं बैठ सकता। इसीलिए बुद्ध बिना हलन-चलन के बैठने पर, मात्र बैठने पर इतना जौर देते है। क्योंकि तब बंदर-मन का अपनी राह चलना बंद हो जाता है।

जापान में एक खास तरह का ध्यान चलता है जिसे वे झा झेन कहते है। झा झेन शब्द का जापानी में अर्थ होता है, मात्र बैठना और कुछ भी नहीं करना। कुछ भी हलचल नहीं करनी है, मूर्ति की तरह वर्षो बैठे रहना है—मृतवत्, अचल। लेकिन मूर्ति की तरह वर्षों बैठने की जरूरत क्या है? अगर तुम अपने श्वास के घुमाव को अचल मन से देख सको तो तुम प्रवेश पा जाओगे? तुम स्वयं में प्रवेश पा जाओगे। अंतर के भी पार प्रवेश पा जाओगे। लेकिन ये मोड़ इतने महत्वपूर्ण क्यों है?

वे महत्वपूर्ण है, क्योंकि मोड़ पर दूसरी दिशा में घूमने के लिए श्वास तुम्हें छोड़ देती है। जब वह भीतर आ रही थी तो तुम्हारे साथ थी; फिर जब वह बाहर जाएगी तो तुम्हारे साथ होगा। लेकिन घुमाव-बिंदु पर न वह तुम्हारे साथ है और न तुम उसके साथ हो। उस क्षण में श्वास तुमसे भिन्न है और तुम उससे भिन्न हो। अगर श्वास क्रिया ही जीवन है तो तब तुम मृत हो। अगर श्वास-क्रिया तुम्हारा मन है तो उस क्षण तुम अ-मन हो।

तुम्हें पता हो या न हो, अगर तुम अपनी श्वास को ठहरा दो तो मन अचानक ठहर जाता है। अगर तुम अपनी श्वास को ठहरा दो तो तुम्हारा मन अभी और अचानक ठहर जाएगा; मन चल नहीं सकता। श्वास का अचानक ठहरना मन को ठहरा देता है। क्यों? क्योंकि वे पृथक हो जाते है। केवल चलती हुई श्वास मन से शरीर से जुड़ी होती है। अचल श्वास अलग हो जाती है। और जब तुम न्यूट्रल गियर में होते हो।

कार चालू है, ऊर्जा भाग रही है, कार शोर मचा रही है। वह आगे जाने को तैयार है। लेकिन वह गियर में ही नहीं है। इसलिए कार का शरीर और कार का यंत्र-रचना, दोनों अलग-अलग है। कार दो हिस्सों में बंटी है। वह चलने को तैयार है, लेकिन गति का यंत्र उससे अलग है।

वही बात तब होती है जब श्वास मोड़ लेती है। उस समय तुम उसे नहीं जुड़े हो। और उस क्षण तुम आसानी से जान सकते हो कि मैं कौन हूं, यह होना क्या है, उस समय तुम जान सकते हो कि शरीर रूपी घर के भीतर कौन है, इस घर का स्वामी कौन है। मैं मात्र घर हूं या वहां कोई स्वामी भी है, मैं मात्र यंत्र रचना हूं, या उसके परे भी कुछ है। और शिव कहते है कि उस घुमाव बिंदु पर उपलब्ध हो। वे कहते है, उस मोड़ के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ और तुम आत्मोपलब्ध हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

प्रवचन-2(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

तंत्र-सूत्र—विधि—03

या जब कभी अंत: श्वास और बहिर्श्वास एक दूसरे में विलीन होती है, उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र को स्पर्श करो।

विज्ञान भैरव तंत्र–ध्यान विधि–03–ओशो

हम केंद्र और परिधि में विभाजित है। शरीर परिधि है। हम शरीर को, परिधि को जानते है। लेकिन हम यह नहीं जानते कि कहां केंद्र है। जब बहिर्श्वास अंत:श्वास में विलीन होती है। जब वे एक हो जाती है। जब तुम यह नहीं कह सकते कि यह अंत:श्वास है कि बहिर्श्वास, जब यह बताना कठिन हो कि श्वास भीतर जा रही है कि बाहर जा रही है। जब श्वास भी तर प्रवेश कि बाहर की तरफ मुड़ने लगती है, तभी विलय का क्षण है। तब श्वास जाती है और न भीतर आती है। श्वास गतिहीन है। जब वह बहार जाती है, गतिमान है, जब वह भीतर आती है, गतिमान है। और जब वह दोनों में कुछ भी नहीं करती है। तब वह मौन है, अचल है। और तब तुम केंद्र के निकट हो। आने वाली और जाने वाली श्वासों का यह विलय विंदु तुम्हारा केंद्र है। इसे इस तरह देखो। जब श्वास भीतर जाती है तो कहां जाती है? वह तुम्हारे केंद्र को जाती है। और जब वह बाहर जाती है तो कहां जाती है? केंद्र से बाहर जाती है। इसी केंद्र को स्पर्श करना है। यही कारण हे कि ताओ वादी संत और झेन संत कहते है कि सिर तुम्हारा केंद्र नहीं है, नाभि तुम्हारा केंद्र है। श्वास नाभि-केंद्र को जाती है, फिर वहां से लौटती है, फिर उसकी यात्रा करती है।

जैसा मैंने कहा, श्वास तुम्हारे और तुम्हारे शरीर के बीच सेतु है। तुम शरीर को तो जानते हो, लेकिन यह नहीं जानते कि केंद्र कहां है। श्वास निरंतर केंद्र को जा रही है। और वहां से लौट रही है। लेकिन हम पर्याप्त श्वास नहीं लेते है। इस कारण से साधारण: वह केंद्र तक नहीं पहुंच पाती है। खासकर आधुनिक समय में तो वह केंद्र तक नहीं जाती। और नतीजा यह है कि हरेक व्यक्ति विकेंद्रित अनुभव करता है। अपने को केंद्र से च्यूत महसूस करता है। पूरे आधुनिक संसार में जो लोग भी थोड़ा सोच-विचार करते है। वे महसूस करते है कि उनका केंद्र खो गया है।

एक सोए हुए बच्चे को देखो, उसकी श्वास का निरीक्षण करो। जब उसकी श्वास भीतर जाती है तो उसका पेट ऊपर उठता है। उसकी छाती अप्रभावित रहती है। यही वजह है कि बच्चों के छाती नहीं होती। उनके केवल पेट होते है। जीवंत पेट। श्वास प्रश्वास के साथ उनका पेट ऊपर नीचे होता है। उनका पेट ऊपर-नीचे होता है और बच्चे अपने केंद्र पर होते है, केंद्र में होते है, और यही कारण है कि बच्चे इतने सुखी है, इतने आनंदमग्न है। इतनी ऊर्जा से भरे है कि कभी थकते नहीं और ओवर फ्लोइंग है। वे सदा वर्तमान क्षण में होते है। न उनका अतीत है न भविष्य।

एक बच्चा क्रोध कर सकता है। जब वह क्रोध करता है तो समग्रता से क्रोध करता है। वह क्रोध ही हो जाता है। और तब उसका क्रोध भी कितना सुंदर लगता है। जब कोई समग्रता से क्रोध ही हो जाता है। तो उसके क्रोध का भी अपना सौंदर्य है। क्योंकि समग्रता सदा सुंदर होती है।

तुम क्रोधी और सुंदर नहीं हो सकते। क्रोध में तुम कुरूप लगोगे। क्योंकि खंड सदा कुरूप होता है। क्रोध के साथ ही ऐसा नहीं है। तुम प्रेम भी करते हो तो कुरूप लगते हो। क्योंकि उसमे भी तुम खंडित हो, बंटे-बंटे हो। जब तुम किसी को प्रेम कर रहे हो, जब तुम संभोग में उतर रहे हो तो अपने चेहरे को देखो। आईने के सामने प्रेम करो और अपना चेहरा देखो। वह कुरूप और पशुवत होगा।

प्रेम में भी तुम्हारा रूप कुरूप हो जाता है। क्यों? तुम्हारे प्रेम में भी द्वंद्व है, तुम कुछ बचाकर रख रहे हो, कुछ रोक रहे हो; तुम बहुत कंजूसी से दे रहे हो। तुम अपने प्रेम में भी समग्र नहीं हो। तुम समग्रता से, पूरे-पूरे दे भी नहीं पाते।

और बच्चा क्रोध और हिंसा से भी समग्र होता है। उसका मुखड़ा दीप्त और सुंदर हो उठता है। वह यहां और अभी होता है। उसके क्रोध का न किसी अतीत से कुछ लेना-देना है और न किसी भविष्य से; वह हिसाब नहीं रखता है। वह मात्र क्रुद्ध है। बच्चा अपने केंद्र पर है। और जब तुम केंद्र पर होते हो तो सदा समग्र होते हो। तब तुम तो कुछ करते हो वह समग्र होता है। भला या बुरा, वह समग्र होता है। और जब खंडित होते हो, केंद्र से च्युत होते हो तो तुम्हारा हरेक काम भी खंडित होता है। क्योंकि उसमे तुम्हारा खंड ही होता है। उसमे तुम्हारा समग्र संवेदित नहीं होता है। खंड समग्र के खिलाफ जाता है। और वही कुरूपता पैदा करता है।

कभी हम सब बच्चो थे। क्या बात है कि जैसे-जैसे हम बड़े होते है हमारी श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तब श्वास पेट तक कभी नहीं जाती है, नाभि केंद्र को नहीं छूती है। अगर वह ज्यादा से ज्यादा नीचे जाएगी तो वह कम से कम उथली रहेगी। लेकिन वि तो सीने को छूकर लौट आती है। वह केंद्र तक नहीं जाती है। तुम केंद्र से डरते हो, क्योंकि केंद्र पर जाने से तुम समग्र हो जाओगे। अगर तुम खंडित रहना चाहो तो खंडित रहने की यही प्रक्रिया है।

तुम प्रेम करते हो, अगर तुम केंद्र से श्वास लो तो तुम प्रेम में पूरे बहोगे। तुम डरे हुए हो। तुम दूसरे के प्रति, किसी के भी प्रति खुल होने से, असुरक्षित और संवेदनशील होने से डरते हो। तुम उसे अपना प्रेमी कहो कि प्रेमिका कहो, तुम डरे हुए हो। वह दूसरा है, और अगर तुम पूरी तरह खुले हो, असुरक्षित हो तो तुम नहीं जानते कि क्या होने जा रहा है। तब तुम हो, समग्रता से हो—दूसरे अर्थों में। तुम पूरी तरह दूसरे में खो जाने से डरते हो। इसलिए तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते। तुम अपनी श्वास को

शिथिल और ढीला नहीं कर सकते हो। क्योंकि वह केंद्र तक चली जायेगी। क्योंकि जिस क्षण श्वास केंद्र पर पहुँचेगी, तुम्हारा कृत्य अधिकाधिक समग्र होने लगेगा।

क्योंकि तुम समग्र होने से डरते हो, तुम उथली श्वास लेते हो। तुम अल्पतम श्वास लेते हो। अधिकतम नहीं। यही कारण है कि जीवन इतना जीवनहीन लगता है। अगर तुम न्यूनतम श्वास लोगे तो जीवन जीवनहीन ही होगा। तुम जीते भी न्यूनतम हो, अधिकतम नहीं। तुम अधिकतम जियो तो जीवन अतिशय हो जाए। लेकिन तब कठिनाई होगी। यदि जीवन अतिशय हो तो तुम न पति हो सकते हो और न पत्नी। सब कुछ कठिन हो जाएगी। अगर जीवन अतिशय हो तो प्रेम अतिशय होगा। तब तुम एक से ही बंधे नहीं रह सकते। तब तुम सब तरफ प्रवाहित होने लगोगे। सभी आयाम में तुम भर जाओगे। और उस हालत में मन खतरा महसूस करता है; इसलिए जीवित ही नहीं रहना उसे मंजूर है।

तुम जितने मृत होगें उतने सुरक्षित होगें। जितने मृत होगें उतना ही सब कुछ नियंत्रण में होगा। तुम नियंत्रण करते हो तो तुम मालिक हो, क्योंकि नियंत्रण करते हो इसलिए अपने को मालिक समझते हो। तुम अपने क्रोध पर, अपने प्रेम पर, सब कुछ पर नियंत्रण कर सकते हो। लेकिन यह नियंत्रण ऊर्जा के न्यूनतम तक पर ही संभव है।

कभी न कभी हर आदमी ने यह अनुभव किया है कि वह अचानक न्यूनतम से अधिकतम तल पर पहुंच गया। तुम किसी पहाड़ पर चले जाओ। अचानक तुम शहर से, उसकी कैद से बाहर हो जाओ। अब तुम मुक्त हो। विराट आकाश है, हरा जंगल है, बादलों को छूता शिखर है। अचानक तुम गहरी श्वास लेते हो। हो सकता है, उस पर तुम्हारा ध्यान न को छूता शिखर है। अचानक तुम गहरी श्वास लेते हो। हो सकता है, उस पर तुम्हारा ध्यान न गया हो। अब जब पहाड़ जाओ तो इसका ख्याल रखना। केवल पहाड़ के कारण बदलाहट नहीं मालूम होती, श्वास के कारण मालूम होती है। तुम गहरी श्वास लेते हो और कहते हो, अहा, तुमने केंद्र छू लिया, क्षण भर के लिए तुम समग्र हो गए। और सब कुछ आनंदपूर्ण है। वह आनंद पहाड़ से नहीं, तुम्हारे केंद्र से आ रहा है। तुमने अचानक उसे छू जो लिया।

शहर में तुम भयभीत थे। सर्वत्र दूसरा मौजूद था और तुम अपने को काबू में किए रहते थे। न रो सकते थे, न हंस सकते थे। कैसे दुर्भाग्य, तुम सड़क पर गा नहीं सकते थे। नाच नहीं सकते थे। तुम डरे-डरे थे। कहीं सिपाही खड़ा था, कहीं पुरोहित, कहीं जज खड़ा था। कहीं राजनीतिज्ञ, कहीं नीतिवादी। कोई न कोई था कि तुम नाच नहीं सकते थे।

बर्ट्रेंड रसेल न कहीं कहा है कि मैं सभ्यता से प्रेम करता हूं, लेकिन हमने यह सभ्यता भारी कीमत चुका कर हासिल की है।

तुम सड़क पर नहीं नाच सकते, लेकिन पहाड़ चले जाओ और वहां अचानक नाच सकते हो। तुम आकाश के साथ अकेले हो और आकाश कारागृह नहीं है। वह खुलता ही जाता है, खुलता ही जाता है। अंनत तक खुलता ही जाता है। एकाएक तुम एक गहरी श्वास लेते हो; केंद्र छू जाता है; और तब आनंद ही आनंद है।

लेकिन वह लंबे समय तक टिकने वाला नहीं है। घंटे दो घंटे में पहाड़ विदा हो जाएगा। तुम वहां रह सकते हो, लेकिन पहाड़ विदा हो जाएगा। तुम्हारी चिंताएं लौट आएँगी। तुम शहर देखना चाहोगे, पत्नी को पत्र लिखने की सोचोगे या सोचोगे कि तीन दिन बाद वापस जाना है तो उसकी तैयारी शुरू करें। अभी तुम आए हो और जाने की तैयारी होने लगी। फिर तुम वापस आ गए। वह गहरी श्वास सच में तुमसे नहीं आई थी। वह अचानक घटित हुई थी, बदली परिस्थिति के कारण गियर बदल गया था। नई परिस्थिति में तुम पुराने ढंग से श्वास नहीं ले सकते थे। इसलिए क्षण भर को एक नयी श्वास आ गई, उसने केंद्र छू लिया और तुम आनंदित थे।

शिव कहते है, तुम प्रत्येक क्षण केंद्र को स्पर्श कर रहे हो, या यदि नहीं स्पर्श कर रहे हो तो कर सकते हो। गहरी, धीमी श्वास लो और केंद्र को स्पर्श करो। छाती से श्वास मत लो। वह एक चाल है; सभ्यता, शिक्षा और नैतिकता ने हमें उथली श्वास सिखा दी है। केंद्र में गहरे उतरना जरूरी है, अन्यथा तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते।

जब तक मनुष्य समाज कामवासना के प्रति गैर-दमन की दृष्टि नहीं अपनाता, तब तक वह सच में श्वास नहीं ले सकता। अगर श्वास पेट तक गहरी जाए तो वह काम केंद्र को ऊर्जा देती है। वह काम केंद्र को छूती है। उसकी भीतर से मालिश करती है। तब काम-केंद्र अधिक सक्रिय, अधिक जीवंत हो उठता है। और सभ्यता कामवासना से भयभीत है।

हम अपने बच्चों को जननेंद्रिय छूने नहीं देते है। हम कहते है, रुको, उन्हें छुओ मत। जब बच्चा पहली बार जननेंद्रिय छूता है तो उसे देखो; और कहो, रुको; और तब उसकी श्वास क्रिया को देखो। जब तुम कहते हो, रुको, जननेंद्रिय मत छुओ। तो उसकी श्वास तुरंत उथली हो जायेगी। क्योंकि उसका हाथ ही काम केंद्र को नहीं छू रहा। गहरे में उसकी श्वास भी उसे छू रही है। अगर श्वास उसे छूती रहे तो हाथ को रोकना कठिन है। और अगर हाथ रुकता है तो बुनियादी तौर से जरूरी हो जाता है कि श्वास गहरी न होकर उथली रहे।

हम काम से भयभीत है। शरीर का निचला हिस्सा शारीरिक तल पर ही नहीं मूल्य के तल पर भी निचला हो गया है। वह निचला कहकर निंदित है। इसलिए गहरी श्वास नहीं, उथली श्वास लो। दुर्भाग्य की बात है कि श्वास नीचे को ही जाती है। अगर उपदेशक की चलती तो वह पूरी यंत्र रचना को बदल देता। वह सिर्फ ऊपर की और, सिर में श्वास लेने की इजाजत देता। और तब कामवासना बिलकुल अनुभव नहीं होती।

अगर काम विहीन मनुष्य को जन्म देना है तो श्वास-प्रणाली को बिलकुल बदल देना होगा। तब श्वास को सिर में सहस्त्रार में भेजना होगा। और वहां से मुंह में वापस लाना होगा। मुंह से सहस्त्रार उसका मार्ग होगा। उसे नीचे गहरे में नहीं जाने देना होगा। क्योंकि वहां खतरा है। जितने गहरे उतरोगे उतने ही जैविकी के गहरे तलों पर पहुंचोगे। तब तुम केंद्र पर पहुंचोगे। और वह केंद्र काम केंद्र के पास ही है। ठीक भी है, क्योंकि काम ही जीवन है।

इसे इस तरह देखो। श्वास ऊपर से नीचे को जाने वाला जीवन है। काम ठीक दूसरी दिशा से नीचे से ऊपर को जाने वाला जीवन है। काम-ऊर्जा बह रही है। और श्वास ऊर्जा बह रही है। श्वास का रास्ता ऊपर शरीर में है और काम का रास्ता निम्न शरीर में है। और जब श्वास और काम मिलते है। जीवन को जन्म देते है। इस लिए अगर तुम काम से डरते हो, तो दोनों के बीच दूरी बनाओ। उन्हें मिलने मत दो। सच तो यह है कि सभ्य आदमी बधिया किया हुआ आदमी है। यही कारण है कि हम श्वास के संबंध में नह जानते, और हमें यह सूत्र समझना कठिन है।

शिव कहते है: जब कभी अंत:श्वास और बहिर्श्वास एक दूसरे में विलीन होती है। उस क्षण में ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र को स्पर्श करों।

शिव परस्पर विरोधी शब्दावली का उपयोग करते है। ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित। वह ऊर्जारहित है, क्योंकि तुम्हारे शरीर, तुम्हारे मन उसे ऊर्जा नहीं दे सकते। तुम्हारे शरीर की ऊर्जा और मन की ऊर्जा वहां नहीं है। इसलिए जहां तक तुम्हारे तादात्म्य का संबंध है, वह ऊर्जारहित है। लेकिन वह ऊर्जापूरित है, क्योंकि उसे ऊर्जा का जागतिक स्त्रोत उपलब्ध है।

तुम्हारे शरीर की ऊर्जा को ईंधन है—पेट्रोल जैसी। तुम कुछ खाते-पीते हो उससे ऊर्जा बनती है। खाना पीना बंद कर दो और शरीर मृत हो जाएगा। तुरंत नहीं कम से कम तीन महीने लगेंगे। क्योंकि तुम्हारे पास पेट्रोल का एक खजाना भी है। तुमने बहुत ऊर्जा जमा की हुई है, जो कम से कम तीन महीने काम दे सकती है। शरीर चलेगा, उसके पास जमा ऊर्जा थी। और किसी आपत्काल में उसका उपयोग हो सकता है। इसलिए शरीर ऊर्जा-ईंधन ऊर्जा है।

केंद्र को ईंधन-ऊर्जा नहीं मिलती है। यही कारण है कि शिव उसे ऊर्जारहित कहते है। वह तुम्हारे खाने पीने पर निर्भर नहीं है। वह जागतिक स्त्रोत से जुड़ा हुआ है, वह जागतिक ऊर्जा है। इसलिए शिव उसे ''ऊर्जारहित, ऊर्जापूरित केंद्र कहते है। जिस क्षण तुम उस केंद्र को अनुभव करोगे जहां से श्वास जाती-आती है, जहां श्वास विलीन होती है, उस क्षण तुम आत्मोपलब्ध हुए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र,

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-2

तंत्र-सूत्र—विधि-05

भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो। फिर सहस्त्रार तक रूप को श्वास-तत्व से, प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।

Shira तंत्र-सूत्र—विधि-05 (विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो)

यह विधि पाइथागोरस को दी गई थी। पाइथागोरस इसे लेकर यूनान वापस गए। और वह पश्चिम के समस्त रहस्यवाद के आधार बन गए। पश्चिम में अध्यात्मवाद के वे पिता है। यह विधि बहुत गहरी विधियों में ऐ एक है। इसे समझने की कोशिश करो।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर करो।''
आधुनिक शरीर-शस्त्र कहता है, वैज्ञानिक शोध कहती है कि दो भृकुटियों के बीच में ग्रंथि है वह शरीर का सबसे रहस्यपूर्ण भाग है। जिसका नाम पाइनियल ग्रंथि है। यही तिब्बतियों की तीसरी आँख है। और यही है शिव का नेत्र। तंत्र के शिव का त्रिनेत्र। दो आंखों के बीच एक तीसरी आँख भी है। लेकिन यह सक्रिय नहीं है। यह है, और यह किसी भी समय सक्रिय हो सकती है। निसर्गत: यह सक्रिय नहीं है। इसको सक्रिय करने के लिए संबंध में तुम को कुछ करना पड़ेगा। यह अंधी नहीं है, सिर्फ बंद है। यह विधि तीसरी आँख को खोलने की विधि है।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर.....।''

आंखे बंद कर लो और फिर दोनों आंखों को बंद रखते हुए भौंहों के बीच में दृष्टि को स्थिर करो—मानो कि दोनों आंखों से तुम देख रहे हो। और समग्र अवधान को वही लगा दो।

यह विधि एकाग्र होने की सबसे सरल विधियों में से एक है। शरीर के किसी दूसरे भाग में इतनी आसानी से तुम अवधान को नहीं उपलब्ध हो सकते। यह ग्रंथि अवधान को अपने में समाहित करने में कुशल है। यदि तुम इस पर अवधान दोगे तो तुम्हारी दोनों आंखे तीसरी आँख से सम्मोहित हो जाएंगी। वे थिर हो जाएंगी, वे वहां से नहीं हिल सकेंगी। यदि तुम शरीर के किसी दूसरे हिस्से पर अवधान दो तो वहां कठिनाई होगी। तीसरी आँख अवधान को पकड़ लेती है। अवधान को खींच लेती है। अवधान के लिए वह चुंबक का काम करती है।

इसलिए दुनिया भी की सभी विधियों में इसका समावेश किया गया है। अवधान को प्रशिक्षित करने में यह सरलतम है, क्योंकि इसमे तुम ही चेष्टा नही करते, यह ग्रंथि भी तुम्हारी मदद करती है। यह चुंबकीय है। तुम्हारे अवधान को यह बलपूर्वक खींच लेती है।

तंत्र के पुराने ग्रंथों में कहा गया है कि अवधान तीसरी आँख का भोजन है। यह भूखी है; जन्मों-जन्मों से भूखी है। जब तुम इसे अवधान देते हो यह जीवित हो उठती है। इसे भोजन मिल गया है। और जब तुम जान लोगे कि अवधान इसका भोजन है, जान लोगे कि तुम्हारे अवधान को यह चुंबक की तरह खींच लेती है। तब अवधान कठिन नहीं रह जाएगा। सिर्फ सही बिंदु को जानना है।

इस लिए आँख बंद कर लो, और अवधान को दोनों आंखों के बीच में घूमने दो और उस बिंदू को अनुभव करो। जब तुम उस बिंदु के करीब होगें। अचानक तुम्हारी आंखे थिर हो जाएंगी। और जब उन्हें हिलाना कठिन हो जाए तब जानो कि सही बिंदु मिल गया।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने रखो।''

अगर यह अवधान प्राप्त हो जाए तो पहली बार एक अद्भुत बात तुम्हारे अनुभव में आएगी। पहली बार तुम देखोगें कि तुम्हारे विचार तुम्हारे सामने चल रहे है, तुम साक्षी हो जाओगे। जैसे कि सिनेमा के पर्दे पर दृश्य देखते हो, वैसे ही तुम देखोगें कि विचार आ रहे है, और तुम साक्षी हो। एक बार तुम्हारा अवधान त्रिनेत्र-कैंद्र पर स्थिर हो जाए तुम तुरंत विचारों के साक्षी हो जाओगे।

आमतौर से तुम साक्षी नहीं होते, तुम विचारों के साथ तादात्म्य कर लेते हो। यदि क्रोध है तो तुम क्रोध हो जाते हो। यदि एक विचार चलता है तो उसके साक्षी होने की बजाएं तुम विचार के साथ एक हो जाते हो। उससे तादात्म्य करके साथ-साथ चलने लगते हो। तुम विचार ही बन जाते हो, विचार का रूप ले लेते हो, जब क्रोध उठता है तो तुम क्रोध बन जाते हो। और जब लोभ उठता है तब लोभ बन जाते हो। कोई भी विचार तुम्हारे साथ एकात्म हो जाता है। और उसके ओर तुम्हारे बीच दूरी नहीं रहती।

लेकिन तीसरी आँख पर स्थिर होते ही तुम एकाएक साक्षी हो जाते हो। तीसरी आँख के जरिए तुम साक्षी बनते हो। इस शिवनेत्र के द्वारा तुम विचारों को वैसे ही चलता देख सकते हो जैसे आसमान पर तैरते बादलों को, या रहा पर चलते लोगो को देखते हो।

जब तुम अपनी खिड़की से आकाश कोया रहा चलते लोगों को देखते हो तब तुम उनसे तादात्म्य नहीं करते। तब तुम अलग होते हो, मात्र दर्शक रहते हो—बिलकुल अलग। वैसे ही अब जब क्रोध आता है तब तुम उसे एक विषय की तरह देखते हो। अब

तुम यह नहीं सोचते कि मुझे क्रोध हुआ। तुम यही अनुभव करते हो कि तुम क्रोध से घिरे हो। क्रोध की एक बदली तुम्हारे चारो और घिर गई। और जब तुम खुद क्रोध नहीं रहे तब क्रोध नापुंसग हो जाता है। तब वह तुमको नहीं प्रभावित कर सकता। तब तुम अस्पर्शित रह जाते हो। क्रोध आता है और चला जाता है। और तुम अपने में केंद्रित रहते हो।

यह पाँचवीं विधि साक्षित्व को प्राप्त करने की विधि है।

''भृकुटियों के बीच अवधान को स्थिर कर विचार को मन के सामने करो।''

अब अपने विचारों को देखो, विचारों का साक्षात्कार करो।

''फिर सहस्त्रार तक रूप को श्वास तत्व से प्राण से भरने दो। वहां वह प्रकाश की तरह बरसेगा।''

जब अवधान भृकुटियों के बीच शिवनेत्र के केंद्र पर स्थिर होता है। तब दो चीजें घटित होती है।

और यही चीज दो ढंगों से हो सकती है। एक, तुम साक्षी हो जाओ तो तुम तीसरी आँख पर थिर हो जाते हो। साक्षी हो जाओ, जो भी हो रहा हो उसके साक्षी हो जाओ। तुम बीमार हो, शरीर में पीड़ा है, तुम को दुःख और संताप है, जो भी हो, तुम उसके साक्षी रहो, जो भी हो, उससे तादात्म्य न करो। बस साक्षी रहो—दर्शक भर। और यदि साक्षित्व संभव हो जाए, तो तुम तीसरे नेत्र पर स्थिर हो जाओगे।

इससे उलटा भी हो सकता है। यदि तुम तीसरी आँख पर स्थिर हो जाओ, तो साक्षी हो जाओगे।। ये दोनों एक ही बात है।

इसलिए पहली बात: तीसरी आँख पर केंद्रित होते ही साक्षी आत्मा का उदय होगा। अब तुम अपने विचारों का सामना कर सकते हो। और दूसरी बात: और अब तुम श्वास-प्रश्वास की सूक्ष्म और कोमल तरंगों को भी अनुभव कर सकते हो। अब तुम श्वसन के रूप को ही नहीं, उसके तत्व को , सार को, प्राण को भी समझ सकते हो।

पहले तो यह समझने की कोशिश करें कि ''रूप'' और ''श्वास-तत्व'' का क्या अर्थ है। जब तुम श्वास लेते हो, तब सिर्फ वायु की ही श्वास नहीं लेते। वैज्ञानिक तो यही कहते है कि तुम वायु की ही श्वास लेते हो। जिसमें आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा अन्य तत्व रहते है। वे कहते है कि तुम वायु की श्वास लेते हो।

लेकिन तंत्र कहता है कि हवा तो मात्र वाहन है, असली चीज नहीं है। असल में तुम प्राण की श्वास लेते हो। हवा तो माध्यम भर है। प्राण उसका सत्व है, सार है। तुम न सिर्फ हवा की, बल्कि प्राण की श्वास लेते हो।

आधुनिक विज्ञान अभी नहीं जान सका है कि प्राण जैसी कोई वस्तु भी है। लेकिन कुछ शोधकर्ताओं ने कुछ रहस्यमयी चीज का अनुभव किया है। श्वास में सिर्फ हवा हम नहीं लेते, वह बहुत से आधुनिक शोधकर्ताओं ने अनुभव किया है। विशेषकर एक नाम उल्लेखनीय है। वह है जर्मन मनोवैज्ञानिक विलहेम रेख का। जिसने इसे आर्गन एनर्जी या जैविक ऊर्जा का नाम दिया है। वह प्राण ही है। वह कहता है कि जब आप श्वास लेते है, तब हवा तो मात्र आधार है, पात्र है, जिसके भीतर एक रहस्यपूर्ण तत्व है, जिसे आर्गन या प्राण या एलेन वाइटल कह सकते है। लेकिन वह बहुत सूक्ष्म है। वास्तव में वह भौतिक नहीं है। पदार्थ गत नहीं है। हवा भौतिक है, पात्र भौतिक है; लेकिन उसके भीतर से कुछ सूक्ष्म, अलौकिक तत्व चल रहा है।

इसका प्रभाव अनुभव किया जा सकता है। जब तुम किसी प्राणवान व्यक्ति के पास होते हो, तो तुम अपने भीतर किसी शक्ति को उगते देखते हो। और जब किसी बीमार के पास होते हो, तो तुमको लगता है कि तुम चूसे जा रहे हो। तुम्हारे भीतर

से कुछ निकाला जा रहा है। जब तुम अस्पताल जाते हो, तब थके-थके क्यों अनुभव करते हो? वहां चारों ओर से तुम चूसे जाते हो। अस्पताल का पूरा माहौल बीमार होता है और वहां सब किसी को अधिक प्राण की, अधिक एलेन वाइटल की जरूरत है। इसलिए वहां जाकर अचानक तुम्हारा प्राण तुमसे बहने लगता है। जब तुम भीड़ में होते हो, तो तुम घुटन महसूस क्यों करते हो। इसलिए कि वहां तुम्हारा प्राण चूसा जाने लगता है। और जब तुम प्रात: काल अकेले आकाश के नीचे या वृक्षों के बीच होते हो, तब फिर अचानक तुम अपने में किसी शक्ति का, प्राण का उदय अनुभव करते हो। प्रत्येक का एक खास स्पेस की जरूरत है। और जब वह स्पेस नहीं मिलता है तो तुमको घुटन महसूस होती है।

विलहेम रेख ने कई प्रयोग किए। लेकिन उसे पागल समझा गया। विज्ञान के भी अपने अंधविश्वास है। और विज्ञान बहुत रूढ़िवादी होता है। विज्ञान अभी भी नहीं समझता है कि हवा से बढ़कर कुछ है; वह प्राण है। लेकिन भारत सदियों से उस पर प्रयोग कर रहा है।

तुमने सुना होगा—शायद देखा भी हो—कि कोई व्यक्ति कई दिनों के लिए भूमिगत समाधि में प्रवेश कर गया। जहां हवा का कोई प्रवेश नहीं था। 1880 में मिस्त्र में एक आदमी चालीस वर्षों के लिए समाधि में चला गया था। जिन्होंने उसे गाड़ा था वे सभी मर गए। क्योंकि वह 1920 में समाधि से बहार आने वाला था।

1920 में किसी को भरोसा नहीं था कि वह जीवित मिलेगा। लेकिन वह जीवित था और उसके बाद भी वह दस वर्षों तक जीवित रहा। वह बिलकुल पीला पड़ गया था, परंतु जीवित था। और उसको हवा मिलने की कोई संभावना नहीं थी।

डॉक्टरों ने तथा दूसरों ने उससे पूछा कि इसका रहस्य क्या है? उसने कहां हम नहीं जानते; हम इतना ही जानते है कि प्राण कही भी प्रवेश कर सकता है। और वह है। हवा वहां नहीं प्रवेश कर सकती, लेकिन प्राण कर सकता है।

एक बार तुम जान जाओ कि श्वास के बिना भी कैसे तुम प्राण को सीधे ग्रहण कर सकते हो, तो तुम सदियों तक के लिए भी समाधि में जा सकते हो।

तीसरी आँख पर केंद्रित होकर तुम श्वास के सार तत्व को, श्वास को नहीं, श्वास के सार तत्व प्राण को देख सकेत हो। और अगर तुम प्राण को देख सके, तो तुम उस बिंदु पर पहुंच गए जहां से छलांग लग सकती है, क्रांति घटित हो सकती है।

सूत्र कहता है: ''सहस्त्रार तक रूप को प्राण से भरने दो।''

और जब तुम को प्राण का एहसास हो, तब कल्पना करो कि तुम्हारा सिर प्राण से भर गया है। सिर्फ कल्पना करो, किसी प्रयत्न की जरूरत नहीं है। और मैं बताऊंगा कि कल्पना कैसे काम करती है। तब तुम त्रिनेत्र-बिंदु पर स्थिर हो जाओ तब कल्पना करो, और चीजें आप ही और तुरंत घटित होने लगती है।

अभी तुम्हारी कल्पना भी नपुंसक है। तुम कल्पना किए जाते हो और कुछ भी नहीं होता। लेकिन कभी-कभी अनजाने साधारण जिंदगी में भी चीजें घटित होती है। तुम अपने मित्र की सोच रहे हो और अचानक दरवाजे पर दस्तक होती है। तुम कहते हो कि सांयोगिक था कि मित्र आ गया। कभी तुम्हारी कल्पना संयोग की तरह भी काम करती है।

लेकिन जब भी ऐसा हो, तो याद रखने की चेष्टा करो और पूरी चीज का विश्लेषण करो। जब भी लगे कि तुम्हारी कल्पना सच हुई है। तुम भीतर जाओ और देखो। कहीं न कहीं तुम्हारा अवधान तीसरे नेत्र के पास रहा होगा। दरअसल यह संयोग नहीं था। यह वैसा दिखता है; क्योंकि गुह्म विज्ञान का तुमको पता नहीं है। अनजाने ही तुम्हारा मन त्रिनेत्र केंद्र के पास चला गया होगा। और अवधान यदि तीसरी आँख पर है तो किसी घटना के सृजन के लिए उसकी कल्पना काफी है।

यह सूत्र कहता है कि जब तुम भृकुटियों के बीच स्थिर हो और प्राण को अनुभव करते हो, तब रूप को भरने दो। अब कल्पना करो कि प्राण तुम्हारे पूरे मस्तिष्क को भर रहे है। विशेषकर सहस्त्रार को जो सर्वोच्च मनस केंद्र है। उस क्षण तुम कल्पना करो। और वह भर जाएगा। कल्पना करो कि वह प्राण तुम्हारे सहस्त्रार से प्रकाश की तरह बरसेगा। और वह बरसने लगेगा। और उस प्रकाश की वर्षा में तुम ताजा हो जाओगे। तुम्हारा पुनर्जन्म हो जाएगा। तुम बिलकुल नए हो जाओगे। आंतरिक जन्म का यही अर्थ है।

यहां दो बातें है। एक, तीसरी आँख पर केंद्रित होकर तुम्हारी कल्पना पुंसत्व को, शुद्धि को उपलब्ध हो जाती है। यही कारण है कि शुद्धता पर, पवित्रता पर इतना बल दिया गया है। इस साधना में उतरने के पहले शुद्ध बने।

तंत्र के लिए शुद्धि कोई नैतिक धारणा नहीं हे। शुद्धि इसलिए अर्थपूर्ण है कि यदि तुम तीसरी आँख पर स्थिर हुए और तुम्हारा मन अशुद्ध रहा, तो तुम्हारी कल्पना खतरनाक सिद्ध हो सकती है—तुम्हारे लिए भी और दूसरें के लिए भी। यदि तुम किसी की हत्या करने की सोच रहे हो, उसका महज विचार भी मन में है। तो सिर्फ कल्पना से उस आदमी की मृत्यु घटित हो जाएगी। यही कारण है कि शुद्धता पर इतना जोर दिया जाता है।

पाइथागोरस को विशेष उपवास और प्राणायाम से गुजरने को कहा गया; क्योंकि यहां बहुत खतरनाक भूमि से यात्री गुजरता है। जहां भी शक्ति है, वहां खतरा है। यदि मन अशुद्ध है तो शक्ति मिलने पर आपके अशुद्ध विचार शक्ति पर हावी हो जाएंगे।

कई बार तुमने हत्या करने की सोची है; लेकिन भाग्य से वहां कल्पना न काम नहीं किया। यदि वह काम करे, यदि वह तुरंत वास्तविक हो जाए तो वह दूसरों के लिए ही नहीं तुम्हारे लिए भी खतरनाक सिद्ध हो सकती है। क्योंकि कितनी ही बार तुमने आत्म हत्या की सोची है। अगर मन तीसरी आँख पर केंद्रित है तो आत्महत्या का विचार भी आत्महत्या बन जाएगा। तुमको विचार बदलने का समय भी नहीं मिलेगा। वह तुरंत घटित हो जाएगी।

तुमने किसी को सम्मोहित होते देखा है। जब कोई सम्मोहित किया जाता है, तब सम्मोहन विद जो भी कहता है, सम्मोहित व्यक्ति तुरंत उसका पालन करता है। आदेश कितना ही बेहूदा हो तर्कहीन हो असंभव ही क्या न हो। सम्मोहित व्यक्ति उसका पालन करता है। क्या होता है?

यह पांचवी विधि सब सम्मोह न की जड़ में है। जब कोई सम्मोहित किया जाता है, तब उसे एक विशेष बिंदू पर, किसी प्रकाश पर या दीवार पर लगे किसी चिन्ह पर या किसी भी चीज पर या सम्मोहक की आँख पर ही अपनी दृष्टि केंद्रित करने को कहा जाता है। और जब तुम किसी खास बिंदू पर दृष्टि केंद्रित करते हो, उसके तीन मिनट के अंदर तुम्हारा आंतरिक अवधान तीसरी आँख की और बहने लगता है। तुम्हारे चेहरे की मुद्रा बदलने लगती है। और सम्मोहन विद जानता है कि कब तुम्हारा चेहरा बदलने लगा। एकाएक चेहरे से सारी शक्ति गायब हो जाती है। वह मृत वत हो जाता है। मानों गहरी तंद्रा में पड़े हो। जब ऐसा होता है, सम्मोहक को उसका पता हो जाता है। उसका अर्थ हुआ कि तीसरी आँख अवधान को पी रही है। आपका चेहरा पीला पड़ गया है। पूरी ऊर्जा त्रिनेत्र केंद्र की और बह रही है।

अब सम्मोहित करने वाला तुरंत जान जाता है। कि जो भी कहा जाएगा। वह घटित होगा। वह कहता है कि अब तुम गहरी नींद में जा रहे हो, और तुम तुरंत सो जाते हो। वह कहता है कि अब तुम बेहोश हो रहे हो और तुम बेहोश हो जाते हो। अब कुछ भी किया जा सकता है। अब अगर वह कहे कि तुम नेपोलियन या हिटलर हो गए हो तो तुम हो जाओगे। तुम्हारी मुद्रा बदल जायेगी। आदेश पाकर तुम्हारा अचेतन उसका वास्तविक बना देता है। अगर तुम किसी रोग से पीडित हो तो रोग को हटने का आदेश देगा, और मजेदार बात रोग दूर हो जायेगा। या कोई नया रोग भी पैदा किया जा सकता है।

यही नहीं, सड़क पर से एक कंकड़ उठा कर अगर सम्मोहन विद तुम्हारी हथेली पर रख दे और कहे कि यह अंगारा है तो तुम तेज गर्मी महसूस करोगे और तुम्हारी हथेली जल जाएगी—मानसिक तल पर नहीं, वास्तव में ही। वास्तव में तुम्हारी चमड़ी जब लायेगी और तुम्हें जलन महसूस होगी। क्या होता है? अंगारा नहीं, बस एक मामूली कंकड़ है वह भी ठंडा, फिर भी जलना ही नहीं हाथ पर फफोले तक उगा देता है।

तुम तीसरी आँख पर केंद्रित हो और सम्मोहन विद तुमको सुझाव देता है और वह सुझाव वास्तविक हो जाता है। यदि सम्मोहन विद कहे कि अब तुम मर गए, तो तुम तुरंत मर जाओगे। तुम्हारी ह्रदय गति रूक जायेगी। रूक ही जाएगी।

यह होता है त्रिनेत्र के चलते। त्रिनेत्र के लिए कल्पना और वास्तविकता दो चीजें नहीं है। कल्पना ही तथ्य है। कल्पना करें और वैसा ही जाएगा। स्वप्न और यथार्थ में फासला नहीं है। स्वप्न देखो और सच हो जायेगा।

यही कारण है कि शंकर ने कहा कि यह संसार परमात्मा के स्वप्न के सिवाय और कुछ नहीं है—यह परमात्मा की माया है। यह इसलिए कि परमात्मा तीसरी आँख में बसता है—सदा, सनातन से। इसलिए परमात्मा जी स्वप्न देखता है वह सच हो जाता है। और यदि तुम भी तीसरी आँख में थिर हो जाओ तो तुम्हारे स्वप्न भी सच होने लगेंगे।

सारिपुत्र बुद्ध के पास आया। उसने गहरा धान किया। तब बहुत चीजें घटित होने लगीं, बहुत तरह के दृश्य उसे दिखाई देने लगे। जो भी ध्यान की गहराई में जाता है। उसे यह सब दिखाई देने लगता है। स्वर्ग और नरक; देवता और दानव, सब उसे दिखाई देने लगे। और वह ऐसे वास्तविक थे कि सारिपुत्र बुद्ध के पास दौड़ा आया। और बोला कि ऐसे-ऐसे दृश्य दिखाई देते है। बुद्ध ने कहा, वे कुछ नहीं है। मात्र स्वप्न है।

लेकिन सारिपुत्र ने कहा कि वे इतने वास्तविक है कि मैं कैसे उन्हें स्वप्न कहूं? जब एक फूल दिखाई पड़ता है, वह फूल किसी भी फूल से अधिक वास्तविक मालूम पड़ता है। उसमे सुगंध है। उसे मैं छू सकता हूं। अभी जो मैं आपको देखता हूं वह उतना वास्तविक नहीं है; आप जितना वास्तविक मेरे सामने है, वह फूल उससे अधिक वास्तविक है। इसलिए कैसे मैं भेद करूं कि कौन सच है, और कौन स्वप्न।

बुद्ध ने कहा, अब चूंकि तुम तीसरी आँख में केंद्रित हो, इसलिए स्वप्न और यथार्थ एक हो गए है। जो भी स्वप्न तुम देखोगें सच हो जाएगा।

और उससे ठीक उलटा भी घटित हो सकता है। जो त्रिनेत्र पर थिर हो गया, उसके लिए स्वप्न यथार्थ हो जाएगा। और यथार्थ स्वप्न हो जाएगा। क्योंकि जब तुम्हारा स्वप्न सच हो जाता है तब तुम जानते हो कि स्वप्न और यथार्थ में बुनियादी भेद नहीं है।

इसलिए जब शंकर कहते है कि सब संसार माया है, परमात्मा का स्वप्न है, तब यह कोई सैद्धांतिक प्रस्तावना या कोई मीमांसक वक्तव्य नहीं है। यह उस व्यक्ति का आंतरिक अनुभव है जो शिवनेत्र में थिर हो गया है।

अंत: जब तुम तीसरे नेत्र पर केंद्रित हो जाओ तब कल्पना करो कि सहस्त्रार से प्राण बरस रहा है; जैसे कि तुम किसी वृक्ष के नीचे बैठे हो और फूल बरस रहे है, या तुम आकाश के नीचे हो और कोई बदली बरसने लगी। या सुबह तुम बैठे हो और सूरज उग रहा है और उसकी किरणें बरसने लगी है। कल्पना करो और तुरंत तुम्हारे सहस्त्रार से प्रकाश की वर्षा होने लगेगी। यह वर्षा मनुष्य को पुनर्निर्मित करती है, उसका नया जन्म दे जाती है। तब उसका पुनर्जन्म हो जाता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-06

सांसरिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ। इस अभ्यास से थोड़े ही दिन में नया जन्म होगा।

विधि-6 विज्ञान भैरव तंत्र (तंत्र-सूत्र—भाग-1)osho

''सांसरिक कामों में लगे हुए, अवधान को दो श्वासों के बीच टिकाओ...।''

श्वासों को भूल जाओं और उनके बीच में अवधान को लगाओ। एक श्वास भी तर आती है। इसके पहले कि वह लौट जाए, उसे बाहर छोड़ा जाए, वहां एक अंतराल होता है।

''सांसारिक कामों में लगे हुए।'' यह छठी विधि निरंतर करने की है। इसलिए कहा गया है, ''सांसारिक कामों में लगे हुए....'' जो भी तुम कर रहे हो, उसमे अवधान को दो श्वासों के अंतराल में थिर रखो। लेकिन काम-काज में लगे हुए ही इसे साधना है। ठीक ऐसी ही एक दूसरी विधि की चर्चा हम कर चुके है। अब फर्क इतना है कि इसे सांसारिक कामों में लगे हुए ही करना है। उससे अलग होकर इसे मत करो। यह साधना ही तब करो जब तुम कुछ और काम कर रहे हो।

तुम भोजन कर रहे हो, भोजन करते जाओ और अंतराल पर अवधान रखो। तुम चल रहे हो, चलते जाओ और अवधान को अंतराल पर टिकाओ। तुम सोने जा रहे हो, लेटो और नींद को आने दो। लेकिन तुम अंतराल के प्रति सजग रहो।

पर काम-काज में क्यों? क्योंकि काम-काज मन को डांवाडोल करता है। काम-काज में तुम्हारे अवधान को बार-बार भुलाना पड़ता है। तो डांवाडोल न हों; अंतराल में थिर रहें। काम-काज भी न रूके, चलता रहे। तब तुम्हारे अस्तित्व के दो तल हो जाएंगे। करना ओर होना। अस्तित्व के दो तल ओ गए; एक करने का जगत और दूसरा होने का जगत। एक परिधि है और दूसरा केंद्र। परिधि पर काम करते रहो, रूको नहीं; लेकिन केंद्र पर भी सावधानी से काम करते रहो। क्या होगा?

तुम्हारा काम-काज तब अभिनय हो जाएगा। मानों तुम कोई पार्ट अदा कर रहे हो। उदाहरण के लिए, तुम किसी नाटक म पार्ट कर रहे हो। तुम राम बने हो या क्राइस्ट बने हो। यद्यपि तुम राम या क्राइस्ट का अभिनय करते हो, तो भी तुम स्वयं बने रहते हो। केंद्र पर तुम जानते हो कि तुम कौन हो और परिधि पर तुम राम या क्राइस्ट का या किसी का पार्ट अदा करते हो। तुम जानते हो कि तुम राम नहीं हो, राम का अभिनय भर कर रहे हो। तुम कौन हो तुमको मालूम है। तुम्हारा अवधान तुममें केंद्रिय है। और तुम्हारा काम परिधि पर जारी है।

यदि इस विधि का अभ्यास हो तो पूरा जीवन एक लंबा नाटक बन जाएगा। तुम एक अभिनेता होगें। अभिनय भी करोगे और सदा अंतराल में केंद्रित रहोगे। जब तुम अंतराल को भूल जाओगे, तब तुम अभिनेता नहीं रहोगे, तब तुम कर्ता हो जाओगे। तब वह नाटक नहीं रहेगा। उसे तुम भूल से जीवन समझ लोगे।

यही हम सबने किया है। हर आदमी सोचता है कि वह जीवन जी रहा है। यह जीवन नहीं है। यह तो एक रोल है, एक पार्ट है, जो समाज ने, परिस्थितियों ने, संस्कृति ने, देश की परंपरा ने तुमको थमा दिया है। और तुम अभिनय कर रहे हो। और तुम इस अभिनय के साथ तादात्म्य भी कर बैठे हो। उसी तादात्म्य को तोड़ने के लिए यह विधि है।

कृष्ण के अनेक नाम है, कृष्ण सबसे कुशल अभिनेताओं में से एक है। वे सदा अपने में थिर है और खेल कर रहे है। लीला कर रहे है, बिलकुल गैर-गंभीर है। गंभीरता तादात्म्य से पैदा होती है।

यदि नाटक में तुम सच ही राम हो जाओ तो अवश्य समस्याएं खड़ी होगी। जब-जब सीता की चोरी होगी, तो तुमको दिल का दौरा पड़ सकता है। और पूरा नाटक बंद हो जाना भी निश्चित है। लेकिन अगर तुम बस अभिनय कर रहे हो तो सीता की चोरी से तुमको कुछ भी नहीं होता है। तुम अपने घर लौटोगे। और चैन से सो जाओगे। सपने में भी ख्याल न आएगा। की सीता की चोरी हुई।

जब सचमुच सीता चोरी गई थी तब राम स्वयं रो रहे थे। चीख रहे थे और वृक्षों से पूछ रहे थे कि सीता कहां है? कौन उसे ले गया? लेकिन यह समझने जैसी बात है। अगर राम सच में रो रहे है और पेड़ों से पूछ रहे है, तब तो वे तादाम्तयता कर बैठे , तब वे राम न रहे, ईश्वर न रहे, अवतार न रहे। यह स्मरण रखना चाहिए। कि राम के लिए उनका वास्तविक जीवन भी अभिनय ही था। जैसे दूसरे अभिनेताओं को तुमने राम का अभिनय करते देखा है, वैसे ही राम भी अभिनय कर रहे थे—नि:संदेह एक बड़े रंग मंच पर।

इस संबंध में भारत के पास एक खुबसूरत कथा है। मेरी दृष्टि में यह कथा अद्भुत है। संसार के किसी भी भाग में ऐसी कथा नहीं मिलेगी। कहते है कि वाल्मीकि ने राम के जन्म से पहले ही रामायण लिख दी। राम को केवल उसका अनुगमन करना था। इसलिए वास्तव में राम का पहला कृत्य भी अभिनय ही था। उनके जन्म के पहले ही कथा लिख दी गई थी, इसलिए उन्हें केवल उसका अनुगमन करना पडा। वे और क्या कर सकते थे। वाल्मीकि जैसा व्यक्ति जब कथा लिखता है, तब राम को अनुगमन करना होगा। इसलिए एक तरह से सब कुछ नियम था। सीता की चोरी होनी थी। और युद्ध का लड़ा जाना था।

यदि यह तुम समझ सको तो भाग्य के सिद्धांत को भी समझ सकते हो। इसका बड़ा गहरा अर्थ है। और अर्थ यह है कि यदि तुम समझ जाते हो कि तुम्हारे लिए यह सब कुछ नियम है तो जीवन नाटक हो जाता है। अब यदि तुमको राम का अभिनय करना है। तो तुम कैसे बदल सकते हो। सब कुछ नियत है, यहां तक कि तुम्हारा संवाद भी, डायलाग भी। अगर तुम सीता से कुछ कहते हो तो वह किसी नीयत वचन का दोहराना भर है।

यदि जीवन नियत है, तो तुम उसे बदल नहीं सकते। उदाहरण के लिए, एक विशेष दिन को तुम्हारी मृत्यु होने वाली है। यह नियत है। और तुम जब मरोगे तब रो रहे होगें; यह भी निश्चित है। और फलां-फलां लोग तुम्हारे पास होंगे। यह भी तय है।

और यदि सब कुछ नीयत है, तय है, तब सब कुछ नाटक हो जाता है। यदि सब कुछ निश्चित है तो उसका अर्थ हुआ कि तुम केवल उसे अंजाम देने वाले हो। तुमको उसे जीना नहीं है। उसका अभिनय करना है।

यह विधि, छठी विधि , तुमको एक साइकोड्रामा, एक खेल बना देती है। तुम दो श्वासों के अंतराल में थिर हो और जीवन परिधि पर चल रहा है। यदि तुम्हारा अवधान केंद्र पर है, तो तुम्हारा अवधान परिधि पर नहीं है। परिधि पर जो है वह उपावधान है, वह कहीं तुम्हारे अवधान के पास घटित होता है। तुम उसे अनुभव कर सकते हो, उसे जान सकते हो, पर वह महत्वपूर्ण नहीं है। यह ऐसा है जैसे तुमको नहीं घटित हो रहा है।

मैं इसे दोहराता हूं, यदि तुम इस छठी विधि की साधना करो तो तुम्हारा समूचा जीवन ऐसा हो जाएगा जैसे वह तुमको न घटित होकर किसी दूसरे व्यक्ति को घटित हो रहा है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-07

सातवीं श्वास विधि:

shira तंत्र-सूत्र—विधि-07 –ओशो

ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ। जब वह सोने के क्षण में ह्रदय तक पहुंचेगा तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।
तुम अधिकारिक गहरी पर्तों में प्रवेश कर रहे हो।

‘’ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ।‘’

अगर तुम तीसरी आँख को जान गए हो तो तुम ललाट के मध्य में स्थिर सूक्ष्म श्वास को, अदृश्य प्राण को जान गए, और तुम यह भी जान गए कि वह उर्जा, वह प्रकाश बरसता है।

''जब वह सोन के क्षण में ह्रदय तक पहुंचेगा—जब वह वर्षा तुम्हारे ह्रदय तक पहुँचेगी—''तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''
इस विधि को तीन हिस्सों में लो। एक, श्वास के भीतर जो प्राण है, जो उसका सूक्ष्म, अदृष्य, अपार्थिव अंश है, उसे तुमको अनुभव करना होगा। यह तब होता है, जब तुम भृकुटियों के बीच अवधान को थिर रखते हो। तब यह आसानी से घटित होता है। अगर तुम अवधान को अंतराल में टिकाते हो, तो भी घटित होता है, मगर उतनी आसानी से नहीं। यदि तुम नाभि केंद्र के प्रति सजग हो, जहां श्वास आती है। और छूकर चली जाती है। तो भी यह घटित होता है, पर कम आसानी से। उस सूक्ष्म प्राण को जानने का सबसे सुगम मार्ग है, तीसरी आँख में थिर होना। वैसे तुम जहां भी केंद्रित होगें। वह घटित होगा। तुम प्राण को प्रभावित होते अनुभव करोगे।

यदि तुम प्राण को अपने भीतर प्रवाहित होता अनुभव कर सको तो तुम यह भी जान सकते हो कि कब तुम्हारी मृत्यु होगी। यदि तुम सूक्ष्म श्वास को, प्राण को महसूस करने लगे। तो मरने के छह महीने पहले से तुम अपनी आसन्न मृत्यु को जानने लगते हो। कैसे इतने संत अपनी मृत्यु की तिथि बना देते है? यह आसान है। क्योंकि यदि तुम प्राण के प्रवाह को जानते हो तो जब उसकी गति उलट जाएगी। तब उसको भी तुम जान लोगे। मृत्यु के छह महीने पहले प्रक्रिया उलट जाती है। प्राण तुम्हारी बाहर जाने लगता है। तब श्वास इसे भीतर नहीं ले जाती, बल्कि उलटे बाहर ले जाने लगती है—वह श्वास।

तुम इसे जान पाते हो, क्योंकि तुम उसके अदृश्य भाग को नहीं देखते, केवल वाहन को ही देखते हो। और वाहन तो एक ही रहेगा। अभी श्वास प्राण को भीतर ले जाती है और वहां छोड़ देती है। फिर वाहन बाहर खाली वापस जाता है। और प्राण से पुन: भरकर भीतर जाता है। इसलिए याद रखो कि भीतर आने वाली श्वास और बाहर जाने वाली श्वास, दोनों एक नहीं है। वाहन के रूप में तो पूरक श्वास और रेचक श्वास एक ही है, लेकिन जहां पूरक प्राण से भरा होता है। वहीं रेचक उससे रिक्त रहता है। तुमने प्राण को पी लिया और श्वास खाली हो गई।

जब तुम मृत्यु के करीब होते हो, तब उलटी प्रक्रिया चालू होती है। भीतर आने वाली श्वास प्राण विहीन आती है। रिक्त आती है। क्योंकि तुम्हारा शरीर अस्तित्व से प्राण को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है। तुम मरने वाले हो, तुम्हारी जरूरत न रही। पूरी प्रक्रिया उलट जाती है। अब जब श्वास बाहर जाती है, जब प्राण को साथ लिए बाहर जाती है।

इसलिए जिसने सूक्ष्म प्राण को जान लिए वह अपनी मृत्यु का दिन भी तुरंत जान सकता है। छह महीने पहले प्रक्रिया उलटी हो जाती है।

यह सूत्र बहुत-बहुत महत्वपूर्ण है।

''ललाट के मध्य में सूक्ष्म श्वास (प्राण) को टिकाओ। जब सोने के क्षण में वह ह्रदय तक पहुंचेगा। तब स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''

जब तुम नींद में उतर रहे हो, तभी इस विधि को साधना है, अन्य समय में नहीं। ठीक सोने का समय इस विधि के अभ्यास के लिए उपयुक्त समय है।

तुम नींद में उतर रहे हो, धीरे-धीर नींद तुम पर हावी हो रही है। कुछ ही क्षणों में भीतर तुम्हारी चेतना लुप्त होगी। तुम अचेत हो जाओगे। उस क्षण के आने के पहले तुम अपनी श्वास और उसके सूक्ष्म अंश प्राण के प्रति सजग हो जाओ। और उसे ह्रदय तक जाते हुए अनुभव करो। अनुभव करते जाओ कि वह ह्रदय तक आ रहा है। ह्रदय तक आ रहा है। प्राण ह्रदय से होकर तुम्हारे शरीर में प्रवेश करता है, इसलिए यह अनुभव करते ही जाओ। कि प्राण ह्रदय तक आ रहा है। और इस निरंतर अनुभव के बीच ही नींद को आने दो। तुम अनुभव करते जाओ और नींद को आने दो; नींद को तुमको अपने में समेट लेने दो।

यदि यह संभव हो जाए कि तुम अदृश्य प्राण को हृदय तक जाते देखो और नींद को भी, तो तुम अपने सपनों के प्रति भी सजग हो जाओगे। तब तुमको बोध रहेगा कि तुम सपना देखते हो तो तुम समझते हो कि यह यथार्थ ही है। वह भी तीसरी आँख के कारण ही संभव होता है। क्या तुमने किसी को नींद में देखा है। उसकी आंखे ऊपर चली जाती है, और तीसरी आँख में स्थिर हो जाती है। यदि नहीं देखा तो देखो।

तुम्हारा बच्चा सोया है, उसकी आंखे खोलकर देखो कि उसकी आंखे कहां है। उसकी आँख की पुतलियाँ ऊपर को चढ़ी है। और त्रिनेत्र पर केंद्रित है। मैं कहता हूं कि बच्चों को देखो, सयानों को नहीं। सयाने भरोसे योग्य नहीं है। क्योंकि उनकी नींद गहरी नहीं है। वे सोचते भर है कि सोये है। बच्चों को देखो। उनकी आंखें ऊपर को चढ़ जाती है।

इसी तीसरी आँख में थिरता के कारण तुम अपने सपनों को सच मानते हो। तुम यह नहीं समझ सकते की वे सपने है। वह तुम तब जानोंगे, जब सुबह जागोगे। तब तुम जानोंगे कि यह स्वप्न है। यदि समझ जाओ तो दो तल हो गए—स्वप्न है और तुम सजग हो, जागरूक हो। जो नींद में स्वप्न के प्रति जाग सके, उसके लिए यह सूत्र चमत्कारिक है।

यह सूत्र कहता है: ''स्वप्न पर और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''

यदि तुम स्वप्न के प्रति जागरूक हो जाओ तो तुम दो काम कर सकते हो। एक कि तुम स्वप्न पैदा कर सकते हो। आमतौर से तुम स्वप्न नहीं पैदा कर सकते। आदमी कितना नपुंसक है। तुम स्वप्न भी नहीं पैदा कर सकते। अगर तुम कोई खास स्वप्न देखना चाहो तो नहीं देख सकते; यह तुम्हारे हाथ में नहीं है। मनुष्य कितना शक्तिहीन है। स्वप्न भी उससे नहीं निर्मित किए जा सकते। तुम स्वप्नों के शिकार भर हो। उनके स्त्रष्टा नहीं। स्वप्न तुम में घटित होता है। तुम कुछ नहीं कर सकते हो। न तुम उसे रोक सकते हो, न उसे पैदा कर सकते हो।

लेकिन अगर तुम यह देखते हुए नींद में उतरो कि हृदय प्राण से भर रहा है। निरंतर हर श्वास में प्राण से स्पर्शित हो रहा है तो तुम अपने स्वप्नों के मालिक हो जाओगे। और यह मलकियत बहुत अनूठी है, दुर्लभ है। तब तुम जो भी स्वप्न देखना चाहते हो, तुम वह स्वप्न देख सकते हो। और सोत समय कहो कि मैं फलां स्वप्न देखना चाहता हूं और वह स्वप्न कभी तुम्हारे मन में प्रवेश नहीं कर सकेगा।

लेकिन अपने स्वप्नों के मालिक बनने का क्या प्रयोजन है। क्या यह व्यर्थ नहीं है? नहीं, यह व्यर्थ नहीं है। एक बार तुम स्वप्न के मालिक हो गए तो दुबारा तुम कभी स्वप्न नहीं देखोगें। वह व्यर्थ हो गया। जरूरत नहीं रही। जैसे ही तुम अपने स्वप्नों के मालिक होते हो, स्वप्न बंद हो जाते है। उनकी जरूरत नहीं रहती। और जब स्वप्न बंद हो जाते है, तब तुम्हारी नींद का गुण धर्म ही और होता है। वह गुणधर्म वही है, जो मृत्यु का है।

मृत्यु गहन नींद है। अगर तुम्हारी नींद मृत्यु की तरह गहरी हो जाए तो उसका अर्थ है कि सपने विदा हो गए। सपने नींद को उथला करते है। सपनों के चलते तुम सतह पर ही घूमते रहते हो। सपनों में उलझे रहने के कारण तुम्हारी नींद उथली हो जाती है। और जब सपने नहीं रहते, तब तुम नींद के सागर में उतर जाते हो। उसकी गहराई छू लेते है। वही मृत्यु है।

इसलिए भारत न सदा कहा है कि नींद छोटी मृत्यु है। और मृत्यु लंबी नींद है। गुणात्मक रूप से दोनों समान है। नींद दिन-दिन की मृत्यु है, मृत्यु जीवन-जीवन की नींद है। प्रतिदिन तुम थक जाते हो, तुम सो जाते हो, और दूसरी सुबह तुम फिर अपनी शक्ति और अपनी जीवंतता को वापस पा लेते हो। तुम मानो फिर से जन्म लेते हो। वैसे ही सत्तर या अस्सी वर्ष के जीवन के बाद तुम पूरी तरह थक जाते हो। अब छोटी अविधि की मृत्यु से काम नहीं चलेगा, अब तुमको बड़ी मृत्यु की जरूरत है। उस बड़ी मृत्यु या नींद के बाद तुम बिलकुल नए शरीर के साथ पुनर्जन्म लेते हो।

और एक बार यदि तुम स्वप्न-शुन्य नींद को जान जाओ और उसमे बोध पूर्वक रहो तो फिर मृत्यु का भय जाता रहता है। कोई कभी नहीं मर सकता। मृत्यु असंभव है, अभी एक दिन पहले मैं कहता था कि केवल मृत्यु निश्चित है। और अब कहता हूं कि मृत्यु असंभव है। कोई कभी नहीं मरा है। कोई कभी मर नहीं सकता। संसार में यदि कुछ असंभव है तो वह मृत्यु है। क्योंकि अस्तित्व जीवन है। तुम फिर-फिर जन्मते हो। लेकिन नींद ऐसी गहरी है कि पुरानी पहचान भूल जाते हो। तुम्हारे मन से स्मृतियां पोंछ दी जाती है।

इसे इस तरह सोचो। मान लो कि आज तुम सोने जा रहे हो, और कोई ऐसा यंत्र बन गया है—शीध्र ही बनने वाला है—जो कि जैसे टेपरिकार्डर के फीते से आवाज पोंछ दी जाती है, वैसे ही मन से स्मृति को पोंछ डालता है। क्योंकि स्मृति भी एक गहरी रिकार्डिंग है। देर-अबेर हम ऐसा यंत्र निकाल लेंगे। जो तुम्हारे फिर में लगा दिया जाएगा। और जो तुम्हारे दिमाग को पोंछकर बिलकुल साफ कर देगा। तो कल सुबह तुम वही आदमी नहीं रहोगे जो सोने गया था। क्योंकि तुमको याद नहीं रहेगा कि कौन सोने गया था। तब तुम्हारी नींद मृत्यु जैसी हो जाएगी। एक गैप आ जाएगा। तुमको याद नहीं रहेगा। कि कौन सोया था। यही चीज स्वाभाविक ढंग से घट रही है। जब तुम मरते हो ओर फिर जन्म लेते हो तब तुमको याद नहीं रहता है कि कौन मरा। तुम फिर से शुरू करते हो।

इस विधि के द्वारा पहले तो तुम स्वप्नों के मालिक हो जाओगे। उसका अर्थ हुआ कि सपने आना बंद हो जाएंगे। या यदि तुम खुद सपने देखना चाहोगे तो सपना देख भी सकते हो। लेकिन तब वह ऐच्छिक सपना होगा। वह अनिवार्य नहीं रहेगा। वह तुम पर लादा नहीं जाएगा। तुम उसके शिकार नहीं होंगे। और तब तुम्हारी नींद का गुणधर्म ठीक मृत्यु जैसा हो जाएगा। तब तुम जानोगे कि मृत्यु भी नींद है।

इसलिए यह सूत्र कहता है: ''स्वप्न और स्वयं मृत्यु पर अधिकार हो जाएगा।''

तब तुम जानोंगे कि मृत्यु एक लंबी नींद है—और सहयोगी है, और सुंदर है। क्योंकि वह तुमको नव जीवन देती है। वह तुमको सब कुछ नया देती है, फिर तो मृत्यु भी समाप्त हो जाती है। स्वप्न के शेष होते ही मृत्यु समाप्त हो जाती है।

मृत्यु पर नियंत्रण पाने, अधिकार पाने का दूसरा अर्थ भी है। अगर तुम समझ लो कि मृत्यु नींद है तो तुम उसको दिशा दे सकते हो। अगर तुम अपने सपनों को दिशा दे सकते हो। तो मृत्यु को भी दे सकते हो। तब तुम चुनाव कर सकते हो, कि कहां पैदा हो? कब पैदा हो, किससे पैदा हो, और किस रूप में पैदा हो, तब तुम अपने जीवन के मालिक होते हो।

बुद्ध की मृत्यु हुई, मैं उनके अंतिम जन्म के पूर्व के जन्म की चर्चा कर रहा हूं। जब वे बुद्ध नहीं थे। मरने के पूर्व उन्होंने कहा: ''मैं अमुक मां बाप से पैदा होऊंगा, ऐसी मेरी मां होगी, ऐसे मेरे पिता होंगे, और मेरी मां मेरे जन्म के बाद ही मर जायेगी। और जब मैं जनमुगां तो मेरी मां ऐसे-ऐसे सपने देखेगी। न तुमको सिर्फ अपने सपनों पर अधिकार होगा दूसरे के स्वप्नों पर भी अधिकार हो जायेगा। सो बुद्ध ने उदाहरण के तौर पर बताया कि जब मैं मां के पेट में होऊंगा, तब मेरी मां ये-ये स्वप्न देखेगी। और जब कोई इस क्रम से इन स्वप्नों को देखे, तब तुम समझ जाना की मैं जन्म लेने वाला हूं।

और ऐसा ही हुआ। बुद्ध की माता ने उसी क्रम से सपने देखे। वह क्रम सारे भारत को पता था। विशेषकर उनको जो धर्म में, जीवन की गहन चीजों में और उसके गुह्म पथों में उत्सुक थे। पता था, इसलिए उन स्वप्नों की व्याख्या हुई। स्वप्नों की व्याख्या करने वाला पहला आदमी फ्रायड नहीं था। और न उसकी व्याख्या में गहराई थी। पला वह केवल पश्चिम के लिए था।

तो बुद्ध के पिता ने स्वप्नों के व्याख्याकारों को, उस जमाने के फ्रायडों और जुंगों को तुरंत बुलवाया और उनसे पूछा, इस क्रम का क्या अर्थ है। मुझे डर लगता है, ये सपने अद्भुत है। और एक ही क्रम से आ रहे है, एक ही तरह के सपने, बारी-बारी से आ रहे है। मानों कोई एक ही फिल्म को बार-बार देखता हो। क्या हो रहा है।

और व्याख्याकारों ने बताया कि आप एक महान आत्मा के पिता होने जा रहे है। वह बुद्ध होने वाला है। लेकिन आपकी पत्नी को संकट है। क्योंकि जब ऐसे बुद्ध जन्म लेते है, तब मां का जीना कठिन हो जाता है। बुद्ध के पिता ने कारण पूछा। व्याख्याकारों ने कहा कि हम यह नहीं बता सकते। लेकिन जो आत्मा पैदा होने वाली है, उसका ही वक्तव्य है कि उसके जन्म लेने पर उसकी मां की मृत्यु हो जायेगी।

बाद में बुद्ध से पूछा गया कि आपकी माता की मृत्यु तुरंत क्यो हुई? उन्होंने कहा कि एक बुद्ध को जन्म देना इतनी बड़ी घटना है कि उसके बाद और सब कुछ व्यर्थ हो जाता है। इसलिए मां जीवित नहीं रह सकती। उसे नया जीवन शुरू करने के लिए फिर से जन्म लेना होगा। एक बुद्ध को जन्म देना परम अनुभव है। ऐसा शिखर है कि मां उसके बाद नहीं बची रह सकती। इसलिए मां की मृत्यु हुई।

बुद्ध ने अपने पिछले जन्म में कहा था कि मैं उस समय जन्म लूंगा, जब मेरी मां एक ताड़ वृक्ष के नीचे खड़ी होगी। और वही हुआ। बुद्ध का जब जन्म हुआ तब उनका मां ताड़ वृक्ष के नीचे खड़ी थी। और बुद्ध ने यह भी कहां की। जन्म लेने के बाद में तुरंत सात कदम चलूंगा। यह-यह पहचान होगी। जो बताए देता हूं, ताकि तुम जान सको कि बुद्ध का जन्म हो गया। और बुद्ध ने सब कुछ का इंगित किया।

और यह केवल बुद्ध के लिए ही सही नहीं है। यही जीसस के लिए सही है, यही महावीर के लिए सही है। यही और भी कई अन्यों के लिए सही है। प्रत्येक जैन तीर्थंकर ने अपने पिछले जन्म में भविष्यवाणी की थी कि उनका जन्म किस तरह होगा। उन्होंने भी स्वप्नों के क्रम बताए थे। उन्होंने भी प्रतीक बताए थे, और कहा था कि किस तरह सब कुछ घटित होने वाला है।

तुम दिशा दे सकते हो, एक बार तुम अपने स्वप्नों को दिशा देने लगो तो सब कुछ को दिशा दे सकते हो। क्योंकि यह संसार स्वप्नों का ही बना हुआ है। और स्वप्नों का ही यह जीवन बना है। इसलिए जब तुम्हारा अधिकार सपने पर हुआ तब सब कुछ पर हो गया।

यह सूत्र कहता है: ''स्वयं मृत्यु पर।''

तब कोई व्यक्ति अपने को एक विशेष तरह का जन्म भी दे सकता है। विशेष तरह का जीवन भी दे सकता है।

हम लोग तो शिकार है। हम नहीं जानते है कि क्यों जन्मते है, क्यों मरते है। कौन हमें चलाता है और क्यों? काई कारण नहीं दिखाई देता है। सब कुछ अराजकता, संयोग जैसा है। ऐसा इसलिए है कि हम मालिक नहीं है। एक बार मालिक हो जाएं तो फिर ऐसा नहीं रहेगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-08

आठवीं श्वास विधि:
आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।

Lord Shiva तंत्र-सूत्र–ओशो

इन विधियों के बीच जरा-जरा से है, तो भी तुम्हारे लिए वे भेद बहुत हो सकते है। एक अकेला शब्द बहुत फर्क पैदा करता है।

''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर.....।''
भीतर आने वाली श्वास को एक संधि स्थल है। जहां वह मुड़ती है। इन दो संधि-स्थलों—जिसकी चर्चा हम कर चुके है—के साथ यहां जरा सा भेद किया गया है। हालांकि यह भेद विधि में तो जरा सा ही है, लेकिन साधक के लिए बड़ा भेद हो सकता है। केवल एक शर्त जोड़ दी गई है—''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक'', और पूरी विधि बदल गयी।
इसके प्रथम रूप में भक्ति का सवाल नहीं था। वह मात्र वैज्ञानिक विधि थी। तुम प्रयोग करो और वह काम करेगी। लेकिन लोग है जो ऐसी शुष्क वैज्ञानिक विधियों पर काम नहीं करेंगे। इसलिए जो हृदय की और झुके है। जो भक्ति के जगत के है, उनके लिए जरा सा भेद किया गया है: आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि-स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।''

अगर तुम वैज्ञानिक रुझान के नहीं हो, अगर तुम्हारा मन वैज्ञानिक नहीं है, तो तुम इस विधि को प्रयोग में लाओ।

आत्यंतिक भक्ति पूर्वक—प्रेम श्रद्धा के साथ—श्वास के दो संधि स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।''

यह कैसे संभव होगा।

भक्ति तो किसी के प्रति होती है। चाहे वे कृष्ण हों या क्राइस्ट। लेकिन तुम्हारे स्वयं के प्रति, श्वास के दो संधि-स्थलों के प्रति भक्ति कैसी होगी। यह तत्व तो गैर भक्ति वाला है। लेकिन व्यक्ति-व्यक्ति पर निर्भर है।

तंत्र का कहना है कि शरीर मंदिर है। तुम्हारा शरीर परमात्मा का मंदिर है, उसका निवास स्थान है। इसलिए इसे मात्र अपना शरीर या एक वस्तु न मानो। यह पवित्र है, धार्मिक है। जब तुम एक श्वास भीतर ले रहे हो तब तुम ही श्वास नहीं ले रहे हो, तुम्हारे भीतर परमात्मा भी श्वास ले रहा है। तुम चलते फिरते हो—इसे इस तरह देखो—तुम नहीं, स्वयं परमात्मा तुममें चल रहा है। तब सब चीजें पूरी तरह भक्ति हो जाती है।

अनेक संतों के बारे में कहा जाता है कि वे अपने शरीर को प्रेम करते थे, वे उसके साथ ऐसा व्यवहार करते थे। मानो वे शरीर उनकी प्रेमिकाओं के रहे हों।

तुम भी अपने शरीर को यह व्यवहार दे सकते हो। उसके साथ यंत्रवत व्यवहार भी कर सकते हो। वह भी एक रूझान है, एक दृष्टि है। तुम इसे अपराधपूर्ण पाप भरा और गंदा भी मान सकते हो। और इसे चमत्कार भी समझ सकते हो, परमात्मा का घर भी समझ सकते है, यह तुम पर निर्भर है।

यदि तुम अपने शरीर को मंदिर मान सको तो यह विधि तुम्हारे काम आ सकती है, ''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक....।'' इसका प्रयोग करो। जब तुम भोजन कर रहे हो तब इसका प्रयोग करो। यह न सोचो कि तुम भोजन कर रहे हो, सोचो कि परमात्मा तुममें भोजन कर रहा है। और तब परिवर्तन को देखो। तुम वही चीज खा रहे हो। लेकिन तुरंत सब कुछ बदल जाता है। अब तुम परमात्मा को भोजन दे रहे हो। तुम स्नान कर रहे हो। कितना मामूली सा काम है। लेकिन दृष्टि बदल दो, अनुभव करो कि तुम अपने में परमात्मा को स्नान करा रहे हो, तब यह विधि आसान होगी।

''आत्यंतिक भक्ति पूर्वक श्वास के दो संधि स्थलों पर केंद्रित होकर ज्ञाता को जान लो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-09

नौवीं विधिः

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र
(तंत्र-सूत्र—भाग-1)
प्रवचन-5

मृतवत लेटे रहो। क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो। या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।

''मृतवत लेटे रहो।''
प्रयोग करो कि तुम एकाएक मर गए हो। शरीर को छोड़ दो, क्योंकि तुम मर गए हो। बस कल्पना करो कि मृत हूं, मैं शरीर नहीं हूं, शरीर को नहीं हिला सकता। आँख भी नहीं हिला सकता। मैं चीख-चिल्ला भी नहीं सकता। न ही मैं रो सकता हूं, कुछ भी नहीं कर सकता। क्योंकि मैं मरा हुआ हूं। और तब देखो तुम्हें कैसा लगता है। लेकिन अपने को धोखा मत दो। तुम शरीर को थोड़ा हिला सकते हो, नहीं, हिलाओ नहीं। लेकिन मच्छर भी आ जाये, तो भी शरीर को मृत समझो। यह सबसे अधिक उपयोग की गई विधि है।
रमण महर्षि इसी विधि से ज्ञान को उपलब्ध हुए थे। लेकिन यह उनके इस जन्म की विधि नहीं थी। इस जन्म में तो अचानक सहज ही यह उन्हें घटित हो गई। लेकिन जरूर उन्होंने किसी पिछले जन्म में इसकी सतत सधाना की होगी। अन्यथा सहज कुछ भी घटित नहीं होता। प्रत्येक चीज का कार्य-कारण संबंध रहता है।

जो जब वे केवल चौदह या पंद्रह वर्ष के थे, एक रात अचानक रमण को लगा कि मैं मरने वाला हूं, उनके मन में यक बात बैठ गई कि मृत्यु आ गई है। वे अपना शरीर भी नहीं हिला सकते थे। उन्हें लगा कि मुझे लकवा मार गया है। फिर उन्हें अचानक घुटन महसूस हुई और वे जान गए कि उनकी हृदय-गति बंद होने वाली है। और वे चिल्ला भी नहीं सके, बोल भी नहीं सके कि मैं मर रहा हूं।

कभी-कभी किसी दुस्वप्न में ऐसा होता है कि जब तुम न चिल्ला पाते हो और न हिल पाते हो। जागने पर भी कुछ क्षणों तक तुम कुछ नहीं कर पाते हो। यही हुआ रमण को अपनी चेतना पर तो पूरा अधिकार था। पर अपने शरीर पर बिलकुल नहीं। वे जानते थे कि मैं हूं, चेतना हूं, सजग हूं, लेकिन मैं मरने वाला हूं। और यह निश्चय इतना घना था कि कोई विकल्प भी नहीं था। इसलिए उन्होंने सब प्रयत्न छोड़ दिया। उन्होंने आंखे बद कर ली और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगे।

धीरे-धीरे उनका शरीर सख्त हो गया। शरीर मर गया। लेकिन एक समस्या उठ खड़ी हुई। वे जान रहे थे कि शरीर नहीं हूं। लेकिन मैं तो हूं, वे जान रहे थे कि मैं जीवित हूं, और शरीर मर गया है। फिर वे उस स्थिति से वापस आए। सुबह में शरीर स्वास्थ था। लेकिन वही आदमी नहीं लौटा था जो मृत्यु के पूर्व था। क्योंकि उसने मृत्यु को जान लिया था।

अब रमण ने एक नए लोक को देख लिया था। चेतना के एक नए आयाम को जान लिया था। उन्होंने घर छोड़ दिया। उस मृत्यु के अनुभव ने उन्हें पूरी तरह बदल दिया। और वे इस यूग के बहुत थोड़े से प्रबुद्ध पुरूषों में हुए।

और यहीं विधि है जो रमण को सहज घटित हुई। लेकिन तुमको यह सहज ही नहीं घटित होने वाली। लेकिन प्रयोग करो तो किसी जीवन में यह सहज हो सकती है। प्रयोग करते हुए भी यह घटित हो सकती है। और यदि नहीं घटित हुई तो भी प्रयत्न कभी व्यर्थ नहीं जाता है। यह प्रयत्न तुम में रहेगा। तुम्हारे भीतर बीज बनकर रहेगा। कभी जब उपयुक्त समय होगा और वर्षा होगी, यह बीज अंकुरित हो जाएगा।

सब सहजता की यही कहानी है। किसी काल में बीज बो दिया गया था। लेकिन ठीक समय नहीं आया था। और वर्षा नहीं हुई थी। किसी दूसरे जन्म और जीवन में समय तैयार होता है, तुम अधिक प्रौढ़, अधिक अनुभवी होते हो। और संसार में उतने ही निराश होते हो, तब किसी विशेष स्थिति में वर्षा होती है और बीज फूट निकलता है।

''मृतवत लेटे रहो। क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमें ठहरे रहो।''

निश्चय ही जब तुम मर रहे हो तो वह कोई सुख का क्षण नहीं होगा। वह आनंदपूर्ण नहीं हो सकता। जब तुम देखते हो कि तुम मर रहे हो। भय पकड़ेगा। मन में क्रोध उठेगा, या विषाद, उदासी, शोक, संताप, कुछ भी पकड़ सकता है। व्यक्ति-व्यक्ति में फर्क है।

सूत्र कहता है—''क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो, स्थित रहो।''

अगर तुमको क्रोध घेरे तो उसमे ही स्थित रहो। अगर उदासी घेरे तो उसमे भी। भय, चिंता, कुछ भी हो, उसमें ही ठहरे रहो, डटे रहो, जो भी मन में हो, उसे वैसा ही रहने दो, क्योंकि शरीर तो मर चुका है।

यह ठहरना बहुत सुंदर है। अगर तुम कुछ मिनटों के लिए भी ठहर गए तो पाओगे कि सब कुछ बदल गया। लेकिन हम हिलने लगते है। यदि मन में कोई आवेग उठता है तो शरीर हिलने लगता है। उदासी आती है, तो भी शरीर हिलता है। इसे आवेग इसीलिए कहते है कि यह शरीर में वेग पैदा करता है। मृतवत महसूस करो—और आवेगों को शरीर हिलाने इजाजत मत दो। वे भी वहां रहे और तुम भी वहां रहो। स्थिर, मृतवत। कुछ भी हो, पर हलचल नहीं हो, गति नहीं हो। बस ठहरे रहो।

''या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो।''

यह—या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो। मेहर बाबा की विधि थी। वर्षों वे अपने कमरे की छत को घूरते रहे, निरंतर ताकते रहे। वर्षो वह जमीन पर मृतवत पड़े रहे और पुतलियों को, आंखों को हिलाए बिना छत को एक टक देखते रहे। ऐसा वे लगातार घंटो बिना कुछ किए घूरते रहते थे। टकटकी लगाकर देखते रहते थे।

आंखों से घूरना अच्छा है। क्योंकि उससे तुम फिर तीसरी आँख मैं स्थित हो जाते हो। और एक बार तुम तीसरी आँख में थिर हो गए तो चाहने पर भी तुम पुतलियों को नहीं घूमा सकते हो। वे भी थिर हो जाती है—अचल।

मेहर बाबा इसी घूरने के जरिए उपलब्ध हो गए। और तुम कहते हो कि इन छोटे-छोटे अभ्यासों से क्या होगा। लेकिन मेहर बाबा लगातार तीन वर्षों तक बिना कुछ किए छत को घूरते रहे थे। तुम सिर्फ तीन मिनट के लिए ऐसी टकटकी लगाओ और तुमको लगेगा कि तीन वर्ष गुजर गये। तीन मिनट भी बहुत लम्ब समय मालूम होगा। तुम्हें लगेगा की समय ठहर गया है। और घड़ी बंद हो गई है। लेकिन मेहर बाबा घूरते रहे, घूरते रह, धीरे-धीरे विचार मिट गए। और गति बंद हो गई। मेहर बाबा मात्र चेतना रह गए। वे मात्र घूरना बन गए। टकटकी बन गए। और तब वे आजीवन मौन रह गए। टकटकी के द्वारा वे अपने भीतर इतने शांत हो गए कि उनके लिए फिर शब्द रचना असंभव हो गई।

मेहर बाबा अमेरिका में थे। वहां एक आदमी था जो दूसरों के विचार को, मन को पढ़ना जानता था। और वास्तव में वह आमी दुर्लभ था—मन के पाठक के रूप में। वह तुम्हारे सामने बैठता, आँख बंद कर लेता और कुछ ही क्षणों में वह तुम्हारे साथ ऐसा लयवद्ध हो जाता कि तुम जो भी मन में सोचते, वह उसे लिख डालता था। हजारों बार उसकी परीक्षा ली गई। और वह सदा सही साबित हुआ। तो कोई उसे मेहर बाबा के पास ले गया। वह बैठा और विफल रहा। और यह उसकी जिंदगी की पहली विफलता थी। और एक ही। और फिर हम यह भी कैसे कहें कि यह उसकी विफलता हुई।

वह आदमी घूरता रहा, घूरता रहा, और तब उसे पसीना आने लगा। लेकिन एक शब्द उसके हाथ नहीं लगा। हाथ में कलम लिए बैठा रहा और फिर बोला—किसी किस्म का आदमी है। यह, मैं नहीं पढ़ पाता हूं, क्योंकि पढ़ने के लिए कुछ है ही नहीं। यह आदमी तो बिलकुल खाली है। मुझे यह भी याद नहीं रहता की यहां कोई बैठा है। आँख बंद करने के बाद मुझे बार-बार आँख खोल कर देखना पड़ता है कि यह व्यक्ति यहां है कि नहीं। या यहां से हट गया है। मेरे लिए एकाग्र होना भी कठिन हो गया है। क्योंकि ज्यों ही मैं आँख बंद करता हूं कि मुझे लगता है कि धोखा दिया जा रहा है। वह व्यक्ति यहां से हट जाता है। मेरे सामने कोई भी नहीं है। और जब मैं आँख खोलता हूं तो उसको सामने ही पाता हूं। वह तो कुछ भी नहीं सोच रहा है।

उस टकटकी ने, सतत टकटकी ने मेहर बाबा के मन को पूरी तरह विसर्जित कर दिया था।

''या पुतलियों को घुमाएं बिना एकटक घूरते रहो। या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।''

यहां जरा सा रूपांतरण है। कुछ भी काम दे देगा। तुम मर गए, यह काफी है।

''क्रोध में क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो।''

केवल यह अंश भी एक विधि बन सकता है। तुम क्रोध में हो; लेटे रहो और क्रोध में स्थित रहो। पड़े रहो। इससे हटो नहीं, कुछ करो नहीं, स्थिर पड़ें रहो।

कृष्णामूर्ति इसी की चर्चा किए चले जा रहे थे। उनकी पूरी विधि इस एक चीज पर निर्भर है: क्रोध से क्षुब्ध होकर उसमे ठहरे रहो।'' यदि तुम क्रुद्ध हो तो क्रुद्ध होओ और क्रुद्ध रहो। उससे हिलो नहीं, हटो नहीं। और अगर तुम वैसे ठहर सको तो क्रोध चला जाता है। और तुम दूसरे आदमी बन जाते हो। और एक बार तुम क्रोध को उससे आंदोलित हुए बिना देख लो तो तुम उसके मालिक हो गए।

''या पुतलियों को घुमाएं बिना एक टक घूरते रहो। या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।''

यह अंतिम विधि शारीरिक है। और प्रयोग में सुगम है। क्योंकि चूसना पहला काम है, जो कि कोई बच्चा करता है। चूसना जीवन का पहला कृत्य है। बच्चा जब पैदा होता है, तब वह पहले रोता है। तुमने यह जानने की कोशिश नहीं की होगी कि बच्चा क्यों रोता है। सच में वह रोता नहीं है। वह रोता हुआ मालूम होता है। वह सिर्फ हवा का पी रहा है। चूर रहा है। अगर वह नहीं रोंए तो मिनटों के भीतर मर जाए। क्योंकि रोना हवा लेने का पहला प्रयत्न है। जब वह पेट में था, बच्चा स्वास नहीं लेता है। बिना स्वास लिए वह जीता था। वह वहीं प्रक्रिया कर रहा था। जो भूमिगत समाधि लेने पर योगी जन करते है। वह बिना श्वास लिए प्राण को ग्रहण कर रहा था—मां से शुद्ध प्राण ही ग्रहण कर रहा था।

यही कारण है कि मां और बच्चे के बीच जो प्रेम है, वह और प्रेम से सर्वथा भिन्न होता है। क्योंकि शुद्धतम प्राण दोनों को जोड़ता है। अब ऐसा फिर कभी नहीं होगा। उनके बीच एक सूक्ष्म प्राणमय संबंध था। मां बच्चे को प्राण देती थी। बच्चा श्वास तक नहीं लेता था।

लेकिन जब वह जन्म लेता है, तब वह मां के गर्भ से उठाकर एक बिलकुल अनजानी दुनिया में फेंक दिया जाता है। अब उसे प्राण या ऊर्जा उस आसानी से उपलब्ध नहीं होगी। उसे स्वयं ही श्वास लेनी होगी। उसकी पहली चीख चूसने का पहला प्रयत्न है। उसके बाद वह मां के स्तन से दूध चूसता है। ये बुनियादी कृत्य है जो तुम करते हो। बाकी सब काम बाद में आते है। जीवन के वे बुनियादी कृत्य है, और प्रथम कृत्य उसका अभ्यास भी किया जा सकता है।

यह सूत्र कहता है: ''या कुछ चुसो और चूसना बन जाओ।''

किसी भी चीज को चुसो , हवा को ही चुसो, लेकिन तब हवा को भूल जाओ और चूसना ही बन जाओ। इसका अर्थ क्या हुआ? तुम कुछ चूस रहे हो, इसमें तुम चूसने वाले हो, चोषण नहीं। तुम चोषण के पीछे खड़े हो। यह सूत्र कहता है कि पीछे मत खड़े रहो, कृत्य में भी सम्मिलित हो जाओ और चोषण बने जाओ।

किसी भी चीज से तुम प्रयोग कर सकते हो, अगर तुम दौड़ रहे हो तो दौड़ना ही बन जाओ और दौड़ने वाले न रहो। दौड़ना बन जाओ। दौड़ बन जाओ और दौड़ने वाले को भूल जाओ। अनुभव करो कि भीतर कोई दौड़ने वाला नहीं है। मात्र दौड़ने की प्रक्रिया है। वह प्रक्रिया तुम हो—सरिता जैसी प्रक्रिया। भीतर कोई नहीं है। भीतर सब शांत है। और केवल यह प्रक्रिया है।

चूसना, चोषण अच्छा है। लेकिन तुमको यह कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि हम इसे बिलकुल भूल गए है। यह कहना भी ठीक नहीं है कि बिलकुल भूल गए है। क्योंकि उसका विकल्प तो निकालते ही रहते है। मां के स्तन की जगह सिगरेट ले लेती है। और तुम उसे चूसते रहते हो। यह स्तन ही है, मां का स्तन, मां का चूचुक। और गर्म धुआँ निकलता है, वह मां का दूध।

इसलिए छुटपन में जिनको मां के स्तन के पास उतना नहीं रहने दिया गया, जितना वे चाहते थे, वे पीछे चलकर धूम्रपान करने लगते है। यह बिलकुल भूल गए है, और विकल्प से भी काम चल जाएगा। इसलिए अगर तुम सिगरेट पीते हो तो धुम्रपान ही बन जाओ। सिगरेट को भूल जाओ, पीने वाले को भूल जाओ और धूम्रपान ही बने रहो।

एक विषय है जिसे तुम चूसते हो, एक विषयी है जो चूसता है। और उनके बीच चूसने की, चोषण की प्रक्रिया है। तुम चोषण बन जाओ प्रक्रिया बन जाओ। इसे प्रयोग करो। पहले कई चीजों से प्रयोग करना होगा और तब तुम जानोंगे कि तुम्हारे लिए क्या चीज सही है।

तुम पानी पी रहे हो। ठंडा पानी भीतर जा रहा है। तुम पानी बन जाओ। पानी न पीओ। पानी को भूल जाओ। अपने को भूल जाओ, अपनी प्यास को भी, और मात्र पानी बन जाओ। प्रक्रिया में ठंडक है, स्पर्श है, प्रवेश है, और पानी है—वही सब बने रहो।

क्यों नहीं? क्या होगा? यदि तुम चोषण बन जाओ तो क्या होगा?

यदि तुम चोषण बन जाओ तो तुम निर्दोष हो जाओगे—ठीक वैसे जैसे प्रथम दिन जन्मा हुआ शिशु होता है। क्योंकि वह प्रथम प्रक्रिया है। एक तरह से आप पीछे की और यात्रा करेंगे। लेकिन उसकी ललक, लालसा भी तो है। आदमी का पूरा अस्तित्व उस स्तन पान के लिए तड़पता है। उसके लिए वह कई प्रयोग करता है, लेकिन कुछ भी काम नहीं आता। क्योंकि वह बिंदु ही खो गया है। जब तक तुम चूसना नहीं बन जाते, तब तक कुछ भी काम नहीं आएगा। इसलिए इसे प्रयोग में लाओ।

एक आदमी को मैंने यह विधि दी थी। उसने कई विधियां प्रयोग की थी। तब वह मेरे पास आया। उससे मैंने कहा, यदि मैं समूचे संसार से केवल एक चीज ही तुम्हें चुनने को दूँ तो तुम क्या चुनोगे? और मैंने तुरंत उसे यह भी कहा कि आँख बंद करो और इस पर तुम कुछ भी सोचे बिना मुझे बताओ। वह डरने लगा, झिझकने लगा। तो मैंने कहा, न डरों और न झिझाको। मुझे स्पष्ट बताओ। उसने कहा, यह तो बेहूदा मालूम पड़ता है। लेकिन मेरे सामने एक स्तन उभर रहा है। और यह कहकर वह अपराध भाव अनुभव करने लगा। तो मैंने कहा, मत अपराध भाव अनुभव करो। स्तन में गलत क्या है ? सर्वाधिक सुंदर चीजों में स्तन एक है, फिर अपराध भाव क्यों?

लेकिन उस आदमी ने कहा, यह चीज तो मेरे लिए ग्रस्तता बन गई है। इसलिए अपनी विधि बताने के पहले आप कृपा कर यक बताएं कि मैं क्यों स्त्रियों के स्तनों में इतना उत्सुक हूं? जब भी मैं किसी स्त्री को देखता हुं, पहले उसका स्तन ही मुझे दिखाई देता है। शेष शरीर उतने महत्व का नह रहता।

और यह बात केवल उसके साथ ही लागू नहीं है। प्रत्येक के साथ, प्रात: प्रत्येक के साथ लागू है। और यह बिलकुल स्वाभाविक है। क्योंकि मां का स्तन की जगत के साथ आदमी का पहला परिचय बनता है। यह बुनियादी है। जगत के साथ पहला संपर्क मां के स्तन बनता है। यही कारण है कि स्तन में इतना आकर्षण है, स्तन इतना सुंदर लगता है। उसमे एक चुंबकीय शक्ति है।

इसलिए मैंने उस व्यक्ति से कहा कि अब मैं तुमको विधि दूँगा। और यही विधि थी जो मैंने उसे दी: किसी चीज को चुसो और चूसना बन जाओ। मैंने बताया कि आंखें बंद कर लो और अपनी मां का स्तन याद करो या और कोई स्तन जो तुम्हें पंसद हो, कल्पना करो और ऐसे चूसना शुरू करो कि यह असली स्तन है। शुरू करो।

उसने चूसना शुरू किया। तीन दिन के अंदर वह इतनी तेजी से, पागलपन के साथ चूसने लगा। और वह इसके साथ इतना मंत्र मुग्ध हो गया कि उसने एक दिन आकर मुझसे कहा, यह तो समस्या बन गई है। सात दिन में चूसता ही रहा हूं। और यह इतना सुंदर है और इसमे ऐसी गहरी शांति पैदा होती है।'' और तीन महीने के अंदर उसका चोषण एक मौन मुद्रा बन गया। तुम होंठों से समझ नहीं सकते कि वह कुछ कर रहा है। लेकिन अंदर से चूसना जारी था। सारा समय वह चूसता रहता। यह जब बन गया।

तीन महीने बाद उसके मुझसे कहा, ''कुछ अनूठा मेरे साथ घटित हो रहा है। निरंतर कुछ मीठी द्रव सिर से मेरी जीभ पर बरसता है। और यह इतना मीठा और शक्तिदायक है। कि मुझे किसी और भोजन की जरूरत नहीं रही। भूख समाप्त हो गई है। और भोजन मात्र औपचारित हो गया। परिवार में समस्या न बने, इसलिए मैं दूध लेता हूं। लेकिन कुछ मुझे मिल रहा है जो बहुत मीठा है। बहुत जीवनदायी है।''

मैंने उसे यह विधि जारी रखने को कहा।

तीन महीने और। और वह एक दिन नाचता हुआ, पागल सा मेरे पास आया। और बोला, चूसना तो चला गया, लेकिन अब मैं दूसरा ही आदमी हो गया हूं। अब मैं वही नहीं रहा हूं। जो पहले था। मरे लिए कोई द्वार खुल गया है। कुछ टूट गया है। और कोई आकांक्षा शेष नहीं रही। अब मैं कुछ भी नहीं चाहता हूं, न परमात्मा। न मोक्ष, अब जो है, जैसा है, ठीक है। मैं उसे स्वीकारता हूं और आनंदित हूं।''

इसे प्रयोग में लाओ। किसी चीज को चुसो और चूसना बन जाओ। यह बहुतों के लिए उपयोगी होगा। क्योंकि यह इतना आधारभूत है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-5

तंत्र-सूत्र—विधि-10

शिथिल होने की पहली विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि-10 विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो

प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन हो।

शिव प्रेम से शुरू करते है। पहली विधि प्रेम से संबंधित है। क्योंकि तुम्हारे शिथिल होने के अनुभव में प्रेम का अनुभव निकटतम है। अगर तुम प्रेम नहीं कर सकते हो तो तुम शिथिल भी नहीं हो सकते हो। और अगर तुम शिथिल हो सके तो तुम्हारा जीवन प्रेमपूर्ण हो जाएगा।

एक तनावग्रस्त आदमी प्रेम नहीं कर सकता। क्यों? क्योंकि तनावग्रस्त आदमी सदा उद्देश्य से, प्रयोजन से जीता है। वह धन कमा सकता है। लेकिन प्रेम नहीं कर सकता। क्योंकि प्रेम प्रयोजन-रहित है। प्रेम कोई वस्तु नहीं है। तुम उसे संग्रहीत नहीं कर सकते, तुम उसे बैंक खाते में नहीं डाल सकते। तुम उससे अपने अहंकार की पुष्टि नहीं कर सकते। सच तो यह है कि प्रेम सब से अर्थहीन काम है; उससे आगे उसका कोई अर्थ नहीं है। उससे आगे उसका कोई प्रयोजन नहीं है। प्रेम अपने आप में जीता है। किसी अन्य चीज के लिए नहीं।

तुम धन कमाते हो—किसी प्रयोजन से। वह एक साधन नहीं है। तुम मकान बनाते हो—किसी के रहने के लिए। वह भी एक साधन है। प्रेम साधन नहीं है। तुम क्यों प्रेम करते हो? किस लिए प्रेम करते हो?

प्रेम अपना लक्ष्य आप है। यही कारण है कि हिसाब किताब रखने वाला मन, तार्किक मन, प्रयोजन की भाषा में सोचने वाला मन प्रेम नहीं कर सकता। और जो मन प्रयोजन की भाषा में सोचता है। वह तनावग्रस्त होगा। क्योंकि प्रयोजन भविष्य में ही पूरा किया जा सकता है। यहां और अभी नहीं।

तुम एक मकान बना रहे हो। तुम उसमें अभी ही नहीं रह सकते। पहले बनाना होगा। तुम भविष्य में उसमे रह सकते हो; अभी नहीं। तुम धन कमाते हो। बैंक बैलेंस भविष्य में बनेगा, अभी नहीं। अभी साधन का उपयोग कर सकते हो, साध्य भविष्य में आएँगे।

प्रेम सदा यहां है और अभी है। प्रेम का कोई भविष्य नहीं है। यही वजह है कि प्रेम ध्यान के इतने करीब है। यही वजह है कि मृत्यु भी ध्यान के इतने करीब है। क्योंकि मृत्यु भी यहां और अभी है, वह भविष्य में नहीं घटती।

क्या तुम भविष्य में मर सकते हो? वर्तमान में ही मर सकते हो। कोई कभी भविष्य में नहीं मरा। भविष्य में कैसे मर सकते हो? या अतीत में कैसे मर सकते हो। अतीत जा चुका वह अब नहीं है। इसलिए अतीत में नहीं मर सकते। और भविष्य अभी आया नहीं है। इसलिए उसमे कैसे मरोगे?

मृत्यु सदा वर्तमान में होती है। मृत्यु प्रेम और ध्यान सब वर्तमान में घटित होते है। इसलिए अगर तुम मृत्यु से डरते हो तो तुम प्रेम नहीं कर सकते। अगर तुम मृत्यु से भयभीत हो तो तुम ध्यान नहीं कर सकते। और अगर तुम ध्यान से डरे हो तो तुम्हारा जीवन व्यर्थ होगा। किसी प्रयोजन के अर्थ में जीवन व्यर्थ नहीं होगा। वह व्यर्थ इस अर्थ में होगा कि तुम्हें उसमें किसी आनंद की अनुभूति नहीं होगी। जीवन अर्थहीन होगा।

इन तीनों को—प्रेम, ध्यान और मृत्यु को—एक साथ रखना अजीब मालूम पड़ेगा। वह अजीब है नहीं। वे समान अनुभव है। इसलिए अगर तुम एक में प्रवेश कर गए तो शेष दो में भी प्रवेश पा जाओगे।

शिव प्रेम से शुरू करते है: ''प्रिय देवी, प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि वह नित्य जीवन है।''

इसका क्या अर्थ है? कई चीजें, एक जब तुम्हें प्रेम किया जाता है तो अतीत समाप्त हो जाता है। और भविष्य भी नहीं बचता। तुम वर्तमान के आयाम में गति कर जाते हो। तुम अब में प्रवेश कर जाते हो। क्या तुमने कभी किसी को प्रेम किया है? यदि कभी किया है तो जानते हो कि उस क्षण मन नहीं होता है।

यही कारण है कि तथाकथित बुद्धिमान कहते है कि प्रेम अंधे होते है, मन: शून्य और पागल होते है। वस्तुत: वे सच कहते है। प्रेमी इस अर्थ में अंधे होते है। कि भविष्य पर अपने किए का हिसाब रखने वाली आँख उनके पास नहीं होती। वे अंधे है, क्योंकि वे अतीत को नहीं देख पाते। प्रेमियों को क्या हो जाता है?

वे अभी और यही में सरक आते है, अतीत और भविष्य की चिंता नहीं करते, क्या होगा इसकी चिंता नहीं लेते। इस कारण वे अंधे कहे जाते है। वे है। जो गणित करते है, उनके लिए वे अंधे है, और जो गणित नहीं करते उनके लिए आँख वाले है। जो हिसाबी नहीं है वे देख लेंगे कि प्रेम ही असली आँख है, वास्तविक दृष्टि है।

इसलिए पहली चीज के प्रेम के क्षण में अतीत और भविष्य नहीं होते है। तब एक नाजुम बिंदु समझने जैसा है। जब अतीत और भविष्य नहीं रहते तब क्या तुम इस क्षण को वर्तमान कह सकते हो? यह वर्तमान है दो के बीच, अतीत और भविष्य के बीच; यह सापेक्ष है। अगर अतीत और भविष्य नहीं रहे तो इसे वर्तमान कहते में क्या तुक है। वह अर्थहीन है। इसीलिए शिव वर्तमान शब्द का व्यवहार नहीं करते। वे कहते है, नित्य जीवन। उनका मतलब शाश्वत से है—शाश्वत में प्रवेश करो।

हम समय को तीन हिस्सों में बांटते है—भूत, भविष्य और वर्तमान। यह विभाजन गलत है। सर्वथा गलत है। केवल भूत और भविष्य समय है, वर्तमान समय का हिस्सा नहीं है। वर्तमान शाश्वत का हिस्सा है। जो बीत गया वह समय है। जो आने वाला है समय है।

लेकिन जो है वह समय नहीं है। क्योंकि वह कभी बीतता नहीं है। वह सदा है। अब सदा है। वह सदा है। यह अब शाश्वत है।

अगर तुम अतीत से चलो तो तुम कभी वर्तमान में नहीं आते। अतीत से तुम सदा भविष्य में यात्रा करते हो। उसमे कोई क्षण नहीं आता जो वर्तमान हो। तुम अतीत से सदा भविष्य में गति करते रहते हो। आकर वर्तमान से तुम और वर्तमान में गहरे उतरते हो, अधिकाधिक वर्तमान में। यही नित्य जीवन है।

इसे हम इस तरह भी कह सकते है। अतीत से भविष्य तक समय है। समय का अर्थ है कि तुम समतल भूमि पर और सीधी रेखा में गति करते हो। या हम उसे क्षैतिज कह सकते है। और जिस क्षण तुम वर्तमान में होते हो, आयाम बदल जाता है। तुम्हारी गति ऊर्ध्वाधर ऊपर-नीचे हो जाती है। तुम ऊपर, ऊँचाई की और जाते हो या नीचे गहराई की और जाते हो। लेकिन तब तुम्हारी गति क्षैतिज या समतल नहीं होती है।

बुद्ध और शिव शाश्वत में रहते है, समय में नहीं।

जीसस से पूछा गया कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा? जो पूछ रहा था वह समय के बारे में नहीं पूछ रहा था। वह जानना चाहता था कि वहां उसकी वासनाओं का क्या होगा। वे कैसे पूरी होंगी? वह पूछ रहा था कि क्या वहां अनंत जीवन होगा या वहां मृत्यु भी होगी। क्या वहां दुःख भी रहेगा। और छोटे और बड़े लोग भी होंगे। जब उसने पूछा कि आपके प्रभु के राज्य में क्या होगा। तब वह इसी दुनिया की बात पूछ रहा था।

और जीसस ने उत्तर दिया—यह उत्तर झेन संत के उत्तर जैसा है—''वहां समय नहीं होगा।'' जिस व्यक्ति को यह उत्तर दिया गया था उसने कुछ नहीं समझा होगा। जीसस ने इतना ही कहा—वहां समय नहीं होगा। क्यों? क्योंकि समय क्षैतिज है, और प्रभु का राज्य ऊर्ध्वगामी है। वह शाश्वत है। वह सदा यहां है। उसमे प्रवेश के लिए तुम्हें समय से हट भर जाना है।

तो प्रेम पहला द्वारा है। इसके द्वारा तुम समय के बाहर निकल सकते हो। यही कारण है कि हर आदमी प्रेम चाहता है, हर आदमी प्रेम करना चाहता है। और कोई नहीं जानता है कि प्रेम को इतनी महिमा क्यों दी जाती है? प्रेम के लिए इतनी गहरी चाह क्यों है? और जब तक तुम यह ठीक से न समझ लो, तुम ने प्रेम कर सकते हो और न पा सकते हो। क्योंकि इस धरती पर प्रेम गहन से गहन घटना है।

हम सोचते है कि हर आदमी, जैसा वह है, प्रेम करने को सक्षम है। वह बात नहीं है। और इसी कारण से तुम प्रेम में निराशा होते हो। प्रेम एक और ही आयाम है। यदि तुमने किसी को समय के भीतर प्रेम करने की कोशिश की तो तुम्हारी कोशिश हारेगी। समय के रहते प्रेम संभव नहीं है।

मुझे एक कथा याद आती है। मीरा कृष्ण के प्रेम में थी। वह गृहिणी थी—एक राजकुमार की पत्नी। राजा को कृष्ण से ईर्ष्या होने लगी। कृष्ण थे नहीं। वे शरीर से उपस्थित नहीं थे। कृष्ण और मीरा की शारीरिक मौजूदगी में पाँच हजार वर्षों का फासला था। इसलिए यथार्थ में मीरा कृष्ण के प्रेम में कैसे हो सकती थी। समय का अंतराल इतना लंबा था।

एक दिन राणा ने मीरा से पूछा, तुम अपने प्रेम की बात किए जाती हो, तुम कृष्ण के आसपास नाचती-गाती हो। लेकिन कृष्ण है कहां? तुम किसके प्रेम में हो? किससे सतत बातें किए जाती हो?

मीरा ने कहां: कृष्ण यहां है, तुम नहीं हो। क्योंकि कृष्ण शाश्वत है। तुम नहीं हो, वे यहां सदा होंगे। सदा थे। वे यहां है, तुम यहां नहीं हो। एक दिन तुम यहां नहीं थे, किसी दिन फिर यहां नहीं होओगे। इसलिए मैं कैसे विश्वास कुरू कि इन दो अनस्तित्व के बीच तुम हो। दो अनस्तित्व के बीच अस्तित्व क्या संभव है?

राणा समय में है और कृष्ण शाश्वत में है। तुम राणा के निकट हो सकते हो। लेकिन दूरी नहीं मिटाई जा सकती। तुम दूर ही रहोगे। और समय में तुम कृष्ण से बहुत दूर हो सकते हो, तो भी तुम उनके निकट हो सकते हो। यह आयाम ही और है।

मैं आपने सामने देखता हूं वहां दीवार है। फिर मैं अपनी आंखों को आगे बढ़ाता हूं और वहां आकाश है। जब तुम समय में देखते हो तो वहां दीवार है। और जब तुम समय के पार देखते हो तो वहां खुला आकाश है, अनंत आकाश।

प्रेम अनंत का द्वार खोल सकता है। अस्तित्व की शाश्वतता का द्वार। इसलिए अगर तुमने कभी सच में प्रेम किया है तो प्रेम को ध्यान की विधि बनाया जा सकता है। यह वहां विधि है: ''प्रिय देवी प्रेम किए जाने के क्षण में प्रेम में ऐसे प्रवेश करो जैसे कि यह नित्य जीवन हो।''

बाहर-बाहर रहकर प्रेमी मत बनो, प्रेमपूर्ण होकर शाश्वत में प्रवेश करो। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो क्या तुम वहां प्रेमी की तरह होते हो? अगर होते हो तो समय में हो, और तुम्हारा प्रेम झूठा है। नकली है, अगर तुम अब भी वहां हो और कहते हो कि मैं हूं तो शारीरिक रूप से नजदीक होकर भी आध्यात्मिक रूप से तुम्हारे बीच दो ध्रुवों की दूरी कायम रहती है।

प्रेम में तुम न रहो, सिर्फ प्रेम रहे; इसलिए प्रेम ही हो जाओ। अपने प्रेमी या प्रेमिका को दुलार करते समय दुलार ही हो जाओ। चुंबन लेते समय चूसने वाले या चूमे जाने वाले मत रहो, चुंबन ही बन जाओ। अहंकार को बिलकुल भूल जाओ। प्रेम के कृत्य में धुल-मिल जाओ। कृत्य में इतनी गहरे समा जाओ कि कर्ता न रहे।

और अगर तुम प्रेम में नहीं गहरे उतर सकते तो खाने और चलने में गहरे उतरना कठिन होगा। बहुत कठिन होगा। क्योंकि अहंकार को विसर्जित करने के लिए प्रेम सब से सरल मार्ग है। इसी वजह से अहंकारी लोग प्रेम नहीं कर पाते। वे प्रेम के बारे में बातें कर सकते है। गीत गा सकते है। लिख सकते है; लेकिन वे प्रेम नहीं कर सकते। अहंकार प्रेम नहीं कर सकता है।

शिव कहते है, प्रेम ही हो जाओ। जब आलिंगन में हो तो आलिंगन हो जाओ। चुंबन लेते समय चुंबन हो जाओ। अपने को इस पूरी तरह भूल जाओ कि तुम कह सको कि मैं अब नहीं हूं, केवल प्रेम है। तब हृदय नहीं धड़कता है, प्रेम की धड़कता है। तब खून नहीं दौड़ता है, प्रेम ही दौड़ता है। तब आंखे नहीं देखती है, प्रेम ही देखता है। तब हाथ छूने को नहीं बढ़ते है, प्रेम ही छूने को बढ़ता है। प्रेम बन जाओ और शाश्वत जीवन में प्रवेश करो।

प्रेम अचानक तुम्हारे आयाम को बदल देता है। तुम समय से बाहर फेंक दिये जाते हो। तुम शाश्वत के आमने-सामने खड़े हो जाते हो। प्रेम गहरा ध्यान बन सकता है—गहरे से गहरा। और कभी-कभी प्रेमियों ने वह जाना है जो संतों न भी नहीं जाना। कभी-कभी प्रेमियों ने उस केंद्र को छुआ है जो अनेक योगियों ने नहीं छुआ।

शिव को अपनी प्रिया देवी के साथ देखो। उन्हें ध्यान से देखो। वे दो नहीं मालूम होते। वे एक ही है। यह एकांत इतना गहरा है। हम सबने शिव लिंग देखे है। ये लैंगिक प्रतीक है। शिव के लिंग का प्रतीक है। लेकिन वह अकेला नहीं है, वह देवी की योनि में स्थित है। पुराने दिनों के हिंदू बड़े साहसी थे। अब जब तुम शिवलिंग देखते हो तो याद नह रहता कि यह एक लैंगिक प्रतीक है। हम भूल गए है। हमने चेष्टा पूर्वक इसे पूरी तरह भुला दिया है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक जुंग ने अपनी आत्मकथा में, अपने संस्मरणों में एक मजेदार घटना का उल्लेख किया है। वह भारत आया और कोणार्क देखने को गया। कोणार्क के मंदिर में शिवलिंग है। जो पंडित उसे समझाता था उसने शिवलिंग के सिवाय सब कुछ समझाया। और वे इतने थे कि उनसे बचना मुश्किल था। जुंग तो सब जानता था, लेकिन पंडित को सिर्फ चिढ़ाने के लिए पूछता रहा की ये क्या है? तो पंडित ने आखिर जुंग के कान में कहा कि मुझे यहां मत पूछिये, मैं पीछे आपको बताऊंगा। यह गोपनीय है।

जुंग मन ही मन हंसा होगा। ये है आज के हिंदू। फिरा बहार आकर पंडित ने कहा कि दूसरों के सामने आपका पूछना उचित न था। अब में बताता हूं। यह गुप्त चीज है। और तब फिर उसने जुंग के कान में कहा ये हमारे गुप्तांग है।

जुंग जब यहां से वापस गया तो वहां वह एक महान विद्वान से मिला। पूर्वीय चिंतन मिथक और दर्शन के विद्वान, हेनरिख जिमर से। जुंग ने यह किस्सा जिमर को सुनाया। जिमर उन थोड़े से मनीषियों में था जिन्होंने भारतीय चिंतन में डूबने की

चेष्टा की थी। और वह भारत का उसकी विचारणा का, जीवन के प्रति उसके अतार्किक रहस्यवादी दृष्टि वादी दृष्टिकोण का प्रेमी था। जब उसने जुंग से यह सूना तो वह हंसा और बोला, बदलाहट के लिए अच्छा है। मैंने बुद्ध, कृष्ण, महावीर जैसे महान भारतीयों के बारे में सुना है। तुम तो सुना रहे हो वह किसी महान भारतीय के संबंध में नहीं, भारतीयों के संबंध में कुछ कहता है।

शिव के लिए प्रेम महाद्वार है। और उनके लिए कामवासना निंदनीय नहीं है। उनके लिए काम बीज है और प्रेम उसका फूल है। और अगर तुम बीज की निंदा करते हो तो फूल की भी निंदा अपने आप हो जाती है। काम प्रेम बन सकता है। और अगर वह कभी प्रेम नहीं बनता है तो वह पंगु हो जाता है। पंगुता की निंदा करो, काम की नहीं। प्रेम को खिलना चाहिए। उसको प्रेम बनना चाहिए। और अगर यह नहीं होता है तो यह काम दोष नहीं है, यह दोष तुम्हारा है।

काम को काम नहीं रहना है। यहीं तंत्र की शिक्षा है। उसे प्रेम में रूपांतरित होना ही चाहिए। और प्रेम को भी प्रेम ही नहीं रहना है। उसे प्रकाश में , ध्यान के अनुभव में अंतिम, परम रहस्यवादी शिखर में रूपांतरित होना चाहिए। प्रेम को रूपांतरित कैसे किया जाए?

कृत्य हो जाओ और कर्ता को भूल जाओ। प्रेम करते हुए प्रेम, महज प्रेम हो जाओ। तब यह तुम्हारा प्रेम मेरा प्रेम या किसी अन्य का प्रेम नहीं है। तब यह मात्र प्रेम है, जब कि तुम नहीं हो, जब कि तुम परम स्त्रोत या धारा के हाथ में हो। तब कि तुम प्रेम में हो तुम प्रेम में नहीं हो, प्रेम न ही तुम्हें आत्मसात कर लिया है। तुम तो अंतर्धान हो गए हो। मात्र प्रवाहमान ऊर्जा बनकर रह गए हो।

इस यूग का एक महान सृजनात्मक मनीषी डी. एच. लॉरेंस, जाने अनजाने तत्र विद था। पश्चिम में वि पूरी तरह निंदित हुआ। उसकी किताबें जब्त हुई। उस पर अदालतों में अनेक मुकदमे चले, सिर्फ इसलिए कि उसने कहा कि काम ऊर्जा एक मात्र ऊर्जा है। और अगर तुम उसकी निंदा करते हो, दमन करते हो, तो तुम जगत के खिलाफ हो। और तब तुम कभी भी इस ऊर्जा की परम खिलावट को नहीं जान पाओगे। और दमित होने पर यह कुरूप हो जाती है। और यही दुस्चक्र है।

पुरोहित, नीतिवादी, तथाकथित धार्मिक लोग, पोप, शंकराचार्य, और दूसरे लोग काम की सतत निंदा करते है। वे कहते है कि यह एक कुरूप चीज है। और तुम इसका दमन करते होत तो यह सचमुच कुरूप हो जाती है। तब वे कहते है कि देखो, जो हम कहते थे वह सच निकला। तुमने ही इसे सिद्ध कर दिया। तुम जो भी कर रहे हो वह कुरूप है, और तुम जानते हो कि वह कुरूप है।

लेकिन काम स्वयं में कुरूप नहीं है। पुरोहितों ने उसे कुरूप कर दिया है। और जब वे इसे कुरूप कर चूकते है तब वे सही साबित होते है। ओर जब वे सही साबित होते है तो तुम उसे कुरूप से कुरूप तर किए देते हो। काम तो निर्दोष ऊर्जा है। तुम में प्रवाहित होता जीवन है, जीवंत अस्तित्व है। उसे पंगु मत बनाओ। उसे उसके शिखरों की यात्रा करने दो। उसका अर्थ है कि काम को प्रेम बनना चाहिए। फर्क क्या है?

जब तुम्हारा मन कामुक होता है तो तुम दूसरे का शोषण कर रहे हो। दूसरा मात्र एक यंत्र होता है। जिसे इस्तेमाल करके फेंक देना है। और जब काम प्रेम बनता है तब दूसरा यंत्र नहीं होता, दूसरे का शोषण नहीं किया जाता, दूसरा सच में दूसरा नहीं होता। तब तुम प्रेम करते हो तो यह स्व-केंद्रित नहीं है। उस हालत में तो दूसरा ही महत्वपूर्ण होता है। अनूठा होता है। तब तुम एक दूसरे का शोषण नहीं करते, तब दोनों एक गहरे अनुभव में सम्मिलित हो जाते हो। साझीदार हो जाते हो। तुम शोषक और शोषित न होकर एक दूसरे को प्रेम की और ही दुनिया में यात्रा करने में सहायता करते हो। काम शोषण है, प्रेम एक भिन्न जगत में यात्रा है।

अगर यह यात्रा क्षणिक न रहे, अगर यह यात्रा ध्यान पूर्ण हो जाए, अर्थात अगर तुम अपने को बिलकुल भूल जाओ और प्रेमी प्रेमिका विलीन हो जाएं और केवल प्रेम प्रवाहित होता रहे, तो शिव कहते है—''शाश्वत जीवन तुम्हारा है।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-7

तंत्र-सूत्र—विधि-11

शिथिल होने की दूसरी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि-11 विज्ञान भैरव तंत्र-ओशो

जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब।
यह बहुत सरल दिखता है। लेकिन उतना सरल है नहीं। मैं इसे फिर से पढ़ता हूं, '' जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वार बंद कर दो। तब।'' यक एक उदाहरण मात्र है। किसी भी चीज से काम चलेगा। इंद्रियों के द्वार बंद कर दो जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो। और तब—तब घटना घट जाएगी। शिव कह क्या रहे है?
तुम्हारे पाँव में कांटा गड़ा है। वह दर्द देता है, तुम तकलीफ में हो। या तुम्हारे पाँव पर एक चींटी रेंग रही है। तुम्हें उसका रेंगना महसूस होता है। और तुम अचानक उसे हटाना चाहते हो। किसी भी अनुभव को ले सकते है। तुम्हें धाव है जो दुखता है। तुम्हारे सिर में दर्द है, या कहीं शरीर में दर्द है। विषय के रूप में किसी से भी काम चलेगा। चींटी का रेंगना उदाहरण भर है।

शिव कहते है: ''जब चींटी के रेंगने की अनुभूति हो तो इंद्रियों के द्वारा बंद कर दो।''

जो भी अनुभव हो, इंद्रियों के सब द्वार बंद कर दो करना क्या है? आंखें बंद कर लो और सोचो कि मैं अंधा हूं और देख नहीं सकता। अपने कान बंद कर लो और सोचो कि मैं सुन नहीं सकता। पाँच इंद्रियाँ है, उन सब को बंद कर लो। लेकिन उन्हें बंद कैसे करोगे।

यह आसान नहीं है। क्षण भर के लिए श्वास लेना बंद कर दो, और तुम्हारी सब इंद्रियाँ बंद हो जायेगी। और जब श्वास रुकी है और इंद्रियाँ बंद है, तो रेंगना कहां है? चींटी कहां है? अचानक तुम दूर, बहुत दूर हो जाते हो।

मरे एक मित्र है, वृद्ध है। वे एक बार सीढ़ी से गिर पड़े। और डॉक्टरों ने कहा कि अब वे तीन महीनों तक खाट से नहीं हिल सकेंगे। तीन महीने विश्राम में रहना है। और वे बहुत अशांत व्यक्ति थे। पड़े रहना उनके लिए कठिन था। मैं उन्हें देखने गया। उन्होंने कहा कि मेरे लिए प्रार्थना करें और मुझे आशीष दें कि में मर जाऊं। क्योंकि तीन महीने पड़े रहना मौत से भी बदतर है। मैं पत्थर की तरह कैसे पडा रह सकता हूं। और सब कहते है कि हिलिए मत।

मैंने उनसे कहा, यह अच्छा मौका है। आंखें बंद करें और सोचें कि मैं पत्थर हूं, मूर्तिवत। अब आप हिल नहीं सकते। आखिर कैसे हिलेंगे। आँख बंद करें और पत्थर की मूर्ति हो जाएं। उन्होंने पूछा कि उससे क्या होगा। मैंने कहा की प्रयोग तो करें। मैं यहां बैठा हूं। और कुछ किया भी नहीं जा सकता। जैसे भी हो आपको तो यहां तीन महीने पड़े रहना है। इसलिए प्रयोग करें।

वैसे तो वे प्रयोग करने वाले जीव नहीं थे। लेकिन उनकी यह स्थिति ही इतनी असंभव थी कि उन्होंने कहा कि अच्छा मैं प्रयोग करूंगा। शायद कुछ हो। वैसे मुझे भरोसा नहीं आता कि सिर्फ यह सोचने से कि मैं पत्थरवत हूं, कुछ होने वाला है। लेकिन मैं प्रयोग करूंगा। और उन्होंने किया।

मुझे भी भरोसा नहीं था कि कुछ होने वाला है। क्योंकि वे आदमी ही ऐसे थे। लेकिन कभी-कभी जब तुम असंभव और निराश स्थिति में होते हो तो चीजें घटित होने लगती है। उन्होंने आंखें बंद कर ली। मैं सोचता था कि दो तीन मिनट में वे आंखे खोलेंगे। और कहेंगे कि कुछ नहीं हुआ। लेकिन उन्होंने आंखें नहीं खोली। तीस मिनट गुजर गए। और मैं देख सका कि वे पत्थर हो गए है। उनके माथे पर से सभी तनाव विलीन हो गए। उनका चेहरा बदल गया। मुझे कही और जाना था, लेकिन वे आंखे बंद किए पड़े थे। और वे इतने शांत थे मानो मर गए है। उनकी श्वास शांत हो चली थी। लेकिन क्योंकि मुझे जाना था, इसलिए मैंने उनसे कहा कि अब आंखे खोलें और बताएं कि क्या हुआ।

उन्होंने जब आंखे खोली तब वे एक दूसरे ही आदमी थे। उन्होंने कहा, यह तो चमत्कार है। आपने मेरे साथ क्या किया, मैंने कुछ भी नहीं किया। उन्होंने फिर कहा कि आपने जरूर कुछ किया, क्योंकि यह तो चमत्कार है। जब मैंने सोचना शुरू किया कि मैं पत्थर जैसा हूं तो अचानक यह भाव आया कि यदि मैं अपने हाथ हिलाना भी चाहता हूं तो उन्हें हिलाना भी असंभव है। मैंने कई बार अपनी आंखें खोलनी चाही, लेकिन वे पत्थर जैसी हो गई थी। और नहीं खुल पा रही थी। और उन्होंने कहा, मैं चिंतित भी होने लगा कि आप क्या कहेंगे, इतनी देर हुई जाती है, लेकिन मैं असमर्थ था। मैं तीस मिनट तक हिल नहीं सका। और जब सब गति बंद हो गई तो अचानक संसार विलीन हो गया। और मैं अकेला रह गया। अपने आप में गहरे चला गया। और उसके साथ दर्द भी जाता रहा।

उन्हें भारी दर्द था। रात को ट्रैंक्विलाइजर के बिना उन्हें नींद नहीं आती थी। और वैसा दर्द चला गया। मैंने उनसे पूछा कि जब दर्द विलीन हो रहा था तो उन्हें कैसा अनुभव हो रहा था। उन्होंने कहा कि पहले तो लगा कि दर्द है, पर कहीं दूर पर है, किसी और को हो रहा है। और धीरे-धीरे वह दूर और दूर होता गया। और फिर एक दम से ला पता हो गया। कोई दस मिनट तक दर्द नहीं था। पत्थर के शरीर को दर्द कैसे हो सकता है।

यह विधि कहती है: ''इंद्रियों के द्वारा बंद कर दो।''

पत्थर की तरह हो जाओ। जब तुम सच में संसार के लिए बंद हो जाते हो तो तुम अपने शरीर के प्रति भी बंद हो जाते हो। क्योंकि तुम्हारा शरीर तुम्हारा हिस्सा न होकर संसार का हिस्सा है। जब तुम संसार के प्रति बिलकुल बंद हो जाते हो तो अपने शरीर के प्रति भी बंद हो गए। और तब शिव कहते है, तब घटना घटेगी।

इसलिए शरीर के साथ इसका प्रयोग करो। किसी भी चीज से काम चल जाएगा। रेंगती चींटी ही जरूरी नहीं है। नहीं तो तुम सोचोगे कि जब चींटी रेंगेगी तो ध्यान करेंगे। और ऐसी सहायता करने वाली चींटियाँ आसानी से नहीं मिलती। इसलिए किसी

सी भी चलेगा। तुम अपने बिस्तर पर पड़े हो और ठंडी चादर महसूस हो रही है। उसी क्षण मृत हो जाओ। अचानक चादर दूर होने लगेगी। विलीन हो जाएगी। तुम बंद हो, मृत हो, पत्थर जैसे हो, जिसमे कोई भी रंध्र नहीं है, तुम हिल नहीं सकते।

और जब तुम हिल नहीं सकते तो तुम अपने पर फेंक दिये जाते हो। अपने में केंद्रित हो जाते हो। और तब पहली बार तुम अपने केंद्र से देख सकते हो। और एक बार जब अपने केंद्र से देख लिया तो फिर तुम वही व्यक्ति नहीं रह जाओगे जो थे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-7

तंत्र-सूत्र—विधि-12

शिथिल होने की तीसरी विधि:
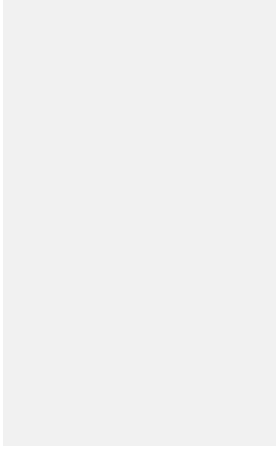
तंत्र-सूत्र—विधि-12 , विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो

जब किसी बिस्तर या आसमान पर हो तो अपने को वजनशून्य हो जाने दो—मन के पार।
तुम यहां बैठे हो; बस भाव करो कि तुम वजनशून्य हो गए हो। तुम्हारा वज़न न रहा। तुम्हें पहले लगेगा कि कहीं यहां वज़न है। वजनशून्य होने का भाव जारी रखो। वह आता है। एक क्षण आता है। जब तुम समझोगे कि तुम वज़न शून्य हो। वज़न नहीं है। और जब वज़न शून्य नहीं रहा तो तुम शरीर नहीं रहे। क्योंकि वज़न शरीर का है; तुम्हारा नहीं, तुम तो वज़न शून्य हो।
इस संबंध में बहुत प्रयोग किए गये है। कोई मरता है तो संसार भर में अनेक वैज्ञानिकों ने मरते हुए व्यक्ति का वज़न लेने की कोशिश की है। अगर कुछ फर्क हुआ, अगर कुछ चीज शरीर के बहार निकली है, कोई आत्मा या कुछ अब वहां नहीं है। क्योंकि विज्ञान के लिए कुछ भी बिना वज़न के नहीं है।

सब पदार्थ के लिए वज़न बुनियादी है। सूर्य की किरणों का भी वज़न है। वह अत्यंत कम है, न्यून है, उसको मापना भी कठिन है; लेकिन वैज्ञानिकों ने उसे भी मापा है। अगर तुम पाँच वर्ग मील के क्षेत्र पर फैली सब सूर्य किरणों को इकट्ठा कर सको तो उनका वज़न एक बाल के वज़न के बराबर होगा। सूर्य किरणों का भी वज़न है। वे तौली जा सकती है। विज्ञान के लिए कुछ भी वज़न के बिना नहीं है। और अगर कोई चीज वज़न के बिना है तो वह पदार्थ नहीं, उप पदार्थ। और विज्ञान पिछले बीस पच्चीस

वर्षो तक विश्वास करता था कि पदार्थ के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इसलिए जब कोई मरता है और कोई चीज शरीर से निकलती है तो वज़न में फर्क पड़ना चाहिए।

लेकिन यह फर्क कभी न पडा, वज़न वही का वही रहा। कभी-कभी थोड़ा बढ़ा ही है। और वह समस्या है। जिंदा आदमी का वज़न कम हुआ, मुर्दा का ज्यादा। उसमे उलझने बढ़ी, क्योंकि वैज्ञानिक तो यह पता लेने चले थे कि मरने पर वज़न घटता है। तभी तो वे कह सकते है कि कुछ चीज बाहर गई। लेकिन वहां तो लगता है। कि कुछ चीज अंदर ही आई। आखिर हुआ क्या।

वज़न पदार्थ का है, लेकिन तुम पदार्थ नहीं हो। अगर वजन शून्यता की हम विधि का प्रयोग करना है तो तुम्हें सोचना चाहिए। सोचना ही नहीं, भाव करना चाहिए कि तुम्हारा शरीर वजनशून्य हो गया है। अगर तुम भाव करते ही गए। भाव करते ही गए। तो तुम वजनशून्य हो, तो एक क्षण आता है कि तुम अचानक अनुभव करते हो कि तुम वज़न शुन्य हो गये। तुम वजनशून्य ही हो। इसलिए तुम किसी समय भी अनुभव कर सकते हो। सिर्फ एक स्थिति पैदा करनी है। जिसमें तुम फिर अनुभव करो कि तुम वजनशून्‍य हो। तुम्हें अपने को सम्मोहन मुक्‍त करना है।

तुम्हारा सम्मोहन क्या है? सम्मोह न यह है कि तुमने विश्वास किया है कि मैं शरीर हूं, और इसलिए वज़न अनुभव करते हो। अगर तुम फिर से भाव करों, विश्वास करो कि मैं शरीर नहीं हूं, तो तुम वज़न अनुभव नहीं करोगे। यही सम्मोहन मुक्ति है कि जब तुम वज़न अनुभव नहीं करते तो तुम मन के पार चले गए।

शिव कहते है: ''जब किसी बिस्‍तर या आसन पर हो तो अपने को वजनशून्‍य हो जाने दो—मन के पार।'' तब बात घटती है।

मन का भी वज़न है। प्रत्येक आदमी के मन का वज़न है। एक समय कहा जाता था कि जितना वज़नी मस्तिष्क हो उतना बुद्धिमान होता है। और आमतौर से यह बात सही है। लेकिन हमेशा सही नहीं है। क्योंकि कभी-कभी छोटे मस्तिष्क के भी महान व्यक्ति हुए है। और महा मूर्ख मस्तिष्क भी वज़नी होते है।

कुछ बातें। कभी-कभी मुर्दो का वज़न क्यों बढ़ जाता है। ज्यों ही चेतना शरीर को छोड़ती है कि शरीर असुरक्षित हो जाता है। बहुत सी चीजें उसमें प्रवेश कर जा सकती है। तुम्हारे कारण वे प्रवेश नहीं कर सकती है। एक शिव में उनके तरंगें प्रवेश कर सकती है। तुममें नहीं कर सकती है। तुम यहां थे, शरीर जीवित था। वह अनेक चीजों से बचाव कर सकता था। यही कारण है कि तुम एक बार बीमार पड़े कि यह एक लंबा सिलसिला हो जाता है। एक के बाद दूसरी बीमारी आती चली जाती है। एक बार बीमार होकर तुम असुरक्षित हो जाते हो। हमले के प्रति खुल जाते हो। प्रतिरोध जाता रहता है। तब कुछ भी प्रवेश कर सकता है। तुम्हारी उपस्थिति शरीर की रक्षा करती है। इसलिए कभी-कभी मृत शरीर का वज़न बढ़ सकता है। क्योंकि जिस क्षण तुम उससे हटते हो, उसमे कुछ भी प्रवेश कर सकता है।

दूसरी बात है कि जब तुम सुखी होते हो तो तुम वजनशून्‍य अनुभव करते हो। और दुःखी होते हो तो वज़न अनुभव करते हो। लगता है कि कुछ तुम्हें नीचे को खींच रहा है। तब गुरुत्वाकर्षण बहुत बढ़ जाता है। दुःख की हालत में वज़न बढ़ जाता है। जब तुम सुखी होते हो तो हलके होते हो, तुम ऐसा अनुभव करते हो। क्यों? क्योंकि जब तुम सुखी हो, जब तुम आनंद का क्षण अनुभव करते हो। तो तुम शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। और जब उदास होते हो, दुःखी होते हो तब, शरीर के अति निकट आ जाते हो। उसे भूल नहीं पाते। उससे जूड़ जाते हो। तब तुम भार अनुभव करते हो। ये भार तुम्हारा नहीं है, तुम्हारे शरीर से चिपकने का है, शरीर का है। वह तुम्हें नीचे की और खींच रहा है। जमीन की तरफ खींचता है, मानों तुम जमीन में गड़े जा रहे हो। सुख में तुम निर्भार होते हो। शोक में, विषाद में वज़नी हो जाते हो।

इसलिए गहरे ध्यान में, जब तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल जाते हो, तुम जमीन से ऊपर हवा में उठ सकते हो। तुम्हारे साथ तुम्हारा शरीर भी ऊपर उठ सकता है। कई बार ऐसा होता है।

बोलिविया में वैज्ञानिक एक स्त्री का निरीक्षण कर रहे है। ध्यान करते हुए वह जमीन से चार फीट ऊपर उठ जाती है। अब तो यह वैज्ञानिक निरीक्षण की बात है। उसके अनेक फोटो और फिल्म लिए जा चुके हे। हजारों दर्शकों के सामने वह स्त्री अचानक ऊपर उठ जाती है। उसके लिए गुरुत्वाकर्षण व्यर्थ हो जाता है। अब तक इस बात की सही व्याख्या नहीं की जा सकी है कि क्यों होता है। लेकिन वह स्त्री गैर-ध्यान की अवस्था में ऊपर नहीं उठ सकती। या अगर उसके ध्यान में बाधा हो जाए तो भी वह ऊपर से झट नीचे आ जाती है। क्या होता है?

ध्यान की गहराई में तुम अपने शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। तादात्म्य टूट जाता है। शरीर बहुत छोटी चीज है और तुम बहुत बड़े हो। तुम्हारी शक्ति अपरिसीम है। तुम्हारे मुकाबले में शरीर तो कुछ भी नहीं है। यह तो ऐसा ही है कि जैसे एक सम्राट ने अपने गुलाम के साथ तादात्म्य स्थापित कर लिया है। इसलिए जैसे गुलाम भीख मांगता है। वैसे ही सम्राट भी भीख मांगता है। जैसे गुलाम रोता है। वैसे ही सम्राट भी रोता है। और जब गुलाम कहता है कि मैं ना कुछ हूं तो सम्राट भी कहता है। मैं ना कुछ हूं लेकिन एक बार सम्राट अपने अस्तित्व को पहचान ले, पहचान ले कि वह सम्राट है और गुलाम बस गुलाम है, से कुछ बदल जाएगा। अचानक बदल जाएगा।

तुम वह अपरिसीम शक्ति हो जो क्षुद्र शरीर से एकात्म हो गई है। एक बार यह पहचान हो जाए, तुम अपने स्व को जान लो, तो तुम्हारी वजन शून्यता बढ़ेगी। और शरीर का वज़न घटेगा। तब तुम हवा मैं उठ सकते हो, शरीर ऊपर जा सकता है।

ऐसी अनेक घटनाएं है जो अभी साबित नहीं की जा सकती। लेकिन वे साबित होंगी। क्योंकि जब एक स्त्री चार फीट ऊपर उठ सकती है। तो फिर बाधा नहीं। दूसरा हजार फीट ऊपर उठ सकता है। तीसरा अनंत अंतरिक्ष में पूरी तरह जा सकता है। सैद्धांतिक रूप से यह काई समस्या नहीं है। चार फीट ऊपर उठे कि चार सौ फीट कि चार हजार फीट, इससे क्या फर्क पड़ता है।

राम तथा कई अन्य के बारे में कथाएं है कि वे शरीर विलीन हो गए थे। अनेक मृत शरीर इस धरती पर कहीं नहीं पाए गए। मोहम्मद बिलकुल विलीन हो गए थे। शरीर ही नहीं आपने घोड़ के साथ। वे कहानियां असंभव मालूम पड़ती है। पौराणिक मालूम पड़ती है। लेकिन जरूरी नहीं है कि वे मिथक ही हों। एक बार तुम वज़न शून्य शक्ति को जान जाओ। तो तुम गुरुत्वाकर्षण के मालिक हो गए। तुम उसका उपयोग भी कर सकते हो, यह तुम पर निर्भर करता हे। तुम सशरीर अंतरिक्ष में विलीन हो सकत हो।

लेकिन हमारे लिए वज़न शून्यता समस्या रहेगी। सिद्घासन की विधि है। जिस में बुद्ध बैठते है, वजनशून्य होने की सर्वोतम विधि है। जमीन पर बैठो, किसी कुर्सी या अन्य आसन पर नहीं। मात्र जमीन पर बैठो। अच्छा हो कि उस पर सीमेंट या कोई कृत्रिमता नहीं हो। जमीन पर बैठो कि तुम प्रकृति के निकटतम रहो। और अच्छा हो कि तुम नंगे बैठो। जमीन पर नंगे बैठो—बुद्धासन में, सिद्घासन में।

वज़न शून्य होने के लिए सिद्घासन सर्वश्रेष्ठ आसन है। क्यों? क्योंकि जब तुम्हारा शरीर इधर-उधर झुका होता है तो तुम ज्यादा वज़न अनुभव करते हो। तब तुम्हारे शरीर को गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होने के लिए ज्यादा क्षेत्र है। यदि मैं इस कुर्सी पर बैठा हूं तो मेरे शरीर का बड़ा क्षेत्र गुरुत्वाकर्षण से प्रभावित होता है। जब तुम खड़े हो तो प्रभावित क्षेत्र कम हो जाता है। लेकिन बहुत देर तक खड़ा नहीं रहा जा सकता है। महावीर सदा खड़े-खड़े ध्यान करते थे, क्योंकि उस हालत में गुरुत्वाकर्षण का न्यूनतम क्षेत्र घेरता है। तुम्हारे पैर भर जमीन को छूते है। जब पाँव पर खड़े हो तो गुरुत्वाकर्षण तुम पर न्यूनतम प्रभाव करता है। और गुरुत्वाकर्षण की वज़न है।

पाँवों और हाथों को बांधकर सिद्घासन में बैठना ज्यादा कारगर होता है। क्योंकि तब तुम्हारी आंतरिक विद्युत एक वर्तुल बन जाती है। रीढ़ सीधी रखो। अब तुम समझ सकते हो कि सीधी रीढ़ रखने पर इतना जोर क्या दिया जाता है। क्योंकि सीधी रीढ़ से कम से कम जगह घेरी जाती है। तब गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव कम रहता है। आंखे बंद रखते हुए अपने को पूरी तरह

संतुलित कर लो, अपने को केंद्रित कर लो। पहले दाईं और झुककर गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो। फिर बाईं और झुककर गुरुत्वाकर्षण का अनुभव करो। तब उस केंद्र को खोजों जहां गुरुत्वाकर्षण या वज़न कम से कम अनुभव होता है। और उस स्थिति में थिर हो जाओ।

और तब शरीर को भूल जाओ और भाव करो कि तुम वज़न नहीं हो। तुम वज़न शून्य हो। फिर इस वज़न शून्यता का अनुभव करते रहो। अचानक तुम वज़न शून्य हो जाते हो। अचानक तुम शरीर नहीं रह जाते हो, अचानक तुम शरीर शून्यता के एक दूसरे ही संसार में होते हो।

वज़न शून्यता शरीर शून्यता है। तब तुम मन का भी अतिक्रमण कर जाते हो। मन भी शरीर का हिस्सा है, पदार्थ का हिस्सा है। पदार्थ का वज़न होता है। तुम्हारा कोई वज़न नहीं है। इस विधि का यही आधार है।

किसी भी एक विधि को प्रयोग में लाओ। लेकिन कुछ दिनों तक उसमे लगे रहो। ताकि तुम्हें पता हो क वह तुम्हारे लिए कारगर है या नहीं।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-7

तंत्र-सूत्र—विधि-13

''या कल्पना करो कि मयूर पूंछ के पंचरंगे वर्तुल निस्सीम अंतरिक्ष में तुम्हारी पाँच इंद्रियाँ है।

SHIVA विज्ञान भैरव तंत्र (तंत्र-सूत्र—विधि-13 ओशो

अब उनके सौंदर्य को भीतर ही घुलने दो। उसी प्रकार शून्य में या दीवार पर किसी बिंदु के साथ कल्पना करो, जब तक कि वह बिंदु विलीन न हो जाए। तब दूसरे के लिए तुम्हारी कामना सच हो जाती है।''

ये सारे सूत्र, भीतर के केंद्र को कैसे पाया जाए, उससे संबंधित है। उसके लिए जो बुनियादी तरकीब, जो बुनियादी विधि काम में लायी गयी है, वह यह है कि तुम अगर बाहर कहीं भी, मन में, ह्रदय में या बाहर की किसी दीवार में एक केंद्र बना सके और उस पर समग्रता से अपने अवधान को केंद्रित कर सके और उस बीच समूचे संसारा को भूल सके और एक वहीं बिंदू तुम्हारी चेतना में रह जाए। तो तुम अचानक अपने आंतरिक केंद्र पर फेंक दिए जाओगे। यह कैसे काम करता है, इसे समझो। तुम्हारा मन एक भगोड़ा है, एक भाग दौड़ ही है। वह कभी एक बिंदु पर नहीं टिकता है। वह निरंतर कहीं जा रहा है। गति कर रहा है। पहूंच रहा है। लेकिन वह कभी एक बिंदू पर नहीं टिकता है। वह एक विचार से दूसरे विचार की और, अ से ब की और यात्रा करता रहता है। लेकिन कभी वह अ पर नहीं टिकता है, कभी वह ब पर नहीं टिकता है। वह निरंतर गतिमान है।
यह याद रहे कि मन सदा चलायमान है। वह कहीं पहुंचने की आशा तो करता है, लेकिन कहीं पहुंचता नहीं है। वह पहुंच नहीं सकता। मन की संरचना ही गीतिमय है। मन केवल गति करता है। वह मन का अंतर्भूत स्वभाव है। गति ही उसकी प्रक्रिया है। अ से ब को, ब से अ को, वह चलता ही जाता है।

अगर तुम अ या ब या किसी बिंदु पर ठहर गए, तो मन तुमसे संघर्ष करेगा। वह कहेगा कि आगे चलो। क्योंकि अगर तुम रूक गए, मन तुरंत मर जायेगा। वह गति में रहकर ही जीता है। मन का अर्थ ही प्रक्रिया है। अगर तुमने गति नहीं की तुम रूक गये तो मन अचानक समाप्त हो जायेगा। वह नहीं बचेगा। केवल चेतना बचेगी।

चेतना तुम्हारी स्वभाव है। मन तुम्हारा कर्म है। चलने जैसा। इसे समझना कठिन है। क्योंकि हम समझते है कि मन कोई ठोस वास्तविक वस्तु है। वह नहीं है। मन महज एक क्रिया है। यह कहना बेहतर होगा कि यह मन नहीं, मनन है। चलने की तरह यह एक प्रक्रिया है। चलना प्रक्रिया है; अगर तुम रूक जाओ, तो चलना समाप्त हो जायेगा। तुम तब नहीं कह सकते कि चलना बैठना है। तुम रूक जाओ, तो चलना समाप्त है। तुम रूक जाओ तो चलना कहां है। चलना बंद। पैर है, पर चलना नहीं है। पैर चल सकते है। लेकिन अगर तुम रूक जाओ तो, चलना नहीं होगा।

चेतना पैर जैसी है, वह तुम्हारा स्वभाव है। मन चलने जैसा है, वह एक प्रक्रिया है। जब चेतना एक जगह से दूसरी जगह जाती है तब वह प्रक्रिया मन है। जब चेतना अ से ब और ब से स को जाती है तब यह गति मन है। अगर तुम गति को बंद कर दो, तो मन नहीं रहेगा। तुम चेतन हो, लेकिन मन नहीं है। जैसे पैर तो है, लेकिन चलना नहीं है। चलना क्रिया है। कर्म है; मन भी क्रिया है, कर्म है।

अगर तुम कहीं रूक जाओ तो मन संघर्ष करेगा, मन कहेगा, बढ़े चलो। मन हर तरह से तुम्हें आगे या पीछे या कहीं भी धकाने की चेष्टा करेगा। कहीं भी सही, लेकिन चलते रहो। अगर तुम जीद्द करो, अगर तुम मन की नहीं मानना चाहों, तो वह कठिन होगा। कठिन होगा, क्योंकि तुमने सदा मन का हुक्म माना है। तुमने कभी मन पर हुक्म नहीं किया है। तुम कभी उसके मालिक नहीं रहे हो। तुम हो नहीं सकते, क्योंकि तुमने कभी अपने को मन से तादात्म्य रहित नहीं किया है। तुम सोचते हो कि तुम मन ही हो। यह भूल कि तुम मन ही हो मन को पूरी स्वतंत्रता दिए देती है। क्योंकि तब उस पर मलकियत करने वाला, उसे नियंत्रण में रखने वाला कोई न रहा। तब कोई रहा ही नहीं, मन ही मालिक रह जाता है।

लेकिन मन की यह मलकियत तथाकथित है। वह स्वामित्व झूठा है। एक बार प्रयोग करो और तुम उसके स्वामित्व को नष्ट कर सकते हो। वह झूठा है। मन महज गुलाम है जो मालिक होने का दावा करता है। लेकिन उसकी यह दावेदारी इतनी पुरानी है, इतने जन्मों से है कि वह अपने को मालिक मानने लगा है। गुलाम मालिक हो गया है। वह एक महज विश्वास है, धारणा है। तुम उसके विपरीत प्रयोग करके देखो और तुम्हें पता चलेगा। कि यह धारणा सर्वथा निराधार थी।

यह पहला सूत्र कहता है: ''या कल्पना करो कि मोर की पूंछ के पंचरंगे वर्तुल निस्सीम अंतरिक्ष में तुम्हारी पाँच इंद्रियाँ है। अब उनके सौंदर्य को भीतर ही घुलने दो।''

भाव करो की तुम्हारी पाँच इंद्रियाँ पाँच रंग है। और वे पाँच रंग समस्त अंतरिक्ष को भर रहे है। सिर्फ कल्पना करो कि तुम्हारी पंचेंद्रियां पाँच रंग है। सुंदर-सुंदर रंग। सजीव रंग और वे अनंत आकाश में फैले है। और तब उन रंगों के बीच भ्रमण करो, उनके बीच गति करो और भाव करो कि तुम्हारे भीतर एक केंद्र है, जहां ये रंग मिलते है। यह मात्र कल्पना है, लेकिन यह सहयोगी है। भाव करो कि ये पांचों रंग तुम्हारे भीतर प्रवेश कर रहे है और किसी बिंदु पर मिल रहे है।

ये पाँच रंग सच ही किसी बिंदु पर मिलेंगे और सारा जगत विलीन हो जाएगा। तुम्हारी कल्पना में पाँच ही रंग है। और तुम्हारी कल्पना के रंग आकाश को भर देंगे। तुम्हारे भीतर गहरे उतर जाएंगे, किसी बिंदु पर मिल जाएंगे।

किसी भी बिंदु से काम चलेगा। लेकिन हारा बेहतर रहेगा। भाव करो कि सारा जगत रंग ही रंग हो गया है। और वे रंग तुम्हारे नाभि केंद्र पर, तुम्हारे हारा केंद्र-बिंदु पर मिल रहे है। उस बिंदु को देखो, उस बिंदु पर अवधान को एकाग्र करो और तब एकाग्र करो तब ति वह बिंदु विलीन न हो जाए। वह विलीन हो जाता है। क्योंकि वह भी कल्पना है। याद रहे कि जो कुछ भी हमने किया है सब कल्पना है। अगर तुम उस पर एकाग्र होओ, तो तुम अपने केंद्र पर स्थिर हो जाओगे। तब संसार विलीन हो जायेगा। तुम्हारे लिए संसार नहीं रहेगा।

इस ध्यान में केवल रंग है। तुम समूचे संसार को भूल गये हो। तुम सारे विषयों को भूल गए हो। तुमने केवल पाँच रंग चुने है। कोई पाँच रंग चून जो। ये ध्यान उन लोगों के लिए है जिनकी दृष्टि पैनी है, जिनकी रंग की संवेदना गहरी है। यह सबके लिए नहीं है। ये उन्हें लोगों के लिए सहयोगी है, जिसके पास चित्रकार की नजर हो। यदि तुम्हें हरे रंग एक हजार हरे नजर नहीं आते तो तुम भूल जाओ इस ध्यान को और आगे बढ़ो। ये काम उनके काम का है, जो चित्रकार की पैन निगाह रखते है।

और जो आदमी रंग के प्रति संवेदनशील है उसको तुम कहो कि समूचे आकाश को रंग से भरा होने की कल्पना करो, तो वह यह कल्पना नहीं कर पाएगा। वह यदि कल्पना करने की कोशिश भी करेगा। वह लाल रंग की सोचेगा। तो लाल शब्द को देखेगा, लेकिन उसे कल्पना में लाल रंग दिखाई नहीं पड़ेगा। वह हरा शब्द तो कहेगा। शब्द भी वहां होगा, लेकिन हरियाली वहां नहीं होगी।

तो तुम अगर रंग के प्रति संवेदनशील हो, तो इस विधि का प्रयोग करो। पाँच रंग है। समूचा जगत पाँच रंग है। और वे रंग तुममें मिल रहे है। तुम्हारे भीतर कही गहरे में वे पांचों रंग मिल रहे है। उस बिंदु पर चित को एकाग्र करो और एकाग्र करो। उससे हटो नहीं, उस पर डटे रहो। मन को मत आने दो। रंगों के संबंध में हरे। लाल और पीले रंगों के बारे में विचार मत करो। सोचो। ही मत। बस, उन्हें अपने भीतर मिलते हुए देखो उनके बारे में विचार मत करो। अगर तुम विचार किया, तो मन प्रवेश कर गया। सिर्फ रंगों के भर जाओ। उन रंगों को अपने भीतर मिलने दो और तब उस मिलन बिंदु पर अवधान को केंद्रित करो। सोचो मत। एकाग्रता सोचना नहीं है। विचारणा नहीं है। मनन नहीं है।

तुम अगर सचमुच रंगों से भर जाओ और तुम एक इंद्रधनुष एक मोर ही बन जाओ और तुम्हारा आकाश रंगमय हो जाए, तो उसमें तुम्हें एक सौंदर्य-बोध होगा। गहरा, गहरा सौंदर्य बोध। लेकिन उसके संबंध में विचार मत करो। यह मत कहो कि यह सुंदर है। विचारणा में मत चले जाओ। उस बिंदु पर एकाग्र होओ जहां, ये रंग मिल रहे है। और एकाग्रता। को बढ़ाते जाओ, गहराते हो, तो कल्पना नहीं टिक सकती। वह विलीन हो जाएगी।

संसार पहले ही विलीन हो चुका है। सिर्फ रंग रह गए थे। वे रंग तुम्हारी कल्पना थे और वे काल्पनिक रंग एक बिंदु पर मिल रहे है। वह बिंदु भी काल्पनिक था। अब गहरी एकाग्रता से वह बिंदु भी विलीन हो जाएगा। अब तुम कहां रहोगे। अब तुम कहां हो। तुम अपने केंद्र में स्थित हो जाओगे।

इस लिए सूत्र कहता है: ‘’शून्य में या दीवार में किसी बिंदू पर.......।

यह सहयोगी होगा। अगर तुम रंगों की कल्पना नहीं कर सकते, तो दीवार पर किसी बिंदु से काम चलेगा। काई भी चीज एकाग्रता के विषय के रूप में ले लो। अगर वह आंतरिक हो, अंतस का हो तो बेहतर।

लेकिन फिर दो तरह के व्यक्तितत्व होते है। जो लोग अंतर्मुखी है उनके लिए उनके भीतर ही सब रंगों के मिलने की धारण आसान है। लेकिन जो बहिर्मुखी लोग है वे भीतर की धारणा नहीं बना सकते। वे बाहर की ही कल्पना कर सकते है। उनकी चित बाहर ही यात्रा करता है। वे भीतर नहीं गति कर सकते उनके भीतर कोई आंतरिकता नहीं है।

अंग्रेज दार्शनिक डेविड ह्मूम ने कहा है, जब भी मैं भीतर जाता हूं वहां मुझे कोई आत्मा नहीं मिलती। जो भी मिलता है वह बाहर के प्रतिबिंब है—कोई विचार, कोई भाव। कभी किसी आंतरिकता का दर्शन नहीं होता। सदा बाहरी जगत ही वहां प्रतिबिंबित मिलता है। यह श्रेष्ठतम बहिर्मुखी चित है। और डेविड ह्मूम सर्वाधिक बहिर्मुखी चित वालों से एक है।

इसलिए अगर तुम्हें भी तर कुछ धारणा के लिए न मिले और तुम्हारा मन पूछे कि यह आंतरिकता क्या है। तो अच्छा है कि दीवार पर किसी बिंदु का प्रयोग करो।

लोग मेरे पास आते है और पूछते है कि भीतर कैसे जाया जाए। उनके लिए यह समस्या है। क्योंकि अगर तुम बहिर्गामिता ही जानते हो, तुम्हें अगर बाहर-बाहर गति करना ही आता है। तो तुम्हारे लिए भीतर जाना कठिन होगा। और अगर तुम बहिर्मुखी हो, तो भीतर इस बिंदु का प्रयोग मत करो। उसे बाहर करो। नतीजा वही होगा। दीवार पर एक बिंदु बनाओ और उस पर चित को एकाग्र करो। लेकिन तब खुली आँख से एकाग्रता साधनी होगी। अगर तुम भीतर केंद्र बनाते हो, तो बंद आँखो से एकाग्रता साधनी है।

दीवार पर बिंदु बनाओ और उस पर एकाग्र होओ। असली बात एकाग्रता के कारण घटती है। बिंदु के कारण नहीं। बाहर है या भीतर यक प्रासंगिक नहीं है। यह तुम पर निर्भर है। अगर दीवार पर देख रहे हो, एकाग्र हो रहे हो, तो तब तक एकाग्रता साधो जब तक वह बिंदु विलीन न हो जाए।

इस बात को ख्याल में रख लो: जब तक बिंदु विलीन न हो जाए।''

पलकों को बंद मत करो। क्योंकि उससे मन को फिर गति करने के लिए जगह मिल जाती है। इसलिए अपलक देखते रहो। क्योंकि पलक के गिरने से मन विचार में संलग्न हो जाता है। पलक के गिराने से अंतराल पैदा होता है। और एकाग्रता नष्ट हो जाती है। इसलिए पलक झपकना नहीं है।

तुमने बोधिधर्म के विषय में सुना होगा। मनुष्य के पूरे इतिहास में जो बड़े ध्यानी हुए है वह उनमें से एक था। उसके संबंध में एक प्रीतिकर कथा कही जाती है। वह बाहर की किसी वस्तु पर ध्यान कर रहा था। उसकी आंखें झपक जाती थी। और ध्यान टूट-टूट जाता था। तो उसने अपनी पलकों को उखाड़कर फेंक दिया। बहुत सुंदर कथा है कि उसने अपनी पलकों को उखाड़कर फेंक दिया और फिर ध्यान करना शुरू किया। कुछ हफ्तों के बाद उसने देखा कि जहां उसकी पलकें गिरी थी उस स्थान पर कोई पौधे उग आए थे।

यह घटना चीन के एक पहाड़ पर घटित हुई थी। उस पहाड़ का नाम टा था। इसलिए जो पौधे वहां उग आए थे उनका नाम टी पडा। और यही कारण है कि चाय जागरण में सहयोगी होती है। इसलिए जब तुम्हारी पलकें झपकने लगें और तुम नींद में उतरने लगो, तो एक प्याली चाय पी लो। वे बोधिधर्म की पलकें है। इसी वजह से झेन संत चाय को पवित्र मानते है। चाय कोई मामूली चीज नहीं है। वह पवित्र है, बोधिधर्म की आँख की पलक है।

जापान में तो वे चायोत्सव करते है। प्रत्येक परिवार में एक चायघर होता है। जहां धार्मिक अनुष्ठान के साथ चाय पी जाती है। यह पवित्र है। और बहुत ही ध्यान पूर्ण मुद्रा में चाय पी जाती है। जापान ने चाय के इर्द-गिर्द बड़े सुंदर अनुष्ठान निर्मित किये है। वे चाय घर में ऐसे प्रवेश करते है जैसे वे किसी मंदिर में प्रवेश करते हो। तब चाय तैयार की जाएगी। और हरेक व्यक्ति मौन होकर बैठेगा। और समोवार के उबलते स्वर को सुनेगा। उबलती चाय का, उसके वाष्प का गीत सब सुनेंगे। वह कोई अदना वस्तु नहीं है। बोधिधर्म की आँख की पलक है। और चूंकि बोधिधर्म खुली आंखों से जागने की कोशिश में लगा था। इसलिए चाय सहयोगी है। और चूंकि यह कथा टा पर्वत पर घटित हुई इसलिए वह टी कहलाती है।

सच हो या न हो, यह कहानी सुंदर है। अगर तुम बाहर एकाग्रता साध रहे हो, तो अपलक देखना जरूरी है। समझो कि तुम्हारे पलकें नहीं है। पलकों को उखाड़ फेंकने का यही अर्थ है। तुम्हें आंखें तो है, लेकिन उनके ऊपर झपकने को पलकें नहीं है। और तब एकाग्रता साधो जब तक बिंदु विलीन नहीं हो जाता।

बिंदु विलीन हो जाता है। अगर तुम लगे रहे, अगर तुमने संकल्प के साथ मन को चलायमान नहीं होने दिया। तो बिंदु विलीन हो जाता है। अगर तुम उस बिंदु पर एकाग्र थे और तुम्हारे लिए संसार में इस बिंदु के अलावा कुछ भी नहीं था। अगर सारा संसार पहले ही विलीन हो चुका था और वहीं बिंदु बचा था और यह बिंदु भी विदा हो गया। तो अब चेतना कहीं और गति नहीं कर सकती। उसके लिए जाने को कहीं न रहा; सारे आयाम बंद हो गए। अब चित अपने ऊपर फेंक दिया जाता है। अब चेतना अपने आप में लौट आती है। और तब तुम केंद्र में प्रविष्ट हो गए।

तो चाहे भीतर हो या बाहर, तब तक एकाग्रता साधो जब तक बिंदु विसर्जित नहीं होता। यह बिंदु दो कारणों से विसर्जित होगा। अगर वह भीतर है, तो काल्पनिक है और इसलिए विलीन हो जाएगा। और अगर यह बाहर है, तो वह काल्पनिक नहीं असली है। तुमने दीवार पर बिंदु बनाया है और उस पर अवधान को एकाग्र किया है। तो यह बिंदु क्यों विलीन होगा। भीतर के बिंदु का विलीन होना तो समझा जा सकता है। क्योंकि वह वहां था नहीं। तुमने उसे कल्पित कर लिया था। लेकिन दीवार पर तो वह है। वह क्यों विलीन होगा।

वह एक विशेष कारण से विलीन होता है। अगर तुम किसी बिंदु पर चित को एकाग्र करते हो, तो यथार्थ में वह बिंदु विसर्जित नहीं होता है। तुम्हारा मन ही विसर्जित होता है। अगर तुम किसी बह्म बिंदु पर एकाग्र हो रहे हो, तो मन की गति बंद हो जाती है। और मन गति के बिना जी नहीं सकता। वह रूक जाता है। वह मर जाता है। और जब मन रूक जाता है। तुम बाहर की किसी भी चीज के साथ संबंधित नहीं हो सकते हो। तब अचानक सभी सेतु टूट जाते है, क्योंकि मन ही तो सेतु है।

जब तुम दीवार पर, किसी बिंदु पर मन को एकाग्र कर रहे हो, तो तुम्हारा मन क्या करता है। वह निरंतर तुमसे बिंदु तक और बिंदु से तुम तक उछलकूद करता रहता है। एक सतत उछलकूद की प्रक्रिया चलती है। जब मन विचलित होता है, तो तुम बिंदु को नहीं देख सकते। क्योंकि तुम यथार्थ आँख में से नहीं मन से और आँख से बिंदु को देखते हो। अगर मन वहां न रहे, तो आंखें काम नहीं कर सकती। तुम दीवार को घूरते रह सकते हो। लेकिन बिंदु नहीं दिखाई पड़ेगा। क्योंकि मन न रहा, सेतु टूट गया। बिंदु तो सच है, वह है। इसलिए जब मन लौट आएगा। तो फिर उसे देख सकोगे। लेकिन अभी नहीं देख सकते, अभी तुम बाहर गति नहीं कर सकते। अचानक तुम अपने केंद्र पर हो।

यह केंद्रस्थता तुम्हें तुम्हारे अस्तित्वगत आधार के प्रति जागरूक बना देगी। तब तुम जानोंगे कि कहां से तुम अस्तित्व के साथ संयुक्त हो, जुड़े हो। तुम्हारे भीतर ही वह बिंदु है जो समस्त अस्तित्व के साथ जुड़ा हुआ है। जो उसके साथ एक है। और जब एक बार इस केंद्र को जान गए। तो तुम घर आ गए। तब यह संसार परदेश नहीं रहा। और तुम परदेशी नहीं रहे। तब जान गए। तो तुम घर आ गए। तब तुम संसार के हो गए। तब किसी संघर्ष की, किसी लड़ाई की जरूरत नहीं रही। तब तुम्हारे और अस्तित्व के बीच शत्रुता न रही, अस्तित्व तुम्हारी मां हो गई।

यह अस्तित्व ही है जो तुम्हारे भीतर प्रविष्ट हुआ और बोधपूर्ण हुआ है। यह अस्तित्व ही है जो तुम्हारे भीतर प्रस्फुटित हुआ है। यह अनुभूति, यह प्रतीति, यह घटना और फिर दुःख नहीं रहेगा। तब आनंद कोई घटना नहीं है—ऐसी घटना, जो आती है। और चली जाती है। तब आनंद तुम्हारा स्वभाव है। जब कोई अपने केंद्र में स्थित होता है। तो आनंद स्वाभाविक है। तब कोई आनंदपूर्ण हो जाता है।

फिर धीरे-धीरे उसे यह बोध भी जाता रहता है कि वह आनंदपूर्ण है। क्योंकि बोध के लिए विपरीत का होना जरूरी है। अगर तुम दुःखी हो, तो आनंदित होने पर तुम्हें आनंद की अनुभूति होगी। लेकिन जब दुःख नहीं है। तो धीरे-धीरे तुम दुःख को पूरी तरह भूल जाते हो। और तब तुम अपने आनंद को भी भूल जाते हो। और जब तुम अपने आनंद को भी भूलते हो तभी तुम सच में आनंदित हो। तब वह स्वाभाविक है। जैसे तारे चमकते है, नदिया बहती है। वैसे ही तुम आनंदपूर्ण हो। तुम्हारा होना ही आनंदमय है। तब यह कोई घटना नहीं है। तब तुम ही आनंद हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-14

दूसरे सूत्र के साथ भी यही तरकीब, वही वैज्ञानिक आधार, यही प्रक्रिया काम करती है:
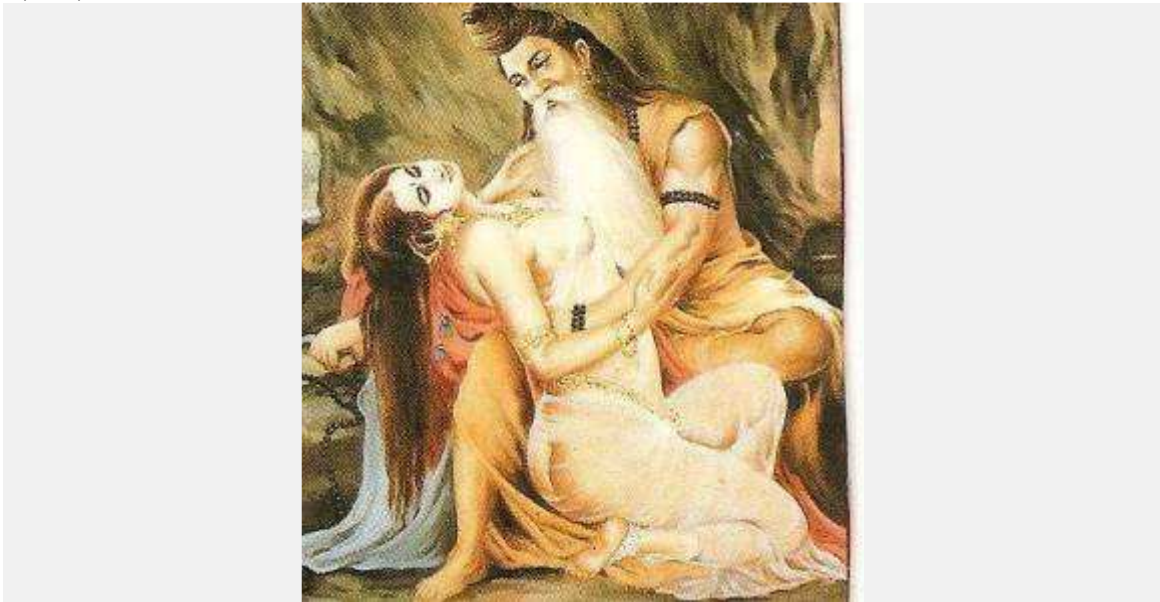
ShivaParvati तंत्र-सूत्र—विधि-14 (विज्ञान भैरव तंत्र; ओशो

अपने पूरे अवधान को अपने मेरुदंड के मध्य में कमल-तंतु सी कोमल स्नायु में स्थित करो। और इसमे रूपांतरित हो जाओ।
इस सूत्र के लिए, ध्यान की इस विधि के लिए तुम्हें अपनी आंखे बंद कर लेनी चाहिए। और अपने मेरुदंड को, अपनी रीढ़ की हड्डी को देखना चाहिए, देखने का भाव करना चाहिए। अच्छा हो कि किसी शरीर शास्त्र की पुस्तक में या किसी चिकित्सालय या मेडिकल कालेज में जाकर शरीर की संरचना को देखो-समझ लो, तब आंखे बंद करो और मेरुदंड पर

अवधान लगाओ। उसे भीतर की आँखो से देखो और ठीक उसके मध्य से जाते हुए कमल तंतु जैसे कोमल स्नायु का भाव करो।
''और इसमे रूपांतरित हो जाओ।''

अगर संभव हो तो इस मेरुदंड पर अवधान को एकाग्र करो और तब भीतर से, मध्य से जाते हुए कमल तंतु जैसे स्नायु पर एकाग्र होओ। और यही एकाग्रता तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर आरूढ़ कर देगी। क्यों?

मेरुदंड तुम्हारी समूची शरीर-संरचना का आधार है। सब कुछ उससे संयुक्त है, जुड़ा हुआ है। सच तो यह है कि तुम्हारा मस्तिष्क इसी मेरुदंड का एक छोर है। शरीर शास्त्री कहते है कि मस्तिष्क मेरुदंड का ही विस्तार है। तुम्हारा मस्तिष्क मेरुदंड को विकास है। और तुम्हारी रीढ़ तुम्हारे सारे शरीर से संबंधित है, सब कुछ उससे संबंधित है। यही कारण है कि उसे रीढ़ कहते है। आधार कहते है।

इस रीढ़ के अंदर एक तंतु जैसी चीज है। लेकिन शरीर शास्त्री इसके संबंध में कुछ नहीं कह सकते। यह इसलिए कि यह पौदगलिक नहीं है। इस मेरुदंड में, इसके ठीक मध्य में एक रजत-रज्जु है, एक बहुत कोमल नाजुम स्नायु है। शारीरिक अर्थ में वह स्नायु भी नहीं है। तुम उसे काट-पीट कर नहीं निकाल सकते। वह वहां नहीं मिलेगा। लेकिन गहरे ध्यान में वह देखा जाता है। यह है, लेकिन वह अपदार्थ है, अवस्तु है। वह पदार्थ नहीं, उर्जा है। और यथार्थत: तुम्हारे मेरुदंड की वही ऊर्जा-रज्जु तुम्हारा जीवन है। उसके द्वारा ही तुम अदृश्य अस्तित्व के साथ संबंधित हो। वही दृश्य और अदृश्य के बीच सेतु है। उस तंतु के द्वारा ही तुम अपने शरीर से संबंधित हो, और उस तंतु के द्वारा ही तुम आत्मा से संबंधित हो।

तो पहल तो मेरुदंड की कल्पना करो, उसे मन की आंखों से देखो। और तुम्हें अद्भुत अनुभव होगा। अगर तुम मेरुदंड का मनोदर्शन करने की कोशिश करोगे, तो यह दर्शन बिलकुल संभव है। और अगर तुम निरंतर चेष्टा में लगे रहे, तो कल्पना में ही नहीं, यथार्थ में भी तुम अपने शरीर से संबंधित हो, और उस तंतु के द्वारा ही तुम आत्मा से संबंधित हो।

मैं एक साधक को इस विधि का प्रयोग करवा रहा था। मैंने उसे शरीर-संस्थान का एक चित्र देखने को दिया। ताकि वह उसके जरिए अपने भीतर के मेरुदंड को मन की आंखों से देखने में समर्थ हो सके। उसने प्रयोग शुरू किया और सप्ताह भर के अंदर आकर उसने मुझसे कहा, आश्चर्य की बात है कि मैने आपके दिए चित्र को देखने की कोशिश की, लेकिन अनेक बार वह चित्र मेरी आंखों के सामने से गायब हो गया और एक दूसरा मेरुदंड मुझे दिखाई दिया। यह मेरुदंड चित्र वाले मेरुदंड जैसा नहीं था। मैंने उस साधक को कहां की अब तुम सही रास्ते पर हो। अब चित्र को बिलकुल भूल जाओ। और उस मेरुदंड को देखा करो जो तुम्हारे लिए दृश्य हुआ है।

मनुष्य भीतर से अपने शरीर संस्थान को देख सकता है। हम इसको देखने की कोशिश नहीं करते। क्योंकि वह दृश्य डरावना है, वीभत्स है। जब तुम्हें तुम्हारे रक्त मांस और अस्थिपंजर दिखाई पड़ेंगे तो तुम भयभीत हो जाओगे। इसलिए हमने अपने मन को भीतर देखने से बिलकुल रोक रखा है। हम भी अपने शरीर को उसी तरह बहार से देखते है जैसे दूसरे लोग देखते है।

वह वैसा ही है जैसे तुम इस कमरे को इसके बहार जाकर देखो; तुम सिर्फ इसकी बहारी दीवारों को देखोगें। फिर तुम भीतर आ जाओ और देखो, तब तुम्हें भीतरी दीवारें दिखाई देंगी। तुम तो सिर्फ बाहर से अपने शरीर को इस तरह देखते हो जिस तरह कोई दूसरा आदमी उसे देखता हो। भीतर से तुमने अपने शरीर को नहीं देखा है। हम देख सकते है। लेकिन इस भय के कारण वह हमारे लिए आश्चर्य की चीज बना है।

भारतीय योग की पुस्तकें शरीर के संबंध में ऐसी बातें बताती है। जो नए वैज्ञानिक शोध से हूबहू सही है। लेकिन विज्ञान यह समझने में असमर्थ है कि योग को इनका पता कैसे चला। वह इन्हें कैसे जान सका। शल्य-चिकित्सा और मानव शरीर का

ज़ान बहुत हाल की घटनाएं है। इस हालत में योग इन सारी स्नायुओं को सभी केंद्रों को, शरीर के पूरी आंतरिक संस्थान को कैसे जान गया। जो अत्यंत हाल की खोज है। आश्चर्य कि वे उन्हें भी जानते थे, उन्होने उसकी चर्चा भी कि थी। उन पर काम भी किया था। योग को शरीर की बुनियादी और महत्वपूर्ण चीजों के विषय में सब कुछ मालूम रहा है। लेकिन योग चीर फाड़ नहीं करता था। फिर उसे उसकी इतनी सारी बातें कैसे मालूम हुई थी।

सच तो यह है कि शरीर को देखने जानने का एक दूसरा ही रास्ता है। वह उसे अंदर से देखना है। अगर तुम भीतर एकाग्र हो सको। तो तुम अचानक अंदरूनी शरीर को, उसके भीतर रेखा चित्र को देखने लगोगे।

यह विधि उन लोगो के लिए उपयोगी है जो शरीर से जुडे है। अगर तुम भौतिकवादी हो, अगर तुम सोचते हो कि तुम शरीर के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो, तो यह विधि तुम्हारे बहुत काम की होगी। अगर तुम चार्वाक या मार्क्स के मानने वाले हो, अगर तुम मानते हो कि मनुष्य शरीर के अलावा कुछ नहीं है, तो तुम्हें यह विधि बहुत सहयोगी होगी। तो तुम जाओ और मनुष्य के अस्थि संस्थान को देखो।

तंत्र या योग की पुरानी परंपराओं में वे अनेक तरह की हड्डियों का उपयोग करते थे। अभी भी तांत्रिक अपने पास कोई न कोई हड्डी या खोपड़ी रखता है। दरअसल वह भीतर से एकाग्रता साधने का उपाय है। पहले वह उस खोपड़ी पर एकाग्रता साधता है। फिर आंखें बंद करता है। और अपनी खोपड़ी का ध्यान करता है। वह बाहर की खोपड़ी की कल्पना भीतर करता जाता है। और इस तरह धीरे-धीर अपनी खोपड़ी की प्रतीति उसे होने लगती है। उसकी चेतना केंद्रित होने लगती है।

वह बाहरी खोपड़ी उसका मनोदर्शन, उस पर ध्यान, सब उपाय है। और अगर तुम एक बार अपने भीतर केंद्रीभूत हो गए तो तुम अपने अंगूठे से सिर तक यात्रा कर सकते हो। तुम भीतर चलो, वहां एक बड़ा ब्रह्मांड है। तुम्हारा छोटा शरीर एक बड़ा ब्रह्मांड है।

यह सूत्र मेरुदंड का उपयोग करता है, क्योंकि मेरुदंड के भीतर ही जीवन रज्जु छिपा है। यही कारण है कि सीधी रीढ़ पर इतना जोर दिया जाता है। क्योंकि अगर रीढ़ सीधी न रही तो तुम भीतरी रज्जु को नहीं देख पाओगे। वह बहुत नाजुक है। बहुत सूक्ष्म है। वह ऊर्जा का प्रवाह है। इसलिए अगर तुम्हारी रीढ़ सीधी है, बिलकुल सीधी, तभी तुम्हें उस सूक्ष्म जीवन रज्जु की झलक मिल सकती है।

लेकिन हमारे मेरुदंड सीधे नहीं है। हिंदू बचपन सेही मेरुदंड को सीधा रखने का उपाय करते है। उनके बैठने, उठने चलने सोने तक के ढंग सीधी रीढ़ पर आधारित थे। और अगर रीढ़ सीधी नहीं है तो उसके भीतर तत्वों को देखना बहुत कठिन बहुत कठिन होगा। वह नाजुम है, सूक्ष्म है, वास्तव में पौदगलिक नहीं है। वह अपौदगलिक है, वह शक्ति है। इसलिए जब मेरुदंड बिलकुल सीधा होता है तो वह रज्जुवत शक्ति देखने में आती है।

''और इसमे रूपांतरित हो जाओ।''

और अगर तुम इस रज्जु पर एकाग्र हुए, तुमने उसकी अनुभूति और उपलब्धि की, तब तुम एक नए प्रकाश से भर जाओगे। वह प्रकाश तुम्हारे मेरुदंड से आता होगा। वह तुम्हारे पूरे शरीर पर फैल जाएगा। वह तुम्हारे शरीर के पास भी चला जाएगा।

और जब प्रकाश शरीर के पार जाता है तब प्रभामंडल दिखाई देते है। हरेक आदमी का प्रभामंडल है। लेकिन साधारणत: तुम्हारे प्रभामंडल छाया की तरह है। जिनमे प्रकाश नहीं होता। वे तुम्हारे चारों और काली छाया की तरह फैले होते है। और वे प्रभामंडल तुम्हारे प्रत्येक मनोभाव को अभिव्यक्त करते है। तब तुम क्रोध में होते हो तो तुम्हारा प्रभामंडल रक्त रंजित जैसा हो जाता है। उसमे क्रोध लाल रंग में अभिव्यक्त होता है। जब तुम उदास, बुझे-बुझे हतप्रभ होते हो तो तुम्हारा प्रभामंडल

काले तंतुओं से भरा होता है। मानों तुम मृत्यु के निकट हो—सब मृत और बोझिल। और जब यह मेरुदंड के भीतर का तंतु उपलब्ध होता है तब तुम्हारा प्रभामंडल सचमुच में प्रभा मंडित होता है।

इस लिए बुद्ध, महावीर, कृष्ण क्राइस्ट, महज सजावट के लिए प्रभामंडल से नहीं चित्रित किए जाते है। वे प्रभामंडल सच में होता है। तुम्हारा मेरुदंड प्रकाश विकिरणित करने लगता है। भीतर तुम बुद्धत्व को प्राप्त होते हो, बहार तुम्हारा सारा शरीर प्रकाश, प्रकाश शरीर हो उठता है। और तब उसकी प्रभा बहार भी फैलने लगती है। इसलिए किसी बुद्ध पुरूष के लिए किसी से यह पूछना जरूरी नहीं है कि तुम क्या हो। तुम्हारा प्रभामंडल सब बता देगा। और जब कोई शिष्य बुद्धत्व प्राप्त करता है तो गुरु को पता हो जाता है। क्योंकि प्रभामंडल सब प्रकट कर देता है।

मैं तुम्हें एक कहानी बताऊ। एक चीनी संत, हुई नेंग, जब पहले-पहल अपने गुरु के पास पहुंचा तो गुरु ने कहा कि तुम किस लिए आए हो। तुम्हें मेरे पास आने की जरूरत नहीं थी। हुई नेंग की समझ में कुछ नहीं आया। उसने सोचा कि अभी गुरु द्वारा स्वीकृत होने की उसकी पात्रता नहीं है। लेकिन गुरु कुछ और ही चीज देख रहा था, वह द्वारा स्वीकृत होने की उसकी पात्रता नहीं है। लेकिन गुरु कह रहा था कि अगर तुम मेरे पास नहीं भी आओ तो भी देर-अबेर यह घटना घटने ही वाली है। तुम उसमे ही हो। इसलिए मेरे पास आने की जरूरत नहीं है।

लेकिन हुई नेंग ने प्रार्थना की कि मुझे अस्वीकार न करें। तो गुरु ने उसे प्रवेश दिया और कहा कि आश्रम के पिछवाड़े में जो रसोईघर है उसमे जाकर काम करो। और फिर दूसरी बार मेरे पास मत आना। जब जरूरत होगी, मैं ही तुम्हारे पास आऊँगा।

हुई नेंग को कोई ध्यान करने को नहीं बताया गया न कोई शास्त्र पढ़ने को कहा गया। उसे कुछ भी नहीं सिखाया गया। उसे बस रसोईघर में रख दिया गया। वह एक बहुत बड़ा आश्रम था। जिसमें कोई पाँच सौ भिक्षु रहते थे। उनमें पंडित विद्घान ध्यानी योगी सब थे। और सब साधना में लगे थे। लेकिन हुई नेंग केवल चावल साफ कतरा, या कुटता था। और रसोई के भीतर ही काम करता रहा। इस तरह से बारह वर्ष बीत गये। हुई नेंग इस बीच गुरु के पास दुबारा नहीं गया। क्योंकि इजाजत नहीं थे। वह प्रतीक्षा करता रहा। वह सिर्फ प्रतीक्षा ही करता रहा और लोग उसे महज नौकर समझते थे। कोई उस पर ध्यान भी नहीं देता था। उस आश्रम में पंडितों और ध्यानियों की कमी नहीं थी। उनके बीच एक चावल कूटनें वाले की क्या बिसात थी।

और फिर एक दिन गुरु ने घोषणा की कि मेरी मृत्यु निकट हे और मैं अब चाहता हूं कि किसी को अपना उत्तराधिकारी बनाऊं। इसलिए जो समझते हों कि वे बुद्धत्व को प्राप्त है, वे चार पंक्तियों की एक कविता रचे। जिसमे वह सब व्यक्त कर दें जो उन्होंने जाना है। गुरु ने यह भी कहा कि जिसकी कविता में सच में बुद्धत्व व्यक्ति होगा, उसे में अपना उतराधिकारी चुनूंगा।

उस आश्रम में एक महापंडित था। इसलिए उस प्रतियोगिता में किसी ने भाग नहीं लिया। सब यही सोचते थे कि महापंडित जीतेगा। वह शास्त्रों का बड़ा ज्ञाता था। सो उसने चार पंक्तियां लिखी। उन चार पंक्तियों में उसने लिखा-

मन एक दर्पण है, जिस पर धूल जम जाती है।
धूल को साफ कर दो, सत्य अनुभव में आ जाता है।

बुद्धत्व प्राप्ति हो जाती है।
लेकिन वह महापंडित भी डरता था। क्योंकि गुरु को पता था कि कौन ज्ञान को उपल्बध है। कौन नहीं। यद्यपि महापंडित ने जो लिखा था वह बहुत सुंदर था। सब शास्त्रों का सार-निचोड था। यही तो सब वेदों का सार था। लेकिन पंडित डरता था कि यह उसने शास्त्रों से लिया था। इसमे उसका अपना कुछ भी नहीं है। इस लिए वह सीधा गुरु के पास नहीं गया। वह रात के अंधेरे में

गुरु की झोपड़ी पर गया, और उनकी दीवार पर वे चार पंक्तियां लिख दी। उसने नीचे हस्ताक्षर भी नहीं किया। उसने सोचा कि अगर गुरु ने उन्हें स्वीकृति दी तो मैं कहूंगा कि मैंने लिखा है। और अगर गुरु ने ठीक नहीं कहां तो चुप रहूंगा।

लेकिन गुरु ने स्वीकृति दे दी। सुबह उन्होंने कहां कि जिस व्यक्ति ने ये पंक्ति लिखी है वह ज्ञानी है। समूचे आश्रम में उसकी चर्चा होने लगी। सब तो जानते थे कि किसने लिखा है। वे चर्चा करने लगे कि पंक्तियां तो सुंदर है। सचमुच सुंदर थी।

इसी चर्चा में लगे कुछ भिक्षु रसोईघर में पहुंचे। ये चाय पीते थे। और चर्चा करते थे। हुई नेंग उन्हें चाय पील रहा था। उसने सह बात सुनी। जब वे चार पंक्तियां उसने सुनी तब वह हंसा। इस पर किसी ने उससे पूछा कि तुम क्यों हंस रहे हो। तुम तो कुछ जानते भी नहीं हो। बारह वर्षों से तुम तो चोंके से बहार भी नहीं निकले हो। तुम्हें किस बात को पता है। तुम क्यों हंस रहे हो।

किसी ने इससे पहले उस भिक्षु को हंसते नहीं देखा था। वह तो महा मूढ़ समझा जाता था। जिसे बात करनी भी नहीं आती थी। उसने कहा कि मैं लिखना नहीं जानता हूं और मैं ज्ञानी भी नहीं हूं। लेकिन वे चार पंक्तियां गलत है। अगर कोई व्यक्ति मेरे साथ आये तो मैं चार पंक्तियां बना सकता हूं। और वह उसे दीवार पर लिख दे। मैं लिखना नहीं जानता हूं।

एक भिक्षु मजाक में उसके साथ चल दिया। उसने पीछे ऐ भीड़ भी वहां पहूंच गई। सब के लिए ये कुतूहल भर बात थी कि एक चावल कूटनें वाला, ब्रह्म ज्ञान की चार लाईनें बातयेगा। नेंग ने लिखवाया:

कैसा दर्पण, कैसी धूल।
न कोई मन है,

न कोई दर्पण,

फिर धूल जमेगी कहां?

जो यह जान गया

वह उपल्बध हो गया धर्म को।
लेकिन जब गुरु आया तो उसने कहा की ये गलत है। हुई नेंग ने गुरु के पैर छुए और वह रसोई घर में लोट गया।

रात में जब सब सोए थे, गुरु नेंग के पास आया। और चुप से कहां, तुम सही हो, लेकिन मैं तुम्हारी बात को उन मूर्खों के सामने सही नहीं कह सकता। वे विद्धान मूर्ख है। और अगर मैं कहता हूं कि मेरे उत्तराधिकारी तुम हो तो वह तुम्हें मार देंगे। और यह बात दूसरों को मत कहाना। तुम यहां से भाग जाओ। जिस दिन तुम यहां आये थे। उसी दिन मैं जान गया था तुम्हारे प्रभामंडल को देख कर। कि तुम ही मेरे उतराधिकारी हो। और बारह वर्ष के मौन ने, जिसमे तुम्हारा प्रभामंडल पूर्ण हो चला। तुम पूर्ण चंद्र हो गए हो। लेकिन यहां से निकल जाओ वरना वे लोग तुम्हें मार देंगे। तुम यहां बारह वर्ष से हो, निरंतर तुम्हारे प्रकाश विकिरण हो रहा है। लेकिन कोई उसे देख नहीं सका। यद्यपि हर दिन कोई न कोई तुम्हें दो या तीन बार दिन में देखता है। इसी लिए मेंने तुम्हें रसोई घर में रखा था। कोई तुम्हारे प्रभामंडल को नहीं देख सका। इस लिए तुम यहां से भाग जाओ।

जब मेरुदंड का यह तंतु देख लिया जाता है, उपलब्ध होता है, तब तुम्हारे चारों और एक प्रभामंडल बढ़ने लगता है। इसमें रूपांतरित हो जाओ। उस प्रकाश से भर जाओ और रूपांतरित हो जाओ। यह भी केंद्रित होना है, मेरुदंड में केंद्रित होना।

अगर तुम शरीर वादी हो तो यह तुम्हारे काम आयेगी। अगर नहीं तो यह कठिन है। तब भीतर से शरीर को देखना कठिन होगा। यह विधि पुरूषों की बजाएं स्त्रियों के लिए ज्यादा कारगर होगी। स्त्रियां ज्यादा शरीवादी होती है। वे शरीर में अधिक रहती है। और कल्पनाशील भी होती है। शरीर का मनोदर्शन उनके लिए आसान है। स्त्रियां पुरूषों से ज्यादा शरीर केंद्रित होती है। लेकिन जो कोई भी शरीर को महसूस कर सकता है। जो कोई भी आँख बंद कर अंदर शरीर को देख सकता है। उसके लिए यह विधि बहुत सहयोगी है।

पहले अपने मेरुदंड को देखो, फिर उसके बीच से जाती हुई रजत-रज्जु को। पहले तो वह कल्पना ही होगी। लेकिन धीरे-धीरे तुम पाओगे कि कल्पना विलीन हो गई है। और जिस क्षण तुम आंतरिक तत्व को देखोगें, अचानक तुम्हें तुम्हारे भीतर प्रकाश का विस्फोट अनुभव होगा।

कभी-कभी यह घटना प्रयास के बिना भी घटती है। यह होता है। फिर तुम्हें कहुं, किसी गहरे संभोग के क्षण में यह होता है। तंत्र जानता है कि गहरे काम-कृत्य में तुम्हारी सारी ऊर्जा रीढ़ के पास इकट्ठी हो जाता है। असल में गहरे काम कृत्य में रीढ़ बिजली छोड़ने लगती है। कभी-कभी तो ऐसा होता है। कि रीढ़ को छूने से तुम्हें धक्का लगता है। और अगर संभोग गहरा हो, प्रेमपूर्ण हो, लंबा हो, अगर दो प्रेमी प्रगाढ़ प्रेमालिंगन में हों, शांत और निश्चल, एक दूसरे को भरते हुए। तो घटना घटती है। कई बार ऐसा हुआ है कि अँधेरा कमरा अचानक रोशनी से भर जाता है। और दोनों शरीरों काक एक नीली प्रभामंडल घेर लेता है।

ऐसी अनेक घटनाएं हुई है। तुम्हारे अनुभव में भी ऐसा हुआ होगा। कि अंधेरे कमरे में गहरे प्रेम में उतरने पर तुम्हारे दो शरीरों के चारों और एक रोशनी सी हो गई है। और फैल कर पूरे कमरे में भर गई हो। कई बार ऐसा हुआ है कि किसी दृश्य कारण के बिना ही कमरे की मेज पर से अचानक चीजें उछल कर नीचे गिर गई है। ओर अब मानस्विद बताते है कि गहरे काम-कृत्य में बिजली की तरंगें छूटती है। और उसके कई प्रभाव और परिमाण हो सकते है। चीजें अचानक गिर सकती है। हिल सकती है। टूट सकती है। ऐसे प्रकाश के फोटो भी लिए गए है। लेकिन यह प्रकाश सदा मेरुदंड के इर्द-गिर्द इकट्ठा होता है।

तो कभी-कभी काम-कृत्य के दौरान भी तुम जाग सकते हो। अगर तुम अपने मेरुदंड के बीच से जाती हुई रजत-रज्जु को देख सको। तंत्र को यह बात भलीभंति पता है और उसने इस पर काम भी किया है। तंत्र नपे इस उपलब्धि के लिए संभोग का भी उपयोग किया है। लेकिन उसके लिए काम कृत्य को सर्वथा भिन्न ढंग का होना पड़ेगा। उसका गुण धर्म भिन्न होगा। उस हालत में काम कृत्य किसी तरह निबट लेने की, महज स्खलन क द्वारा छुट्टी पा लेने की, झट-पट उससे गुजर जाने की बात नहीं रहेगी। तब वह एक शारीरिक कर्म नहीं रहेगा। तब वह एक गहरा आध्यात्मिक मिलन होगा। तब यथार्थ में वह दो देहों के द्वारा दो आंतरिकताओं का, दो आत्माओं का एक दूसरे में प्रवेश होगा।

इसलिए मेरा सुझाव है कि जब तुम गहरे काम कृत्य में होओ तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह आसान हो जायेगी। यौन को भूल जाओ। जब गहरे आलिंगन में उतरो बस भीतर रहो। और दूसरे व्यक्ति को भूल जाओ। भीतर जाओ और अपने मेरुदंड को देखो। उस समय मेरू दंड के पास अधिक उर्जा प्रवाहित होती है। क्योंकि तुम शांत होते हो और तुम्हारा शरीर विश्राम में होता है। प्रेम गहरे से गहरा विश्राम है, लेकिन हमने उसे भी तनाव बना लिया है। हमने उसे एक चिंता एक बोझ में बदल लिया है।

प्रेम की ऊष्मा में, जब तुम भरे-भरे और शिथिल हो, आंखें बंद कर लो। सामान्यत: पुरूष आंखें बंद नहीं करते। स्त्रियां करती है। इसलिए मैंने कहा कि पुरूषों की बजाएं स्त्रियां अधिक शरीर वादी है। काम-कृत्य के गहरे आलिंगन में उतरने पर स्त्रियां आंखें बंद कर लेती है। दरअसल वे खुली आंखों से प्रेम नहीं कर सकती। आंखों के बंद रहने पर वे भीतर से शरीर को अधिक महसूस कर पाती है।

तो आंखें बंद कर लो और शरीर को महसूस करो। विश्राम में उतर जाओ और मेरूदंड पर चित एकाग्र करो। और यह सूत्र बहुत सरल ढंग से कहता है: ''इसमें रूपांतरित हो जाओ।'' तुम इसके द्वारा रूपांतरित हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-15 ओशो

केंद्रित होने की तीसरी विधि:

lord-shiva-तंत्र-सूत्र—विधि-15 विज्ञान भैरव तंत्र–ओशो

''सिर के सात द्वारों को अपने हाथों से बंद करने पर आंखों के बीच का स्थान सर्वग्राही हो जाता है।''
यह एक पुरानी से पुरानी विधि है और इसका प्रयोग भी बहुत हुआ है। यह सरलतम विधियों में एक है। सिर के सभी द्वारों को, आँख, कान, नाक, मुंह, सबको बंद कर दो। जब सिर के सब द्वार दरवाजे बंद हो जाते है तो तुम्हारी चेतना तो सतत बहार बह रही है। एकाएक रूक जाती है। ठहर जाती है। वह अब बाहर नहीं जा सकती।

तुमने ख्याल नहीं किया कि अगर तुम क्षण भर के लिए श्वास लेना बंद कर दो तो तुम्हारा मन भी ठहर जाता है। क्यों? क्योंकि श्वास के साथ मन चलता है। वह मन का एक संस्कार है। तुम्हें समझना चाहिए कि यह संस्कार क्या है। तभी इस सूत्र को समझना आसान होगा।
रूस के अति प्रसिद्ध मानस्विद पावलफ ने संस्कारजनित प्रतिक्रिया को, कंडीशंड रिफ्लेक्स को दुनियाभर में आम बोलचाल में शामिल करा दिया है। जो व्यक्ति भी मनोविज्ञान से जरा भी परिचित है, इस शब्द को जानता है। विचार की दो श्रृंखलाएं कोई भी दो श्रृंखलाएं इस तरह एक दूसरे से जुड़ सी जाती है। कि अगर तुम उनमें से एक को चलाओ तो दूसरी अपने आप शुरू हो जाती है।

पावलफ ने एक कुत्ते पर प्रयोग किया। उसने देखा कि तुम अगर कुत्ते के सामने खाना रख दो वक उसकी जीभ से लार बहने लगती है। जीभ बहार निकल आती है। और वह भोजन के लिए तैयार हो जाता है। कुत्ता जब भोजन देखता है या उसकी कल्पना करता है तो लार बहने लगती है। लेकिन पावलफ ने इस प्रक्रिया के साथ दूसरी बात जोड़ दी। जब भी भोजन रखा

जाए और कुत्ते की लार टपकने लगे। वह दूसरी चीज करता; उदाहरण के लिए, वह एक घंटी बजाता और कुत्ता उस घंटी को सुनता।

पंद्रह दिन तक जब भी भोजन रखा जाता, घंटी भी बजती। और तब सोलहवें दिन कुत्ते के सामने भोजन नहीं रखा गया, केवल घंटी बजाईं गई। लेकिन तब भी कुत्ते के मुहँ से लार बहने लगी। और जीभ बाहर आ गई, मानो भोजन सामने रखा हो।

वहां भोजन नहीं था, सिर्फ घंटी थी। अब घंटी बजने और लार टपकने के बीच कोई स्वाभाविक संबंध नहीं था। लार का स्वाभाविक संबंध भोजन के साथ है। लेकिन अब घंटी का रोज-रोज बजना लार के साथ जुड़ गया था, संबंधित हो गया था। और इसलिए मात्र घंटी के बजने पर भी लार बहने लगी।

पावलफ के अनुसार—और पावलफ सही है—हमारा समूचा जीवन एक कंडीशंड प्रोसेस है। मन संस्कार है। इसलिए अगर तुम उस संस्कार के भीतर कोई एक चीज बंद कर दो तो उससे जूड़ी और सारी चीजें भी बंद हो जाती है।

उदाहरण के लिए विचार और श्वास है। विचारणा सदा ही श्वास के साथ चलती है। तुम बिना श्वास विचार नहीं कर सकते। तुम श्वास के प्रति सजग नहीं रहते, लेकिन श्वास सतत चलती रहती है। दिन-रात चलती रहती है। और प्रत्येक विचार, विचार की प्रक्रिया ही श्वास की प्रक्रिया से जुड़ी है। इसलिए अगर तुम अचानक अपनी श्‍वास रोक लो तो विचार भी रूक जाएगा।

वैसे ही अगर सिर के सातों छिद्र, उसके सातों द्‌वार बंद कर दिए जाएं तो तुम्हारी चेतना अचानक गति करना बंद कर देगी। तब चेतना भीतर थिर हो जाती है। और उसका यह भीतर थिर होना तुम्हारी आंखों के बीच के बीच स्थान बना देता है। वह स्थान ही त्रिनेत्र, तीसरी आँख कहलाती है। अगर सिर के सभी द्‌वार बंद कर दिये जाये तो तुम बाहर गति नहीं कर सकते। क्योंकि तुम सदा इन्हीं द्‌वारों से बाहर जाते रहे हो। तब तुम भीतर थिर हो जाते हो। और वह थिर होना, एकाग्र इन दो आंखों, साधारण आंखों के बीच घटित होता है। चेतना इन दो आंखों के बीच के स्थान पर केंद्रित हो जाती है। उस स्थान को ही त्रिनेत्र कहते है।

यह स्थान सर्वग्राही सर्वव्यापक हो जाता है। यह सूत्र कहता है कि इस स्थान में सब सम्मिलित है सारा आस्तित्व समाया है। अगर तुम इस स्थान को अनुभव कर लो तो तुमने सब को अनुभव कर लिया। एक बार तुम्हें इन दो आंखों के बीच के आकाश की प्रतीति हो गई तो तुमने पूरे अस्तित्व को जाने लिया, उसकी समग्रता को जान लिया, क्योंकि यह आंतरिक आकाश सर्वग्राही है, सर्वव्यापक है, कुछ भी उसके बाहर नहीं है।

उपनिषाद कहते है: ‘’एक को जानकर सब जान लिया जाता है।‘’

ये दो आंखें तो सीमित को ही देख सकती है; तीसरी आँख असीम को देखती है। ये दो आंखे तो पदार्थ को ही देख सकती है; तीसरी आँख अपदार्थ को, अध्यात्म को देखती है। इन दो आंखों से तुम कभी ऊर्जा की प्रतीति नहीं कर सकते , ऊर्जा को नहीं देख सकते, सिर्फ पदार्थ को देख सकते हो। लेकिन तीसरी आँख से स्वयं ऊर्जा देखी जाती है।

द्‌वारों का बंद किया जाना केंद्रित होने का उपाय है। क्योंकि एक बार जब चेतना के प्रवाह का बाहर जाना रूक जाता है। वह अपने उदगम पर थिर हो जाती है। और चेतना का यह उदगम ही त्रिनेत्र है। अगर तुम इस त्रिनेत्र पर केंद्रित हो जाओ तो बहुत चीजें घटित होती है। पहली चीज तो यह पता चलती है कि सारा संसार तुम्हारे भीतर है।

स्वामी राम कहा करते थे कि सूर्य मेरे भीतर चलता है। तारे मेरे भीतर चलते है, चाँद मेरे भीतर उदित होता है; सारा ब्रह्मांड मेरे भीतर है। जब उन्होंने पहली बार यह कहा तो उनके शिष्यों कि वे पागल हो गए है। राम तीर्थ के भीतर सितारे कैसे हो सकते है।

वे इसी त्रिनेत्र की बात कर रहे थे। इसी आंतरिक आकाश के संबंध में। जब पहली बार यह आंतरिक आकाश उपलब्ध होता है तो यही भाव होता है। जब तुम देखते हो कि सब कुछ तुम्हारे भी तर है तब तुम ब्रह्मांड ही हो जाते हो।

त्रिनेत्र तुम्हारे भौतिक शरीर का हिस्सा नहीं है। वह तुम्हारे भौतिक शरीर का अंग नहीं है। तुम्हारी आंखों के बीच का स्थान तुम्हारे शरी तक ही सीमित नहीं है। वह तो वह अनंत आकाश है जो तुम्हारे भीतर प्रवेश कर गया है। और एक बार यह आकाश जान लिया जाए तो तुम फिर वही व्यक्ति नहीं रहते। जिस क्षण तुमने इस अंतरस्थ आकाश को जान लिया उसी क्षण तुमने अमृत को जान लिया तब कोई मृत्यु नहीं है।

जब तुम पहली बार इस आकाश को जानोंगे, तुम्हारा जीवन प्रामाणिक और प्रगाढ़ हो जाएगा; तब पहली बार तुम सच में जीवंत होओगे। तब किसी सुरक्षा की जरूरत नहीं रहेगी। अब कोई भय संभव नहीं है। अब तुम्हारी हत्या नहीं हो सकती। अब तुमसे कुछ भी छीना नहीं जा सकता। अब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा है, तुम ही ब्रह्मांड हो। जिन लोगों ने इस अंतरस्थ आकाश को जाना है उन्होंने ही आनंदमग्न होकर उरदघोषणा की है: अहं ब्रह्मास्मि। मैं ही ब्रह्मांड हूं, मैं ही ब्रह्मा हूं........।

सूफी संत मंसूर को इसी तीसरी आँख के अनुभव के कारण कत्ल कर दिया गया। जब उसने पहली बार इस आंतरिक आकाश को जाना, वह चिल्लाकर कहने लगा: अनलहक़, मैं ही परमात्मा हूं, भारत में वह पूजा जाता। क्योंकि भारत ने ऐसे अनेक लोग देखे है जिन्हें इस तीसरी आँख आंतरिक आकाश का बोध हुआ। लेकिन मुसलमानों के देश में यह बात कठिन हो गई। और मंसूर का यह वक्तव्य कि मैं परमात्मा हूं, अनलहक़, अहं ब्रह्मास्मि, धर्मविरोधी मालूम हुआ। क्योंकि मुसलमान यह सोच भी नहीं सकते कि मनुष्य और परमात्मा एक है। मनुष्य–मनुष्य है। मनुष्य सृष्टि है, और परमात्मा सृष्टा। सृष्टि स्त्रष्टा कैसे हो सकता है।

इस लिए मंसूर का यह वक्तव्य नहीं समझा जा सका। और उसकी हत्या कर दी गई। लेकिन जब उसको कत्ल किया जा रहा था तब वह हंस रहा था। तो किसी ने पूछा कि हंस क्यों रहे हो। मंसूर। कहते है कि मंसूर ने कहा मैं इसलिए हंस रहा हूं कि तुम मुझे नहीं मार रहे हो। तुम मेरी हत्या नहीं कर सकते। तुम्हें मेरे शरीर से धोखा हुआ है। लेकिन मैं शरीर नहीं हूं। मैं इस ब्रह्मांड को बनाने वाला हूं; यह मेरी अंगुलि थी जिसने आरंभ में समूचे ब्रह्मांड को चलाया था।

भारत में मंसूर आसानी से समझा जाता, सदियों-सदियों से यह भाषा जानी पहचानी है। हम जानते हे कि एक घड़ी आती है जब यह आंतरिक आकाश जाना जाता है। तब जानने वाला पागल हो जाता है। और यह ज्ञान इतना निश्चित है कि यदि तुम मंसूर की हत्या भी कर दो तो वह अपना वक्तव्य नहीं बदलेगा। क्योंकि हकीकत में, जहां तक उसका संबंध है,

तुम उसकी हत्या नहीं कर सकते। अब वह पूर्ण हो गया है। उसे मिटाने का उपाय नहीं है।

मंसूर के बाद सूफी सीख गए कि चुप रहना बेहतर है। इसलिए मंसूर के बाद सूफी पंरम्परा में शिष्यों को सतत सिखाया गया कि जब भी तुम तीसरी आँख को उपल्बध करो चुप रहो, कुछ कहो मत। जब भी घटित हो, चुप्पी साध लो। कुछ भी मत कहो। या वे ही चीजें औपचारिक ढंग से कहे जाओ जो लोग मानते है।

इसलिए अब इस्लाम में दो परंपराएं है। एक सामान्य परंपरा है—बाहरी, लौकिक। और दूसरी परंपरा असली इसलाम है, सूफीवाद जो गुह्म है। लेकिन सूफी चुप रहते है। क्योंकि मंसूर के बाद उन्होंने सीख लिया कि उस भाषा में बोलना जो कि तीसरी आँख के खुलने पर प्रकट होती है। व्यर्थ की कठिनाई में पड़ना है, और उससे किसी को मदद भी नहीं होती।

यह सूत्र कहता है: ''सिर के सात द्वारों को अपने हाथों से बंद करने पर आंखों के बीच का स्थान सर्वग्राही, सर्वव्यापी हो जाता है।''

तुम्हारा आंतरिक आकाश पूरा आकाश हो जाता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-16 (ओशो)

केंद्रित होने की चौथी विधि:
''हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुँचों।''
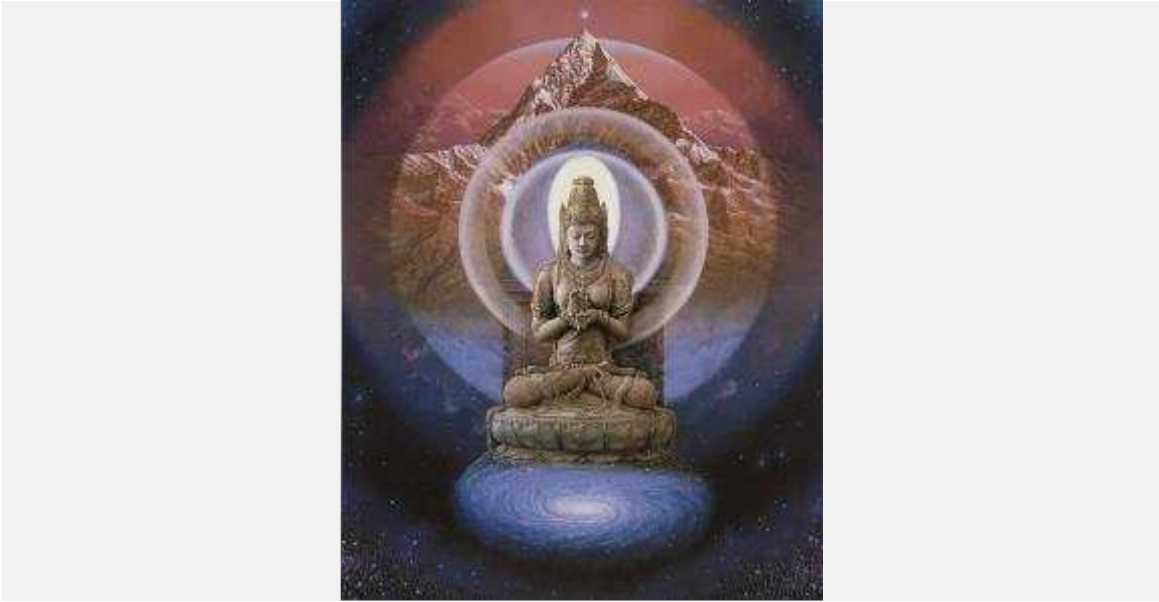
विज्ञान भैरव तंत्र–ध्यान विधि–16 (ओशो)

प्रत्येक विधि किसी मन-विशेष के लिए उपयोगी है। जि विधि की अभी हम चर्चा कर रहे थे—तीसरी विधि, सिर के द्वारों को बंद करने वाली विधि—उसका उपयोग अनेक लोग कर सकते है। वह बहुत सरल है और बहुत खतरनाक नहीं है। उसे तुम आसानी से काम में ला सकते हो।

यह भी जरूरी नहीं है कि द्वारों को हाथ से बंद करो; बंद करना भी जरूरी है। इसलिए कानों के लिए डाट और आंखों के लिए पट्टी से काम चल जाएगा असली बात यह कि कुछ क्षणों के लिए ये कुछ सैकेंड के लिए सिर के द्वारों को पूरी तरह से बंद कर लो।

इसका प्रयोग करो, अभ्यास करो। अचानक करने से ही यह कारगर है, अचानक में ही राज छिपा है। बिस्तर में पड़े-पड़े अचानक सभी द्वारों को कुछ सेकेंड के लिए बंद कर लो। और तब भीतर देखो क्या होता है।
जब तुम्हारा दम घुटने लगे, क्योंकि श्वास भी बंद हो जाएगी, तब भी इसे जारी रखे और तब तक जारी रखो जब तक कि असह्य न हो जाये। और जब असह्य हो जाएगा, तब तुम द्वारों को ज्यादा देर बंद नहीं रख सकोगे, इसलिए उसकी फिक्र छोड़ दो। तब आंतरिक शक्ति सभी द्वारों के खुद खोल देगी। लेकिन जहां तक तुम्हारा संबंध है, तुम बंद रखो। जब दम घुटने लगे, तब वह क्षण आता है, निर्णायक क्षण, क्योंकि घुटन पुराने एसोसिएशन तोड़ डालती है। इसलिए कुछ और क्षण जारी रख सको तो अच्छा।

यह काम कठिन होगा, मुश्किल होगा, और तुम्हें लगेगा कि मौत आ गई। लेकिन डरों मत। तुम मर नहीं सकते। क्योंकि द्वारों को बंद भर करने से तुम नहीं मरोगे। लेकिन जब लगे कि में मर जाऊँगा, तब समझो कि वह क्षण आ गया।

अगर तुम उस क्षण में धीरज से लगे रहे तो अचानक हर चीज प्रकाशित हो जाएगी। तब तुम उस आंतरिक आकाश को महसूस करोगे। जो कि फैलता ही जाता है, और जिसमें समग्र समाया हुआ है। तब द्वारों को खोल दो और तब इस प्रयोग को फिर-फिर करो। जब भी समय मिले, इसका प्रयोग में लाओ।

लेकिन इसका अभ्यास मत बनाओ। तुम श्वास को कुछ क्षण के लिए रोकने का अभ्यास कर सकते हो। लेकिन उससे कुछ लाभ नहीं होगा। एक आकस्मिक, अचानक झटक की जरूरत है। उस झटके में तुम्हारी चेतना के पुराने स्रोतों का प्रवाह बंद हो जाता है। और कोई नयी बात संभव हो जाती है।

भारत में अभी भी सर्वत्र अनेक लोग इस विधि का अभ्यास करते है। लेकिन कठिनाई यह है कि वे अभ्यास करते है। जब कि यह एक अचानक विधि हे। अगर तुम अभ्यास करो तो कुछ भी नहीं होगा। कुछ भी नहीं होगा। अगर मैं तुम्हें अचानक इस कमरे से बाहर निकाल फेंकूंगा तो तुम्हारे विचार बंद हो जाएंगे। लेकिन अगर हम रोज-रोज इसका अभ्यास करें तो कुछ नहीं होगा। तब वह एक यांत्रिक आदत बन जाएगी।

इसलिए अभ्यास मत करो; जब भी हो सके प्रयोग करो। तो धीरे-धीरे तुम्हें अचानक एक आंतरिक आकाश का बोध होगा। वह आंतरिक आकाश तुम्हारी चेतना में तभी प्रकट होता है जब तुम मृत्यु के कगार पर होते हो। तब तुम्हें लगता है कि अंग में एक क्षण भी नहीं जीऊंगा। अब मृत्यु निकट है; तभी वह सही क्षण आता है। इसलिए लगे रहो, डरों मत।

मृत्यु इतनी आसान नहीं है। कम से कम इस विधि को प्रयोग में लाते हुए कोई व्यक्ति अब तक मरा नहीं है। इसमे अंतर्निहित सुरक्षा के उपाय है, यही कारण है कि तुम नहीं मरोगे। मृत्यु के पहले आदमी बेहोश हो जाता है। इसलिए होश में रहते हुए यह भाव आए कि मैं मर रहा हूं तो डरों मत। तुम अब भी होश में हो, इसलिए मरोगे नहीं। और अगर तुम बेहोश हो गए तो तुम्हारी श्वास चलने लगेगी। तब तुम उसे रोक नहीं पाओगे।

और तुम कान के लिए डाट काम में ला सकते हो। आंखों के पट्टी बाँध सकते हो। लेकिन नाक और मुंह के लिए कोई डाट उपयोग नहीं करने है। क्योंकि तब वह संघातक हो सकता है। कम से कम नाक को छोड़ रखना ठीक है। उसे हाथ से ही बंद करो। उस हालत में जब बेहोश होने लगोगे तो हाथ अपने आप ही ढीला हो जाएगा। और श्वास वापस आ जाएगी। तो इसमे अंतर्निहित सुरक्षा है। यह विधि बहुतों के काम की है।

चौथी विधि उनके लिए है जिनका ह्रदय बहुत विकसित है, जो प्रेम और भाव के लोग है, भाव-प्रवण लोग है।

''हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुंचो।''

यह विधि ह्रदय-प्रधान व्यक्ति के द्वारा काम में लायी जा सकती है। इसलिए पहले यह समझने की कोशिश करो कि ह्रदय प्रधान व्यक्ति कौन है। तब यह विधि समझ सकोगे।

जो ह्रदय-प्रधान है, उस व्यक्ति के लिए सब कुछ ह्रदय ही है। अगर तुम उसे प्यार करोगे तो उसका ह्रदय उस प्यार को अनुभव करेगा, उसका मस्तिष्क नहीं। मस्तिष्क-प्रधान व्यक्ति प्रेम किए जाने पर भी प्रेम का अनुभव मस्तिष्क से लेता है। वह उसके संबंध में सोचता है, आयोजन करता है; उसका प्रेम भी मस्तिष्क का ही सुचिंतित आयोजन होता है, लेकिन भावपूर्ण व्यक्ति तर्क के बिना जीता है। वैसे ह्रदय के भी अपने तर्क है, लेकिन ह्रदय सोच-विचार नहीं करता है।

अगर कोई तुम्हें पूछे कि क्यों प्रेम करते हो और तुम उसे क्यों का जवाब दे सको तो तुम मस्तिष्क प्रधान व्यक्ति हो। और अगर तुम कहां कि मैं नहीं जानता, मैं सिर्फ प्रेम करता हूं, तो तुम ह्रदय प्रधान व्यक्ति हो। अगर तुम इतना भी कहते हो कि मैं उसे इसलिए प्यार करता हूं, कि वह सुंदर है, तो वहां बुद्धि आ गई। ह्रदयोन्मुख व्यक्ति के लिए कोई सुंदर इसलिए है कि वह उसे प्रेम करता है। मस्तिष्क वाला व्यक्ति किसी को इसलिए प्रेम करता है कि वह सुंदर है। बुद्धि पहले आती है और तब प्रेम आता है। ह्रदय प्रधान व्यक्ति के लिए प्रेम प्रथम है और शेष चीजें प्रेम के पीछे-पीछे चली आती है। वह ह्रदय में केंद्रित है, इसलिए जो भी घटित होता है वह पहले उसके ह्रदय को छूता है।

जरा अपने को देखो। हरेक क्षण तुम्हारे जीवन में अनेक चीजें घटित हो रही है। वे किसी स्थल को छूती है। तुम जा रहे हो और एक भिखारी सड़क पार करता है। वह भिखारी तुम्हें कहां छूता है। क्या तुम आर्थिक परिस्थिति पर सोच विचार करते हो। या क्या तुम यह विचारने लगते हो कि कैसे कानून के द्वारा भिखमंगी बंद की जाए। या कि कैसे एक समाजवादी समाज बनाया जाए। जहां भिखमँगे न हो।

यह एक मस्तिष्क प्रधान आदमी है। जो ऐसा सोचने लगता है। उसके लिए भिखारी महज विचार करने का आधार बन जाता हे। उसका ह्रदय अस्पर्शित रह जाता है। सिर्फ मस्तिष्क स्पर्शित होता है। वह इस भिखारी के लिए अभी और यहां कुछ नहीं करने जा रहा है। नहीं, वह साम्यवाद के लिए कुछ करेगा। वह भविष्य के लिए, किसी ऊटोपिया के लिए कुछ करेगा। वह उसके लिए अपना पूरा जीवन भी दे-दे, लेकिन अभी तत्क्षण वह कुछ नहीं कर सकता है। मस्तिष्क सदा भविष्य में रहता है। ह्रदय सदा यहां और अभी रहता है।

एक ह्रदय प्रधान व्यक्ति अभी ही भिखारी के लिए कुछ करेगा। यह भिखारी आदमी है, आंकड़ा नहीं। मस्तिष्क वाले आदमी के लिए वह गणित का आंकड़ा भर है। उसके लिए भिखमंगी बंद करना समस्या है, इस भिखारी की मदद की बात अप्रासंगिक है।

तो अपने को देखो, परखो। देखो कि तुम कैसे काम करते हो, देखो कि तुम ह्रदय की फिक्र करते हो या मस्तिष्क की। ह्रदयोन्मुख व्यक्ति हो तो यह विधि तुम्हारे काम की है। लेकिन यह बात भी ध्यान रखो कि हर आदमी आने को यह धोखा देने में लगा है कि मैं ह्रदयोन्मुख व्यक्ति हूं। हर आदमी सोचता है कि मैं बहुत प्रेमपूर्ण व्यक्ति हूं, भावुक किस्म का हूं। क्योंकि प्रेम एक ऐसी बुनियादी जरूरत है। कि अगर किसी को पता चले कि मेरे पास प्रेम करने वाला ह्रदय नहीं है। तो वह चैन से नहीं रह सकता। इसलिए हर आदमी ऐसा सोचे और माने चला जाता है।

लेकिन विश्वास करने से क्या होगा? निष्पक्षता के साथ अपना निरीक्षण करो। ऐसे जैसे कि तुम किसी दूसरे का निरीक्षण कर रहे हो और तब निर्णय लो। क्योंकि अपने को धोखा देने की जरूरत क्या है? और उससे लाभ भी क्या है? और अगर तुम अपने को धोखा भी दे दो तो तुम विधि को धोखा नहीं दे सकते। क्योंकि तब विधि को प्रयोग करने पर तुम पाओगे कि कुछ भी नहीं होता है।

लोग मेरे पास आते है। मैं उनसे पूछता हूं कि तुम किस कोटि के हो। उन्हें यथार्थत: कुछ पता नहीं है। उन्होंने कभी इस संबंध में सोचा ही नहीं कि वे किस कोटि के है। उन्हें अपने बारे में धुँधली धारणाएं है। दरअसल मात्र कल्पनाएं है। उनके पास कुछ आदर्श है, कुछ प्रतिमाएं है और वे सोचते है—सोचते क्या चाहते है—कि हम वे प्रतिमाएं होते। सच में वे है नहीं। और अक्सर तो यह होता है कि वे उसके ठीक विपरीत होते है।

इसका कारण है। जो व्यक्ति जोर देकर कहता है कि मैं ह्रदय प्रधान आदमी हूं, हो सकता है। वह ऐसा इसलिए कह रहा हो कि उसे अपने ह्रदय का अभाव खलता है। और वह भयभीत है। वह इस तथ्य को नहीं जान सकेगा। कि उसके पास ह्रदय नहीं है।

इस संसार पर एक नजर डालों। अगर अपने ह्रदय के बारे में हरेक आदमी का दावा सही है तो वह संसार इतना ह्रदय हीन नहीं हो सकता। यह संसार हम सबका कुछ जोड़ है। इसलिए कहीं कुछ अवश्य गलत है। वहां ह्रदय नहीं है।

सच तो यह है कि कभी ह्रदय को प्रशिक्षित ही नहीं क्या गया। मन प्रशिक्षित किया गया है। इसलिए मन है। मन को प्रशिक्षित करने के लिए स्कूल, कालेज, और विश्व विद्यालय है। लेकिन ह्रदय के प्रशिक्षण के लिए कोई जगह नहीं है। और मन का प्रशिक्षण लाभ दायी है, लेकिन ह्रदय का प्रशिक्षण खतरनाक है। क्योंकि अगर तुम्हारा ह्रदय प्रशिक्षित किया जाए तो तुम इस संसार के लिए बिलकुल व्यर्थ हो जाओगे। यह सारा संसार तो बुद्धि से चलता है। अगर तुम्हारा ह्रदय प्रशिक्षित हो तो तुम पूरे ढांचे से बाहर हो जाओगे। जब सारा संसार दाएं जाता होगा। तुम बाएं चलोगे। सभी जगह तुम अड़चन में पड़ोगे।

सच तो यह है कि मनुष्य जितना अधिक सुसभ्य बनता है। ह्रदय का प्रशिक्षण उतना ही कम हो जाता है। हम ता उसे भूल ही गए है। भूल गए है कि ह्रदय भी है या उसके प्रशिक्षण की जरूरत है। यही कारण है कि ऐसी विधियां जो आसानी से काम कर सकती थी, कभी काम नहीं करती।

अधिकांश धर्म ह्रदय-प्रधान विधियों पर आधारित है। ईसाइयत, इस्लाम, हिंदू तथा अन्य कई धर्म ह्रदयोन्मुख लोगो पर आधारित है। जितना ही पुराना कोई धर्म है वह उतना ही अधिक ह्रदय आधारिक है। तब वेद लिखे गए और हिंदू धर्म विकसित हो रहा था। तब लोग ह्रदयोन्मुख थे। उस समय मन प्रधान लोग खोजना मुश्किल था। लेकिन अभी समस्या उलटी है। तुम प्रार्थना नहीं कर सकते। क्योंकि प्रार्थना ह्रदय-आधारित विधि है।

यही कारण है कि पश्चिम में, जहां ईसाइयत का बोलबाला है—और ईसाइयत, खासकर कैथोलिक ईसाइयत प्रार्थना का धर्म है—प्रार्थना कठिन हो गई है। ईसाइयत में ध्यान के लिए कोई स्थान नहीं है। लेकिन अब पश्चिम में भी लोग ध्यान के लिए पागल हो रहे है। कोई अब चर्च नहीं जाता है। और अगर कोई जाता भी है तो वह महज औपचारिकता है। रविवारीय धर्म। क्यों? क्योंकि आज पश्चिम का जो आदमी है उसके लिए प्रार्थना सर्वथा असंगत हो गई है।

ध्यान ज्यादा मनोन्मुख है, प्रार्थना ज्यादा ह्रदयोन्मुख व्यक्ति की ध्यान-विधि है। यह विधि भी ह्रदय वाले व्यक्ति के लिए ही है।

‘’हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुंचो।‘

इस विधि के लिए करना क्या है? ''जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों.......।'' प्रयोग करके देखो। कई उपाय संभव है। तुम किसी व्यक्ति को स्पर्श करते हो; अगर तुम ह्रदय वाले आदमी हो तो वह स्पर्श शीध्र ही तुम्हारे ह्रदय में पहुंच जाएगा। और तुम्हें उसकी गुणवत्ता महसूस हो सकती है। अगर तुम किसी मस्तिष्क वाले व्यक्ति का हाथ अपने हाथ में लोगे तो उसका हाथ ठंडा होगा—शारीरिक रूप से नहीं, भावात्मक रूप से। उसके हाथ में एक तरह का मुर्दा पन होगा। और अगर वह व्यक्ति ह्रदय वाला है तो उसके हाथ में एक ऊष्मा होगी; तब उसका हाथ तुम्हारे साथ पिघलने लगेगा। उसके हाथ से कोई चीज निकलकर तुम्हारे भीतर बहने लगेगी। और तुम दोनों के बीच एक तालमेल होगा। ऊष्मा का संवाद होगा।

यह ऊष्मा ह्रदय से आ रही है। यह मस्तिष्क से नहीं आ सकती, क्योंकि मस्तिष्क सदा ठंडा और हिसाबी है। ह्रदय ऊष्मा वाला है। वह हिसाबी नहीं है। मस्तिष्क सदा यह सोचता है कि कैसे ज्यादा लें। ह्रदय का भाव रहता है कि कैसे ज्यादा दें। वह जो ऊष्मा है वह दान है—ऊर्जा का दान, आंतरिक तरंगों का दान, जीवन का दान। यही वजह है कि तुम्हें उसमे एक गहरे घुलने का अनुभव होगा।

स्पर्श करो, छुओ। आँख बंद करो और किसी चीज को स्पर्श करो। अपने प्रेमी या प्रेमिका को छुओ, अपनी मां को या बच्चे को छुओ। या मित्र को, या वृक्ष फूल या महज धरती को छुओ। आंखें बंद रखो। और धरती और अपने ह्रदय के बीच, प्रेमिका और अपने बीच होते आंतरिक संवार को महसूस करो। भाव करो कि तुम्हारा हाथ ही तुम्हारा ह्रदय है। जो धरती को स्पर्श करने को बढ़ा है। स्पर्श की अनुभूति को ह्रदय से जुड़ने दो।

तुम संगीत सुन रहे हो, उसे मस्तिष्क से मत सुनो। अपने मस्तिष्क को भूल जाओ और समझो कि मैं बिना मस्तिष्क के हूं। मेरा कोई सिर नहीं है। अच्छा है कि अपने सोने के कमरे में अपना एक चित्र रख लो जिसमें सिर न हो। उस पर ध्यान को एकाग्र करो और भाव करो कि तुम बिना सिर के हो। सिर को आने ही मत दो और संगीत को ह्रदय से सुनो। भाव करो कि संगीत तुम्हारे ह्रदय में जा रहा है। ह्रदय को संगीत के साथ उद्वेलित होने दो। तुम्हारी इंद्रियों को भी ह्रदय से जुड़ने दो, मस्तिष्क से नहीं।

यह प्रयोग सभी इंद्रियों के साथ करो, और अधिकाधिक भाव करो। के प्रत्येक ऐंद्रिक अनुभव ह्रदय में जाता है और विलीन हो जाता है।

''हे भगवती, जब इंद्रियाँ ह्रदय में विलीन हों, कमल के केंद्र पर पहुँचों।''

ह्रदय ही कमल है। और इंद्रियाँ कमल के द्वार है, कमल का पंखुडियां है। पहली बात कि अपनी इंद्रियों को ह्रदय के साथ जुड़ने दो। और दूसरी कि सदा भाव करो कि इंद्रियाँ सीधे ह्रदय में गहरी उतरती है। और उसमे धुल मिल रही है। जब ये दो काम हो जाएंगे तभी तुम्हारी इंद्रियाँ तुम्हारी सहायता करेंगी। तब वे तुम्हें तुम्हारे ह्रदय तक पहुंचा देंगी। और तुम्हारा ह्रदय कमल बन जाएगा।

यह ह्रदय कमल तुम्हें तुम्हारा केंद्र देगा। और जब तुम अपने ह्रदय के केंद्र को जान लोगे तब नाभि केंद्र को पाना बहुत आसान हो जाएगा। यह बहुत आसान है। यह सूत्र उसकी चर्चा भी नहीं करता। उसकी जरूरत नहीं है। अगर तुम सच में और समग्रता से ह्रदय में विलय हो गए, और बुद्धि ने काम करना छोड़ दिया तो तुम नाभि केंद्र पर पहुंच जाओगे।

ह्रदय ने नाभि की और द्वारा खुलता है। सिर्फ सिर से नाभि की और जाना कठिन है। या अगर तुम कहीं सिर और ह्रदय के बीच में हो तो नाभि पर जाना कठिन है। एक बासर तुम ह्रदय में विलय हो जाओ तो तुम ह्रदय के पार नाभि-केंद्र में उतर गए। और वही बुनियादी है। मौलिक है।

यही कारण है कि प्रार्थना काम करती है। और इसी कारण से जीसस कह सके कि प्रेम ईश्वर है। यह बात पूरी-पूरी सही नहीं है, लेकिन प्रेम द्वार है। अगर तुम किसी के गहरे प्रेम में हो—किसके प्रेम में हो महत्व का नहीं है, प्रेम ही महत्व का है—इतने प्रेम में कि संबंध मस्तिष्क का न रहे, सिर्फ हृदय काम करे, तो यही प्रेम प्रार्थना बन जाएगा। और तुम्हारा प्रेमी या प्रेमिका भगवती बन जाएगी।

सच तो यह है कह हृदय की आँख और कुछ नहीं देख सकती है। यह बात तो साधारण प्रेम में भी घटित होती है। अगर तुम किसी के प्रेम में पड़ते हो तो वह तुम्हारे लिए दिव्य हो उठता है। हो सकता है कि यह भाव बहुत स्थायी न हो और बहुत गहरा भी नहीं, लेकिन तत्क्षण तो प्रेमी या प्रेमिका दिव्य हो उठती है। देर-अबेर बुद्धि आकर पूरी चीज को नष्ट कर देगी। क्योंकि बुद्धि हस्तक्षेप कर सब व्यवस्था बिठाने लगेगी। उसे प्रेम की भी व्यवस्था बिठानी पड़ती है। और एक बार बुद्धि व्यवस्थापक हुई कि सब चीजें नष्ट हो जाती है।

आगर तुम सिर की व्यवस्था के बिना प्रेम में हो सको तो तुम्हारा प्रेम अनिवार्यत: प्रार्थना बनेगा। और तुम्हारी प्रेमिका द्वार बन जाएगी। तुम्हारा प्रेम तुम्हें हृदय में केंद्रित कर देगा। और एक बार तुम हृदय में केंद्रित हुए कि तुम अपने ही आप नाभि केंद्र में गहरे उतर जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-17 (ओशो)

केंद्रित होने की पांचवी विधि:
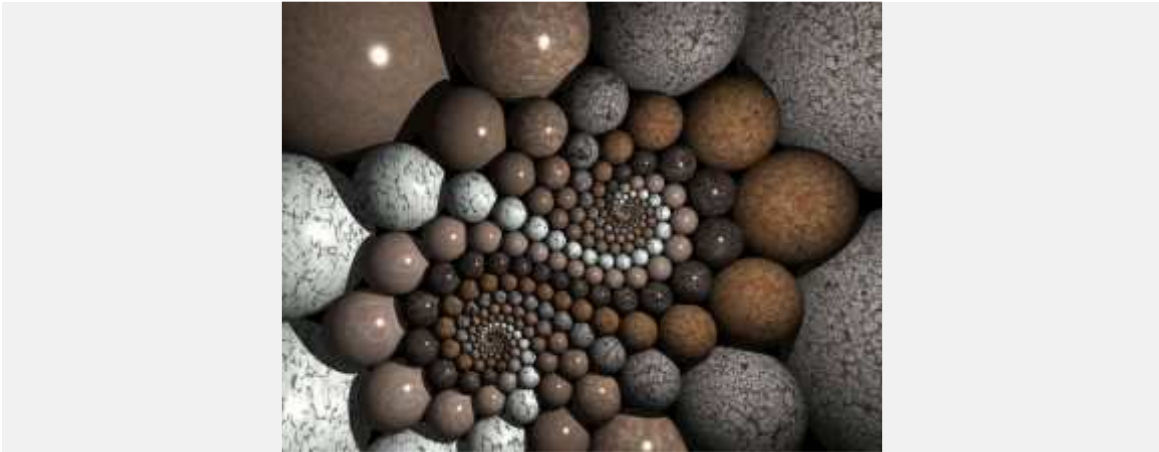
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र
(तंत्र-सूत्र—भाग-1)
प्रवचन-9

''मन को भूलकर मध्य में रहो—जब तक।''

यह सूत्र इतना ही है। किसी भी वैज्ञानिक सूत्र की तरह यह छोटा है, लेकिन ये थोड़ से शब्द भी तुम्हारे जीवन को समग्ररतः: बदल सकते है।

''मन को भूल कर मध्य में रहो—जब तक।''

''मध्य में रहो।''—बुद्ध ने अपने ध्यान की विधि इसी सूत्र के आधार पर विकसित की। उनका मार्ग मज्झम निकाय या मध्य मार्ग कहलाता है। बुद्ध कहते है, सदा मध्य में रहो, प्रत्येक चीज में।

एक बार राजकुमार श्रोण दीक्षित हुआ, बुद्ध ने उसे सन्यास में दीक्षित किया। वह राजकुमार अद्भुत व्यक्ति था। और जब वह संन्यास में दीक्षित हुआ तो सारा राज्य चकित रह गया। लोगों को यकीन नहीं हुआ कि राजकुमार श्रोण संन्यासी हो गया। किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। क्योंकि श्रोण पूरा सांसारिक था। भोग-विलास में सर्वथा लिप्त रहता था। सारा दिन सूरा और सुंदरी ही उसका संसार थी।
तभी अचानक एक दिन बुद्ध उसके नगर में आए। राजकुमार श्रोण उनके दर्शन को गया। वह बुद्ध के चरणों में गिरा और बोला कि मुझे दीक्षित कर लें, मैं संसार छोड़ दूँगा।

जो लोग उसके साथ आए थे उन्हें भी इसकी खबर नहीं थी। ऐसी अचानक घटना थी यह। उन्होंने बुद्ध से पूछा कि यह क्या हो रहा है। यह तो चमत्कार है। श्रोण उस कोटि का व्यक्ति नहीं है। वह तो भोग विलास में रहा है। यह तो चमत्कार है। हमने तो कल्पना भी नहीं की थी कि श्रोण संन्यासी होगा। यह क्या हो रहा है। आपने कुछ कर दिया है।

बुद्ध ने कहा कि मैंने कुछ नहीं किया है। मन एक अति से दूसरी अति पर जा सकता है। वह मन का ढंग है। एक अति से दूसरी अति पर जाना। श्रोण कुछ नया नहीं कर रहा है। यह होना ही था। क्योंकि तुम मन के नियम नहीं जानते, इसलिए तुम चकित हो रहे हो।

मन एक अति से दूसरी अति पर गति करता रहता है। मन का यही ढंग है। यह रोज-रोज होता है। जो आदमी धन के पीछे पागल था वह अचानक सब कुछ छोड़कर नंगा फकीर हो जाता है। हम सोचते है कि चमत्कार हो गया। लेकिन यह सामान्य नियम के सिवाय कुछ नहीं है। जो आदमी धन के पीछे पागल नहीं है। उसके यह उपेक्षा नहीं की जा सकती है कि वह त्याग करेगा। क्योंकि तुम एक अति से ही दूसरी अति पर जा सकेत हो। वैसे ही जैसे घड़ी का पैंडुलम एक अति से दूसरी अति पर डोलता रहता है।

इसलिए जो आदमी धन के लिए पागल था वह पागल होकर धन के खिलाफ जाएगा। लेकिन उसका पागलपन कायम रहेगा। वही मन है। जो आदमी कामवासना के लिए जीता था वह ब्रह्मचारी हो जा सकता है। एकांत में चला जा सकता है। लेकिन उसका पागलपन कायम रहेगा। पहले वह कामवासना के लिए जीता था अब वह कामवासना के खिलाफ होकर जिएगा। लेकिन उसका रूख उसकी दृष्टि वहीं की वहीं रहेगी। इसलिए ब्रह्मचारी सच में कामवासना के पार नहीं गया है। उसका पूरा चित काम-वासना प्रधान हे। वह सिर्फ विरूद्ध हो गया है। उसने काम का अतिक्रमण नहीं किया है। अतिक्रमण का मार्ग सदा मध्य में है। वह कभी अति में नहीं है।

तो बुद्ध ने कहा कि यह होना ही था। यह कोई चमत्कार नहीं है। मन ऐसे ही व्यवहार करता है।

श्रोण भिक्खु बन गया, संन्यासी हो गया। शीध्र ही बुद्ध के दूसरे शिष्यों ने देखा कि वह दूसरी अति पर जा रहा था। बुद्ध ने किसी को नग्न रहने को नहीं कहा था, लेकिन श्रोण नग्न रहने लगा। बुद्ध नग्नता के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने कहा कि यह

दूसरी अति है। लोग है जो कपड़ों के लिए ही जीते है, मानों वही उनका जीवन हो। और ऐसे लोग भी है जो नग्न हो जाते है। लेकिन दोनों वस्त्रों में विश्वास करते है।

बुद्ध ने कभी नग्नता की शिक्षा नहीं दी। लेकिन श्रोण नग्न हो गया। वह बुद्ध का अकेला शिष्य था जो नग्न हुआ। श्रोण आत्म उत्पीड़न में भी गहरे अतर गया। बुद्ध ने अपने संन्यासियों को दिन में एक बार भोजन की व्यवस्था दी थी। लेकिन श्रोण दो दिनों में एक बार भोजन लेने लगा। वह बहुत दुर्बल हो गया। दूसरे भिक्षु पेड़ की छाया में ध्यान करते। लेकिन श्रोण कभी छाया में नहीं बैठता था। वह सदा कड़ी घूप में रहता था। वह बहुत सुंदर आदमी था, उसकी देह बहुत सुंदर थी। लेकिन छह महीने के भीतर पहचानना मुश्किल हो गया कि यह वही आदमी है। वह कुरूप, काला, झुलसा-झुलसा दिखने लगा।

एक रात बुद्ध श्रोण के पास गए और उससे बोले: श्रोण मैंने सूना है कि जब तुम राजकुमार थे, तब तुम्हें वीणा बजाने का शोक था। और तुम एक कुशल वीणावादक और बड़े संगीतज्ञ थे। तो मैं तुमसे एक प्रश्न पूछने आया हूं। अगर वीणा के तार बहुत ढीले हो तो क्या होता है? अगर तार ढीले होंगे तो कोई संगीत संभव नहीं है।

और फिर बुद्ध ने पूछा कि अगर तार बहुत कसे हों तो क्या होगा? श्रोण ने कहा कि तब भी संगीत नहीं पैदा होगा। तारों को मध्य में होना चाहिए। वे न ढीले हो और न कसे हुए, ठीक मध्य में हो। और श्रोण ने कहा कि वीणा बजाना तो आसान है। लेकिन एक परम संगीतज्ञ ही तारों को मध्य में रख सकता है।

तो बुद्ध ने कहा कि छह महीनों तक तुम्हारा निरीक्षण करने के बाद मैं तुमसे यही कहने आया हूं, कि जीवन में भी संगीत तभी जन्मता है जब उसके तार न ढीले हो और न कसे हुए ठीक मध्य में हों। इसलिए त्याग करना आसान है, लेकिन परम कुशल ही मध्य में रहना जानता है। इसलिए श्रोण, कुशल बनो और जीवन के तारों को मध्य में, ठीक मध्यम में रखो। इस या उस अति पर मत जाओ। और प्रत्येक चीज के दो छोर है, दो अतियां है। लेकिन तुम्हें सदा मध्य में रहना है।

लेकिन मन बहुत बेहोश है। इसलिए सूत्र में कहा गया है: ''मन को भूलकर।'' तुम यह बात सुन भी लोगे, तुम इसे समझ भी लोगे, लेकिन मन उसको नहीं ग्रहण करेगा। मन सदा अतियों को चुनता है। मन में अतियों के लिए बड़ा आकर्षण है। मोह है। क्यों? क्योंकि मध्य में मन की मृत्यु हो जाती है।

घड़ी के पैंडुलम को देखो। अगर तुम्हारे पास कोई पुरानी घड़ी हो तो उसके पैंडुलम को देखो। पैंडुलम सारा दिन चलता रहता है। यदि वह अतियों तक आता जाता रहे। जब वह बांए जाता है तब दांए जाने के लिए शक्ति अर्जित कर रहा है। जब वह दांए जा रहा है तो मत सोचो की वह दांए जा रहा है। वह बांए जाने के लिए ऊर्जा इकट्ठी कर रहा है। अतियां ही दांए-बांए है। पैंडुलम को बीच में ठहरने दो और सब गति बंद कर दो, तब पैंडुलम में उर्जा नहीं रहेगी। क्यों‍कि उर्जा तो एक अति से आ रही थी। एक अति से दूसरी अति उसे दूसरी अति की और फेंकती है। उससे एक वर्तुल बनता है। और पैंडुलम गतिमान होता है। उसको बीच में होने दो और तब सब गति ठहर जाएगी।

मन पैंडुलम की भांति है। और अगर तुम इसका निरीक्षण करो तो रोज ही इसका पता चलेगा। तुम एक अति के पक्ष में निर्णय लेते हो और तब तुम दूसरी अति की और जाने लगते हो। तुम अभी क्रोध करते हो, फिर पश्चाताप करते हो। तुम कहते हो, नहीं, बहुत हुआ, अब में कभी क्रोध न करूंगा। लेकिन तुम कभी अति को नहीं देखते।

यह ''कभी नहीं'' अति है। तुम कैसे निशचित हो सकते हो कि तुम कभी नहीं क्रोध करोगे। तुम कह क्या रहे है? एक बार और सोचो। कभी नहीं? अतीत में जाओ और याद करो कि कितनी बार तुमने निश्चय किया है। कि मैं कभी क्रोध नहीं करूंगा। जब तुम कहते हो कि मैं कभी क्रोध नहीं करूंगा। तो तुम नहीं जानते हो कि क्रोध करते समय। ही तुमने दूसरे छोर पर जाने की ऊर्जा इकट्ठी कर ली थी। अब तुम पश्चाताप कर रहे हो। अब तुम्हें बुरा लग रहा है। तुम्हारी आत्म छवि हिल गई है। गिर गई

है। अब तुम नहीं कह सकते कि मैं अच्छा आदमी हूं। धार्मिक आदमी हूं। मैंने क्रोध किया और धार्मिक व्यक्ति क्रोध नहीं करता। है। अच्छा आदमी क्रोध कैसे करेगा? तो तुम अपनी अच्छाई को वापस पाने के लिए पश्चाताप करते हो। कम से कम अपनी नजर में तुम्हें लगेगा कि मैंने पश्चाताप कर लिया, चैन हो गया और अब फिर क्रोध नहीं होगा। इससे तुम्हारी हिली हुई आत्म-छवि पुरानी अवस्था में लौट आएगी। अब तुम चैन महसूस करोगे। क्योंकि अब तुम दूसरी अति पर चले गए।

लेकिन जो मन कहता है कि अब मैं फिर कभी क्रोध नहीं करूंगा। वह फिर क्रोध करेगा। अब जब तुम फिर क्रोध में होगें तो तुम अपने पश्चाताप को, अपने निर्णय को, सब को बिलकुल भूल जाओगे। और क्रोध के बाद फिर वह निर्णय लौटेगा। और पश्चाताप वापस आएगा। और तुम कभी उसके धोखे को नहीं समझ पाओगे। ऐसा सदा हुआ है। मन क्रोध से पश्चाताप और पश्चाताप से क्रोध के बीच डोलता रहता है।

बीच में रहो। न क्रोध करो, न पश्चाताप करो। और अगर क्रोध कर गए तो कृपा कर क्रोध ही करो। पश्चाताप मत करो। दूसरी अति पर मत जाओ। बीच में रहो। कहो कि मैंने क्रोध किया है। मैं बुरा आदमी हूं। हिंसक हूं। मैं ऐसा ही हूं। लेकिन पश्चाताप मत करो। दूसरी अति पर मत जाओ। मध्य में रहो। और अगर तुम मध्य में रह सके तो फिर तुम क्रोध करने के लिए ऊर्जा इकट्ठी नहीं कर पाओगे।

इसलिए यह सूत्र कहता है: ''मन को भूलकर मध्य में रहो—जब तक।''

इस ''जब तक'' का क्या मतलब है? मतलब यह है कि जब तक तुम्हारा विस्फोट न हो जाए। मतलब यह है कि तब तक मध्य में रहो जब तक मन की मृत्यु न हो जाए। तब तक मध्य में रहो जब तक मन अ-मन न हो जाए। अगर मन अति पर है तो अ-मन मध्य में होगा।

लेकिन मध्य में होना संसार में सबसे कठिन काम है। दिखता तो सरल है। दिखता तो यह आसान है। तुम्हें लगेगा कि मैं कर सकता हूं, और तुम्हें यह सोचकर लगेगा कि पश्चाताप की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन प्रयोग करो। और तब तुम्हें पता चलेगा। कि जब क्रोध करोगे तो मन पश्चाताप करने पर जोर देगा।

पति-पत्नियों का झगड़ा सदा से चलता आया है। और सदियों से महापुरुष और सलाहकार समझा रहे है कि कैसे रहें और प्रेम करें। और यह झगड़ा जारी है। पहली बार फ्रायड को इस तथ्य को बोध हुआ। कि जब भी तुम प्रेम, तथाकथित प्रेम में होओगे। तुम्हें धृणा में भी होना पड़ेगा। सुबह प्रेम करोगे और श्याम घृणा करोगे। और इस तरह पैंडुलम हिलता रहेगा। प्रत्येक पति-पत्नी को इसका पता है। लेकिन फ्रायड की अनंतदृष्टि बड़ी अद्भुत है। वह कहता है कि अगर किसी दंपति ने झगड़ा बंद कर दिया है तो समझो कि उनका प्रेम मर गया। घृणा और लड़ाई। के साथ जो प्रेम है, वह मर गया।

अगर किसी जोड़े का तुम देखो कि वह कभी लड़ता नहीं है तो यह मत समझो कि यह आदर्श जोड़ा है। उसका इतना ही अर्थ है कि यह जोड़ा ही नहीं है। वे समांतर रह रहे है। लेकिर साथ-साथ नहीं रहते। वे समांतर रेखाएं है। जो कहीं नहीं मिलती। लड़ने के लिए भी नहीं। वे दोनों साथ रहकर भी अकेले-अकेले है—अकेले-अकेले और समांतर।

मन विपरीत पर गति करता है। इसलिए अब मनोविज्ञान के पास दंपतियों के लिए बेहतर निदान है—बेहतर और गहरा। वह कहता है। कि अगर तुम सचमुच प्रेम-इसी मन के साथ—करना चाहते हो तो लड़ने झगड़ने से मत डरों। सच तो यह है कि तुम्हें प्रामाणिक ढंग से लड़ना चाहिए। ताकि तुम प्रामाणिक प्रेम के दूसरे छोर को प्राप्त कर सको। इसलिए अगर तुम अपनी पत्नी के लड़ रहे हो तो लड़ने से चूको मत। अन्यथा प्रेम से भी चूक जाओगे। झगड़े से बचो मत। उसका मौका आए तो अंत तक लड़ों। तभी संध्या आते-आते तुम फिर प्रेम करने योग्य हो जाओगे। मन तब तक शक्ति जुटा लेगा।

सामान्य प्रेम संघर्ष के बिना नहीं जी सकता। क्योंकि उसमे मन की गति संलग्न है। सिर्फ वही प्रेम संघर्ष के बिना जिएगा जो कि मन का नहीं है। लेकिन वह बात ही और है। बुद्ध का प्रेम और ही बात है।

लेकिन अगर बुद्ध तुम्हें प्रेम करें तो तुम बहुत अच्छा नहीं महसूस करोगे। क्यों? क्योंकि उसमें कुछ दोष नहीं रहेगा। वह मीठा ही मीठा होगा। और उबाऊ होगा। क्योंकि दोष तो झगड़े से आता है। बुद्ध क्रोध नहीं कर सकते। वे केवल प्रेम कर सकते है। तुम्हें उनका प्रेम पता नहीं चलेगा। क्योंकि पता तो विरोध में विपरीतता में चलता है।

जब बुद्ध बाहर वर्षों के बाद अपने नगर वापस आए तो उनकी पत्नी उनके स्वागत को नहीं आई। सारा नगर उनके स्वागत के लिए इकट्ठा हो गया, लेकिन उनकी पत्नी नहीं आई। बुद्ध हंसे। और उन्होंने अपने मुख्य शिष्य आनंद से कहा कि यशोधरा नहीं आई, मैं उसे भली-भांति जानता हूं। ऐसा लगता है कि वह मुझे अभी भी प्रेम करती है। वह मानिनी है, वह आहत अनुभव कर रही है। मैं तो सोचता था बाहर वर्ष का लम्बा समय है, वह अब प्रेम में न होगी। लेकिन मालूम होता है कि यह अब भी प्रेम में है। अब भी क्रोध में है। वह मुझे लेने नहीं आई, मुझे ही उसके पास जाना होगा।

और बुद्ध गए। आनंद भी उनके साथ था। आनंद को एक वचन दिया हुआ था। जब आनंद ने दीक्षा ली थी तो उसने एक शर्त रखी—और बुद्ध ने मान ली। कि मैं सदा आपके साथ रहूंगा। वह बुद्ध का बड़ा चचेरा भाई था। इसलिए उन्हें मानना पडा था। सो आनंद राजमहल तक उनके साथ गया। वहां बुद्ध ने उनसे कहां। कि कम से कम यहां तुम मेरे साथ मत चलो। क्योंकि यशोधरा बहुत नाराज होगी। मैं बाहर वर्षों के बाद लौट रहा हूं। और उसे खबर किए बिना यहाँ से चला गया था। वह अब भी नाराज है। तो तुम मेरे साथ मत चलो, अन्यथा वह समझेगा कि मैंने उसे कुछ कहने का भी अवसर नहीं दिया। वह बहुत कुछ कहना चाहती होगी। तो उसे क्रोध कर लेने दो, तुम कृपा इस बार मेरे साथ मत आओ।

बुद्ध भीतर गए। यशोधरा ज्वालामुखी बनी बैठी थी। वह फूट पड़ी। वह रोने चिल्लाने लगी। बकने लगी, बुद्ध चुपचाप बैठे सुनते रहे। धीरे-धीरे वह शांत हुई और तब वह समझी कि उस बीच बुद्ध एक शब्द भी नहीं बोले। उसने अपनी आंखें पोंछी और बुद्ध की और देखा।

बुद्ध ने कहा कि मैं यह कहने आया हूं कि मुझे कुछ मिला है, मैंने कुछ जाना है। मैंने कुछ उपल्बध किया है। अगर तुम शांत होओ तो मैं तुम्हें वह संदेश, वह सत्य दूँ, जो मुझे उपलब्ध हुआ है। मैं इतनी देर इसलिए रुका रहा कि तुम्हारा रेचन हो जाए। बारह साल लंबा समय है। तुमने बहुत घाव इकट्ठे किए होंगे। और तुम्हारा क्रोध समझने योग्य है। मुझे इसकी प्रतीक्षा थी। उसका अर्थ है कि तुम अब भी मुझे प्रेम करती हो। लेकिन इस प्रेम के पार भी एक प्रेम है, और उसी प्रेम के कारण मैं तुम्हें कुछ कहने वापस आया हूं।

लेकिन यशोधरा उस प्रेम को नहीं समझ सकी। इसे समझना कठिन है। क्योंकि यह इतना शांत है। यह प्रेम इतना शांत है। कि अनुपस्थित सा लगता है।

जब मन विसर्जित होता है तो एक और ही प्रेम घटित होता है। लेकिन उस प्रेम का कोई विपरीत पक्ष नहीं है। विरोधी पक्ष नहीं है। जब मन विसर्जित होता है तब जो भी घटित होता है उसका विपरीत पक्ष नहीं रहता। मन के साथ सदा उसका विपरीत खड़ा रहता है। और मन एक पैंडुलम की भांति गति करता है।

यह सूत्र अद्भुत है। उससे चमत्कार घटित हो सकता है।

''मन को भूलकर मध्य में रहो—जब तक।''

इस प्रयोग में लाओ। और यह सूत्र तुम्हारे पूरे जीवन के लिए है। ऐस नहीं है कि उसका अभ्यास यदा-कदा किया और बात खत्म हो गई। तुम्हें निरंतर इसका बोध रखना होगा। होश रखना होगा। काम करते हुए चलते हुए, भोजन करते हुए। संबंधों में, सर्वत्र मध्य में रहो। प्रयोग करके देखो और तुम देखोगें कि एक मौन, एक शांति तुम्हें घेरने लगी है और तुम्हारे भीतर एक शांत केंद्र निर्मित हो रहा है।

अगर ठीक मध्य में होने में सफल न हो सको तो भी मध्य में होने की कोशिश करो। धीरे-धीरे तुम्हें मध्य की अनुभूति होने लगेगी। जो भी हो, घृणा या प्रेम, क्रोध या पश्चाताप, सदा ध्रुवीय विपरीतताओं को ध्यान में रखो और उनके बीच मे रहो। और देर अबेर तुम ठीक मध्य को पा लोगे।

और एक बार तुमने इसे जान लिया तो फिर तुम उसे नहीं भूलोगे। क्योंकि मध्य बिंदू मन के पार है। और वह मध्य बिंदु अध्यात्म का सार सूत्र है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-18 (ओशो)

केंद्रित होने की छठवीं विधि:
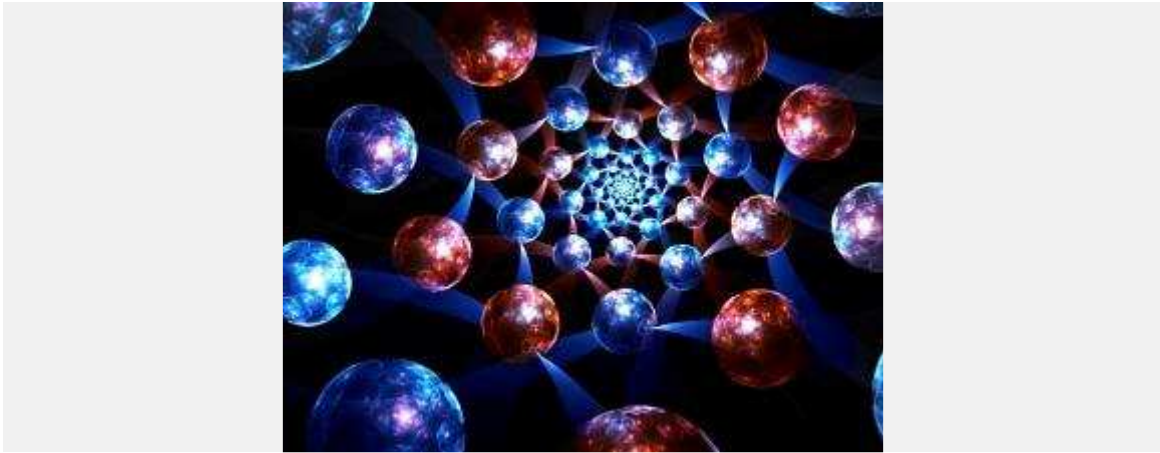
तंत्र-सूत्र—विधि-18 (ओशो) किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो;……….

”किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो; दूसरे विषय पर मत जाओ। यहीं विषय के मध्य में—आनंद।”
मैं फिर दोहराता हूं: ‘’किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो, दूसरे विषय पर मत जाओ, किसी दूसरे विषय पर ध्यान मत ले जाओ, यही विषय के माध्य में—आनंद।

‘’किसी विषय को प्रेम पूर्ण देखो……..।‘’

प्रेमपूर्वक में कुंजी है। क्या तुमने कभी किसी चीज को प्रेमपूर्वक देखा है? तुम हां कह सकते हो, क्योंकि तुम नहीं जानते कि किसी चीज को प्रेमपूर्वक देखने का क्या अर्थ है। तुमने किसी चीज को लालसा-भरी आंखों से देखा होगा। कामना पूर्वक देखा होगा। वह दूसरी बात है। वह बिलकुल भिन्न विपरीत बात है। पहले इस भेद को समझो।
तुम एक सुंदर चेहरे को, सुंदर शरीर को देखते हो और तुम सोचते हो कि तुम उसे प्रेमपूर्वक देख रहे हो। लेकिन तुम उसे क्यों देख रहे हो? क्या तुम उससे कुछ पाना चाहते हो? तब वह वासना है, कामना है, प्रेम नहीं है। क्या तुम उसका शोषण करना चाहते हो? तब वह वासना है, प्रेम नहीं। तब तुम सच में यह चाहते हो कि मैं कैसे इस शरीर को उपयोग में लाऊं, कैसे इसका मालिक बनूं। कैसे इसे अपने सुख का साधन बना लूं।

वासना का अर्थ है कि कैसे किसी चीज को अपने सुख के लिए उपयोग में लाऊं। प्रेम का अर्थ है कि उससे मेरे सुख का कुछ लेना देना नहीं है। सच तो यह है कि वासना कुछ लेना चाहती है। और प्रेम कुछ देना चाहता है। वे दोनों सर्वथा एक दूसरे के प्रतिकूल है।

अगर तुम किसी सुंदर व्यक्ति को देखते हो और उसके प्रति प्रेम अनुभव करते हो तो तुम्हारी चेतना में तुरंत भाव उठेगा। कि कैसे इस व्यक्ति को, इस पुरूष या स्त्री को सुखी करूं। यह फिक्र अपनी नहीं, दूसरे की है। प्रेम में दूसर महत्वपूर्ण है; वासना में तुम महत्वपूर्ण हो। वासना में तुम दूसरें को साधन बनाने की सोचते हो; और प्रेम में तुम स्वयं साधन बनने की सोचते हो। वासना में तुम दूसरे को पोंछ देना चाहते हो। प्रेम में तुम स्वयं मिट जाना चाहते हो। प्रेम का अर्थ है देना। वासना का अर्थ है लेना। प्रेम समर्पण है; वासना आक्रमण है।

तुम क्या कहते हो, उसका कोई अर्थ नहीं है। वासना में भी तुम प्रेम की भाषा काम में लाते हो। तुम्हारी भाषा का बहुत मतलब नहीं है। इसलिए धोखे में मत पड़ो। भीतर देखो और तब तुम समझोगे कि तुमने जीवन में एक बार भी किसी व्यक्ति या वस्तु को प्रेमपूर्वक नहीं देखा है।

एक दूसरा भेद भी समझ लेने जैसा है।

सूत्र कहता है: ''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो......।''
असल में तुम किसी पार्थिव, जड़ वस्तु को भी प्रेमपूर्वक देखो तो वह वस्तु व्यक्ति बन जाती है। तुम्हारा प्रेम वस्तु को भी व्यक्ति में रूपांतरित करने की कुंजी है। अगर तुम वृक्ष को प्रेमपूर्वक देखो तो वृक्ष व्यक्ति बन जाता है।

उस दिन मैं विवेक से बात करता था। मैंने उससे कहा कि जब हम नए आश्रम में जाएंगे तो वहां हम हरेक वृक्ष को नाम देंगे। क्योंकि हरेक वृक्ष व्यक्ति है। क्या कभी तुमने सुना है कि कोई वृक्षों को नाद दे? कोई वृक्षों को नाम नहीं देता। क्योंकि कोई वृक्षों को प्रेम नहीं करता। अगर प्रेम करे तो व्यक्ति बन जाए। तब वह भीड़ का, जंगल का हिस्सा नहीं रहा। वह अनूठा हो गया।

तुम कुत्तों और बिल्लियों को नाम देते हो। जब तुम कुत्ते को नाम देते हो, उसे ''टाइगर'' कहते हो, तो कुत्ता व्यक्ति बन जाता है। तब वह बहुत से कुत्तों में एक कुत्ता नहीं रहा। तब उसको व्यक्तित्व मिल गया। तुमने निर्मित कर दिया। जब भी तुम किसी चीज को प्रेमपूर्वक देखते हो वह चीज व्यक्ति बन जाती है।

और इसका उलटा भी सही है। जब तुम किसी व्यक्ति को वासना पूर्वक देखते हो तो वह व्यक्ति वस्तु बन जाता है। यही कारण है कि वासना भरी आंखों में विकर्षण होता है। क्योंकि कोई भी वस्तु होना नहीं चाहता। जब तुम अपनी पत्नी को, या किसी दूसरी स्त्री को, या पुरूष को, वासना की दृष्टि से देखते हो, तो उसके दूसरे को चोट पहुँचती है। तुम असल में क्या कर

रह हो? तुम एक जीवित व्यक्ति को मृत साधन में, यंत्र में बदल रहे हो। ज्यों ही तुमने सोचा कि कैसे उसका उपयोग करें कि तुमने उसकी हत्या कर दी।

यही कारण है कि वासना भरी आंखें विकर्षण होती है। कुरूप होती है। और जब तुम किसी को प्रेम से भरकर देखते हो। तो दूसरा ऊँचा उठ जाता है। वह अनूठा हो जाता है। अचानक वह व्यक्ति हो उठता है।

एक वस्तु बदली जा सकती है। ठीक उसकी जगह वैसी ही चीज लाई जा सकती है। लेकिन उसी तरह एक व्यक्ति नहीं बदला जा सकता। वस्तु का अर्थ है जो बदली जा सके; व्यक्ति का अर्थ है जो नहीं बदला जा सके। किसी पुरूष या स्त्री के स्थान पर ठीक वैसा ही पुरूष या स्त्री नहीं लायी जा सकती है। हर एक व्यक्ति अनूठा है। वस्तु नहीं।

प्रेम किसी को भी अनूठा बना देता है। यही कारण है कि प्रेम के बिना तुम नहीं महसूस करते कि मैं व्यक्ति हूं। जब तक कोई तुम्हें गहन प्रेम न करे, तुम्हारे अनूठेपन का एहसास ही नही होता। तब तक तुम भीड़ के हिस्से हो—एक नंबर, एक संख्या। और तुम बदले जा सकते हो।

यह सूत्र कहता है: ''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो..........।''
यह किसी विषय या व्यक्ति में कोई फर्क नहीं करता। उसकी जरूरत नहीं है। क्योंकि जब तुम प्रेमपूर्वक देखते हो तो कोई भी चीज व्यक्ति हो उठती है। यह देखना ही बदलता है, रूपांतरित करता है।

तुमने देखा हो या न देखा हो, जब तुम किसी खास कार को, समझो वह फिएट है, चलाते हो तो क्या होता है। एक ही जैसे हजारों-हजार फिएट है, लेकिन तुम्हारी कार, अगर तुम पनी कार को प्रेम करते हो, अनूठी हो जाती है। व्यक्ति बन जाती है। उसे बदला नहीं जा सकता; एक नाता-रिश्ता निर्मित हो गया। अब तुम इस कार को एक व्यक्ति समझते हो।

अगर कुछ गड़बड़ हो जाए, जरा सी आवाज आने लगे, तो तुम्हें तुरंत उसका एहसास होता है। और कारें बहुत तुनकमिज़ाज होती है। तुम अपनी कार के मिज़ाज से परिचित हो कि कब वह अच्छा महसूस करती है। और कब बुरा। धीरे-धीर कार व्यक्ति बन जाती है। क्यो?

अगर प्रेम का संबंध है तो कोई भी चीज व्यक्ति बन जाती है। और अगर वासना का संबंध हो तो व्यक्ति भी वस्तु बन जाता है। और यह बड़े से बड़ा अमानवीय कृत्य है जो आदमी कर सकता है कि वह किसी को वस्तु बना दे।

''किसी विषय को प्रेमपूर्वक देखो......।''
इसके लिए कोई क्या करे? प्रेम से जब देखते हो तो क्या होता है? पहली बात: अपने को भूल जाओ। अपने को बिलकुल भूल जाओ। एक फूल को देखो और अपने को बिलकुल भूल जाओ। फूल तो हो, लेकिन तुम अनुपस्थित हो जाओ। फूल को अनुभव करो और तुम्हारी चेतना से गहरा प्रेम फूल की और प्रवाहित होगा। और तब अपनी चेतना को एक ही विचार से भर जाने दो कि कैसे मैं इस फूल के ज्यादा खिलनें में, ज्यादा सुंदर होने में, ज्यादा आनंदित होने में सहयोगी हो सकता हूं। मैं क्या कर सकता हूं।

यह महत्व की बात नहीं है कि तुम कुछ कर सकते हो या नहीं। यह प्रासंगिक नहीं है। यह भाव कि मैं क्या कर सकता हूं, यह पीड़ा, गहरी पीड़ा कि इस फूल को ज्यादा सुंदर, ज्यादा जीवंत और ज्यादा प्रस्फुटित बनाने के लिए मैं क्या करू, ज्यादा महत्व की है। इस विचार को आने पूरे प्राणों में गूंजने दो। अपने शरीर और मन के प्रत्येक तंतु को इस विचार से भीगने दो। तब तुम समाधिस्थ हो जाओगे। और फूल एक व्यक्ति बन जाएगा।

''दूसरे विषय पर मत जाओ.....।''
तुम जा नहीं सकते। अगर तुम प्रेम में हो तो नहीं जा सकते। अगर तुम इस समूह में बैठे किसी व्यक्ति को प्रेम करते हो तो तुम्हारे लिए सब भीड़ भूल जाती है और केवल यही चेहरा बचता है। सच में तुम और किसी को नहीं देखते, उस एक चेहरे को ही देखते हो। सब वहां है, लेकिन वे नहीं के बराबर है, वे तुम्हारी चेतना की महज परिधि पर होते है। वे महज छायाएं है। मात्र एक चेहरा रहता है। अगर तुम किसी को प्रेम करते हो तो मात्र वही चेहरा रहता है। इसलिए दूसरे पर तुम नहीं जा सकते।

दूसरे विषय पर मज जाओ। एक के साथ ही रहो। गुलाब के फूल के साथ या अपनी प्रेमिका के चेहरे के साथ रहो। ओर उसके साथ प्रेमपूर्वक रहो। प्रवाहमान रहो। समग्र ह्रदय से उसके साथ रहो। और इस विचार के साथ रहो कि मैं अपनी प्रेमिका को ज्यादा सुखी और आनंदित बनाने के लिए क्या कर सकता हूं।

''यहीं विषय के मध्य में—आनंद।''
और जब ऐसी स्थिति बन जाए कि तुम अनुपस्थित हो, अपनी फिक्र नहीं करते, अपनी सुख संतोष की चिंता नहीं लेते। अपने को पूरी तरह भूल गए हो, जब तुम सिर्फ दूसरे के लिए चिंता करते हो, दूसरा तुम्हारे प्रेम का केंद्र बन गया है। तुम्हारी चेतना दूसरे में प्रवाहित हो रही है। जब गहन करूणा और प्रेम के भाव से तुम सोचते हो कि मैं अपनी प्रेमिका को आनंदित करने के लिए क्या कर सकता हूं। तब इस स्थिति में अचानक, ''यहीं विषय के मध्य में—आनंद, अचानक उप-उत्पति की तरह तुम्हें आनंद उपलब्ध हो जाता है। तब अचानक तुम केंद्रित हो गए।

यह बात विरोधाभासी लगती है। क्योंकि सूत्र कहता है कि अपने को बिलकुल भूल जाओ, आत्म केंद्रित मत बनो। दूसरे में पूरी तरह प्रवेश करो।

बुद्ध निरंतर कहते थे कि जब भी तुम प्रार्थना करो तो दूसरों के लिए करों—अपने लिए नहीं। अन्यथा प्रार्थना व्यर्थ जायेगी।

एक आदमी बुद्ध के पास आया और उसने कहा कि मैं आपके उपदेश को स्वीकार करता हूं, लेकिन उसकी एक बात मानना बहुत कठिन है। आप कहते है जब भी तुम प्रार्थना करो तो अपनी मत सोचो। अपने लिए मत कुछ मांगो। सदा यही कहो कि मेरी प्रार्थना से जो फल आए वह सबको मिले, कोई आनंद उतरे तो वह सब में बंट जाए। उस आमदी ने कहा यह बात भी ठीक है। लेकिन कोई आनंद उतरे तो वह सब में बंट जाए। उस आदमी ने कहा, यह बात भी ठीक है, लेकिन मैं इसमे एक अपवाद, एक ही अपवाद करना चाहूंगा। और वह यह कि यह कृपा मेरे पड़ोसी को न मिले। क्योंकि वह मेरा शत्रु है। यह आनंद मेरे पड़ोसी को छोड़कर सबको प्राप्त हो।

मन आत्म केंद्रित है। बुद्ध ने उस आदमी से कहा कि तब तुम्हारी प्रार्थना व्यर्थ है। अगर तुम सब कुछ सबको बांटने को तैयार नहीं हो तो कुछ भी फल नहीं होगा। और सबमें बांट दोगे तो सब तुम्हारा होगा।

प्रेम में तुम्हें अपनी को भूल जाना है। लेकिन तब यह बात विरोधाभासी लगने लगती है। तब केंद्रित होना कब और कैसे घटित होगा? दूसरे में समग्ररूपेण संलग्न होने से। जब तुम स्वयं को पूरी तरह भूल जाते हो और जब दूसरा ही बचता है, तुम आनंद से आशीर्वाद से भर दिये जाते हो।

क्यो? क्योंकि जब तुम अपनी फिक्र नहीं रहती तो तुम खाली, रिक्त हो जाते हो। तब आंतरिक आकाश निर्मित हो जाता है। जब तुम्हारा मन पूरी तरह दूसरे में संलग्न है तो तुम अपने भीतर मन रहित हो जाते हो। तब तुम्हारे भीतर विचार नहीं रह जाता है। और तब यह विचार भी कि मैं दूसरे को अधिक सूखी अधिक आनंदित बनाने के लिए क्या कर सकता हूं। जाता रहता है, क्योंकि सच में तुम कछ नहीं कर सकते। तब यह विचार विराम बन जाता है। तुम कुछ नहीं कर सकते। क्या कर सकते हो? क्योंकि अगर सोचते हो कि मैं कुछ कर सकता हूं तो अब भी अहंकार की भाषा में सोच रहे हो।

स्मरण रहे, प्रेमपात्र के साथ व्यक्ति बिलकुल असहाय हो जाता है। जब भी तुम किसी को प्रेम करते हो, तुम असहाय हो जाते हो। यही प्रेम की पीड़ा है, कि तुम्हें पता नहीं चलता कि मैं क्या कर सकता हूं। तुम सब कुछ करना चाहोगे, तुम अपने प्रेमी या प्रेमिका को सारा ब्रह्मांड दे देना चाहोगे। लेकिन तुम कर क्या सकते हो? अगर तुम सोचते हो कि यह या वह कर सकते हो तो तुम अभी प्रेम में नहीं हो। प्रेम बहुत असहाय है, बिलकुल असहाय है। और वह असहायपन सुंदर है, क्योंकि उसी असहायपन में तुम समर्पित हो जाते हो।

किसी को प्रेम करो और तुम असहाय अनुभव करोगे। किसी को धृणा करो और तुम्हें लगेगा कि तुम कुछ कर सकते हो। प्रेम करो और तुम बिलकुल असमर्थ हो। तुम क्या कर सकते हो? जो भी तुम कर सकते हो वह इतना क्षुद्र लगता है, इतना अर्थहीन। वह कभी भी पर्याप्त नहीं मालूम होता। कुछ नहीं किया जा सकता। और जब कोई समझता है कि कुछ नहीं किया जा सकता तब वह असहाय अनुभव करता है। जब कोई सब कुछ करना चाहता है और समझता है कि कुछ नहीं किया जा सकता। तब मन रूक जाता है। और इसी असहायावस्था में समर्पण घटित होता है। तुम खाली हो गए।

यही कारण है कि प्रेम गहन ध्यान बन जाता है। अगर सच में तुम किसी को प्रेम करते हो तो किसी अन्य ध्यान की जरूरत न रही। लेकिन क्योंकि कोई भी प्रेम नहीं करता है। इसलिए एक सौ बारह विधियों की जरूरत पड़ी। और वे भी काफी कम है।

उस दिन कोई यहां था। वह कहा रहा था कि इससे मुझे बहुत आशा बंधी है। मैंने पहली दफा आप से ही सुना है कि एक सौ बारह विधियां है। इससे बहुत आशा होती है। लेकिन मन में कही एक विषाद भी उठता है कि क्या कुल एक सौ बारह विधियों से काम चल सकता है। अगर मेरे लिए वह सब की सब व्यर्थ हुई तो क्या होगा? क्या कोई एक सौ तेरहवीं विधि नहीं है?

और वह आदमी सही है। वह सही है। अगर ये एक सौ बारह विधियां तुम्हारे काम न आ सकी तो कोई उपाय नहीं है। इसलिए उसका कहना ठीक है। कि आशा के पीछे-पीछे विषाद भी घेरता है। लेकिन सच तो यह है कि विधियों की जरूरत इसलिए पड़ती है कि बुनियादी विधि खो गई है। अगर तुम प्रेम कर सको तो किसी विधि की जरूरत नहीं है। प्रेम स्वयं सबसे बड़ी विधि है।

लेकिन प्रेम कठिन है, एक तरह से असंभव। प्रेम का अर्थ है अपने को ही अपनी चेतना से निकाल बाहर करना। और उसकी जगह अपने अहंकार की जगह दूसरे को स्थापित करना। प्रेम का अर्थ है अपनी जगह दूसरे को स्थापित करना। मानों कि अब तुम नहीं है। सिर्फ दूसरा है।

ज्याँ पाल सार्त्र कहता है कि दूसर नरक है। और वह सही है। क्योंकि दूसरा तुम्हारे लिए नरक ही बनाता है। लेकिन सार्त्र गलत भी हो सकता है। क्योंकि दूसरा अगर नरक है तो वह स्वर्ग भी हो सकता है।

अगर तुम वासना से जीते हो तो दूसरा नरक है। क्योंकि तुम उस व्यक्ति की हत्या करने में लगे हो, तुम उसे वस्तु में बदलने में लगे हो। तब वह व्यक्ति भी प्रतिक्रिया में तुम्हें वस्तु बनाना चाहेगा। और उससे ही नरक पैदा होता है।

तो सब पति-पत्नी एक दूसरे के लिए नरक पैदा कर रहे है। क्योंकि हरेक दूसरे पर मलकियत करने में लगा है। मलकियत सिर्फ चीजें की हो सकती है। व्यक्तियों की नहीं। तुम किसी वस्तु को तो अधिकार में कर सकते हो, लेकिन किसी व्यक्ति को अधिकार में नहीं कर सकते। लेकिन तुम व्यक्ति पर अधिकार करने की कोशिश करते हो। और उस कोशिश में व्यक्ति बन जाता है। तब तुम भी मुझे वस्तु बनाने की कोशिश करोगे। उससे ही नरक बनता है।

तुम अपने कमरे में अकेले बैठे हो। और तभी तुम्हें अचानक पता चलता है कि कोई चाबी के छेद से भीतर झांक रहा है। गौर से देखो कि क्या होता है। तुम्हें कोई बदलाहट महसूस हुई? तुम क्यों इस झांकने वाले पर नाराज होते हो। उसने तुम्हें वस्तु में

बदल दिया। वह झांक रहा है और झांक कर उसने तुम्हें वस्तु बना दिया। आब्जेक्ट्स बना दिया। उसने ही तुम्हें बेचैनी होती है।

और वही बात उस आदमी के साथ होगी। अगर तुम उस चाबी के छेद के पास आकर बाहर देखने लगो तो दूसरा व्यक्ति घबरा जाएगा। एक क्षण पहले वह द्रष्टा था और तुम दृश्य थे। अब वह अचानक पकड़ा गया। और तुम्हें देखते हुए पकड़ा गया। और अब वही वस्तु बन गया है।

जब कोई तुम्हें देख रहा है तो तुम्हें लगता है कि मेरी स्वतंत्रता बाधित हुई। नष्ट हुई। यही कारण है कि प्रेमपात्र को छोड़कर तुम किसी को घूर नहीं सकते, टकटकी लगाकर देख नहीं सकते। अगर तुम प्रेम में नहीं हो तो वह घूरना कुरूप होगा। हिंसक होगा। हां, अगर तुम प्रेम में हो तो वह घूरना सुंदर है। क्योंकि तब तुम घूरकर किसी को वस्तु में नहीं बदल रहे हो। तब तुम दूसरे की आँख से सीधे झांक सकते हो। तब तुम दूसरे की आँख में गहरे प्रवेश कर सकते हो। तुम उसे वस्तु में नहीं बदलते बल्कि तुम्हारा प्रेम उसे व्यक्ति बना देता है। यही कारण है कि सिर्फ प्रेमियों को घूरना सुंदर होता है। शेष सब घूरना कुरूप है, गंदा है।

मानस्विद कहते है कि तुम किसी व्यक्ति को, अगर वह अजनबी है, कितनी देर तक घूरकर देख सकते हो। इसकी सीमा है।

तुम इसका निरीक्षण करो और तुम्हें पता चल जाएगा। कि इसकी अवधि कितनी है। इस समय की सीमा है। उससे एक क्षण ज्यादा घूरों और दूसरा व्यक्ति क्रुद्ध हो जायेगा। सार्वजनिक रूप से एक चलती हुई नजर क्षमा की जा सकती है। क्योंकि उससे लगेगा कि तुम देख भर रहे थे, घूर नहीं रहे थे। दृष्टि गड़ा कर देखना दूसरी बात है।

अगर मैं तुम्हें चलते-चलते देख लेता हूं तो उससे कोई संबंध नहीं बनता है। या मैं गुजर रहा हूं और तुम मुझ पर निगाह डालों तो उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। वह अपराध नहीं है। ठीक है। लेकिन अगर तुम अचानक रुककर मुझे देखने लगो तो तुम निरीक्षक हो गए। तब तुम्हारी दृष्टि से मुझे अड़चन होगी। और मैं अपमानित अनुभव करूंगा। तुम कर क्या रहे हो? मैं व्यक्ति हूं, वस्तु नहीं। यह कोई देखने का ढंग है?

इसी वजह से कपड़े महत्वपूर्ण हो गए है। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तभी तुम उसके समक्ष नग्न हो सकते हो। क्योंकि जिस क्षण तुम नग्न होते हो। तुम्हारा समूचा शरीर दृष्टि का विषय बन जाता है। कोई तुम्हारे पूरे शरीर को निहार रहा है। और अगर वह तुम्हारे प्रेम में नहीं है तो उसकी आंखे तुम्हारे पूरे शरीर को, तुम्हारे पूरे अस्तित्व को वस्तु में बदल देंगी। लेकिन अगर तुम किसी के प्रेम में हो, तो तुम उसके सामने लज्जा महसूस किए बिना ही नग्न हो सकते हो। बल्कि तुम्हें नग्न होना रास आएगा। क्योंकि तुम चाहोगे कि यह रूपांतरकारी प्रेम तुम्हारे पूरे शरीर को व्यक्ति में रूपांतरित कर दे।

जब भी तुम किसी को वस्तु में बदलते हो तो वह कृत्य अनैतिक है। लेकिन अगर तुम प्रेम से भरे हो तो उस प्रेम भरे क्षण में घटना, यह आनंद किसी भी विषय के साथ संभव हो जाता है।

''यही विषय के मध्य में—आनंद।''
अचानक तुम अपने को भूल गए हो। दूसरा ही है। और तब वह सही क्षण आएगा। जब कि तुम पूरे के पूरे अनुपस्थित हो जाओगे, तब दूसरा भी अनुपस्थित हो जाएगा। और तब दोनों के बीच वह धन्यता घटती है। प्रेमियों की यही अनुभूति है।

यह आनंद एक अज्ञात और अचेतन ध्यान के कारण घटता है। जहां दो प्रेमी है वहां धीरे-धीरे दोनों अनुपस्थित हो जाते हो। और वहां एक शुद्ध असतित्व बचता है। जिसमें कोई अहंकार नहीं है। कोई द्वंद्व नहीं है। वहां मात्र संवाद है, साहचर्य है,

सहभागिता है। उस संभोग में ही आनंद उतरता है। वह समझना गलत है कि यह आनंद तुम्हें किसी दूसरे से मिला है। वह आनंद आया है। क्योंकि तुम अनजाने ही एक गहरे ध्यान विधि में उतर गये हो।

तुम यह सचेतन भी कर सकते हो। और जब सचेतन करते हो तो तुम और गहरे जाते हो। क्योंकि तब तुम विषय से बंधे नहीं हो। यह रोज ही होता है। जब तुम किसी को प्रेम करते हो तो तुम जो आनंद अनुभव करते हो उसका कारण दूसरा नहीं है। उसका कारण बस प्रेम है। और प्रेम क्यों कारण है? क्योंकि यह घटना है, यह सूत्र घटता है।

लेकिन तब तुम एक गलतफहमी से ग्रस्त हो जाते हो। तुम सोचते हो कि अ या ब के सान्निध्य के कारण यह आनंद घटा। और तुम सोचते हो कि मुझे अ को अपने कब्जे में करना चाहिए। क्योंकि अ की उपस्थिति के बिना मुझे यह आनंद नहीं मिलता। और तुम ईर्ष्यालु हो जाते हो। तुम्हें डर लगने लगता है। कि अ किसी दूसरे के कब्जे में न चला जाये। क्योंकि तब दूसरा आनंदित होगा और तुम दुःखी होओगे। इसलिए तुम पक्का कर लेना चाहते हो कि अ किसी और के कब्ज में न जाए। अ को तुम्हारे ही कब्जे में होना चाहिए। क्योंकि उसके द्वारा तुम्हें किसी और लोक की झलक मिली।

लेकिन जिस क्षण तुम मालिकीयत की चेष्टा करते हो उसी क्षण उस घटना का सब सौंदर्य, सब कुछ नष्ट हो जाता है। जब प्रेम पर कब्जा हो जाता है। प्रेम समाप्त हो जाता है। तब प्रेमी सहज एक वस्तु होकर रह जाता है। तुम उसका उपयोग कर सकते हो। लेकिन फिर वह आनंद नहीं घटित होगा। वह आनंद तो दूसरे के व्यक्ति होने से आता है। दूसरा तो निर्मित हुआ था; तुमने उसके भीतर व्यक्ति को निर्मित किया था। उसने तुम्हारे भीतर वहीं किया था। तब कोई आब्जेक्ट्स नहीं था। तब दोनों दो जीवंत निजात थे। ऐसा नहीं था एक व्यक्ति था और दूसरा वस्तु। लेकिन ज्यों ही तुमने मालकियत की कि आनंद असंभव हो गया।

और मन सदा स्वामित्व करना चाहेगा। क्योंकि मन सदा लोभ की भाषा में सोचता है। सोचता है कि एक दिन जो आनंद मिला वह रोज-रोज मिलना चाहिए, इसलिए मुझे स्वामित्व जरूरी है। लेकिन यह आनंद ही तब घटता है जब स्वामित्व की बात नहीं रहती। और आनंद दूसरे के कारण नहीं, तुम्हारे कारण घटता है। यह स्मरण रहे कि आनंद तुम्हारे कारण घटता है। क्योंकि तुम दूसरे में इतना समाहित हो गए कि आनंद घटित हुआ।

यह घटना गुलाब के फूल के साथ भी घट सकती है। चट्टान या वृक्ष या किसी भी चीज के साथ घट सकती है। एक बार तुम उस स्थिति से परिचित हो गए जिसमें यह आनंद घटता है। तो वह कहीं भी घट सकता है। यदि तुम जानते हो कि तुम नहीं हो ओ किसी गहन प्रेम में तुम दूसरे की और प्रवाहित हो जाए तो अहंकार तुम्हें छोड़ देता है। और अहंकार की उस अनुपस्थिति में आनंद फलित होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-9

तंत्र-सूत्र—विधि-19 (ओशो)

केंद्रित होने की सातवीं विधि:

शिव…तंत्र-सूत्र—विधि-19 –ओशो(नितंबो पर बैठो)

''पाँवों या हाथों को सहारा दिए बिना सिर्फ नितंबों पर बैठो। अचानक केंद्रित हो जाओगे।''
चीन में ताओ वादियों ने सदियों से इस विधि को प्रयोग किया है। यह एक अद्भुत विधि है और बहुत सरल भी।

इसे प्रयोग करो: ''पाँवों या हाथों को सहारा दिए बिना सिर्फ नितंबों पर बैठो। अचानक केंद्रित हो जाओगे।''

इसमें करना क्या है? इसके लिए दो चीजें जरूरी है। एक तो बहुत संवेदनशील शरीर चाहिए, जो कि तुम्हारे पास नहीं है। तुम्हारा शरीर मुर्दा है। वह एक बोझ है। संवेदनशील बिलकुल नहीं है। इसलिए पहले तो उसे संवेदनशील बनाना होगा, अन्यथा यह विधि काम नहीं करेगी। मैं पहले तुम्हें बताऊंगा कि शरीर को संवेदनशील कैसे बनाया जाए—खासकर नितंब को।
तुम्हारी जो नितंब है वह तुम्हारे शरीर का सब से संवेदनशील अंग है। उसे संवेदनहीन होना पड़ता है। क्योंकि तुम सारा दिन नितंब पर ही बैठे रहते हो। अगर वह बहुत संवेदनशील हो तो अड़चन होगी। तुम्हारे नितंब को संवेदनहीन होना जरूरी है। पाँव के तलवे जैसी उसकी दशा है। निरंतर उन पर बैठे-बैठे पता नहीं चलता कि तुम नितंबों पर बैठे हो। इसके पहले क्या कभी तुमने उन्हें महसूस किया है? अब कर सकते हो, लेकिन पहले कभी नहीं किया। और तुम पूरी जिंदगी उन पर ही बैठते हो—बिना जाने। उनका काम ही ऐसा है कि वे बहुत संवेदनशील नहीं हो सकते।

तो पहले तो उन्हें संवेदनशील बनाना होगा। एक बहुत सरल उपाय काम में लाओ। यह उपाय शरीर के किसी भी अंग के लिए काम आ सकता है। तब शरीर संवेदनशील हो जाएगा। एक कुर्सी पर विश्राम पूर्वक, शिथिल होकर बैठो। आंखे बंद कर लो और शिथिल होकर कुर्सी पर बैठो। और बाएं हाथ को दाहिने हाथ पर महसूस करो। कोई भी चलेगा। बाएं हाथ को महसूस करो। शेष शरीर को भूल जाओ। और बांए हाथ को महसूस करो।

तुम जितना ही उसे महसूस करोगे वह उतना ही भारी होगा। ऐसे बाएं हाथ को महसूस करते जाओ। पूरे शरीर को भूल जाओ। बाएं हाथ को ऐसे महसूस करो जैसे तुम बायां हाथ ही हो। हाथ ज्यादा से ज्यादा भारी होता जाए। जैसे-जैसे वह भारी होता जाए वैसे-वैसे उसे और भारी महसूस करो। और तब देखो कि हाथ में क्या हो रहा है।

जो भी उत्तेजना मालूम हो उसे मन में नोट कर लो—कोई उत्तेजना। कोई झटका, कोई हलकी गति, सबको मन में नोट करते जाओ। इस तरह रोज तीन सप्ताह तक प्रयोग जारी रखो। दिन के किसी समय भी दस-पंद्रह मिनट तक यह प्रयोग करो। बाएं हाथ को महसूस करो और सारे शरीर को भूल जाओ।

तीन सप्ताह के भीतर तुम्हें अपने एक नए बाएं हाथ का अनुभव होगा। और वह इतना संवेदनशील होगा, इतना जीवंत। और तब तुम्हें हाथ की सूक्ष्म और नाजुक संवेदनाओं का भी पता चलने लगेगा।

जब हाथ सध जाए तो नितंब पर प्रयोग करो। तब यह प्रयोग करो: आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सिर्फ दो नितंब है। तुम नहीं है। अपनी सारी चेतना को नितंब पर जाने दो। यही कठिन नहीं है। अगर प्रयोग करो तो यह आश्चर्यजनक है, अद्भुत है। उससे शरीर में जा जीवंतता का भाव आता है वह अपने आप में बहुत आनंददायक है। और जब तुम्हें अपने नितंबों का एहसास होने लगे, जब वे खूब संवेदनशील हो जाएं। जब भीतर कुछ भी हो उसे महसूस करने लगो, छोटी सी हलचल, नन्हीं सी पीड़ा भी महसूस करने लगो। तब तुम निरीक्षण कर सकते हो। जान सकते हो। तब समझो कि तुम्हारी चेतना नितंबों से जुड़ गयी।

पहले हाथ से प्रयोग शुरू करो, क्योंकि हाथ बहुत संवेदनशील है। एक बार तुम्हें यह भरोसा हो जाए कि तुम अपने हाथ को संवेदनशील बना सकते हो। तब वहीं भरोसा तुम्हें तुम्हारे नितंब को संवेदनशील बनाने में मदद करेगा। और तब इस विधि को प्रयोग में लाओ। इसलिए इस विधि को प्रयोग में लाओ। इसलिए इस विधि में प्रवेश करने के लिए तुम्हें कम से कम छह सप्ताह की तैयारी करनी चाहिए। तीन सप्ताह हाथ के साथ और तीन सप्ताह नितंबों के साथ। उन्हें ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनाना है।

बिस्तर पर पड़े-पड़े शरीर को बिलकुल भूल जाओ, इतना ही याद रखो कि सिर्फ दो नितंब बचे है। स्पर्श अनुभव करो—बिछावन की चादर का, सर्दी का या धीरे-धीरे आती हुई उष्णता का। अपने स्नान टब में पड़े-पड़े शरीर को भूल जाओ। नितंबों को ही स्मरण रखो।

उन्हें महसूस करो। दीवार से नितंब सटाकर खड़े हो जाओ और दीवार की ठंडक को महसूस करो। अपनी प्रेमिका, या पति के साथ नितंब से नितंब मिलाकर खड़े जाओ और एक-दूसरे को नितंबों के द्वारा महसूस करो। यह विधि महज तुम्हारे नितंब को पैदा करने के लिए है। उन्हें उस स्थिति में लाने के लिए जहां वे महसूस करने लगें।

और जब इस विधि को काम में लाओ: ''**पाँवों या हाथों को सहारा दिए बिना.....।**''
जमीन पर बैठो, पाँवों या हाथों के सहारे के बिना सिर्फ नितंबों के सहारे बैठो। इसमें बुद्ध का पद्मासन काम करेगा या सिद्घासन या कोई मामूली आसन भी चलेगा। लेकिन अच्छा होगा कि हाथ का उपयोग न करो। सिर्फ नितंबों के सहारे रहो। नितंबों पर ही बैठो। और तब क्या करो? आंखे बद कर लो और नितंबों का जमीन के साथ स्पर्श महसूस करो। और चूंकि नितंब संवेदनशील हो चूके है। इसलिए तुम्हें पता चलेगा कि एक नितंब जमीन को अधिक स्पर्श कर रहा है। उसका अर्थ हुआ कि तुम एक नितंब पर ज्यादा झुके हुए हो। और दूसरा जमीन से कम सटा हुआ है। और तब दूसरे नितंब पर बारी-बारी से झुकते जाओ और तब धीरे-धीरे संतुलन लाओ।

संतुलन लाने का अर्थ है कि तुम्हारे दोनों नितंब एक सा अनुभव करते है। दोनों के ऊपर तुम्हारा भार बिलकुल समान हो। और तब तुम्हारे नितंब संवेदनशील हो जाएंगे तो यह संतुलन कठिन नहीं होगा। तुम्हें उसका एहसास होगा। और एक बार दोनों नितंब संतुलन में आ जाएं तो तुम केंद्र पर पहूंच गए। उस संतुलन में तुम अचानक अपने नाभि केंद्र पर पहुंच जाओगे और भीतर केंद्रित हो जाओगे। तब तुम अपने नितंबों को भूल जाओगे। अपने शरीर को भूल जाओगे। तब तुम अपने आंतरिक केंद्र पर स्थित होओगे।

इसी वजह से मैं कहता हूं कि केंद्र नहीं, केंद्रित होना महत्वपूर्ण है। चाहे वह घटना ह्रदय में या सिर म या नितंब में घटित हो, उसका महत्व नहीं है। तुमने बुद्धों को बैठे देखा होगा। तुमने नहीं सोचा होगा कि वे अपने नितंबों का संतुलन किए बैठे है।

किसी मंदिर में जाओ और महावीर को बैठे देखो या बुद्ध को बैठे देखो, तुमने नहीं सोचा होगा कि यह बैठना नितंबों का संतुलन भर है। यह वही है। और जब असंतुलन न रहा तो संतुलन से तुम केंद्रित हो गए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-13

तंत्र-सूत्र—विधि-20 (ओशो)

केंद्रित होने की आठवीं विधि:

विज्ञान भैरव तंत्र-शिव भाग-1, तंत्र-सूत्र—विधि-20(ओशो)

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा, अनुभव को प्राप्त हो। या किसी अचल वाहन में अपने को मंद से मंदतर होते अद्दश्य वर्तृलों में झुलने देने से भी।''
दूसरे ढंग से यह वही है। ''किसी चलते वाहन में.........।''

तुम रेलगाड़ी या बैलगाड़ी से यात्रा कर रहे हो। जब यह विधि विकसित हुई थी तब बैलगाड़ी ही थी। तो तुम एक हिंदुस्तानी सड़क पर—आज भी सडकें वैसी ही है—बैलगाड़ी में यात्रा कर रहे हो। लेकिन चलते हुए अगर तुम्हारा सारा शरीर हिल रहा है तो बात व्यर्थ हो गई।

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के कारण........।''

लयवद्ध ढंग से झूलों। इस बात को समझो, बहुत बारीक बात है। जब भी तुम किसी बैलगाड़ी या किसी वाहन में चलते हो तो तुम प्रतिरोध करते होते हो। बैलगाड़ी बाई तरफ झुकती है, लेकिन तुम उसका प्रतिरोध करते हो, तुम संतुलन रखने के लिए दाई तरफ झुक जाते हो। अन्यथा तुम गिर जाओगे। इसलिए तुम निरंतर प्रतिरोध कर रहे हो। बैल गाड़ी में बैठे-बैठे तुम बैलगाड़ी के हिलने-डुलते से लड़ रहे हो। वह इधर जाती है तो तुम उधर जाते हो। यही वजह है कि रेलगाड़ी में बैठे-बैठे तुम थक जाते हो। तुम कुछ करते नहीं हो तो थक क्यों जाते हो। अन्यथा ही तुम बहुत कुछ कर रहे हो। तुम निरंतर रेलगाड़ी से लड़ रहे हो, प्रतिरोध कर रहे हो।

प्रतिरोध मत करो, यह पहली बात है। अगर तुम इस विधि को प्रयोग में लाना चाहते हो तो प्रतिरोध छोड़ दो। बल्कि गाड़ी की गति के साथ-साथ गति करो, उसकी गति के साथ-साथ झूलों। बैलगाड़ी का अंग बन जाओ, प्रतिरोध मत करो। रास्ते पर बैलगाड़ी जो भी करे, तुम उसके अंग बनकर रहो। इसी कारण यात्रा में बच्चे कभी नहीं थकते है।

पूनम हाल ही में लंदन से अपने दो बच्चों के साथ आई है। चलते समय वह भयभीत थी कि इतनी लंबी यात्रा के कारण बच्चें थ जाएंगे। बीमार हो जाएंगे। वह थक गई और वे हंसते हुए यहां पहुँचे। वह जब यहां पहुंची तो थक कर चूर-चूर हो गई थी। जब वह मेरे कमरे में प्रविष्ट हुई, वह थकावट से टूट रही थी। और दोनों बच्चें वहीं तुरंत खेलने लग गये। लंदन से बंबई अठारह घंटे की यात्रा है। लेकिन वे जरा भी थके नहीं। क्यों? क्योंकि अभी वे प्रतिरोध करना नहीं जानते है।

एक पियक्कड़ सारी रात बैलगाड़ी में यात्रा करेगा। और सुबह वह ताजा का ताजा रहेगा। लेकिन तुम नहीं। कारण यह है कि पियक्कड़ भी प्रतिरोध नहीं करता है। वह गाड़ी के साथ गति करता है। वह लड़ता नहीं है। वह गाड़ी के साथ झूलता है, और एक हो जाता है।

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा........।''
तो एक काम करो, प्रतिरोध मत करो। और दूसरी बात कि एक लय पैदा करो, अपने हिलने डुलनें में लय पैदा करे, उसे लय में बांधों। उसमे एक छंद पैदा करो। सड़क को भूल जाओ। सड़क या सरकार को गालियां मत दो, उन्हें भी भूल जाओ। वैसे ही बैल और बैलगाड़ी को या गाड़ीवान को गाली मत दो। उन्हें भी भूल जाओ। आंखें बंद कर लो। प्रतिरोध मत करो। लयवद्ध ढंग से गति करो और अपनी गति में संगीत पैदा करो। उसे एक नृत्य बना लो।

''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा......अनुभव को प्राप्त हो।''
सूत्र कहता है कि तुम्हें अनुभव प्राप्त हो जाएगा।

''या किसी अचल वाहन में....।''

यह मत पूछो कि बैलगाड़ी कहां मिलेगी। अपने को धोखा मत दो।

क्योंकि यह सूत्र कहता है: ''या किसी अचल वाहन में अपने को मंद से मंदतर होते अदृश्य वर्तुलों में झुलने देने से भी।''

यही बैठे-बैठे हुए वर्तुल में झूलों, घूमों। वर्तुल को छोटे से छोटा किए जाओ—इतना छोटा कि तुम्हारा शरीर दृश्य से झूलता हुआ न रहे। लेकिन भीतर एक सूक्ष्म गति होती रहे। आंखे बंद कर लो। और बड़े वर्तुल से शुरू करे। आंखे बंद कर लो, अन्यथा जब शरीर रूक जाएगा तब तुम भी रूक जाओगे। आंखे बंद करके बड़े वर्तुल को छोटा, और छोटा किए चलो।

दृश्य रूप से तुम रूक जाओगे। किसी को नहीं मालूम होगा कि तुम अब भी हिल रहे हो। लेकिन भीतर तुम एक सूक्ष्म गति अनुभव करते रहोगे। अब शरीर नहीं चल रहा है। केवल मन चल रहा है। उसे भी मंद से मंदतर किए चलो। और अनुभव करो; वही केंद्रित हो जाओगे। किसी वाहन में, किसी चलते वाहन में एक अप्रतिरोध और लयबद्ध गति तुम्हें केंद्रित हो जाओगे।

गुरूजिएफ ने इन विधियों के लिए अनेक नृत्य निर्मित किए थे। वह इस विधि पर काम करता था। वह अपने आश्रम में जितने नृत्यों का प्रयोग करता था वह सच में वर्तुल में झूमने से संबंधित थे। सभी नृत्य वर्तुल में चक्कर लगाने से संबंधित है। बाहर चक्कर लगाकर लगाना होता, भीतर होश पूर्ण रहना होता। फिर वे धीरे-धीरे वर्तुल को छोटा और छोटा किए जाते है। तब एक समय आता है कि शरीर ठहर जाता है। लेकिन भीतर मन गति करता रहता है।

अगर तुम लगातार बीस घंटे तक रेलगाड़ी में सफर करके घर लोटों और घर में आंखे बंद करके देखो तो तुम्हें लगेगा। कि तुम अब भी गाड़ी में यात्रा कर रहे हो। शरीर तो ठहर गया है, लेकिन मन का लगता है कि यह गाड़ी में ही है। वैसे ही इस विधि का प्रयोग करो। गुरजिएफ ने अद्भुत नृत्य पैदा किए और सुंदर नृत्य। इस सदी में उसने सचमुच चमत्कार किया है। वे चमत्कार सत्य साईं बाबा के चमत्कार नहीं थे। साई बाबा के चमत्कार तो कोई गली-गली फिरने वाला मदारी भी कर सकता है। लेकिन गुरूजिएफ ने असली चमत्कार पैदा किए। ध्यान पूर्ण नृत्य के लिए उसने सौ नर्तकों की एक मंडली बनाई। और पहली बार उसने न्यूयार्क के एक समूह के सामने उनका प्रदर्शन किया।

सौन नर्तक मंच पर गोल-गोल नाच रहे थे। उन्हें देखकर अनेक दर्शकों के भी सिर घूमने लगे। ऐसे सफेद पोशाक में वे सौ नर्तक नृत्य करते थे। जब गुरूजिएफ हाथों से नृत्य का संकेत करता था तो वे नाचते थे और ज्यों ही वह रूकने का इशारा करता था, वे पत्थर की तरह ठहर जाते थे। और मंच पर सन्नाटा हो जाता था। वह रूकना दर्शकों के लिए था। नर्तकों के लिए नही; क्योंकि शरीर तो तुरंत रूक सकता है। लेकिन मन तब नृत्य को भीतर ले जाता है। और वहां नृत्य चलता रहता है।

उसे देखना भी एक सुंदर अनुभव था कि सौ लोग अचानक मृत मूर्तियों जैसे हो जाते है। उसके दर्शकों में एक आघात पैदा होता था, क्योंकि सौ नृत्य, सुंदर और लयवद्ध नृत्य अचानक ठहरकर जाम हो जाते थे। तुम देख रहे हो, कि वे घूम रहे है, गोल-गोल नाच रह है और अचानक सब नर्तक ठहर गए। तब तुम्हारा विचार भी ठहर जाता है। न्यूयार्क में अनेक को लगा कि यह तो एक बेबूझ, रहस्यपूर्ण नृत्य है। क्योंकि उनके विचार भी उसके साथ तुरंत ठहर जाते थे। लेकिन नर्तकों के लिए नृत्य भीतर चलता रहता था। भीतर नृत्य के वर्तुल छोटे से छोटे होते जाते थे और अंत में वह केंद्रित हो जाते थे।

एक दिन ऐसा हुआ कि सारे नर्तक नाचते हुए मंच के किनारे पर पहुंच गए। लोग सोचते थे कि अब गुरूजिएफ उन्हें रो देंगे। अन्यथा वे दर्शकों की भीड़ पर गिर पड़ेंगे। सौ नर्तक नाचते-नाचते मंच के किनारे पर पहुंच गए है। एक कदम और, और वे नीचे दर्शकों पर गिर पड़ेंगे। सारे दर्शक इस प्रतीक्षा में थे कि गुरूजिएफ रुको कहकर उन्हें वहीं रो देगा। लेकिन उसी क्षण गुरूजिएफ ने उनकी तरफ से मुख फैर लिया और पीठ कर के खड़ा हो कर अपना सिंगार चलाने लगा। और सौ नर्तकों की पूरी मंडली मंच से नीचे नंगे फर्श पर गिर पड़ी।

सभी दर्शक उठ खड़े हुए। उनकी चीख़ें निकल गई। गिरना इस धमाके के साथ हुआ था कि उन्हें लगा कि अनेक दर्शकों के हाथ पैर टूट गए होंगे। लेकिन एक भी व्यक्ति को चोट नहीं लगा थी। किसी को खरोंच तक भी नहीं आई थी।

उन्होंने गुरूजिएफ से पूछा कि क्या हुआ कि एक आदमी भी घायल नहीं हुआ। जब कि नर्तकों का नीचे गिरना इतना बड़ा था। यह तो एक असंभव घटना मालूम होती है।

कारण इतना ही था कि उस क्षण नर्तक अपने शरीरों में नहीं थे। वे अपने भीतर के वर्तुलों को मंदतर किए जा रहे थे। और जब गुरजिएफ ने देखा कि वे पूरी तरह अपने शरीरों को भूल गये है तब उसने उन्हें नीचे गिरने दिया।

तुम जब शरीर को बिलकुल भूल जाते हो तो कोई प्रतिरोध नहीं रह जाता है। और हड्डी तो टूटती है प्रतिरोध के कारण। जब तुम गिरने लगते हो तो तुम प्रतिरोध करते हो, अपने को गिरने से रोकते हो। गिरते समय तुम गुरुत्वाकर्षण के विरूद्ध संघर्ष करते हो। और वही प्रतिरोध, वही संघर्ष समस्या बन जाता है। गुरुत्वाकर्षण नहीं, प्रतिरोध से हड्डी टूटती है। अगर तुम गुरूत्वाकर्षण के साथ सहयोग करो; उसके साथ-साथ गिरो, तो चोट लगने की कोई संभावना नहीं है।

सूत्र कहता है: ''किसी चलते वाहन में लयवद्ध झुलने के द्वारा, अनुभव को प्राप्त हो। या किसी अचल वाहन में अपने को मंद से मंदतर होते अद्दश्य वर्तुलों में झुलने देने से भी।''

यह तुम ऐसे भी कर सकते हो, वाहन की जरूरत नहीं है। जैसे बच्चें गोल-गोल घूमते है वैसे गोल-गोल घूमों। और जब तुम्हारा सिर घूमने लगे और तुम्हें लगे कि अब गिर जाऊँगा तो भी नाचना बंद मत करो। नाचते रहो। अगर गिर भी जाओ तो फिक्र मत करो। आँख बंद कर लो और नाचते रहो। तुम्हारा सिर चकर खानें लगेगा। और तुम गिर जाओगे। तुम्हारा शरीर गिर जाए तो भीतर देखो; भीतर नाचना जारी रहेगा। उसे महसूस करो। वह निकट से निकटतर होता जाएगा। और अचानक तुम केंद्रित हो जाओगे।

बच्चे इसका खूब मजा लेते है। क्योंकि इससे उन्हें बहुत ऊर्जा मिलती है। लेकिन उनके मां-बाप उन्हें नाचने से रोकते है। जो कि अच्छा नहीं है। उन्हें नाचने देना चाहिए, उन्हें इसके लिए उत्साहित करना चाहिए। और अगर तुम उन्हें अपने भीतर के नाच से परिचित करा सको तो तुम उन्हें उसके द्वारा ध्यान सिखा दोगे।

वे इसमे रस लेते है। क्योंकि शरीर-शून्यता का भाव उनमें है। जब वे गोल-गोल नाचते है तो बच्चों को अचानक पता चलता है कि उनका शरीर तो नाचता है, लेकिन वे नहीं नाचते। अपने भीतर वे एक तरह से केंद्रित हो गए महसूस करते है। क्योंकि उनके शरीर और आत्मा में अभी दूरी नहीं बनी हे। दोनों के बीच अभी अंतराल है। हम सयाने लोगों को यह अनुभव इतनी आसानी से नहीं हो सकता।

जब तुम मां के गर्भ में प्रवेश करते हो तो तुरंत ही शरीर में नहीं प्रविष्ट हो जाते हो। शरीर में प्रविष्ट होने में समय लगता है। और जब बच्चा जनम लेता है तब भी वह शरीर से पूरी तरह नहीं जुड़ा होता है, उसकी आत्मा पूरी तरह स्थित नहीं होती है। दोनों के बीच थोड़ा अंतराल बना रहता है। यही कारण है कि कई चीजें बच्चा नहीं कर सकता। उसका शरीर तो उन्हें करने को तैयार है, लेकिन वह नहीं कर पाता।

अगर तुमने खयाल किया हो तो देखा होगा नवजात शिशु दोनों आंखों से देखने में समर्थ नहीं होते है। वे सदा एक आँख से देखते है। तुमने गौर किया होगा कि जब बच्चे कुछ देखते है, निरीक्षण करते है, तो दोनों आंखों से नहीं करते। वे एक आँख से ही देखते है, उनकी वह आँख बड़ी हो जाती है। देखते क्षण उनकी एक आँख की पुतली फैल कर बड़ी हो जाती है। और दूसरी पुतली छोटी हो जाती है। बच्चे अभी स्थिर नहीं हुए है। उनकी चेतना अभी स्थिर नहीं है। उनकी चेतना अभी ढीली–ढीली है। धीरे-धीरे वह स्थिर होगी और तब वे दोनों आँख से देखने लगेंगे।

बच्चें अभी अपने और दूसरे के शरीर में फर्क करना नहीं जानते है। यह कठिन है। वे अभी अपने शरीर से पूरी तरह नहीं जुडे है। यह जोड़ धीरे-धीरे आएगा।

ध्यान फिर से अंतराल पैदा करने की चेष्टा है। तुम अपने शरीर से जुड़ गए हो, शरीर के साथ ठोस हो चुके हो। तभी तो तुम समझते हो कि मैं शरीर हूं। अगर फिर से एक अंतराल बनाया जा सके तो फिर समझने लगोगे कि मैं शरीर नहीं हूं। शरीर से परे कुछ हूं। इसलिए झूलना और गोल-गोल घूमना सहयोगी होते है। वे अंतराल पैदा करते है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-13

तंत्र-सूत्र—विधि-21(ओशो)

केंद्रित होने की नौवीं विधि:

शिव तंत्र-सूत्र—विधि-21 किसी अंग को सुई से भेदो–ओशो

''अपने अमृत भरे शरीर के किसी अंग को सुई से भेदो, और भद्रता के साथ उस भेदन में प्रवेश करो, और आंतरिक शुद्धि को उपलब्ध होओ।''

यह सूत्र कहता है: ''अपने अमृत भरे शरीर के किसी अंग को सुई से भेदों.....।''

तुम्हारा शरीर मात्र शरीर नहीं है, वह तुमसे भरा है, और यह तुम अमृत हो। अपने शरीर को भेदों, उसमें छेद करो। जब तुम अपने शरीर को छेदते, सिर्फ शरीर छिदता है। लेकिन तुम्हें लगता है कि तुम ही छिद गए। इसी से तुम्हें पीड़ा अनुभव होती है। और अगर तुम्हें यह बोध हो कि सिर्फ शरीर छिदा है, मैं नहीं छिदा हूं, तो पीड़ा के स्थान पर आनंद अनुभव करोगे।
सुई से भी छेद करने की जरूरत नहीं है। रोज ऐसी अनेक चीजें घटित होती है। जिन्हें तुम ध्यान के लिए उपयोग में ला सकते हो। या कोई ऐसी स्थिति निर्मित भी कर सकते हो।

तुम्हारे भीतर कहीं कोई पीड़ा हो रही है। एक काम करो। शेष शरीर को भूल जाओ, केवल उस भाग पर मन को एकाग्र करो जिसमे पीड़ा है। और तब एक अजीब बात अनुभव में आएगी। जब तुम पीड़ा वाले भाग पर मन को एकाग्र करोगे तो देखोगें कि वह भाग सिकुड़ रहा है, छोटा हो रहा है। पहले तुमने समझा था कि पूरे पाँव में पीड़ा है, लेकिन जब एकाग्र होकर उसे देखोगें तो मालूम होगा कि दर्द पाँव में नहीं है। वह तो अतिशयोक्ति है, दर्द सिर्फ घुटने में है।

और ज्यादा एकाग्र होओ और तुम देखोगें कि दर्द पूरे घुटने में नहीं है। एक छोटे से बिंदु में है। सिर्फ उस बिंदु पर एकाग्रता साधो, शेष शरीर को भूल जाओ। आंखें बंद रखो और एकाग्रता को बढ़ाए जाओ। और खोजों कि पीड़ा कहां है। पीड़ा का क्षेत्र सिकुड़ता जाएगा। छोटे से छोटा हो जाएगा। और एक क्षण आएगा जब वह मात्र सुई की नोक पर रह जाएगा। उस सुई की नोक पर भी एकाग्रता की नजर गड़ाओ, और अचानक वह नोक भी विदा हो जाएगी। और तुम आनंद से भर जाओगे। पीड़ा की बजाएं तुम आनंद से भर जाओगे।

ऐसा क्यों होता है। क्योंकि तुम और तुम्हारे शरीर एक नहीं है। वे दो है। अलग-अलग है। वह जो एकाग्र होता है। वह तुम हो। एकाग्रता शरीर पर होती है। शरीर विषय हे। जब तुम एकाग्र होते हो तो अंतराल बड़ा होता है। तादात्म्य टूटता है। एकाग्रता के लिए तुम भीतर सरक पड़ते हो। और यह दूर जाना अंतराल पैदा करता है।

जब तुम पीड़ा पर एकाग्रता साधते हो तो तुम तादात्म्य भूल जाते हो। तुम भूल जाते हो कि मुझे पीड़ा हो रही है। अब तुम द्रष्टा हो और पीड़ा कहीं दूसरी जगह है। तुम अब पीड़ा को देखने वाले हो, भोगने वाले नहीं। भोक्ता के द्रष्टा में बदलने के कारण अंतराल पैदा होता है। और जब अंतराल बड़ा होता है तो अचानक तुम शरीर को बिलकुल भूल जाते हो। तुम्हें सिर्फ चेतना का बोध होता है।

तो तुम इस विधि का प्रयोग भी कर सकते हो।

''अपने अमृत भरे शरीर के किसी अंग को सुई से भेदों, और भद्रता के साथ उस भेदन में प्रवेश करो......।''
अगर कोई पीड़ा हो तो पहले तुम्हें उसके पूरे क्षेत्र पर एकाग्र होना होगा। फिर धीरे-धीर वह क्षेत्र घटकर सुई की नोक के बराबर रह जाएगा। लेकिन पीड़ा की प्रतीक्षा क्या करनी। तुम एक सुई से काम ले सकते हो। शरीर के किसी संवेदनशील अंग पर सुई चुभोओ। पर शरीर में ऐसे भी कई स्थल है जो मृत है, उनसे काम नहीं चलेगा।

तुमने शरीर के इन मृत स्थलों के बारे में नहीं सूना होगा, किसी मित्र के हाथ में एक सुई दे दो और तुम बैठ जाओ और मित्र से कहो कि वह तुम्हारी पीठ में कई स्थलों पर सुई चुभाएं। कई स्थलों पर तुम्हें पीड़ा का एहसास नहीं होगा। तुम मित्र से कहोगे कि तुमने सुई अभी नहीं चुभोई है, मुझे दर्द नहीं हो रहा है। वे ही मृत स्थल है। तुम्हारे गाल पर ही ऐसे दो मृत स्थल है जिनकी जांच की जा सकती है।

अगर तुम भारत के गांव में जाओ तो देखोगें कि धार्मिक त्योहारों के समय कुछ लोग अपने गालों को तीन से भेद देते है। वह चमत्कार जैसा मालूम होता है। लेकिन चमत्कार है नहीं । गाल पर दो मृत स्थल है। अगर तुम उन्हें छेदों तो न खून निकलेगा। और न पीडा ही होगी। तुम्हारी पीठ में तो ऐसे हजारों मृत स्थल है। वहां पीड़ा नहीं होती।

तो तुम्हारे शरीर में दो तरह के स्थल है—संवेदनशील, जीवित स्थल और मृत स्थल। कोई संवेदनशील स्थल खोजों जहां तुम्हें जरा से स्पर्श का भी पता चल जायेगा। तब उसमे सुई चुभोकर चुभन में प्रवेश कर जाओ। वही असली बात है। वही ध्यान है। और भद्रता के साथ भेदन म प्रवेश कर जाओ। जैसे-जैसे सुई तुम्हारी चमड़ी के भीतर प्रवेश करेगी और तुम्हें पीड़ा होगी, वैसे-वैसे तुम भी उसमे प्रवेश करते जाओ। यह मत देखो कि तुम्हारे भीतर पीड़ा प्रवेश कर रही है। पीड़ा को मत देखो, उसके साथ तादम्यता करो। सुई के साथ, चुभन के साथ तुम भी भीतर प्रवेश करो। आंखें बंद कर लो। पीड़ा का निरीक्षण करो। जैसे पीड़ा भीतर जाए वैसे तुम भी अपने भीतर जाओ। चुभाती हुई सुई के साथ तुम्हारा मन आसानी से एकाग्र हो जाएगा। पीड़ा के तीव्र पीड़ा के उस बिंदु को गोर से देखो, वही भद्रता के साथ भेदन म प्रवेश करना हुआ।

''और आंतरिक शुद्धि को उपलब्ध होओ।''

अगर तुमने निरीक्षण करते हुए, तादात्म्य ने करते हुए अलग दूर खड़ रहते हुए, बिना यह समझे हुए कि पीड़ा तुम्हें भेद रही है। बल्कि यह देखते हुए कि सुई शरीर को भेद रही है। और तुम द्रष्टा हो प्रवेश किया तो तुम आंतरिक शुद्धता को उपल्बध हो जाओगे। तब आंतरिक निर्दोषता तुम पर प्रकट हो जाएगी। तब पहली बार तुम्हें बोध होगा कि मैं शरीर नहीं हूं।

और एक बार तुमने जाना कि मैं शरीर नहीं हूं, तुम्हारा सारा जीवन आमूल बदल जाएगा। क्योंकि तुम्हारा सारा जीवन शरीर के इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहता है। एक बार जान गए कि मैं शरीर नहीं हूं, तुम फिर इस जीवन को नहीं ढो सकते। उसका

केंद्र ही खो गया। जब तुम शरीर नहीं रहे तो तुम्हें दूसरा जीवन निर्मित करना पड़ेगा। वही जीवन संन्यासी का जीवन है। यह और ही जीवन होगा। क्योंकि अब केंद्र ही और होगा। अब तुम संसार में शरीर की भांति नहीं, बल्कि आत्मा की भांति रहोगे।

जब तक तुम शरीर की तरह रहते हो तब तक तुम्हारा संसार भौतिक उपलब्धियों का, लोभ, भोग, वासना और कामुकता का संसार होगा। और वह संसार शरीर प्रधान संसार होगा। लेकिन जब जान लिया है कि मैं शरीर नहीं हूं तो तुम्हारा सार संसार विलीन हो जाता है। तुम अब उसे सम्हालकर नहीं रख सकते हो। तब एक दूसरा संसार उदय होगा जो आत्मा के इर्द-गिर्द होगा। वह संसार करूणा प्रेम, सौंदर्य, सत्य, शुभ और निर्दोषता का संसार होगा। केंद्र हट गया वह अब शरीर में नहीं है। अब केंद्र चेतना में है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-13

तंत्र-सूत्र—विधि-22 (ओशो)

केंद्रित होने की दसवीं विधि:

तंत्र सूत्र- शिव विज्ञान भैरव तंत्र, विधि -22 ओशो

''अपने अवधान को ऐसी जगह रखो, जहां अतीत की किसी घटना को देख रहे हो और अपने शरीर को भी। रूप के वर्तमान लक्षण खो जायेंगे, और तुम रूपांतरित हो जाओगे।''

तुम अपने अतीत को याद कर रहे हो। चाहे वह कोई भी घटना हो; तुम्हारा बचपन, तुम्हारा प्रेम, पिता या माता की मृत्यु, कुछ भी हो सकता है। उसे देखो। लेकिन उससे एकात्म मत होओ। उसे ऐसे देखो जैसे वह किसी और जीवन में घटा है। उसे ऐसे देखो जैसे वह घटना पर्दे पर फिर घट रही हो, फिल्माई जा रही हो, और तुम उसे देख रहे हो—उससे अलग, तटस्थ साक्षी की तरह।

उस फिल्म में, कथा में तुम्हारा बीता हुआ रूप फिर उभर जाएगा। यदि तुम अपनी कोई प्रेम-कथा स्मरण कर रहे हो, अपने प्रेम की पहली घटना, तो तुम अपनी प्रेमिका के साथ स्मृति के पर्दे पर प्रकट होओगे और तुम्हारा अतीत का रूप प्रेमिका के साथ उभर आएगा। अन्यथा तुम उसे याद न कर सकोगे। अपने इस अतीत के रूप से भी तादात्म्य हटा लो। पूरी घटना को

ऐसे देखो मानो कोई दूसरा पुरूष किसी दूसरी स्त्री को प्रेम कर रहा हो। मानो पूरी कथा से तुम्हारा कुछ लेना-देना नहीं है। तुम महज दृष्टा हो।

यह विधि बहुत-बहुत बुनियादी है। इसे बहुत प्रयोग में लाया गया—विशेषकर बुद्ध के द्वारा। और इस विधि के अनेक प्रकार है। इस विधि के प्रयोग का अपना ढंग तुम खुद खाज ले सकते हो। उदाहरण के लिए, रात में जब तुम सोने लगो, गहरी नींद में उतरने लगो तो पूरे दिन के अपने जीवन को याद करो। इस याद की दिशा उलटी होगी, यानी उसे सुबह से न शुरू कर वहां से शुरू करो जहां तुम हो। अभी तुम बिस्तरे में पड़े हो तो बिस्तर में लेटने से शुरू कर पीछे लोटों। और इस प्रकार कदम-कदम पीछे चलकर सुबह की उस पहली घटना पर पहुंचो जब तुम नींद से जागे थे अतीत स्मरण के इस क्रम में सतत याद रखो कि पूरी घटना से तुम पृथक हो, अछूते हो।

उदाहरण के लिए, पिछले पहर तुम्हारा किसी ने अपमान किया था; तुम अपने रूप को अपमानित होते देखो, लेकिन द्रष्टा बने रहो। तुम्हें उस घटना में फिर नहीं उलझना है, फिर क्रोध नहीं करना है। अगर तुमने क्रोध किया तो तादात्म्य पैदा हो गया। तब ध्यान का बिंदु तुम्हारे हाथ से छूट गया।

इसलिए क्रोध मत करो। वह अभी तुम्हें अपमानित नहीं कर रहा है। वह तुम्हारे पिछले पहर के रूप को अपमानित कर रहा है। वह रूप अब नहीं है। तुम तो एक बहती नदी की तरह हो जिसमें तुम्हारे रूप भी बह रहे है। बचपन में तुम्हारा एक रूप था, अब वह नहीं रहा। वह जा चुका। नदी की भांति तुम निरंतर बदलते जा रहे हो।

रात में ध्यान करते हुए जब दिन की घटनाओं को उलटे क्रम में, प्रतिक्रम में याद करो तो ध्यान रहे कि तुम साक्षी हो, कर्ता नहीं। क्रोध मत करो। वैसे ही जब तुम्हारी कोई प्रशंसा करे तो आह्लादित मत होओ। फिल्म की तरह उसे भी उदासीन होकर देखो।

प्रतिक्रमण बहुत उपयोगी है, खासकर उनके लिए जिन्हें अनिद्रा की तकलीफ हो। अगर तुम्हें ठीक से नींद आती है। अनिद्रा का रोग है। तो यह प्रयोग तुम्हें बहुत सहयोगी होगा। क्यों? क्योंकि यह मन को खोलने का, निर्ग्रंथ करने का उपाय है। जब तुम पीछे लौटते हो तो मन की तहें उघड़ने लगती है। सुबह में जैसे घड़ी में चाबी देते हो वैसे तुम अपने मन पर भी तहें लगाता शुरू करते हो। दिन भर में मन पर अनेक विचारों और घटनाओं के संस्कार जब जाते है; मन उनसे बोझिल हो जाता है। अधूरे और अपूर्ण संस्कार मन में झूलते रहते है। क्योंकि उनके घटित होते समय उन्हें देखने का मौका नहीं मिला था।

इस लिए रात में फिर उन्हें लौटकर देखो—प्रतिक्रम में। यह मन के निर्ग्रंथ की, सफाई की प्रक्रिया है। और इस प्रक्रिया में जब तुम सुबह बिस्तर से जागते की पहली घटना तक पहुंचोगे तो तुम्हारा मन फिर से उतना ही ताजा हो जाएगा। जितना ताजा बह सुबह था। और तब तुम्हें वैसी नींद आएगी जैसी छोटे बच्चे को आती है।

तुम इस विधि को अपने पूरे अतीत जीवन में जाने के लिए भी उपयोग कर सकते हो। महावीर ने प्रतिक्रमण की इस विधि का बहुत उपयोग किया।

अभी अमेरिका में एक आंदोलन है, जिसे डायनेटिक्स कहते है। वे इसी विधि का उपयोग करता है। यह रोग मानसिक मालूम होता है। तो उसके लिए क्या किया जाए। यदि किसी को कहां कि तुम्हारा रोग मानसिक मालूम होता है। तो उससे बात बनने की बजाएं बिगड़ती है। यह सुनकर कि मेरा रोग मानसिक है। किसी भी व्यक्ति को बुरा लगता है। तब उसे लगता है कि अब कोई उपाय नहीं है। और वह बहुत अहसास महसूस करता है।

प्रतिक्रमण एक चमत्कारिक विधि है। अगर तुम पीछे लौटकर अपने मन की गाँठें खोलों तो तुम धीरे-धीरे उस पहले क्षण को पकड़ सकते हो जब यह रोग शुरू हुआ था। उस क्षण को पकड़कर तुम पता चलेगा कि यह रोग अनेक मानसिक घटनाओं और कारणों से निर्मित हुआ है। प्रतिक्रमण से वे कारण फिर से प्रकट हो जाते है।

अगर तुम उसी क्षण से गुजर सको जिसमे पहले पहल इस रोग ने तुम्हें घेरा था, अचानक तुम्हें पता चल जाएगा। कि किन मनोवैज्ञानिक कारणों से यह रोग बना था। तब तुम्हें कुछ करना नहीं है। सिर्फ उन मनोवैज्ञानिक कारणों को बोध में ले आना है। इस प्रतिक्रमण से अनेक रोगों की ग्रंथियां टूट जाती है। और अंतत: रोग विदा हो जाता है। जिन ग्रंथियों को तुम जान लेते हो वे ग्रंथियां विसर्जित हो जाती है। और उनसे बने रोग समाप्त हो जाते है।

यह विधि गहरे रेचन की विधि है। अगर तुम इसे रोज कर सको तो तुम्हें एक नया स्वास्थ और एक नई ताजगी का अनुभव होगा। और अगर हम अपने बच्चों को रोज इसका प्रयोग करना सिखा दें तो उन्हें उनका अतीत कभी बोझल नहीं बना सकेगा। तब बच्चों को अपने अतीत में लौटने की जरूरत नहीं रहेगी। वे सदा यहां और अब, यानी वर्तमान में रहेंगे।

तब उन पर अतीत का थोड़ा सा भी बोझ नहीं रहेगा। वे सदा स्वच्छ और ताजा रहेंगे।

तुम इसे रोज कर सकते हो। पूरे दिन को इस तरह उलटे क्रम से पुन: खोलकर देख लेने से तुम्हें नई अंत दृष्टि प्राप्त होती है। तुम्हारा मन तो चाहेगा कि यादों को सिलसिला सुबह से शुरू करें। लेकिन उससे मन निर्ग्रंथक नहीं होता। उलटे पूरी चीज दुहरा कर और मजबूत हो जाती है। इस लिए सुबह से शुरू करना गलत होगा।

भारत में ऐसे अनेक तथाकथित गुरु है। जो सिखाते है कि पूरे दिन का पुनरावलोकन करो और इस प्रक्रिया को सुबह से शुरू करो। लेकिन यह गलत और नुकसानदेह है। उससे मन मजबूत होगा और अतीत का जाल बड़ा और गहरा हो जाएगा। इसलिए सुबह से श्याम की तरफ कभी मत चलो, सदा पीछे की और गति करो। और तभी तुम मन को पूरी तरह निर्ग्रंथ कर पाओगे, खाली कर पाओगे। स्वच्छ कर पाओगे।

मन तो सुबह से शुरू करना चाहेगा। क्योंकि वह आसान है। मन उस क्रम को भलीभाँति जानता है। उसमें कोई अड़चन नहीं है। प्रतिक्रमण में भी मन उछल कर सुबह पर चला जाता है। और फिर आगे चला चलेगा। वह गलत है, वैसा मत करो। सजग हो जाओ और प्रतिक्रम से चलो।

इसमें मन को प्रशिक्षित करने के लिए अनय उपाय भी काम में लाए जा सकते है। सौ से पीछे की तरह गिनना शुरू करो—निन्यानवे, अट्ठानवे, सत्तानवे,। प्रतिक्रम से सौ से एक तक गिनो। इसमे भी अड़चन होगी। क्योंकि मन की आदत है एक से सौ कि और जाने की है। सौ से एक की और जाने की नहीं। इसी क्रम में घटनाओं को पीछे लौटकर स्मरण करना है।

क्या होगा? पीछे लौटते हुए मन को फिर से खोलकर देखते हुए तुम साक्षी हो जाओगे। अब तुम उन चीजों को देख रहे हो जो कभी तुम्हारे साथ घटित हुई थी, लेकिन अब तुम्हारे साथ घटित नहीं हो रही है। अब तो तुम सिर्फ साक्षी हो, और वे घटनाएं मन के पर्दे पर घटित हो रही है।

अगर इस ध्यान को रोज जारी रखो तो किसी दिन अचानक तुम्हें दुकान पर या दफ्तर में काम करते हुए ख्याल होगा कि क्यों नहीं अभी घटने वाली घटनाओं के प्रति भी साक्षी भाव रख जाए। अगर समय में पीछे लौटकर जीवन की घटनाओं को देखा जा सकता है। उनका गवाह हुआ जा सकता है। दिन में किसी ने तुम्हारा अपमान किया थ और तुम बिना क्रोधित हुए उस घटना को फिर से देख सकते हो—तो क्या कारण है कि उस घटनाओं को जो अभी घट रही है, नहीं देखा जा सकता है। कठिनाई क्या है?

कोई तुम्हारा अपमान कर रहा है। तुम अपने को घटना से पृथक कर सकते हो। और देख सकते हो। कि कोई तुम्हारा अपमान कर रहा है। तुम यह भी देख सकते हो कि तुम अपने शरीर से, अपने मन से और उससे भी जो अपमानित हुआ है। पृथक हो। तुम सारी चीज के गवाह हो सकते हो। और अगर ऐसे गवाह हो सको तो फिर तुम्हें क्रोध नहीं होगा। क्रोध तब असंभव हो जायेगा। क्रोध तो तब संभव होता है जब तुम तादात्म्य करते हो। अगर तादात्म्य नहीं है तो क्रोध असंभव है। क्रोध का अर्थ तादात्म्य है।

यह विधि कहती है कि अतीत की किसी घटना को देखो, उसमें तुम्हारा रूप उपस्थित होगा। यह सूत्र तुम्हारी नहीं, तुम्हारे रूप की बात करता है। तुम तो कभी वहां थे ही नहीं। सदा किसी घटना में तुम्हारा रूप उलझता है। तुम उसमे नहीं होते। जब तुम मुझे अपमानित करते हो तो सच में तुम मुझे अपमानित नहीं करते। तुम मेरा अपमान कर ही नहीं सकते। केवल मेरे रूप का अपमान कर सकते हो। मैं जो रूप हूं तुम्हारे लिए तो उसी की उपस्थिति अभी है और तुम उसे अपमानित कर सकत हो। लेकिन मैं अपने को अपने रूप से पृथक कर सकता हूं।

यही कारण है कि हिंदू-रूप से अपने को पृथक करने की बात पर जोर देता है। तुम तुम्हारा नाम रूप नहीं हो, तुम वह चैतन्य हो जो नाम रूप को जानता है। और चैतन्य पृथक है, स्र्वथा पृथक है।

लेकिन यह कठिन है। इसलिए अतीत से शुरू करो। वह सरल है। क्योंकि अतीत के साथ कोई तात्कालिकता का भाव नहीं रहता है। किसी ने बीस साल पहले तुम्हें अपमानित किया था, उसमें तात्कालिकता का भा अब कैसे होगा। वह आदमी मर चुका होगा और बात समाप्त हो गई है। यह एक मुर्दा घटना है। अतीत से याद की हुई। उसके प्रति जागरूक होना आसान है। लेकिन एक बार तुम उसके प्रति जागना सीख गए तो अभी और यहां होने वाली घटनाओं के प्रति भी जाना हो सकता है। लेकिन अभी और यहां से आरंभ करना कठिन है। समस्या इतनी तात्कालिक है, निकट है, जरूरी है कि उसमे गति करने के लिए जगह ही कहां है। थोड़ा दूरी बनाना और घटना से पृथक होना कठिन बात है।

इसीलिए सूत्र कहता है कि अतीत से आरंभ करो। अपने ही रूप को अपने से अलग देखो और उसके द्वारा रूपांतरित हो जाओ।

इसके द्वारा रूपांतरित हो जाओगे। क्योंकि यह निर्ग्रंथन है—एक गहरी सफाई है, धुलाई है। और तब तुम जानोंगे कि समय में जो तुम्हारा शरीर है, तुम्हारा मन है। अस्तित्व है, वह तुम्हारा वास्तविक यथार्थ नहीं है। वह तुम्हारा सत्य नहीं है। सार-सत्य सर्वथा भिन्न है। उस सत्य से चीजें आती जाती है। और सत्य अछूता रह जाता है। तुम अस्पर्शित रहते हो। निर्दोष रहते हो, कुँवारे रहते हो। सब कुछ गुजर जाता है। पूरा जीवन गुजर जाता है। शुभ और अशुभ सफलता और विफलता, प्रशंसा और निंदा, सब कुछ गुजर जाता है। रोग और स्वास्थ्य, जवानी और बुढ़ापा, जन्म और मृत्यु, सब कुछ व्यतीत हो जाता है। और तुम अछूते रहते हो।

लेकिन इस अस्पर्शित सत्य को कैसे जाना जाए?

इस विधि का वही उपयोग है। अपने अतीत से आरंभ करो। अतीत को देखने के लिए अवकाश उपलब्ध है। अंतराल उपलब्ध है, परिप्रेक्ष्य संभव है। या भविष्य को देखो, भविष्य का निरीक्षण करो। लेकिन भविष्य को देखना भी कठिन है। सिर्फ थोडे से लोगों के लिए भविष्य को देखना कठिन नहीं है। कवियों और कल्पनाशील लोगों के लिए भविष्य को देखना कठिन नहीं है। वे भविष्य को ऐसे देख सकते है जैसे वे किसी यथार्थ को देखते है। लेकिन सामान्यत: अतीत को उपयोग में लाना अच्छा है। तुम अतीत में देख सकते हो।

जवान लोगों के लिए भविष्य में देखना अच्छा रहता है। उनके लिए भविष्य में झांकना सरल है, क्योंकि वे भविष्योन्मुख होते है। बूढे लोगों के लिए मृत्यु के सिवाय कोई भविष्य नहीं है। वे भविष्य में नहीं देख सकते है। वे भयभीत है। यही वजह है कि बूढ़े लोग सदा अतीत के संबंध में विचार करते है। वे पुन:-पुन: अपने अतीत की स्मृति में घूमते रहते है। लेकिन वे भी वही भूल करते है। वे अतीत से शुरू कर वर्तमान की और आते है। यह गलत है। उन्हें प्रतिक्रमण करना चाहिए।

अगर वे बार-बार अतीत में प्रतिक्रम से लौट सकें तो धीरे-धीरे उन्हें महसूस होगा कि उनका सारा अतीत बह गया। तब कोई आदमी अतीत से चिपके बिना, अटके बिना मर सकता है। अगर तुम अतीत को अपने से चिपकने न दो, अतीत में न अटकों, अतीत को हटाकर मर सको। तब तुम सजग मरोगे। तब तुम पूरे बोध में, पूरे होश में मरोगे। और तब मृत्यु तुम्हारे लिए मृत्यु नहीं रहेगी। बल्कि वह अमृत के साथ मिलन में बदल जाएगी।

अपनी पूरी चेतना को अतीत के बोझ से मुक्त कर दो। उससे अतीत के मैल को निकालकर उसे शुद्ध कर दो। और तब तुम्हारा जीवन रूपांतरित हो जाएगा।

प्रयोग करो। यह उपाय कठिन नहीं है। सिर्फ अध्यवसाय की, सतत चेष्टा की जरूरत है। विधि में कोई अंतर्भूत कठिनाई नहीं है। यह सरल है। और तुम आज से ही इसे शुरू कर सकते हो। आज ही रात अपने बिस्तर में लेट कर शुरू करो, और तुम बहुत सुंदर और आनंदित अनुभव करोगे। पूरा दिन फिर से गुजर जाएगा।

लेकिन जल्दबाजी मत करो। धीरे-धीर पूरे क्रम से गूजरों, ताकि कुछ भी दृष्टि से चूके नहीं। यह एक आश्चर्यजनक अनुभव है। क्योंकि अनेक ऐसी चीजें तुम्हारी निगाह के सामने आएँगी जिन्हें दिन में तुम चुक गये थे। दिन में बहुत व्यस्त रहने के कारण तुम बहुत सुंदर चीजें चूकते हो, लेकिन मन उन्हें भी अपने भीतर इकट्ठा करता जाता है। तुम्हारी बेहोशी में भी मन उनको ग्रहण करता जाता है।

तुम सड़क पर जा रहे हो। और कोई आदमी गा रहा था। हो सकता है कि तुमने उसके गीत पर कोई ध्यान नहीं दिया हो। तुम्हें यह भी बोध न हुआ हो कि तुमने उसकी आवाज भी सुनी। लेकिन तुम्हारे मन ने उसके गीत को भी सुना और अपने भीतर स्मृति में रख लिया था अब वह गीत तुम्हें पकड़े रहेगा। वह तुम्हारी चेतना पर अनावश्यक बोझ बना रहेगा।

तो पीछे लौट कर देखो, लेकिन बहुत धीरे-धीरे उसमे गति करो। ऐसा समझो कि पर्दे पर बहुत धीमी गति से कोई फिल्म दिखायी जा रही है। ऐसे ही अपने बीते दिन की छोटी से छोटी घटना को गौर से देखो, उसकी गहराई में जाओ। और तब तुम पाओगे कि तुम्हारा दिन बहुत बड़ा था। वह सचमुच बड़ा था। क्योंकि मन को उसमे अनगिनत सूचनाएं मिली और मन ने सबको इकट्ठा कर लिया।

तो प्रतिक्रमण करो। धीरे-धीरे तुम उस सबको जानने में सक्षम हो जाओगे। जिन्हें तुम्हारे मन ने दिन भर में अपने भीतर इकट्ठा कर लिया था। वह टेप रिकार्डर जैसा है। और तुम जैसे-जैसे पीछे जाओगे। मन का टेप पुछता जाएंगा। साफ होता जाएगा। और तब तक तुम सुबह की घटना के पास पहुंचोगे तुम्हें नींद आ जाएगी। और तब तुम्हारी नींद की गुणवता और होगी। वह नींद भी ध्यान पूर्ण होगी।

और दूसरे दिन सुबह नींद से जागने पर अपनी आंखों को तुरंत मत खोलों। एक बार फिर रात की घटनाओं में प्रतिक्रम से लोटों। आरंभ में यह कठिन होगा। शुरू में बहुत थोड़ी गति होगी। कभी कोई स्वप्न का अंश, उस स्वप्न का अंश जिसे ठीक जागने के पहले तुम देख रहे थे। दिखाई पड़ेगा। लेकिन धीरे-धीरे तुम्हें ज्यादा बातें स्मरण आने लगेंगी। तुम गहरे प्रवेश करने लगोंगे। और तीन महीने के बाद तुम समय के उस छोर पर पहूंच जाओगे। जब तुम्हें नींद लगी थी। जब तुम सो गए थे।

और अगर तुम अपनी नींद में प्रतिक्रम से गहरे उतर सके तो तुम्हारी नींद और जागरण की गुणवता बिलकुल बदल जाएगी। तब तुम्हें सपने नहीं आएँगे, तब सपने व्यर्थ हो जायेंगे। अगर दिन और रात दोनों में तुम प्रतिक्रमण कर सके तो फिर सपनों की जरूरत नहीं रहेगी।

अब मनोवैज्ञानिक कहते है कि सपना भी मन को फिर से खोलने, खाली करने की प्रक्रिया है। और अगर तुम स्वयं यह काम प्रतिक्रमण के द्वारा कर लो तो स्वप्न देखने जरूरत ही नहीं रहेगी। सपना इतना ही तो करता है कि जो कुछ मन में अटका है। अधूरा पडा था, अपूर्ण था, उसे वह पूरा कर देता है।

तुम सड़क से गुजर रहे थे और तुमने एक सुंदर मकान देखा और तुम्हारे भीतर उस मकान को पाने की सूक्ष्म वासना पैदा हो गई। लेकिन उस समय तुम दफ्तर जा रहे थे। और तुम्हारे पास दिवा-स्वप्न देखने का समय नहीं था। तुम उस कामना को टाल गये। तुम्हें यह पता भी नहीं चला कि मन ने मकान को पाने की कामना निर्मित कर ली है। लेकिन यह कामना अब भी मन के किसी कोने में अटकी पड़ी है। और अगर तुमने उसे वहां से नहीं हटाया तो वह तुम्हारी नींद मुश्किल कर देगी।

नींद की कठिनाई यही बताती है कि तुम्हारा दिन अभी भी तुम पर हावी है और तुम उससे मुक्त नहीं हो पा रहे हो। तब रात में तुम स्वप्न देखेंगे कि तुम उस मकान के मालिक हो गए हो, और अब तुम उस मकान में वास कर रहे हो। और जिस क्षण यह स्वप्न घटित होता है। क्योंकि सपने तुम्हारी अधूरी चीजों को पूरा करने में सहयोगी होते है।

और ऐसी चीजें है जो पूरी नहीं हो सकती। तुम्हारा मन अनर्गल कामनाए किए जाता है। वे यथार्थ में पूरी नहीं हो सकती। तो क्या किया जाए? वे अधूरी कामनाए तुम्हारे भीतर बनी रहती है। और तुम आशा किए जाते हो। सोच विचार किए जाते हो। तो क्या किया जाए? तुम्हें एक सुंदर स्त्री दिखाई देती है। और तुम उसके प्रति आकर्षित हो गए। अब उसे पाने की कामना तुम्हारे भीतर पैदा हो गई। जो हो सकता है संभव न हो। हो सकता है वह स्त्री तुम्हारी तरफ ताकना भी पसंद न करे। तब क्या हो?

स्वप्न यहां तुम्हारी सहायता करता है। स्वप्न में तुम उस स्त्री को पा सकते हो। और तब तुम्हारा मन हलका हो जाएगा। जहां तक मन का संबंध है, स्वप्न और यथार्थ में कोई फर्क नहीं है। मन के तल पर क्या फर्क? किसी स्त्री को यथार्थत: प्रेम करने और सपने में प्रेम करने में क्या फर्क है?

कोई फर्क नहीं है। अगर फर्क है तो इतना ही कि स्वप्न यथार्थ से ज्यादा सुंदर होगा। स्वप्न की स्त्री कोई अड़चन नहीं खड़ी करेगी। स्वप्न तुम्हारा और उसमे तुम जो चाहे कर सकते हो। वह स्त्री तुम्हारे लिए कोई बाधा नहीं पैदा करेगी। वह तो है ही नहीं, तुम ही हो। वहां कोई अड़चन नहीं है। तुम जो चाहो कर सकते हो, मन के लिए कोई भेद नहीं है। मन स्वप्न और यथार्थ में कोई भेद नहीं कर सकता है।

उदाहरण के लिए तुम्हें यदि एक साल के लिए बेहोश करके रख दिया जाए और उस बेहोशी मे तुम सपने देखते रहो। तो एक साल तक तुम्हें बिलकुल पता नहीं चलेगा कि जो भी तुम देख रहे हो वह सपना है। सब यथार्थ जैसा लगेगा। और स्वप्न साल भर चलता रहेगा। मनोवैज्ञानिक कहते है कि अगर किसी व्यक्ति को सौ साल के लिए कौमा में रख दिया जाए तो वह सौ साल तक सपने देखता रहेगा। और उसे क्षण भर के लिए भी संदेह नहीं होगा। कि जो मैं कर रहा हूं वह स्वप्न है। और यदि कोमा में ही मर जाएगा तो उसे कभी पता नहीं चलेगा कि मेरा जीवन एक स्वप्न था। सच नहीं था।

मन के लिए कोई भेद नहीं है। सत्य और स्वप्न दोनों समान है। इसलिए मन अपने को सपनों में भी निर्ग्रंथ कर सकता है। अगर इस विधि का प्रयोग करो तो सपना देखने की जरूरत नहीं है। तब तुम्हारी नींद की गुणवता ही पूरी तरह से बदल जायेगी। क्योंकि सपनों की अनुपस्थिति में तुम अपने अस्तित्व की आत्यंतिक गहराई में उतर सकोगे। और तब नींद में भी तुम्हारा बोध कायम रहेगा।

कृष्ण गीता में यही बात कह रहे है कि जब सभी गहरी नींद में होते है तो योगी जागता रहता है। इसका यह अर्थ नहीं कि योगी नहीं सोता। योगी भी सोता है। लेकिन उसकी नींद का गुणधर्म भिन्न है। तुम्हारी नींद ऐसी है जैसे नशे की बेहोशी होती है। योगी की नींद प्रगाढ़ विश्राम है। जिसमे कोई बेहोशी नहीं रहती है। उसका सारा शरीर विश्राम में होता है। एक-एक कोश विश्राम में होता है। वहां जरा भी तनाव नहीं रहता। और बड़ी बात कि योगी अपनी नींद के प्रति जागरूक रहता है।

इस विधि का प्रयोग करो। आज रात से ही प्रयोग शुरू करो। और फिर सुबह भी इसका प्रयोग करना। एक सप्ताह में तुम्हें मालूम होगा कि तुम विधि से परिचित हो गए हो। एक सप्ताह के बाद अपने अतीत पर प्रयोग करो। बीच में एक दिन की छुट्टी रख सकेत हो। किसी एकांत स्थान में चले जाओ। अच्छा हो कि उपवास करा—उपवास और मौन। एकांत समुद्र तट पर या किसी झाड़ के नीचे लेटे रहो, वहां से, उसी बिंदु से अपने अतीत में प्रवेश करो। अगर तुम समुद्र तट पर लेटे हो तो रेत को अनुभव करो। धूप को अनुभव करो और तब पीछे की और सरको। और सरकते चले जाओ। अतीत में गहरे उतरते चले जाओ। देखो कि कौन सी आखिर बात स्मरण आती है।

तुम्हें आश्चर्य होगा कि सामान्यत: तुम बहुत कुछ स्मरण नहीं कर सकते हो। सामान्यत: अपनी चार या पाँच वर्ष की उम्र के आगे नहीं जा सकोगे। जिनकी याददाश्त बहुत अच्छी है वे तीन वर्ष की सीमा तक जा सकते है। उसके बाद अचानक एक अवरोध मिलेगा। जिसके आगे सब कुछ अँधेरा मिलेगा। लेकिन अगर तुम इस विधि का प्रयोग करते रहे तो धीरे-धीरे यह अवरोध टूट जाएगा। तुम अपने जन्म के प्रथम दिन को भी याद कर पाओगे।

और वह एक बड़ा रहस्योद्घाटन होगा। तब धूप, बालू और सागर तट पर लौटकर तुम एक दूसरे ही आदमी होगें।

यदि तुम श्रम करो तो तुम गर्भ तक जा सकते हो। तुम्हारे पास मां के पेट की स्मृतियां है। मां के साथ नौ महीने होने की बातें भी तुम्हें याद है। तुम्हारे मन में उन नौ महीनों की कथा भी लिखी है। जब तुम्हारी मां दुःखी हुई थी तो तुमने उसको भी मन में लिख लिया था। क्योंकि मां के दुःखी होने से तुम भी दुःखी हुये थे। तुम अपनी मां के साथ इतने जुडे थे। संयुक्त थे कि जो कुछ तुम्हारी मां को होता था वह तुम्हें भी होता था। जब वह क्रोध करती थी तो तुम भी क्रोध करते थे। जब वह खुश थी तो तुम भी खुश थे। जब कोई उसकी प्रशंसा करता था तो तुम भी प्रशंसित होते थे। और जब वह बीमार होती थी तो उसकी पीड़ा से तुम भी पीडित होते थे।

यदि तुम गर्भ की स्मृति में प्रवेश कर सको तो समझो कि मिल गई। और जब तुम और गहरे उतर सकते हो। तब तुम उस क्षण को भी याद कर सकते हो जब तुमने मां के गर्भ में प्रवेश किया था। इसी जाति स्मरण के कारण महावीर और बुद्ध कह सके कि पूर्वजन्म है और पुनर्जन्म काई सिद्धांत नहीं है। वह एक गहन अनुभव है।

और अगर तुम उस क्षण की स्मृति को पकड़ सको, जब तुमने मां के गर्भ में प्रवेश किया था तो तुम उससे भी आगे जा सकते हो। तुम अपने पूर्व जीवन की मृत्यु को भी याद कर सकते हो। और एक बार तुमने उस बिंदू को छू लिया तो समझो कि विधि तुम्हारे हाथ लग गई। तब तुम आसानी से अपने सभी पूर्व जन्मों में गति कर सकते हो।

यह एक अनुभव है, और इसके परिणाम आश्चर्यजनक है। जब तुम्हें पता चलता है कि तुम जन्मों –जन्मों से उसी व्यर्थता को जी रहे हो। जो अभी तुम्हारे जीवन में है। एक ही मूढ़ता को तुम जन्मों-जन्मों में दुहराते रहे हो। भीतरी ढंग ढांचा वही है। सिर्फ ऊपर-ऊपर थोड़ा फर्क है। अभी तुम इस स्त्री के प्रेम में हो, कल किसी अन्य स्त्री के प्रेम मैं थे। कल तुमने धन बटोरा था, आज भी धन बटोर रहे हो। फर्क इतना है कि कल के सिक्के और थे आज के सिक्के और है। लेकिन सारा ढांचा वही है, जो पुनरावृत्त होता रहा है।

और एक बार तुम देख लो कि जन्मों–जन्मों से एक ही तरह की मूढ़ता एक दुस्चक्र की भांति घूमती रही है। तो अचानक तुम जाग जाओगे। और तुम्हारा पूरा अतीत स्वप्न से ज्यादा नहीं रहेगा। तब वर्तमान सहित सब कुछ स्वप्न जैसा लगेगा। तब तुम उससे सर्वथा टूट जाओगे। और अब नहीं चाहोगे कि भविष्य में फिर से मूढ़ता दोहरे। तब वासना समाप्त हो जाएगी। क्योंकि वासना भविष्य में अतीत का प्रक्षेपण है। उससे अधिक कुछ नहीं है। तुम्हारा अतीत का अनुभव भविष्य में दुहराना चाहता है। वही तुम्हारी कामना है, चाह है।

पुराने अनुभव को फिर से भोगने की चाह कि कामना है। ओर जब तक तुम इस पुरी प्रक्रिया के प्रति होश पूर्ण नहीं होते हो तब तक वासना से मुक्त नहीं हो सकते। कैसे हो सकते हो? तुम्हारा समस्त अतीत एक अवरोध बनकर खड़ा है; चट्टान की तरह तुम्हारे सिर पर सवार है और वही तुम्हें तुम्हारे भविष्य की और धका रहा है। अतीत कामना को जन्म देकर उसे भविष्य में प्रक्षेपित करता है।

अगर तुम अपने अतीत को स्वप्न की तरह जान जाओ तो सभी कामनाए बांझ हाँ जाएंगी। और कामनाओं के गिरते ही भविष्य समाप्त हो जाता है। और इस अतीत और भविष्य की समाप्ति के साथ तुम रूपांतरित हो जाते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

तंत्र-सूत्र—विधि-23 (ओशो)

केंद्रित होने की ग्यारहवीं विधि:

किसी विषय को अनुभव करो, विज्ञान भैरव तंत्र-शिव (ओशो)

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो। इस एक को छोड़कर अन्य सभी विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो। फिर विषय-भाव और अनुपस्थिति भाव को भी छोड़कर आत्मोपलब्ध होओ।''

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो।''
कोई भी विषय, उदाहरण के लिए एक गुलाब का फूल है—कोई भी चीज चलेगी।

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो....''

देखने से काम नहीं चलेगा, अनुभव करना है। तुम गुलाब के फूल को देखते हो, लेकिन उससे तुम्हारा हृदय आंदोलित नहीं होता है। तब तुम गुलाब को अनुभव नहीं करते हो। अन्यथा तुम रोते और चीखते, अन्यथा तुम हंसते और नाचते। तुम गुलाब को महसूस नहीं कर रहे हो, तुम सिर्फ गुलाब को देख रहे हो।

और तुम्हारा देखना भी पूरा नहीं है। अधूरा है। तुम कभी किसी चीज को पूरा नहीं देखते अतीत हमेशा बीच में आता है। गुलाब को देखते ही अतीत-स्मृति कहती है कि यह गुलाब है। और यह कहकर तुम आगे बढ़ जाते हो। लेकिन तब तुमने सच में गुलाब को नहीं देखा। जब मन कहता है कि यह गुलाब है तो उसका अर्थ हुआ कि तुम इसके बारे में सब कुछ जानते हो, क्योंकि तुमने बहुत गुलाब देखे है। मन कहता है कि अब और क्या जानना है। आगे बढ़ो। और आगे बढ़ जाते हो। यह देखना अधूरा है। यह देखना-देखना नहीं है। गुलाब के फूल के साथ रहो। उसे देखो और फिर उसे महसूस करो। उसे अनुभव करो। अनुभव करने के लिए क्या करना है? उसे स्पर्श करो, उसे सूंघो; उसे गहरा शारीरिक अनुभव बनने दो। पहले अपनी आंखों को बंद करो और गुलाब को अपने पूरे चेहरे को छूने दो। इस स्पर्श को महसूस करो। फिर गुलाब को आँख से स्पर्श करो। फिर गुलाब को नाक से सूंधो। फिर गुलाब के पास हृदय को ले जाओ और उसके साथ मौन हो जाओ। गुलाब को अपना भाव अर्पित करो। सब कुछ भूल जाओ। सारी दूनिया को भूल जाओ। गुलाब के साथ समग्रत: रहो।

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो। इस एक को छोड़कर अन्य सभी विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो।

यदि तुम्हारा मन अन्य चीजों के संबंध में सोच रहा है तो गुलाब का अनुभव गहरा नहीं जाएगा। सभी अन्य गुलाबों को भूल जाओ। सभी अन्य लोगों को भूल जाओ। सब कुछ को भूल जाओ। केवल इस गुलाब को रहने दो। यही गुलाब हो, यही गुलाब। सब कुछ को भूल जाओ। केवल इस गुलाब को रहने दो। यही गुलाब, को तुम्हें आच्छादित कर लेने दो। समझो कि तुम इस गुलाब में डूब गये हो।

यह कठिन होगा, क्योंकि हम इतने संवेदनशील नहीं है। लेकिन स्त्रियों के लिए यह उतना कठिन नहीं होगा। क्योंकि वे किसी चीज को आसानी से महसूस करती है। पुरूषों के लिए यह ज्यादा कठिन होगा। हां, अगर उनका सौंदर्य बोध विकसित हो, कवि, चित्रकार या संगीतकार का सौंदर्य बोध विकसित होता है। तो बात और है। तब वे भी अनुभव कर सकते है। लेकिन इसका प्रयोग करो।

बच्चे यह प्रयोग बहुत सरलता से कर सकते है। मैं अपने एक मित्र के बेटे को यह प्रयोग सिखाता था। यह किसी चीज को आसानी से अनुभव करता था। फिर मैंने उसे गुलाब का फल दिया और उससे यह सब कहा जो तुम्हें अब कह रहा हूं। उसने यह किया और कहा कि मैं गुलाब का फूल बन गया हूं। मेरा भाव यही है कि मैं ही गुलाब का फूल हूं।

बच्चे इस विधि को बहुत आसानी से कर सकते है। लेकिन हम उन्हें इसमें प्रशिक्षित नहीं करते। प्रशिक्षित किया जाए तो बच्चे सर्वश्रेष्ठ ध्यानी हो सकते है।

''अपने सामने किसी विषय को अनुभव करो। इस एक को छोड़कर अन्य सभी विषयों की अनुपस्थिति को अनुभव करो।''
प्रेम में यही घटित होता है। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तो तुम सारे संसार को भूल जाते हो। और अगर अभी भी संसार तुम्हें याद है तो भली भांति समझो कि यह प्रेम नहीं है। प्रेम में तुम संसार को भूल जाते हो, सिर्फ प्रेमिका या प्रेमी याद रहता है। इसलिए मैं कहता हूं कि प्रेम ध्यान है। तुम इस विधि को प्रेम-विधि के रूप में भी उपयोग कर सकते हो। अब अन्य सब कुछ भूल जाओ।

कुछ दिन हुए एक मित्र अपनी पत्नी के साथ मेरे पास आए। पत्नी को पति से कोई शिकायत थी। इसलिए पत्नी आई थी। मित्र ने कहा कि मैं एक वर्ष से ध्यान कर रहा हूं। और लगती है। यह आवाज मेरे ध्यान में सहयोगी है। लेकिन अब एक

आश्चर्य की घटना घटती है। जब मैं अपनी पत्नी के साथ संभोग करता हूं, और संभोग शिखर छूने लगता है तब भी मेरे मुंह से रजनीश-रजनीश की आवाज निकलने लगती है। और इस कारण मेरी पत्नी को बहुत अड़चन होती है। वह अक्सर पूछती है कि तुम प्रेम करते हो या ध्यान करते हो या क्या करते हो? और ये रजनीश बीच में कैसे आ जाते है।

उस मित्र ने कहा कि मुश्किल यह है कि अगर मैं रजनीश-रजनीश न चिल्लाउं तो संभोग का शिखर चूक जाता है। और चिल्लाउं तो पत्नी पीडित होती है। सह रोने चिल्लाने लगती है। और मुसीबत खड़ी कर देती है। तो उन्होंने मेरी सलाह पूछी और कहां कि पत्नी को साथ लाने का यही कारण है।

उनकी पत्नी की शिकायत दुरूस्त है। क्योंकि वह कैसे मान सकती है कि कोई दूसरा व्यक्ति उनके बीच में आये। यही कारण है कि प्रेम के लिए एकांत जरूरी है। बहुत जरूरी है। सब कुछ को भूलने के लिए एकांत अर्थपूर्ण है।

अभी यूरोप और अमेरिका में वे समूह संभोग का प्रयोग कर रहे है—एक कमरे में अनेक जोड़े संभोग में उतरते है। यह मूढ़ता है। अत्यंतिक मूढ़ता है। क्योंकि समूह में संभोग की गहराई नहीं छुई जा सकती है। वह सिर्फ काम क्रीड़ा बन कर रह जाएगी। दूसरों की उपस्थिति बाधा बन जाती है। तब इस संभोग को ध्यान भी नहीं बनाया जा सकता है।

अगर तुम शेष संसार को भूल सको तो ही तुम किसी विषय के प्रेम में हो सकते हो। चाहे वह गुलाब का फूल हो या पत्थर हो या कोई भी चीज हो, शर्त यही है कि उस चीज की उपस्थिति महसूस करो और अन्य चीजों की अनुपस्थिति महसूस करो। केवल वही विषय वस्तु तुम्हारी चेतना में अस्तित्वगत रूप से रहे।

अच्छा हो कि इस विधि के प्रयोग के लिए कोई ऐसी चीज चुनो जो तुम्हें प्रीतिकर हो। अपने सामने एक चट्टान रखकर शेष संसार को भूलना कठिन होगा। यह कठिन होगा, लेकिन झेन सदगुओं ने यह भी किया है। उन्होंने ध्यान के लिए रॉक गार्डन बना रखा है। वहां पेड़-पौधे या फूल नहीं होते। पत्थर और बालू होते है। और वे पत्थर पर ध्यान करते है।

वे कहते है कि अगर किसी पत्थर के प्रति तुम्हारा गहन प्रेम हो तो कोई भी आदमी तुम्हारे लिए बाधा नहीं हो सकता। और मनुष्य चट्टान जैसे ही तो है। अगर तुम चट्टान को प्रेम कर सकते हो तो मनुष्य को प्रेम करने में क्या कठिनाई। तब कोई अड़चन नहीं है। मनुष्य चट्टान जैसे है। उससे भी ज्यादा पथरीले। उन्हें तोड़ना उनमें प्रवेश करना अति कठिन है।

लेकिन अच्छा हो कि कोई ऐसी चीज चुनो जिसके प्रति तुम्हारा सहज प्रेम हो। और तब शेष संसार को भूल जाओ। उसकी उपस्थिति का मजा लो, उसका स्वाद लो आनंद लो। उस वस्तु में गहरे उतरो और उस वस्तु को अपने में गहरा उतरने दो।

''फिर विषय भाव को छोड़कर.......।''
अब इस विधि का कठिन अंश आता है। तुमने पहले ही सब विषय छोड़ दिए है। सिर्फ यह एक विषय तुम्हारे लिए रहा है। सबको भूलकर एक इसे तुमने याद रखा था। अब ''विषय भाव को छोड़कर....।'' अब उस भाव को भी छोड़कर। अब तो दो ही चींजे बची है, एक विषय की उपस्थिति है और शेष चीजों की अनुपस्थिति है। अब उस अनुपस्थिति को भी छोड़ दो। केवल यह गु लाब या केवल यह चेहरा। यह केवल यह स्त्री या केवल यह पुरूष या यह चट्टान की उपस्थिति बची है। उसे भी छोड़ दो। और उसके प्रति जो भाव है, उसे भी तुम अचानक एक आत्यंतिक शून्य में गिर जाते हो। जहां कुछ भी नहीं बचता।

और शिव कहते है: ''आत्मोपल्बध होओ।'' इस शून्य को, इस ना-कुछ को उपलब्ध हो, यही तुम्हारा स्वभाव है, यही शुद्ध होना है।

शून्य को सीधे पहुंचना कठिन होगा—कठिन और श्रम-साध्य। इसलिए किसी विषय को माध्यम बनाकर वहां अच्छा है। पहले किसी विषय को अपने मन में ले लो और उसे इस समग्रता से अनुभव करो। कि किसी अन्य चीज को याद रखने की जरूरत न रहे। तुम्हारी समस्त चेतना इस एक चीज से भर जाए। और तब इस विषय को भी छोड़ दो, इसे भी भूल जाओ। तब तुम किसी अगाध अतल में प्रविष्ट हो जाते हो। जहां कुछ भी नहीं है। वहां केवल तुम्हारी आत्मा है। शुद्ध और निष्कलुष। यह शुद्ध अस्तित्व यह शुद्ध चैतन्य ही तुम्हारा स्वभाव है।

लेकिन इस विधि को कई चरणों में बांटकर प्रयोग करो। पूरी विधि को एकबारगी काम में मत लाओ। पहल एक विषय का भाव निर्मित करो। कुछ दिन तक सिर्फ इस हिस्से का प्रयोग करो। पूरी विधि का प्रयोग मत करो। पहले कुछ दिनों तक या कुछ हफ्तों तक इस एक हिस्से की, पहले हिस्से की साधना करो। विषय-भाव पैदा करो। पहले विषय को महसूस करो। और एक ही विषय चुनो, उसे बार-बार बदलों मत। क्योंकि हर बदलते विषय के साथ तुम्हें फिर-फिर उतना ही श्रम करना होगा।

अगर तुमने विषय के रूप में गुलाब का फूल चुना है तो रोज-रोज गुलाब के फूल का ही उपयोग करो। उस गुलाब के फूल से तुम भर जाओ। भरपूर हो जाओ। ऐसे भर जाओ कि एक दिन कह सको की मैं फूल ही हूं। तब विधि का पहला हिस्सा सध गया, पूरा हूआ।

जब फूल ही रह जाए और शेष सब कुछ भूल जाए, तब इस भाव का कुछ दिनों तक आनंद लो। यह भाव अपने आप में सुंदर है। बहुत-बहुत सुंदर है। यह अपने आप में बहुत प्राणवान है, शक्तिशाली है। कुछ दिनों तक यही अनुभव करते रहो। और जब तुम उसके साथ रच-पच जाओगे, लयवद्ध हो जाओगे, तो फिर वह सरल हो जाएगा। फिर उसके लिए संघर्ष नहीं करना होगा। तब फूल अचानक प्रकट होता है। और समस्त संसार भूल जाता है। केवल फूल रहता है।

इसके बाद विधि के दूसरे भाग पर प्रयोग करो। अपनी आँख बंद कर लो और फूल को भी भूल जाओ। याद रहे, अगर तुमने पहल भाग को ठीक-ठीक साधा है तो दूसरा भाग कठिन नहीं होगा। लेकिन यदि पूरी विधि पर एक साथ प्रयोग करोगे तो दूसरा भाग कठिन ही नहीं असंभव होगा। पहले भाग में अगर तुमने एक फूल के लिए सारी दुनियां को भूला दिया तो दूसरे भाग में शून्य के लिए फूल को भूलाना आसानी से हो सकेगा। दूसरा भाग आएगा। लेकिन उसके लिए पहल भाग पहले करना जरूरी है।

लेकिन मन बहुत चालाक है। मन सदा कहेगा। कि पूरी विधि को एक साथ प्रयोग करो। लेकिन उसमे तुम सफल नहीं हो सकते हो। और तब मन कहेगा कि यह विधि काम की नहीं है। या यह तुम्हारे लिए नही है।

इसलिए अगर सफल होना चाहते हो तो विधि को क्रम में प्रयोग करो। पहले-पहले भाग को पूरा करो और तब दूसरे भाग को हाथ में लो। और तब विषय भी विलीन हो जाता है। और मात्र तुम्हारी चेतना रहती है। शुद्ध प्रकाश, शुद्ध ज्योति-शिखा।

कल्पना करो कि तुम्हारे पास दीया है, और दिए की रोशनी अनेक चीजों पर पड़ रही है। मन की आंखों से देखो कि तुम्हारे अंधेरे कमरे में अनेक-अनेक चीजें है। और तुम एक दिया वहां लाते हो और सब चीजें प्रकाशित हो जाती है। दीया उन सब चीजों को प्रकाशित करता है। जिन्हें तुम वहां देखते हो।

लेकिन अब तुम उनमें से एक विषय चून लो, और उसी विषय के साथ रहो। दीया वहीं है, लेकिन अब उसकी रोशनी एक ही विषय पर पड़ती है। फिर उस एक विषय को भी हटा दो। और तब दीए के लिए कोई विषय नहीं बचा।

वही बात तुम्हारी चेतना के लिए सही है। तुम प्रकाश हो, ज्योति शिखा हो। और सारा संसार तुम्हारा विषय है। तुम सारे संसार को छोड़ देते हो। और एक विषय पर अपने को एकाग्र करते हो। तुम्हारी ज्योति शिखा वही रहती है। लेकिन अब वह अनेक

विषयों में व्यस्त नहीं है। वह एक ही विषय में व्यस्त है। और फिर उस एक विषय को भी छोड़ दो। अचानक तब सिर्फ प्रकाश बचता है। चेतना बचती है। वह प्रकाश किसी विषय को नहीं प्रकाशित कर रहा है।

इसी को बुद्ध ने निर्वाण कहा है। इसी को महावीर ने कैवल्य कहा है। परम एकांत कहा है। उपनिषादो ने इसे ही ब्रह्मज्ञान या आत्मज्ञान कहा है। शिव कहते है कि अगर तुम इस विधि को साध लो तो तुम ब्रह्मज्ञान को उपलब्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

विज्ञान भैरव तंत्र ओशो part 2A

तंत्र-सूत्र—विधि-24 (ओशो)

केंद्रित होने की बारहवीं विधि:

विज्ञान भैरव तंत्र–शिव (जब किसी व्यक्ति के पक्ष विपक्ष पर भाव उठे…..

''जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करे।''
अगर हमें किसी के विरूद्ध घृणा अनुभव हो या किसी के लिए प्रेम अनुभव हो तो हम क्या करते है? हम उस घृणा या प्रेम को उस व्यक्ति पर आरोपित कर देते है। अगर तुम मेरे प्रति घृणा अनुभव करते हो तो उस घृणा के ही कारण तुम अपने को बिलकुल भूल जाते हो। और मैं तुम्हारा एक मात्र लक्ष्य या विषय बन जाता हूं। वैसे ही जब तुम मुझे प्रेम करते हो तो भी तुम अपने को बिलकुल ही भूल जाते हो। और मुझे अपना एक मात्र विषय बना लेते हो। तुम अपनी घृणा को प्रेम को या जो भी भाव हो, उसे मुझे पर प्रक्षेपित कर देते हो। उस दशा में तुम आंतरिक केंद्र को भूल जाते हो। और दूसरे को अपना केंद्र बना लेते हो।
यह सूत्र कहता है। कि जब किसी के प्रति घृणा, प्रेम या कोई और भाव पक्ष या विपक्ष में पैदा हो तो उसको, उस भाव को उस व्यक्ति पर आरोपित मत करो। बल्कि स्मरण रखो कि उस भाव का स्त्रोत तुम स्वयं हो।

मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। इसमें सामान्य भाव यह है कि तुम मेरे प्रेम के स्त्रोत हो। लेकिन यह हकीकत नहीं है। मैं ही स्त्रोत हूं, तुम तो महज वह पर्दा हो जिस पर मैं अपने प्रेम को प्रक्षेपित करता हूं। तुम मात्र पर्दा हो। मैं अपना प्रेम तुम पर प्रक्षेपित करता हूं। और मैं कहता हूं कि तुम मेरे प्रेम के स्त्रोत हो। लेकिन यह तथ्य नहीं है। यह झूठ है। यह मेरी ही प्रेम की ऊर्जा है जिसे मैं तुम पर प्रक्षेपित कर रहा हूं।

इस प्रेम की ऊर्जा की प्रभा में पड़ कर तुम सुंदर हो जाते हो। हो सकता है। किसी के लिए तुम सुंदर न होओ। हो सकता है कि किसी के लिए तुम बिलकुल कुरूप और विकर्षण से भरे होओ। ऐसा क्यों? अगर तुम ही प्रेम के स्त्रोत हो तो प्रत्येक व्यक्ति को तुम्हारे प्रति प्रेमपूर्ण होना चाहिए।

लेकिन तुम स्त्रोत नहीं हो। मैं तुम पर प्रेम आरोपित करता हूं तो तुम सुंदर हो जाते हो। कोई दूसरा व्यक्ति तुम पर घृणा आरोपित करता है और तुम कुरूप हो जाते हो। और हो सकता है कोई तीसरा व्यक्ति तुम्हारे प्रति बिलकुल उदासीन हो, तटस्थ हो। उसने तुम्हें देखा तक न हो। आखिर हो क्या रहा है? हम अपने-अपने भाव दूसरों पर फैला रहे है।

यही कारण है कि सुहागरात में चंद्रमा तुम्हें सुंदर, चमत्कारपूर्ण और अपूर्व दिखाई देता है। उस समय सारा संसार तुम्हें अपूर्व मालूम देता है। और हो सकता है उसी रात तुम्हारे पड़ोसी के लिए अद्भुत रात्रि अस्तित्व में न हो। और अगर उसका बच्चा मर

गया हो। तो वही चाँद उसके लिए उदास, दुःखी और असहनीय मालूम पड़ेगा। और वही चाँद तुम्हारे लिए इतना मोहक है, मादक है और तुम्हें पागल किए दे रहा है। क्यों? क्या चंद्रमा स्त्रोत है, आधार है? यह चंद्रमा केवल पर्दा है जिस पर तुम अपने को फैला रहे हो। प्रक्षेपित कर रहे हो।

यह सूत्र कहता है: ''जब किसी व्यक्ति के पक्ष या विपक्ष में कोई भाव उठे तो उसे उस व्यक्ति पर मत आरोपित करो, बल्कि केंद्रित रहो।''

यहां व्यक्ति की जगह कोई वस्तु भी हो सकती है। विषय के रूप में कुछ भी काम देगा। तुम सदा केंद्रित रहो। याद रहे कि तुम स्त्रोत हो और विषय की और गति करने की बजाएं स्त्रोत की और गति करो। जब घृणा का भाव उठे तो घृणा के विषय पर जाने की बजाएं उस बिंदु पर जाना बेहतर है जहां पर घृणा आ रही है। उस व्यक्ति को मत खोजों जो इस घृणा का विषय है। लक्ष्य है; उस केंद्र को खोजों जहां से घृणा उठ रही है। केंद्र की तरफ चलो, भीतर जाओ अपनी घृणा या प्रेम या जो भी भाव हो उसे केंद्र की और स्त्रोत की और, उदगम की और यात्रा का साधन बनाओ। उदगम पर जाओ, और वहां केंद्रित रहो।

इसे प्रयोग करो। यह बहुत ही मनोवैज्ञानिक विधि है। किसी ने तुम्हारा अपमान किया और तुम क्रोधित हो गए, ज्वरग्रस्त हो गए। अभी तुम्हारा यह क्रोध को उस आदमी प्रवाहित हो रहा है। जिसने तुम्हें अपमानित किया। तुम अपने पूरे क्रोध को उस आदमी पर प्रक्षेपित हो रहा है। जिसने तुम्हें अपमानित किया, अगर उसने तुम्हें अपमानित किया तो सच में क्या किया? उसने केवल तुम्हें थोड़ा कुरेदा। उसने तुम्हारे क्रोध को उभरने में थोड़ा सहायता कर दी। लेकिन यह क्रोध तुम्हारा है।

वह व्यक्ति बुद्ध के पास जाए और उन्हें अपमानित करे तो वह उनमें कोई क्रोध पैदा नहीं कर सकेगा। वह अगर जीसस के पास जाए तो जीसस उसे अपना दूसर गाल भी हाजिर कर देंगे। और बोधिधर्म के पाए जाए तो वह अट्टहास कर उठेंगे। यह व्यक्ति पर निर्भर है।

इसलिए दूसरा व्यक्ति स्त्रोत नहीं है। स्त्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। दूसरा सिर्फ स्त्रोत पर चोट कर रहा है। लेकिन अगर तुम्हारे भीतर क्रोध नहीं है तो क्रोध बाहर नहीं आएगा। यदि तुम बुद्ध को चोट करो तो करूणा आएगी। क्योंकि वहां क्रोध नहीं है।

एक सूखे कुएं में बाल्टी डालों तो कुछ भी हाथ नहीं आता। पानी वाले कुएं में बाल्टी डालों और वह पानी से भरकर बाहर आती है। लेकिन पानी कुएं में है। कुआं स्त्रोत है। बाल्टी तो पानी को बाहर लाने का निमित मात्र है।

जो आदमी तुम्हें अपमानित करता है वह बाल्टी का काम करता है। वह तुम्हारे भीतर से तुम्हारे क्रोध, घृणा या किसी भी आग को बाहर ले आता है। तो स्मरण रहे। तुम स्त्रोत हो।

इस विधि के लिए विशेष रूप से इस बात को ध्यान में रख लो कि दूसरों पर तुम जो भी भाव प्रक्षेपित करते हो उसका स्त्रोत सदा तुम्हारे भीतर है। इसलिए जब भी कोई भाव पक्ष या विपक्ष में उठे तो तुरंत भीतर प्रवेश करो और उस स्त्रोत के पास पहुंचो जहां से यह भाव उठ रहा है। स्त्रोत पर केंद्रित रहो, विषय की चिंता ही छोड़ दो। किसी ने तुम्हें तुम्हारे क्रोध को जानने का मोका दिया है। इसके लिए उसे तुरंत धन्यवाद दो और उसे भूल जाओ। फिर आंखें बंद कर लो और अपने भीतर सरक जाओ। और उस स्त्रोत पर ध्यान दो जहां से यह प्रेम या क्रोध का भाव उठ रहा है।

भीतर गति करने पर तुम्हें वह स्त्रोत मिल जाएगा। क्योंकि ये भाव उसी स्त्रोत से आते है। घृणा हो या प्रेम, सब तुम्हारे स्त्रोत से आते है। इस स्त्रोत के पास उस समय पहुंचना आसान है जब तुम क्रोध या प्रेम या घृणा सक्रिय रूप से अनुभव करते हो।

इस क्षण में भीतर प्रवेश करना आसान होता है। जब तार गर्म है तो उसे पकड़कर भीतर जाना आसान होता है। और भीतर जाकर जब तुम एक शीतल बिंदू पर पहुंचोगे तो अचानक एक भिन्न आयाम, एक दूसरा ही संसार सामने खुलने लगता है।

इसलिए क्रोध, घृणा या प्रेम जो भी हो उसका उपयोग अंतर्यात्रा के लिए करो। हम सदा दूसरों की तरफ गति करने में इन भावों का उपयोग करते हे। और जब अपने भाव आरोपित करने के लिए हमें कोई नहीं मिलता तो बड़ी निराशा लगती है। तब हम अपने भावों को निर्जीव वस्तुओं पर भी आरोपित करने लगते है। मैंने लोग देखे है जो अपने जूतों पर क्रोध करते है। और क्रोध से उन्हें फेंकते है। वे क्या कर रहे है? मैंने लोगों को देखा है जो घर के दरवाजे पर क्रोध करते है, क्रोध में उसे खोलते है, उसे गालियां तक देते है। वे क्या कर रहे है?

इस प्रसंग में मैं एक झेन अंतदृष्टि की चर्चा से अपनी बात समाप्त करूं। एक बहुत बड़े झेन सदगुरू लिंची कहा करते थे:

मैं जब युवा था तो मुझे नौका-विहार का बहुत शौक था। मेरे पास एक छोटी सी नाव थी और उसे लेकर में अक्सर अकेला झील की सैर करता था। मैं घंटों झील में रहता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि मैं अपनी नाव में आँख बंद कर सुंदर रात पर ध्यान कर रहा था। तभी एक खाली नाव उलटी दिशा में आई और मेरी नाव से टकरा गई। मेरी आंखे बंद थी। इसलिए मैंने मन में सोचा कि किसी व्यक्ति ने अपनी नाव मेरी नाव से टकरा दी है। और मुझे क्रोध आ गया।

मैंने आंखें खोली और मैं उस व्यक्ति को क्रोध में कुछ कहने ही जा रहा था कि मैंने देखा कि दूसरी नाव खाली है। अब मुझे कुछ करने का कोई उपाय न रहा। किस पर यह क्रोध प्रकट करूं? नाव तो खाली है। और वह नाव धार के साथ बहकर आई थी। और मेरी नाव से टकरा गई थी। अब मेरे लिए कुछ भी करने को न था। एक खाली नाव पर क्रोध उतारने की कोई संभावना न थी। तब फिर एक ही उपाय बाकी रहा। मैंने आंखें बंद कर ली। और अपने क्रोध को पकड़ कर उलटी दिशा में बहने लगा। और में पहूंच गया अपने केंद्र पर। वह खाली नाव में आत्म ज्ञान का कारण बन गई। उस मौन रात में मैं आपने भीतर सरक गया। और क्रोध मेरी सवारी बन गया। और खाली नाव मेरी गुरु हो गई।

और फिर लिंची ने कहा, अब जब कोई आदमी मेरा अपमान करता है तो मैं हंसता हूं और कहता हूं कि यह नाव भी खाली है। मैं आंखें बंद करता हूं और अपने भीतर चला जाता हूं।

इस विधि को प्रयोग करो। यह तुम्हारे लिए चमत्कार कर सकती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र

(तंत्र-सूत्र—भाग-1)

प्रवचन-15

तंत्र-सूत्र— विधि—25 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

तंत्र-सूत्र— विधि—25
अचानक रूकने की कुछ विधियां:

पहली विधि:

''जैसे ही कुछ करने की वृति हो , रूक जाओ।''
ये सारी विधियां मध्य में रूकने से संबंधित है। जार्ज गुरजिएफ ने पश्चिम में इन विधियों को प्रचलित किया था, लेकिन उसे विज्ञान भैरव तंत्र का पता नहीं था। उसने ये विधियां तिब्बत में बौद्ध लामाओं से सीखी थी। पश्चिम में उसने इन विधियों पर काम किया और अनेक साधक इन विधियों के द्वारा केंद्र को उपलब्ध हो गए। वह उन्हें स्टाप एक्सरसाइज, रूक जाने का प्रयोग कहता था। लेकिन इन प्रयोगों का स्त्रोत विज्ञान भैरव तंत्र है।
बौद्धों ने भी विज्ञान भैरव तंत्र से ही सीखा था। सूफियों में भी ऐसे प्रयोग चलते है। सबने विज्ञान भैरव से ही लिया है। दुनिया में ऐसी जो भी विधियां चलती है। उन सबका स्त्रोत-ग्रंथ यही है।

गुरूजिएफ बहुत सरल ढंग से इसका प्रयोग करता था। उदाहरण के लिए, वह अपने शिष्यों को नाचने के लिए कहता था। बीस लोगों का समूह नाच रहा है। नाच के बीच ही वह अचानक जोर से कहता, ''स्टॉप।'' और जब गुरूजिएफ रूकने को कहता तो उन्हें तुरंत और समग्ररतः: रूकना पड़ता था। जब और जहां रूकने की आज्ञा होती तभी और वहां ही रूकना अनिवार्य था। उसमें जरा भी हेर-फेर या समायोजन की गुंजाइश नहीं थी। अगर तुम्हारा एक पैर जमीन से ऊपर उठा था और एक पैर पर तुम खड़े थे तो तुम्हें उसी मुद्रा में जम जाना पड़ता।

यह बात अलग है कि तुम गिर जाओ, लेकिन इस गिरने में कोई सहयोग नहीं देना था। अगर तुम्हारी आंखें खुली थी तो उन्हें खुली रहने देना था। अब तुम उन्हें बंद नही कर सकते। यह बात दूसरी है कि वे अपने आप ही बंद हो जाएं। जहां तक तुम्हारा संबंध है तुम्हें सचेतन रूप से ज्यों का त्यों रूक जाना है। तुम्हें पत्थर की मूर्ति जैसा हो जाना है।

और इसके अद्भुत नतीजे आते थे। क्योंकि जब तुम सक्रिय होते हो, नाचते होते हो गतिमान होते हो। और अचानक बीच में रूक जाते हो, तो जो उससे एक अंतराल पैदा होता है। सभी क्रिया का अचानक बंद होना तुम्हें दो भागों में बांट देता है। तुम्हें तुम्हारे शरीर से अलग कर देता है। अभी तुम और तुम्हारा शरीर दोनों गतिमान थे। तुम अचानक रूक जाते हो। शरीर इस आकस्मिक ठहराव के लिए तैयार नहीं है। तुम्हें अचानक लगता है कि शरीर अभी भी कुछ करना चाहता है। लेकिन तुम रूक जाते हो। इससे एक अंतराल पैदा हो गया है। तुम्हें लगता है, तुम्हारा शरीर तुमसे दूर है, बहुत दूर है, जिसमे अभी क्रिया का संवेग भरा है। लेकिन क्योंकि तुम ठहर गए थे और तुम अपने शरीर के साथ, शरीर के संवेग के साथ सहयोग नहीं कर रहे हो, इसलिए तुम उससे पृथक हो जाते हो।

लेकिन तुम अपने को धोखा भी दे सकते हो। जरा सा सहयोग, और अंतराल घटित नहीं होगा। उदाहरण के लिए तुम कुछ असुविधा अनुभव कर रहे हो। तभी गुरु ने कहा कि रूक जाओ। तुम सुन भी लेते हो, लेकिन अपनी सुविधा बनाकर रुकते हो। इतने से ही सब बात बिगड़ गई, अब कुछ नहीं होगा। तब तुमने को धोखा दिया—गुरु को नहीं। तब तुम चूक गए। तब विधि का पूरा महत्व ही नष्ट हो गया।

जब अचानक रूकने की आवाज सुनाई पड़े, तत्क्षण तुम्हें रूक जाना है। अब कुछ भी नहीं करना है। हो सकता है कि जिस मुद्रा में तुम थे वह असुविधाजनक थी। तुम्हें डर था कि तुम गिर जाओगे, तुम्हारी हड्डी टूट जाएगी। लेकिन कुछ भी हो तुम्हें चिंता नहीं लेनी है। यदि तुमने चिंता ली तो अपने को ही धोखा दोगे।

यह जो अचानक मृतवत होना है यह अंतराल पैदा करता है। रूकना तो शरीर के तल पर होता है, लेकिन रूकने वाला केंद्र है। परिधि और केंद्र अलग-अलग है। एकाएक रूकने की घटना में तुम पहली बार अपने को अनुभव करोगे। पहली बार केंद्र को महसूस करोगे।

गुरूजिएफ ने इस विधि के जरिए अनेक लोगो की मदद की। इस विधि के कई आयाम है, यह विधि कई ढंग से इस्तेमाल होती है। लेकिन पहल इसकी संरचना को समझने की चेष्टा करो। संरचना सरल है। तुम कोई काम करते हो। जब तुम काम में होते हो तो तुम अपने को पूरी तरह भूल जाते हो। तब कृत्य तुम्हारे अवधान का केंद्र हो जाता है।

समझो की कोई व्यक्ति मर गया है और तुम उसके लिए चीख-चिल्ला रहे हो, आंसू बहा रहे हो। अब तुम अपने को पूरी तरह भूल गये हो। मरने वाला केंद्र हो गये हो। और उसके चारों और रोने की, आंसू की, शोक की क्रिया घट रही है। अगर मैं एकाएक कहूं कि रूक जाओ और तुम तरह रूक जाओ तो तुम अपने शरीर और कर्म के जगत से सर्वथा अलग हो जाओगे। जब तुम काम में होते हो तो तुम उसमे खो जाते हो। अचानक ठहरना तुम्हारे संतुलन को हिला देता है। वह तुम्हें कर्मों के बाहर कर देता है। और वही चीज तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर पहुंचा देती है।

सामान्यत: हम एक काम से दूसरे काम में गति करते रहते है। अ से ब में, ब से स में। ज्यों ही तुम सुबह जागते हो, कर्म का जगत शुरू हो जाता है। अब तुम सारा दिन सक्रिय रहोगे। तुम अनेक बार काम बदलोगे, लेकिन एक क्षण को भी निष्क्रिय नहीं रहोगे। निष्क्रिय रहना कठिन है। अगर तुम निष्क्रिय रहने की कोशिश करोगे। तो वही सक्रियता बन जाएगी।

अनेक लोग निष्क्रिय होने की चेष्टा करते है। वे बुद्ध की तरह बैठ जाते है और निष्क्रिय होने की चेष्टा करते है। लेकिन निष्क्रिय होने की चेष्टा कैसे हो सकती है। चेष्टा ही सक्रियता बन जाएगी। तुम निष्क्रियता को भी सक्रियता बना लोगे। तुम अपने को जबरदस्ती शांत बना ले सकते हो। लेकिन वह जबरदस्ती खुद मन की क्रिया होगी।

यही कारण है कि अनेक लोग ध्यान में जाने की चेष्टा करते है। लेकिन कही नहीं पहुंचते है। कारण है कि उनका ध्यान भी एक सक्रियता है। एक क्रिया है। क्रिया बदली जा सकती है। तुम एक साधारण गीत गा रहे थे, उसे छोड़कर भजन गा सकते हो। पहल तेज गा रहे थे, अब आहिस्ता से गा सकते हो। लेकिन दोनों क्रियाएं है। तुम दौड़ रहे हो, तुम चल रहे हो। तुम पढ़ रहे हो। सब कुछ सक्रियता है। तुम प्रार्थना करते हो—वह भी सक्रियता है। तुम एक क्रिया से दूसरी क्रिया में गति करते रहते हो। ऐसे रात सोने तक कर्म जारी रहता है।

और सोते-सोते भी तुम सक्रिय रहते हो। क्रिया रुकती नहीं है। यही कारण है कि स्वप्न धटित होता है। स्वप्न उसी सक्रियता का विस्तार है। नींद में भी क्रिया जारी रहती है। अब तुम्हारा अचेतन सक्रिय है—कुछ करता है। चीजें बटोरता है, कुछ गँवाता है। कही जाता है। स्वप्न का अर्थ है कि थक कर शरीर सो गया है। लेकिन क्रिया किसी तल पर जारी है।

केवल कभी-कभी और वह भी कुछ क्षणों के लिए—आधुनिक मनुष्य के लिए यह भी दुर्लभ है—स्वप्न बंद होता है। और तुम गाढ़ी नींद में होते हो। लेकिन यह निष्क्रियता अचेतन है। तुम अब चेतन नहीं हो, गहरी नींद में हो, सक्रियता बंद हो गई है। अब कोई परिधि नहीं है; अब तुम केंद्र पर हो, लेकिन सर्वथा थके हुए—अचेतन, मृतवत।

यही कारण है कि हिंदू सदा कहते है कि सुषुप्ति और समाधि समान है। उनमें एक ही भेद है; लेकिन यह भेद बड़ा है। भेद बोध का है। सुषुप्ति में स्पप्नरहित नींद में तुम अपने केंद्र पर होते हो; लेकिन अचेतन। समाधि में भी, जो ध्यान की परम अवस्था है, तुम केंद्र पर होते हो। लेकिन चेतन। यही भेद है। क्योंकि बेहोश होकर केंद्र पर होने का कोई अर्थ नहीं है। यह ठीक है कि इससे तुम ताजा हो जाते हो, जीवंत हो जाते हो; ऊर्जावान हो जाते हो। सुबह तुम अधिक ताजा और आनंदित रहते हो। लेकिन अगर तुम बेहोश हो, तो केंद्र पर होकर भी तुम आदमी वही रहते हो, जो थे।

समाधि में तुम पूरे होश से, पूरे चैतन्य के साथ प्रवेश करते हो। और जब तुम पूरे चैतन्य के साथ केंद्र पर होते हो तो फिर कभी वह आदमी नहीं रहोगे; जो पहले थे। अब तुम जानोंगे कि मैं कौन हूं। अब तुम जानोंगे कि तुम्हारी चीजें, तुम्हारे कर्म परिधि पर है; वे मात्र लहरे है। वे तुम्हारा स्वभाव नहीं है।

अचानक रूकने की इन विधियों का उदेश्य तुम्हें निष्क्रियता में डालना है। इसलिए इस बिंदु का अचानक आना महत्वपूर्ण है। क्योंकि अगर निष्क्रिय होने की चेष्टा की जाएगी तो वही चेष्टा सक्रियता बन जाएगी। तो चेष्टा मत करो, बस निष्क्रिय हो जाओ। रूक जाओ का यही अर्थ है। अगर तुम दौड़ रहे हो और मैं कहता हूं रूक जाओ। तो तुम तुरंत रूक जाओ, चेष्टा मत करो। अगर चेष्टा करोगे तो चूक जाओगे।

यह एक विधि है: ''जैसे ही कुछ करने की वृति हो, रूक जाओ।''

यह एक आयाम है। जैसे, तुम्हें छींक आ रही है। तुम्हें लगता है कि अब तुम छींकने-छींकने को हो, एक क्षण और, और छींक आ जायेगी। तब मैं कुछ न कर सकूंगा लेकिन छींकने की वृति के पहले एहसास के साथ ही, जब उसकी पहली-पहली अहाट सुनाई पड़े, तभी ठहर जाओ।

तुम क्या कर सकते हो, क्या छींक को रोक सकते हो?

अगर तुम छींक को रोकने की कोशिश करोगे तो वह और जल्दी आएगी। क्योंकि रोकने की चेष्टा तुम्हें सचेत कर देगी। और छींक की उतैजना को बड़ा देगी तुम ज्यादा संवेदनशील होओगे। तुम्हारा पूरा अवधान वही इकट्ठा हो जाएगा। और उसी अवधान के कारण छींक जल्दी घटित हो जाएगी। वह असह्य हाँ जायेगी।

तुम सीधे-सीधे छींक को नहीं रोक सकते। लेकिन तुम अपने को रोक सकते हो। क्या कर सकते हो? तुम्हें एहसास होता है कि छींक आ रही है—ठहर जाओ। छींक को रोकने की कोशिश मत करो। बस तुम स्वयं रूक जाओ। कुछ मत करो। पूरी तरह अचल रहो, जिससे श्वास का आना जाना भी न हो। क्षण भर के लिए बिलकुल ठहर जाओ। और तुम देखोगें कि छींकने की वृति वापस लौट गई खत्म हो गई और वृति के जाने के साथ ही तुम्हारे भीतर कोई सूक्ष्म ऊर्जा मुक्त होकर तुम्हें केंद्र पर ले जाती है।

छींकने के साथ या किसी भी वृति के साथ तुम्हारी कुछ ऊर्जा बहार जाती है। वृति का अर्थ है कि तुम्हारी कुछ उर्जा भारी हो गई है और तुम उसका कोई उपयोग नहीं कर सकते हो। वह ऊर्जा तुम में जज़्ब भी नहीं हो सकती। यह सिर्फ बाहर जाना चाहती है। निकास चाहती है। तुम्हें राहत की जरूरत है। और कारण है कि छींकने के बाद तुम अच्छा अनुभव करते हो—एक

सूक्ष्म सुख की अनुभूति। क्या हुआ? कुछ भी नहीं, तुमने कुछ ऊर्जा बाहर फेंक दी है जो व्यर्थ थी, फालतू थी, बोझ थी। इसलिए उसके निकल जाने पर तुम राहत अनुभव करते हो। तब तुम अपने भीतर एक सूक्ष्म विश्राम की अनुभूति होती है।

एक और बात ख्याल में रख लो कि ऊर्जा सदा गतिमान रहती है। या तो वह बाहर जाती है या भी तर आती है। ऊर्जा कभी ठहराव में नहीं होती। ये नियम है। और यदि तुमने नियमों को समझा तो इस विधि का सूत्र पकड़ में आ जायेगा। ऊर्जा सदा गति है। वह या तो बाहर जाती है या भीतर; पर वह कभी अगति में नहीं होती। वह अगर अगति में है तो वह ऊर्जा ही नहीं है। और ऐसा कुछ भी नहीं है जो ऊर्जा नहीं है। इसलिए प्रत्येक चीज कही न कहीं गति कर रही है।

तो जब कोई वृति तुम में पैदा होती है तो उसका मतलब है कि ऊर्जा बाहर जा रही है। इसी से तुम्हारी हाथ गिलास पर चला जाता है। तुम बाहर गए। कुछ करने की इच्छा पैदा हुई। सब सक्रियता गति है—भीतर से बाहर की और जब तुम अचानक ठहर जाते हो तो तुम्हारे साथ ऊर्जा नहीं ठहरती है। तुम अगति में हो; लेकिन ऊर्जा अगति में नहीं हो सकती। और जिस यंत्र के द्वारा वह बाहर गति करती थी। वह मरा नहीं है। मात्र ठहर गया है। जो ऊर्जा क्या करे? वह भीतर जाने के सिवाय और कुछ भी नहीं कर सकती। ऊर्जा स्थिर नहीं रह सकती। वह बाहर जा रही थी तुम रूक गए और यंत्र भी रूक गया। लेकिन जो यंत्र उसे केंद्र पर ले जा सकता है वह मौजूद है। अब वह ऊर्जा भीतर की और गति करेगी।

और तुम क्षण-क्षण जाने अनजाने अपनी ऊर्जा को रूपांतरित कर रहे हो। उसके आयाम को बदल रहे हो। तुम क्रोध में हो; तुम किसी को मारना चाहते हो, कोई चीज नष्ट करना चाहते हो, या कुछ हिंसा करना चाहते हो। इसी क्षण एक प्रयोग करो। किसी मित्र को, अपनी पत्नी का या अपने किसी बच्चे को प्रेम करने लगी। उसे चूमो, उसे गले लगाओ। तुम गुस्से में थे तुम किसी को मिटाने जा रहे थे। तुम हिंसा पर उतारू थे। तुम्हारा चित विध्वंस के लिए तत्पर था; तुम्हारी ऊर्जा हिंसा की और गति कर रही थी। और तभी तुम किसी को अचानक और तुरंत प्रेम करने लगते हो।

शुरू में तुम्हें लगेगा, यह तो अभिनय जैसा है। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैं प्रेम कैसे कर सकता हूं। मैं तो अभी क्रोध में हूं लेकिन तुम मन के यंत्र को नहीं समझते हो। इसी क्षण तुम गहरे प्रेम में उतर सकते हो। क्योंकि ऊर्जा जाग गई है। वह उस बिदुं पर पहूंच गई है। जहां उसे अभिव्यक्ति चाहिए। ऊर्जा को गति करने की जरूरत है। अगर इसी क्षण तुम किसी को प्रेम करने लगो तो ऊर्जा प्रेम में प्रविष्ट हो जायेगी। और तुम्हें ऊर्जा का यह प्रवाह अभिभूत कर देगा जिसका अनुभव संभवत: तुम्हें पहले कभी नहीं हुआ होगा।

तुम अपना निरीक्षण करो, और तुम यही पाओगे। तुम कहते एक बात हो और सोचते बिलकुल दूसरी बात हो। तुम बिलकुल दूसरी बात कहना चाहते थे; लेकिन अगर तुम सच बोल दो तो तुम किसी काम के न रहोगे। कारण यह है कि समूचा समाज झूठा है। और एक झूठे समाज में तुम झूठे होकर ही रह सकते हो। जितने तुम समाज से समायोजित होगें उतने ही झूठे हो जाओगे। और अगर सच्चे होना चाहोगे तो समाज के साथ ताल मेल नहीं होगा। तुम उखड़े-उखड़े रहोगे।

यही कारण है कि संन्यास का जन्म हुआ। वह झूठे समाज के कारण आया। बुद्ध को समाज का त्याग इसलिए नहीं करना पडा कि उसका कोई अपने में अर्थ था। उसका सिर्फ निषेधात्मक उपयोग था। झूठे समाज के साथ तुम सच्चे नहीं रह सकते। और यदि रहा तो कदम-कदम पर उसके साथ अनावश्यक संघर्ष करना होगा। उससे ऊर्जा नष्ट होती है। झूठे को छोड़ो ताकि तुम सच्चे हो सको। सब संन्यास का बुनियादी कारण यही था।

अपना निरीक्षण करो कि तुम कितने झूठे हो। अपने दोहरे मन को देखो। तुम कहते एक बात हो और सोचते बिलकुल विपरीत बात हो। साथ ही साथ तुम मन में कुछ कह रहे हो और बाहर कुछ और बोल रहे हो।

ऐसी किसी झूठी वृति के साथ ठहरने से यह विधि काम न करेगी। अपने बाबत कुछ प्रामाणिक खोजों, और उसके साथ ठहरने का प्रयोग करो। सब कुछ झूठ नहीं हो गया है। बहुत चीजें अभी भी वास्तविक है। सौभाग्य से कभी-कभी प्रत्येक व्यक्ति वास्तविक होता है। किसी-किसी क्षण में प्रत्येक व्यक्ति प्रामाणिक होता है। तब रुको।

तुम क्रोध में हो, और जानते हो कि क्रोध सच्चा है। तुम किसी को नष्ट करने जा रहे हो। या अपने बच्चे को पीटने जा रहे हो। वहां रुको। लेकिन किसी प्रयोजन से नहीं। मत कहो कि क्रोध करना बुरा है, इसलिए मैं रुकता हूं। किसी मानसिक सोच-विचार की जरूरत नहीं है। सोच-विचार से ऊर्जा उसमें ही लग जाती है। यह भीतरी व्यवस्था है। अगर तुम कहते हो कि मुझे बच्चे को नहीं मारना चाहिए। क्योंकि इससे उसका कोई लाभ नहीं होने वाला है। और इससे मेरा भी कोई लाभ नहीं हो सकता है। यह बात ही व्यर्थ है। किसी काम का नहीं है। तो जो ऊर्जा क्रोध बनने जा रही थी, वह सोच-विचार बन जाएगी। जब तुम सारी चीज पर विचार कर लोगे तो क्रोध की ऊर्जा उतर जाएगी और सोच-विचार में प्रवेश कर जायेगी। उस अवस्था में रूकने पर गति करने के लिए ऊर्जा नहीं रहती है। जब तुम क्रोध में हो विचार मत करो। यह मत कहो कि भला है या बुरा कुछ विचार ही मत करो। एकाएक विधि को स्मरण करो और रूक जाओ।

क्रोध शुद्ध ऊर्जा है—न बुरा है और न भला। क्रोध भला भी हो सकता है। और बुरा भी हो सकता है। यह उसके परिणाम पर निर्भर है। ऊर्जा पर नहीं है। यह बुरा हो सकता है। अगर यह बाहर जाए और किसी को नष्ट करे। अगर यह विध्वंसक हो जाए। वहीं क्रोध सुंदर समाधि में परिणत हो सकता है। अगर वह भीतर मुड़ जाए और वह तुम्हें तुम्हारे केंद्र पर फेंक दे। तब वह फूल बन जाएगा। ऊर्जा मात्र ऊर्जा है। स्वच्छ, निर्दोष, तटस्थ।

तो विचार मत करो। अगर तुम कुछ करने जा रहे हो तो सोचो मत; केवल ठहर जाओ। और ठहरे रहो। उस ठहरने में तुम्हें केंद्र की झलक मिलती है। तुम परिधि को भूल जाओगे। और तुम्हें केंद्र दिखने लगेगा।

''जैसे ही कुछ करने की वृति हो, रूक जाओ।''
इसका प्रयोग करो। इस संबंध में तीन बातें स्मरण रखो। एक, प्रयोग तभी करो जब वृति वास्तविक हो। दो, रूकने के संबंध में विचार मत करो। बस रूक जाओ। तीन, प्रतीक्षा करो। जब तूम ठहर गए तो श्वास न चले, कोई गति न हो—बस प्रतीक्षा करो कि क्या होता है। कोई चेष्टा न हो।

जब मैं कहता हूं कि प्रतीक्षा करो तो उससे मेरा मतलब है कि आंतरिक केंद्र के संबंध में विचार करने की चेष्टा मत करो। यदि चेष्टा की तो फिर चूक जाओगे। केंद्र की मत सोचो। मत सोचो कि अब झलक आने को है। कुछ भी मत सोचो। मात्र प्रतीक्षा करो। वृति को, ऊर्जा को स्वयं करने दो। अगर तुम केंद्र और आत्मा ब्रह्म के बारे में विचार करने लगे तो ऊर्जा उसी विचारणा में लग जाएगी।

तुम बहुत आसानी से आंतरिक ऊर्जा को गंवा सकते हो। एक विचार भी उसे गति देने के लिए काफी है। तब तुम सोचते चले जाओगे। जब मैं कहता हूं कि ठहर जाओ तो उसका मतलब है पूरी तरह, समग्ररूपेण ठहर जाओ। कुछ भी गति न हो—मानो कि सारा जगत ठहर गया है; कोई गति नहीं; केवल तुम हो। उस केवल अस्तित्व में अचानक केंद्र का विस्फोट होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—26 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

दूसरी विधिः

तंत्र-सूत्र—विधि—26 (ओशो) शिव– विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

''जब कोई कामना उठे, उसे पर विमर्श करो। फिर, अचानक, उसे छोड़ दो।''
यह पहली विधि का ही दूसरा आयाम है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो। अचानक, उसे छोड़ दो।''

तुम्हें कोई इच्छा होती है—चाहे वह कामवासना हो, चाहे प्रेम की इच्छा हो, चाहे भोजन की इच्छा हो। तुम्हें इच्छा होती है तो उस पर विमर्श करो। जब यह सूत्र कहता है कि विमर्श करो तो उसका मतलब होता है कि उसके पक्ष या विपक्ष में विचार मत करो। बल्कि देखो कि वह इच्छा क्या है।

मन में कामवासना पैदा होती है और तुम कहते हो कि यह बुरी है। यह विमर्श करना नहीं हुआ। तुम्हें सिखाया गया है कि कामवासना बुरी है। इसीलिए उसे बुरा कहना विमर्श नहीं है। तुम शास्त्रों से पूछ रहे हो। तुम अतीत से पूछ रहे हो। तुम गुरूओ और ऋषियों से पूछ रहे हो। तुम स्वयं कामना पर विमर्श नहीं कर रहे हो। तुम किसी और चीज पर विमर्श कर रहे हो। हो सकता है, वह तुम्हारा संस्कार हो, तुम्हारे पालन-पोषण की शैली हो। तुम्हारी शिक्षा हो। तुम्हारी संस्कृति हो, तुम्हारा धर्म हो। तुम उन पर विचार कर रहे हो कामना पर विमर्श नहीं।
यह सीधी सी चाह पैदा हुई है। इसमे मन को मत बीच में लाओ। अतीत को शिक्षा को, संस्कार को मत बीच में लाओ। केवल इस चाह पर विमर्श करो की यह क्या है। अगर वह सब तुम्हारी खोपड़ी से बिलकुल पोंछ दिया जाए जो तुम्हें समाज से, मां-बाप से, शिक्षा और संस्कृति से मिला है। अगर तुम्हारा मन पोंछकर अलग कर दिया जाए तो भी कामवासना पैदा होगी। क्योंकि वह वासना तुम्हें समाज से नहीं मिलती है। वह वासना जैविक है। तुम में बिल्ट है। वह तुम में ही है।

उदाहरण के लिए, एक नवजात शिशु को लो। यदि उसे कोई भाषा न सिखायी जाए तो वह भाषा नहीं जानेगा। भाषा के बिना रहेगा। भाषा एक सामाजिक घटना है। वह सिखायी जाती है। लेकिन जब ठीक समय आएगा तो इस बच्चे को भी कामवासना

उठेगी। कामवासना समाजिक घटना नहीं है। वह जैविक रूप से बिल्ट है। सही और प्रौढ़ क्षण आने पर वह पैदा होगी। वह आएगी। वह समाजिक नहीं है। जैविक है और गहरी है। वह तुम्हारी कोशिकाओं में ही बिल्ट इन है।

तुम्हारा जन्म कामवासना से हुआ है, इसलिए तुम्हारे शरीर की प्रत्येक कोशिका काम-कोशिका है। तुम काम-कोशिकाओं से बने हो। जब तूम तुम्हारी बायोलाजी पूरी तरह न मिटा दी जाए तब के कामवासना रहेगी। वह आएगी ही, क्योंकि वह है ही । कामवासना बच्चे के जन्म के साथ-साथ आती है; क्योंकि बच्चा मैथुन की उप-उत्पती है। वह कामवासना से ही पैदा हुआ है। उसका समूचा शरीर काम कोशिकाओं से बना है। वासना मौजूद है, सिर्फ समय की जरूरत है। जब उसका शरीर प्रौढ़ होगा तो वासना आएगी और वह उसमें जाएगा। चाहे कोई तुम्हें सिखाये या न सिखाये। या तुम्हें लाख कहे की कामवासना बुरी चीज है। वह अच्छी नहीं है। वह पाप है। वह नरक में ले जाती है। या वह ये है या वो है। कामवासना सदा मौजूद रहती है।

पुरानी परंपराएं, पुराने धर्म खासकर ईसाइयत कामवासना के खिलाफ थी। वह उसके खिलाफ जोर दार प्रचार कर रही थी। यिप्पी या हिप्पी और अन्य संप्रदाय इसके विपरीत आंदोलन चला रहे है। वे कहते है कि कामवासना शुभ है। कि कामवासना में परम सुख है। वे कहते है कि संसार में कामवासना ही असली चीज है।

उसे अशुभ कहो या शुभ, दोनों ही सिखावन है। किसी सिखावन के मुताबिक अपनी चाह का विचार मत करो। कामना पर, उसकी शुद्धि में, वह जैसी है, एक तथ्य की तरह विमर्श करो। उसकी व्याख्या मत करो। यहां विमर्श का मतलब व्याख्या नहीं है। तथ्य को तथ्य की तरह देखना है। चाह है, उसे सीधा और प्रत्यक्ष देखो। विचारों और धारणाओं को बीच में मत लो। कोई विचार तुम्हारा नहीं है। कोई धारण तुम्हारी नहीं है। हर चीज तुम्हें दी गई है। हर धारणा उधार है। कोई विचार मौलिक नहीं है। कोई विचार मौलिक नहीं हो सकता। इसलिए विचार को बीच में मत लो। सिर्फ कामना को देखो कि वह क्या है। ऐसे देखो जैसे कि तुम्हें उसके संबंध में कुछ भी पता नहीं है। उसका साक्षात्कार करो। विमर्श का अर्थ यही है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो।''

उसे तथ्य की तरह देखा; देखो कि यह क्या है। दुर्भाग्य से यह सर्वाधिक कठिन कामों में से एक है। इसके मुकाबले चाँद पर जाना कठिन नहीं है। गौरी शंकर पर पहुंचना कठिन नहीं है। चाँद पर पहुंचना बहुत जटिल है। अत्यंत जटिल; लेकिन आंतरिक मन के किसी तथ्य के साथ जीने की बात के सामने चाँद पर पहुंचना कुछ भी नहीं है। क्योंकि तुम जो भी करते हो उसमें मन बहुत सूक्ष्म रूप से संलग्न रहता है। मन उसमें सदा समाया रहता है। उलझा रहता है।

इस शब्द को देखो, ज्यों ही मैंने कहां कि कामवासना या संभोग कि तुम तुरंत उसके पक्ष या विपक्ष में कुछ निर्णय लेते हो। जिस क्षण मैंने कहां संभोग कि तुम ने व्याख्या कर ली। तुम कहते हो, यह भला है या वह बुरा है। तुम शब्द की भी व्याख्या कर लेते हो।

जब ''संभोग'' से समाधि की और पुस्तक प्रकाशित हुई तो बहुत से लोग मेरे पास आए। उन्होंने कहा कि कृपा कर यह नाम ''संभोग से समाधि की और'' बदल दीजिए। संभोग शब्द से उन्हें घबड़ाहट होती है। उन्होंने किताब भी नहीं पढ़ी। और वे भी नाम बदलने को कहते है। जिन्होंने किताब नहीं पढ़ी वे भी क्यों?

यह शब्द ही तुम्हारे भीतर व्याख्या को जन्म देता है। मन ऐसा व्याख्याकार है कि अगर मैंने कहा के नींबू का रस तो तुम्हारी लार टपकने लगती है। तुमने शब्दों की व्याख्या कर ली। ''नींबू का रस'' इन शब्दों में नींबू जैसी कोई चीज नहीं है। लेकिन तुम्हारे मुंह में खट्टापन भर जायेगा। मन ने व्याख्या कर ली; मन बीच में आ गया।

''फिर अचानक, उसे छोड़ दो।''

इस विधि के दो हिस्से है। पहला कि तथ्य के साथ रहो। जो हो रहा है उसके प्रति सजग रहो। अवधान पूर्ण रहो। देखो कि जब कामवासना पकड़ती है तो तुम्हारे भीतर क्या-क्या घटित होता है। तुम्हारा शरीर ज्वरग्रस्त हो जाता है। कांपने लगता है। तुम्हें लगता है। कि तुम किसी से आविष्ट हो। इसका अनुभव करो, इस पर विमर्श करो; कोई निर्णय न लो। सीधे तथ्य में प्रवेश करो। यह मत कहो कि यह बुरा है। अगर बुरा कहा तो विमर्श समाप्त हो गया, तुम ने द्वार बंद कर दिया। अब कामवासना की और तुम्हारी पीठ है, मुंह नहीं। तुम उससे दूर सरक गए। ऐसे तुम ने एक गहरा और कीमती क्षण गंवा दिया। जिसमें तुम अपने जीवन की एक जैविक पर्त का दर्शन कर सकते थे।

तुम अभी जिस पर्त से परिचित हो वह सामाजिक पर्त है, और तुम उससे ही चिपके हो। वह सतही है। कामवासना तुम्हारे शास्त्रों से गहरी है। क्योंकि वह जैविक है। अगर सभी शास्त्र नष्ट कर दिए जाए—ऐसा हो सकता है। ऐसा कई बार हुआ है। तो तुम्हारी व्याख्या खो जाएगी। लेकिन कामवासना तब भी रहेगी। वह ज्यादा गहरी है।

सतही चीजों को बीच में मत लाओ। तथ्य पर अवधान दो, उसमे प्रवेश करो, और देखो कि तुम्हें क्या हो रहा है। किसी ऋषि विशेष को, मोहम्मद को, महावीर को क्या हुआ। वह प्रासंगिक नहीं है। इस क्षण तुम्हें क्या हो रहा है। इस जीवंत क्षण में जो हो रहा है। वह प्रासंगिक है। उस पर विमर्श करो। उसका ही निरीक्षण करो।

और अब दूसरा हिस्सा; यह सचमुच अद्भुत है।

शिव कहते है: ''फिर, अचानक छोड़ दो।''

यहां ''अचानक'' को याद रखो। यह मत कहो कि यह खराब है, इसलिए छोड़ रहा हूं। यह मत कहो कि यह खराब है। इस लिए इसे नहीं रखूंगा। यह मत कहो कि यह बुरा है। यह पाप है, इसलिए इसके साथ गति नहीं करूंगा। मैं इसे त्याग दूँगा। मैं इसका दमन कर दूँगा। तब तो दमन घटित होगा। ध्यान नहीं। आरे दमन अपने ही हाथों अपना एक भ्रमित चित निर्मित करना है।

दमन मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है; उसके द्वारा तुम समूचे यंत्र को उपद्रव में डाल रहे हो।1 उन ऊर्जाओं को दबा रहे हो जो किसी ने किसी दिन फुटकर बहार आएँगी। ऊर्जा तो है ही, सिर्फ दमित हो गई है। न इसे बाहर जाने दिया गया है और न भीतर; उसे सिर्फ दमित कर दिया गया है। वह कोने कातर में छिप गई है। जहां वह पड़ी रहेगी। और विकृत होगी।

और स्मरण रहे, विकृत ऊर्जा ही मनुष्य की बुनियादी समस्या है। जो मानसिक रूग्णताएं है, वे विकृत ऊर्जा की उप-उत्पती है। तब वह ऊर्जा ऐसे ढंगों में अभिव्यक्त होगी जिसकी कोई कल्पना नहीं हो सकती है। और इन विकृतियां में भी वह फिर अपने को अभिव्यक्त करने की चेष्टा करेगी। और जब वह विकृत रूप में अभिव्यक्ति होती है। तो बहुत दुःख और संताप लाती है। विकृत ऊर्जा की अभिव्यक्ति से संतुष्टि नहीं मिलती है। और अड़चन यह है कि तुम विकृत नहीं रह सकते। तुम्हें विकृति को अभिव्यक्ति देना होगी। दमन विकृति पैदा करता है। इस सूत्र का दमन से कुछ लेना-देना नहीं है। यह सूत्र यह नहीं कहता कि नियंत्रण करो; यह सूत्र दमन की बात ही नहीं करता है।

यह सूत्र कहता है: ''अचानक, छोड़ दो।''

तो क्या किया जाए। कामना है; कामना पर तुमने विमर्श किया है। अगर कामना पर तुमने विमर्श किया है तो दूसरा भाग कठिन नहीं होगा। तब यह आसान होगा। यदि विमर्श नहीं किया है तो तुम्हारे मन में विचार चलते रहेंगे। मन कहेगा, यह अच्छा है कि कामवासना को हम अचानक छोड़ दे।

तुम छोड़ना चाहोगे। लेकिन यह सवाल नहीं है। यह पसंद तुम्हारी न होकर समाज की हो सकती है। यह पसंद तुम्हारा विमर्श न होकर मात्र परंपरा हो सकती है। इसलिए विमर्श करो। पसंद या गैर पसंद की बात मत उठाओ। केवल विमर्श करो। और तब तुम्हारा हिस्सा आसान हो जाएगा। तब तुम कामना को छोड़ सकते हो। कैसे छोड़ सकते हो।

जब किसी चीज पर तुम ने समग्र रूपेण विमर्श किया है तो उसे छोड़ना बहुत आसान हो जाता है। वह इतना ही आसान है जितना मेरे लिए इस कागज़ हो गिराना। ''इसे छोड़ दो।'' क्या होगा? कामना है; उसे तुम ने दबाया नहीं है। कामना है; और वह बाहर जाना चाहती है। वह उठ रही है। और तुम्हारे पूरे अस्तित्व को उद्वेलित कर दिया है। सच तो यह है कि जब तुम किसी कामना पर बिना किसी व्याख्या के विचार करोगे तो तुम्हारा पूरा अस्तित्व ही कामना बन जाएगा।

समझो कि कामवासना है और तुम उसके पक्ष या विपक्ष में नहीं हो। उसके संबंध में तुम्हारी कोई धारणा नहीं है, तुम सिर्फ उसे देख रहे हो। तो इस देखने भर से तुम्हारा पूरा अस्तित्व उस कामना में संलग्न हो जाएगा। एक अकेली कामवासना आग की लपट बन जाएगी। उस में तुम्हारा अस्तित्व जलने लगेगा—मानो कि तुम समग्र रूपेण कामुक हो उठे हो। तब कामवासना काम-केंद्र पर ही सीमित नहीं रहेगी। वह तुम्हारे पूरे शरीर पर फैल जाएगी। तुम्हारे शरीर का एक-एक तंतु कांपने लगेगा। कामना अंगारा बन जाएगी। तब उसे छोड़ दो, उससे अचानक हट जाओ। उससे लड़ों मत, इतना ही कहो कि मैं छोड़ता हूं।

तब क्या होगा। ज्यों ही तुम कहते हो कि मैं छोड़ता हूं, एक अलगाव घटित होता है। तुम्हारा शरीर कामात्तप्त शरीर और तुम दो हो जाते हो। अचानक एक क्षण को भीतर उनके बीच जमीन-आसमान की दूरी पैदा हो गई। शरीर तो आवेग में, कामवासना से उद्वेलित है। और केंद्र शांत है। मात्र देख रहा है। स्मरण रहे, वहां कोई संघर्ष नहीं है। सिर्फ अलगाव है। संघर्ष तुम अलग नहीं होते, जब तुम लड़ते हो, तुम लड़ाई के विषय के साथ एक होते हो। तुम जब मात्र छोड़ देते हो तब तुम अलग होते हो, तब तुम इसे देख सकते हो। मानो तुम नहीं दूसरा देख रहा है।

मेरे एक मित्र बहुत वर्षों तक मेरे साथ थे। वे सतत धूम्रपान करते थे—चेन स्मोकर थे। और जैसा कि सभी धूम्रपान करने वाले करते है। मेरे मित्र ने भी निरंतर उससे छूटने की चेष्टा की। किसी सुबह अचानक तय करते कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा। और श्याम होते-होते फिर पीने लगते। और फिर वह अपराधी अनुभव करते और अपना बचाव करते और तब कुछ दिनों तक धूम्रपान छोड़ने का नाम भी नहीं लेते। फिर वे यह सब भूल जाते और किसी दिन साहस जुटाकर फिर कहते कि अब मैं धूम्रपान नहीं करूंगा। और मैं सिर्फ हंसता, क्योंकि यह घटना इतनी बार दुहरा चुकी थी।

फिर वे खुद भी इस दुस्चक्र से ऊब उठे कि धूम्रपान करना और छोड़ना मानो हमेशा-हमेशा के लिए उनका संगी साथी बन गया है। वे गंभीरता से सोचने लगे कि क्या करू। और तब उन्होंने मुझसे पूछा कि मैं क्या करूं। मैंने उनसे कहा कि पहली बात तो यह कि धूम्रपान का विरोध करना छोड़ दो, धूम्रपान करो और मजे से करो। सात दिनों तक इसका कोई विरोध मत करो, इसे स्वीकार कर लो।

उन्होंने कहा कि यह आप क्या कह रहे है। मैं इसके विरोध में रहकर भी इसे नहीं छोड़ सकता हूं। और आप इसे स्वीकार को कहते है। तब तो छोड़ने की जरा भी संभावना नहीं रहेगी। मैंने उन्हें समझाया कि तुम शत्रुता का रूख प्रयोग करके देख चुके, निष्फलता ही हाथ लगी है। अब मैत्री के रूख का प्रयोग करो। बस सात दिनों के लिए धूम्रपान का विरोध मत करो।

उन्होंने छूटते ही पूछा कि क्या तब धूम्रपान छूट जाएगा? मैंने कहा: तुम अब भी उसके प्रति शत्रुता का भाव रखते हो। छोड़ने के भाव में ही शत्रुता है। छोड़ने की बात ही भूल जाओ। धूम्रपान के साथ रहो। उसके साथ सहयोग करो। क्या कोई मित्र को छोड़ने का विचार करता है। सात दिन तक छोड़ने की बात को भूल जाओ। उसका सहयोग करो। जितना संभव हो उतने प्रगाढ़ ढंग से, उतने प्रेम के साथ पीओ। जब तुम धूम्रपान कर रहे हो तो उस समय सब कुछ भूलकर धूम्रपान ही हो जाओ। उसके

साथ आराम से रहो, उसके साथ संवाद साध लो। सात दिन तक जितना संवाद साध लो। सात दिन तक जितना चाहो उतना धुम्रपान करो, छोड़ने की बात ही भूल जाओ।

ये सात दिन उनके लिए विमर्श के दिन बन गये। वे धूम्रपान के तथ्य को सीधा-सीधा देख पाए। वे इसके विरोध में नहीं थे। इसलिए अब वे इसका साक्षात्कार कर सकते थे। जब तुम किसी व्यक्ति या वस्तु के विरोध में होते हो तो तुम उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। विरोध ही बाधा बन जाता है। तब विमर्श कहां। क्या तुम शत्रु पर विमर्श करते हो? तुम उसे देख भी नहीं सकते। तुम उसकी आँख से आँख नहीं मिला सकते। शत्रु को देखना बहुत कठिन है। तुम उसी व्यक्ति की आंखों में आँख डालकर देख सकते हो। जिसे तुम प्रेम करते हो। प्रेम में ही तुम गहरे उतर सकते हो। अन्यथा आँख मिलाना मुश्किल है।

मेरे उन मित्र ने धूम्रपान के तथ्य का गहराई से साक्षात्कार किया। सात दिन तक वे विमर्श करते रहे। उन्होंने विरोध छोड़ दिया था। इसीलिए ऊर्जा सुरक्षित थी। और वह ध्यान बन गया। उन्होंने सहयोग किया और वे धुम्रपान सी बन गए।

सात दिन बाद मेरे मित्र मुझे कहना भी भूल गये कि क्या हुआ था। मैं इंतजार कर रहा था कि वे और कहेंगे कि सात बित गये। अब मैं धूम्रपान कैसे छोडू। वे सात दिन की बात ही भूल गये। तीन सप्ताह गुजर गये तो मैंने ही उनसे पूछा कि आप बिलकुल भूल गये क्या? उन्होंने कहा कि यह अनुभव सुंदर रहा, इतना सुंदर कि अब मैं किसी चीज के विषय में सोचना ही नहीं चाहता। पहली बार मैंने तथ्य के साथ संघर्ष नहीं किया, पहली बार मैं सिर्फ अनुभव कर रहा हूं। उसे जो मेरे साथ घटित हो रहा है।

तब मैंने उनसे कहा, ''अब जि भी धुम्रपान की वृति पैदा हो, तो उसे छोड़ दो।'' उन्होंने फिर नहीं पूछा कि कैसे छोड़ना है। उन्होंने पूरी चीज पर विमर्श किया था। और उससे ही वह पूरी चीज बचकानी दिखने लगी थी। संघर्ष की गुंजाईश ही नहीं थी। तब मैंने उनसे कहा कि अब जब फिर धूम्रपान की चाह पैदा हो तो उसे देखो। और उसे छोड़ दो। सिगरेट को अपने हाथ में ले लो, एक क्षण के लिए रूको और तब सिगरेट को छोड़ दो, गिर जाने दो। और सिगरेट के गिरने के साथ-साथ धूम्रपान की वृति पैदा हो और तुम उसे छोड़ दो तो सारी ऊर्जा एक छलांग लेकर भीतर गति कर जाती है।

विधि एक ही है, केवल उसके आयाम भिन्न है।

''जब कोई कामना उठे, उस पर विमर्श करो। फिर, अचानक, उसे छोड़ दो।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—27 (ओशो)

Posted on जून 16, 2012

अचानक रूकने की कुछ विधियां:
तीसरी विधि:

विज्ञान भैवर तंत्र— अचानक रूकने की कुछ विधियां:

''पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो, और तब जमीन पर गिरकर, इस गिरने में पूर्ण होओ।'
वही है, विधि वही है।

पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो।

बस वर्तुल में घूमों। कुदो, नाचो, दौड़ों, जब तक थ न जाओ घूमते रहा। यह घूमना तब तक जारी रहे जब तक ऐसा न लगे कि और एक कदम उठना असंभव है। लेकिन यह ख्याल रखो कि मन कह सकता है कि अब पूरी तरह थक गए। मन की बिलकुल मत सुनो। चलते चलो, दौड़ते रहो। नाचते रहो, कूदते रहो।

मन बार-बार कहेगा कि बस करो, अब बहुत थक गए। मन पर ध्यान ही मत दो। तब तक घूमना जारी रखो जब तक महसूस न हो—विचारना नहीं, महसूस करना महत्वपूर्ण है—कि शरीर बिलकुल थक गया है। और अब ऐ कदम भी उठाना संभव न होगा। और यदि उठाऊंगा तो गिर जाऊँगा। जब तुम अनुभव करो कि अब गिरा तब गिरा। अब आगे नहीं जा सकता, शरीर भारी और थक कर चूर हो गया है। ''तब जमीन पर गिरकर इस गिरने में पूर्ण होओ।'' तब गिर जाओ।
ध्यान रहे कि थकना इतना हो कि गिरना अपने आप ही घटित हो। अगर तुमने दौड़ना जारी रखा तो गिरना अनिवार्य है। जब यह चरम बिंदू आ जाए तब—सूत्र कहता है—गिरो और इस गिरने में पूर्ण होओ।

इस विधि का केंद्रिय बिंदू यही है: जब तुम गिर रहे हो, पूर्ण होओ।

इसका क्या अर्थ है? पहली बात यह है कि मन के कहने से ही मत गिरो। क्योंकि आयोजन मत करो। बैठने की चेष्टा मत करो, लेटने की चेष्टा मत करो। पूरे के पूरे गिर जाओ मानो कि पूरा शरीर एक है। और वह गिर गया है। ऐसा न हो कि तुमने उसे गिराया है। अगर तुमने गिराया है तो तुम्हारे दो हिस्से हो गए। एक गिरने वाले तुम हुए और दूसरा गिराया हुआ शरीर हुआ। तब तुम पूर्ण न रहे। खंडित और विभाजित रहे।

उसे अखंडित गिरने दो; अपने को समग्ररतः: गिरने दो। 'गिरो' शब्द को याद रखो। व्यवस्था नहीं करनी है। मृतवत गिर जाना है। इस गिरने में पूर्ण होओ। अगर इस भांति गिरे तो पहली बार तुम्हें अपने पूरे अस्तित्व का, अपनी पूर्णता का एहसास होगा। पहली बार केंद्र को अखंड, अद्वैत, एक अनुभव करोगे। यह कैसे घटित होगा?

शरीर में ऊर्जा के तीन तल है। एक है दैनंदिन कामों का तल। इस तल को याद रखो। आसानी से चुक जाती है। यह दिनचर्या के कामों के लिए ही है। दूसरा तल आपातकालीन कामों के लिए है। यह ज्यादा गहरा ती है। जब तुम किसी संकट में होते हो तभी इस ऊर्जा का उपयोग करते हो। और तीसरा तल जागतिक ऊर्जा का है, जो अनंत है।

पहले तल की ऊर्जा आसानी से चुक जाती है। यदि मैं तुम्हें दौड़ने को कहूं तो तुम तीन चार चक्कर लगाकर कहोगे कि मैं थक गया हूं। सच में तुम थके नह हो। पहल तल की ऊर्जा समाप्त हो गई है। सुबह में यह इतनी आसानी से नहीं चुकती, शाम में जल्दी चुक जाती है। क्योंकि दिन भर तुमने उसका उपयोग किया है। अब इसे विश्राम की जरूरत है। यही वजह है। कि रात में शरीर आराम खोजता है। उसे गहरी नींद की जरूरत है। जागतिक ऊर्जा के भंडार से शरीर फिर अगले दिन के काम के लिए जरूरी ऊर्जा ले लेगा। यह पहली तल हुआ।

अभी यदि मैं तुमसे दौड़ने को कहूं तो तुम कहोगे कि मुझे नींद आ रही है। तभी कोई आता है और कहता है कि तुम्हारे घर में आग लग गई है। अचानक तुम्हारी नींद काफूर हो गई। थकावट जाती रही। तुम ताजा हो गए और दौड़ने लगे। अचानक क्या हुआ? तुम थके थे, लेकिन आपत्काल ने तुम्हें तुम्हारी ऊर्जा के दूसरे तल से जोड़ दिया, और तुम फिर ताजा हो गये। यह दूसरा तल है।

इस विधि में दूसरे तल की ऊर्जा का चुकाना है। पहला तल बहुत आसानी से चुक जाता है। उसने चुकने पर भी दौड़ते रहो। थकनें पर भी दौड़ते रहो। कुछ ही क्षण में ऊर्जा की एक नई लहर आएगी और तुम फिर ताजा हो जाओगे। और तुम्हारी थकावट चली जायेगी।

अनेक लोग मुझसे आकर कहते है कि जब हम साधना शिविर में होते है तब एक चमत्कार सा होता है कि हम इतना कर लेते है। सुबह में एक घंटा सक्रिय ध्यान, जिसमे हम पूरे पागल की तरह ध्यान करते है। पिछले पहर भी एक घंटा ध्यान करते है। और फिर रात में भी। तीन-तीन बार हम पागलों की तरह ध्यान करते है। अनेक लोगों ने कहां है कि यह हमें असंभव सा लगता है। लगता है कि अब और नहीं चलेगा। लगता है कि अगले दिन हाथ पाँव हिलाना भी असंभव होगा। लेकिन कोई थकता नहीं है। रोज तीन-तीन सत्र और इतना कठिन श्रम। और इसके बावजूद कोई भी नहीं थकता है। ऐसा क्यों है?

ऐसा इसलिए है कि लोग शिविर में दूसरे तल की ऊर्जा से संबंधित हो जाते है। यदि तुम अकेले करो तो थक जाओगे। किसी पहाड़ पर जाकर प्रयोग करके देखो, पहले तक के चूकते ही तुम चुक जाते हो। लेकिन एक बड़े समूह में, जहां पाँच सौ लोग सक्रिय ध्यान कर रहे हों, बात दूसरी है। तुम्हें लगता है, दूसरे लोग जब नहीं थके है तो तुमको भी कुछ देर जारी रखना चाहिए। और हरेक आदमी ऐसा ही सोच रहा है। कि जब कोई नहीं थका है तो मुझे भी जारी रखना चाहिए। जब सक काई ताजा और सक्रिय है तो मैं ही क्यों थकान अनुभव करूं?

यह समूह भाव तुम्हें प्रेरणा देता है। शक्ति देता है और तुम दूसरे तल पर पहूंच जाते हो। और दूसरा तल बहुत बड़ा है—आपातकालीन तल जो है। और जब आपातकालीन तल चुकता है तब और अभी, तुम जाग्रति तल में, प्रवेश कर जाते हो। अनंत से तुम्हारा संबंध स्थापित हो जाता है। इसलिए बहुत श्रम की जरूरत है। इतने श्रम की कि तुम्हें लगे कि अब यह मेरे बस की बात नहीं है।

लेकिन अभी भी यह तुम्हारे वश के बाहर नहीं है। यह सिर्फ तुम्हारे पहले तल कि ऊर्जा के वश के बाहर है। जब पहले तल की ऊर्जा चुकती है। तो थकावट महसूस होती है। दूसरे तल की ऊर्जा के चूकने पर तुम्हें लगेगा की अब अगर और ज्यादा किया तो मैं मर जाऊँगा।

अनेक लोग मरे पास आते है और कहते है कि जब हम ध्यान की गहराई में उतरते है तो एक क्षण के आता है कि हम भयभीत हो जाते है। आतंकित हो जाते है। क्योंकि लगता है कि मृत्यु करीब है। इससे आगे जाने पर मृतयु निशचित है।

यह मृत्यु का भय पकड़ लेता है। और लगता है कि ध्यान के बाहर आना नहीं हो सकेगा।

यही वह क्षण है, ठीक क्षण, जब तुम्हें साहस की जरूरत है। थोड़ा और साहस और तुम तीसरे तल में प्रविष्ट हो जाओगे। यह सबसे गहरा तल है—आत्यंतिक, अनंत।

यह विधि तुम्हें ऊर्जा के जागतिक सागर में आसानी से उतारने में सहयोगी है।

''पूरी तरह थकनें तक घूमते रहो, और तब जमीन पर गिरकर, इस गिरने में पूर्ण होओ।''

और जब तुम जमीन पर गिरते हो तो पहली बार तुम पूर्ण हो जाओगे—अद्वैत, एक कोई विभाजन, कोई द्वैत नही रहेगा। विभाजनों वाला मन विदा हो जाएगा। और पहली बार वह सत्ता प्रकट होगी जो अविभाजित है, अविभाज्य है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—28 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

चौथी विधि:

‘कल्पना करो कि तुम धीरे-धीरे शक्ति या ज्ञान से वंचित किए जा रहे हो। वंचित किए जाने के क्षण में अतिक्रमण करो।‘
इस विधि का प्रयोग किसी यथार्थ स्थिति में भी किया जो सकता है। और तुम ऐसी स्थिति की कल्पना भी कर सकते हो। उदाहरण के लिए लेट जाओ, शिथिल हो जाओ। और भाव करो कि तुम्हारा शरीर मर रहा है। आंखें बंद कर लो और भाव करो कि मैं मर रहा हूं। जल्दी ही तुम महसूस करोगे कि मेरा शरीर भारी हो रहा है। भाव करो: ‘मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं।‘
अगर भाव प्रामाणिक है तो तुम्हारा शरीर भारी होने लगेगा। तुम्हें महसूस होगा कि मेरा शरीर पत्थर जैसा हो गया है। तुम अपने हाथ हिलाना चाहोगे। लेकिन हिला नहीं पाओगे, क्योंकि वह इतना भारी और मुर्दा हो गया है। भाव किए जाओ कि मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। और जब तुम्हें मालूम हो कि अब वह क्षण आ गया है, एक छलांग और कि मैं मर जाऊँगा। तब शरीर को भूल जाओ और अतिक्रमण करो।

‘कल्पना करो कि तुम धीरे-धीरे शक्ति या ज्ञान से वंचित किए जा रहे हो। वंचित किए जाने के क्षण में, अतिक्रमण करो।‘

जब तुम अनुभव करते हो कि शरीर मृत हो गया है, तब अतिक्रमण करने का क्या अर्थ है? शरीर को देखो। अब तक तुम भाव करते रहे थे कि मैं मर रहा हूं। अब शरीर मृत बोझ बन गया है। शरीर को देखा। भूल जाओ कि मर रहा हूं। अब द्रष्टा हो जाओ। शरीर मृत पडा है और तुम उसे देख रहे हो। अतिक्रमण घटित हो जाएगा। तुम अपने मन से बाहर निकल जाओ; क्योंकि मृत शरीर को मन की जरूरत नहीं होती। मृत शरीर इतना विश्राम में होता है कि मन की प्रक्रिया ही ठहर जाती है। तुम हो, शरीर भी है; लेकिन मन अनुपस्थित है।

स्मरण रहे, मन की जरूरत जीवन के लिए नहीं है। मृत्यु के लिए नहीं है। अगर तुम्हें अचानक पता चले कि मैं एक घंटे के अंदर मर जाऊँगा तो उस एक घंटे के अंदर तुम क्या करोगे। एक घंटा बचा है। और निश्चित है कि एक घंटे बाद, ठीक एक घंटे बाद तुम मर जाओगे। तो तुम क्या करोगे?

तुम्हारा विचार बिलकुल बंद हो जाएगा। क्योंकि सब विचारना अतीत से या भविष्य से संबंधित है। तुम एक घर खरीदने की सोच रहे थे। या एक कार खरीदना चाहते थे। या हो सकता है कि तुम किसी से विवाह की योजना बना रहे थे। या किसी को तलाक देना चाहते थे। तुम बहुत सी बातें सोच रहे थे। और वह सतत तुम्हारे मन पर भारी थी। अब जब कि सिर्फ एक घंटा हाथ में है तब न विवाह का कोई अर्थ है और न तलाक का। अब तुम सारी योजना उनके लिए छोड़ सकते हो जो जीने वाले है।

मृत्यु के साथ आयोजन समाप्त हो जाता है। मृत्यु के साथ चिंता समाप्त हो जाती है। क्योंकि हर आयोजन हर चिंता जीवन से संबधित है। कल तुम जीओगे, इसी कारण से चिंता होती है। और यही कारण है कि जो लोग ध्यान सिखते है वह सतत कहते है कि कल की मत सोचो। जीसस अपने शिष्यों से कहते थे कि कल की मत सोचो। क्योंकि कल की सोचोगे तो तुम ध्यान में नहीं उतर पाओगे। तुम चिंता में उतर जाओगे।

लेकिन हमें चिंताओं से इतना लगाव है कि हम कल की ही नहीं सोचते; आने वाले जन्म तक कि चिंता करते है। हम इस जीवन की ही नहीं सोचते आने वाले जीवन का भी आयोजन करते है। मृत्यु के बाद के जीवन की भी चिंता रहती है।

एक दिन मैं सड़क से गुजर रहा था कि किसी ने एक पुस्तिका मेरे हाथ में थमा दी। उसके मुख पृष्ठ पर एक बहुत ही सुंदर मकान का चित्र बना था। और उसके साथ ही एक सुंदर बग़ीचा भी था। वह सुंदर था। अद्भुत रूप से सुंदर था। और बड़े-बड़े

अक्षरों में यह प्रश्न लिखा था; क्या तुम एकसा सुंदर घर और ऐसा सुंदर बग़ीचा चाहते हो? और वह भी बिना मूल्य के ''मुफ्त''।

मैंने उस किताब को उलट-पुलट कर देखा; वह घर और बग़ीचा इस दुनियां के नहीं थे। वह ईसाइयों की पुस्तिका थी। उसमें लिखा था कि अगर तुम्हें ऐसे सुंदर घर और बगीचे की चाह है तो जीसस में विश्वास करो। जो लोग उनमें विश्वास करते है उन्हें प्रभु के राज्य में ऐसे घर मुफ्त में मिलते है।

मन कल की ही नहीं सोचता, वरन मृत्यु के बाद की भी सोचता है; वह अगले जन्मों के लिए भी व्यवस्था और आरक्षण करता रहता है। ऐसा मन धार्मिक नहीं हो सकता। धार्मिक मन कल की चिंता नहीं करता है। इसलिए जो लोग जन्मों की चिंता करते है वि सतत सोचते रहते है। कि परमात्मा उनके साथ कैसा व्यवहार करेगा। चर्चिल मर रहा था और किसी ने उससे पूछा; 'तुम स्वर्ग में परम पिता से मिलने को तैयार हो?' चर्चिल ने कहा: 'वह मेरी चिंता नहीं है; मुझे तो यह चिंता है कि परम पिता मुझसे मिलने को तैयार है?' चाहे जो भी ढंग हो, तुम चिंता भविष्य की ही करते हो।

बुद्ध ने कहा है कि कोई स्वर्ग नहीं है और न कोई भावी जीवन है। और उन्होंने यह भी कहा है कि आत्मा नहीं है। और तुम्हारी मृत्यु समग्र ओर पूरी होगी। कुछ भी नहीं बचेगा।

इस पर लोगों ने सोचा कि बुद्ध नास्तिक है। वे नास्तिक नहीं थे। वे एक स्थिति पैदा कर रहे थे। जिसमें तुम कल को भूल जाओ और एक क्षण में, यहां और अभी जी सको। तब ध्यान बहुत सरल हो जाता है।

तो अगर तुम मृत्यु की सोच रहे हो—वह मृत्यु नहीं जो भविष्य में आएगी। तो जमीन पर लेट जाओ। मृतवत हो जाओ। शिथिल हो जाओ और भाव करो कि मैं मर रहा हूं, मैं मर रहा हूं। मैं मर रहा हूं। यह सिर्फ सोचो ही नहीं शरीर के एक-एक अंग में, शरीर के एक-एक तंतु में इसे अनुभव करो। मृत्यु को अपने भीतर सरकने दो यह एक अत्यंत सुंदर ध्यान –विधि है। और जब तुम समझो कि शरीर मृत बोझ हो गया है और जब तुम अपना हाथ या सिर भी नहीं हिला सकते, जब लगे कि सब कुछ मृतवत हो गया; तब एकाएक अपने शरीर को देखो तब मन वहां नहीं होगा। तब तुम देख सकते हो। तब सिर्फ तुम होगे चेतना होगी।

अपने शरीर को देखा। तुम्हें नहीं लगेगा कि यह तुम्हारा शरीर है। बस एक शरीर है। कोई शरीर, ऐसा लगेगा। अगर मन न हो, अनुपस्थिति हो, तो तुम नहीं कहोगे कि मैं शरीर हूं। या शरीर के बाहर हूं। तुम महज होगे। भीतर और बाहर नहीं होगे। भीतर और बाहर सापेक्ष शब्द खड़े होगे। तुम शरीर में नहीं होगे।

ध्यान रहे, मन के कारण ही अहं भाव उठता है कि मैं शरीर हूं। यह भाव कि मैं शरीर हूं मन के कारण है। अगर मन न हो, अनुपस्थित हो, तो तुम नहीं कहोगे। कि मैं शरीर हूं या शरीर के बाहर हूं। तुम महज होगे। भीतर और बाहर नहीं होगे। भीतर और बाहर सापेक्ष शब्द है। जो मन से संबंधित है। तब तुम मात्र साक्षी रहोगे। यही अतिक्रमण है।

तुम यह प्रयोग कई ढंगों से कर सकते हो। कभी-कभी वास्तविक स्थितियों में भी यह प्रयोग संभव है। तुम बीमार हो और तुम्हें लगता है कि अब कोई आशा न बची। मृत्यु निश्चित है। यह बहुत उपयोगी स्थिति है। ध्यान के लिए इसका उपयोग किया जा सकता है।

और दूसरे ढंगों से भी इसका उपयोग कर सकते हो। कल्पना करो कि धीरे-धीरे तुम्हारी शक्ति क्षीण हो रही है। लेट जाओ और भाव करो कि समस्त अस्तित्व मेरी शक्ति को चूस रहा है। चारों और से मेरी शक्ति चूसी जा रही है। और शीध्र ही में नि: सत्व हो जाऊँगा। सर्वथा बलहीन हो जाऊँगा; मेरे भीतर कुछ भी नहीं बचेगा।

और जीवन ऐसा ही है। तुम चूसे जा रहे हो। तुम्हारे चारों और की चीजें तुम्हें चूस रही है। और एक दिन तुम मुर्दा हो जाओगे। सब कुछ चूस लिया जाएगा। जीवन तुम से जा चुकेगा और केवल शव पडा रह जायेगा।

इस क्षण भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो। कल्पना कर सकते हो। लेट जाओ और भाव करो कि ऊर्जा चूसी जा रही है। थोड़े ही दिनों में तुम्हें साफ होने लगेगा। कि कैसे ऊर्जा बाहर जाती है। और जब तुम समझो कि सारी ऊर्जा बाहर निकल गई है, भीतर कुछ नहीं बची है, तब अतिक्रमण कर जाओ।

'वंचित किए जाने के क्षण में, अतिक्रमण करो।'

जब ऊर्जा का अंतिम कण तुम से बाहर जा रहा है। अतिक्रमण कर जाओ द्रष्टा हो जाओ मात्र साक्षी। तब यह जगत और यह शरीर दोनों तुम नहीं हो। तुम बस देखने वाले हो।

यह अतिक्रमण तुम्हें तुम्हारे मन के बाहर ले जाएगा। यह कुंजी है। और तुम अपनी पसंद के मुताबिक कई ढंगों से यह प्रयोग कर सकते हो। उदाहरण के लिए, हम लोग दौड़ने की बात कर रहे थे। उसमें ही अपने को थका दें। दौड़ते जाओ। खुद मत रुको। शरीर को अपने आप ही गिरने दो। जब शरीर का जर्रा-जर्रा थक जाएगा, तुम गिर पड़ोगे। और जब तुम गिर रह हो तभी सजग हो जाओ। सिर्फ देखो कि शरीर गिर रहा है।

कभी-कभी चमत्कारपूर्ण घटना घटती है। तुम खड़े रहते हो, शरीर गिर गया है, और तुम उसे देख सकते हो। तुम देख सकते हो, क्योंकि शरीर ही गिरा है और तुम खड़े हो। शरीर के साथ मत गिरो। चारों तरफ घूमों, दौड़ों, नाचो, शरीर को थका डालों। लेकिन ध्यान रहे, तुम्हें लेटना नहीं है। क्योंकि उस हालत में आंतरिक चेतना भी शरीर के साथ गति करके लेट जाती है। इसलिए लेटना नहीं है। तुम चलते ही चलो, जब तक कि शरीर अपने आप ही न गिर जाए। तब शरीर शव की तरह गिर जाता है। और तुरंत तुम्हें दिखाई देता है कि शरीर गिर रहा है और तुम कुछ नहीं कर सकते है।

उसी क्षण आँख खोलों, सजग हो जाओ। चूको मत। जागरूक होकर देखो कि क्या हो रहा है। हो सकता है। तुम खड़े हो और शरीर गिर पडा है। एक बार यह जान लो कि फिर तुम यह कभी न भूलोंगे कि मैं इस शरीर से पृथक हूं।

अंग्रेजी के शब्द 'एक्स्टसी' का यही अर्थ है। बाहर खड़ा होना। एक्स्टसी अर्थात बाहर खड़ा होना। अंग्रेजी में एक्स्टसी का प्रयोग समाधि के लिए होता है। और एक बार तुम समझ लो कि तुम शरीर के बाहर हो तो उस क्षण मन नहीं रह सकता। क्योंकि मन ही वह सेतु है जिससे यह भाव पैदा होता है कि मैं शरीर हूं। अगर तुम एक क्षण के लिए भी शरीर के बाहर हुए तो उस क्षण में मन नहीं रहेगा।

यह अतिक्रमण है। अब तुम शरीर में वापस हो सकते हो, मन में भी वापस हो सकते हो; लेकिन अब तुम इस अनुभव को नहीं भूल सकोगे। यह अनुभव तुम्हारे अस्तित्व का भाग बन गया है। यह सदा तुम्हारे साथ रहेगा।

इस प्रयोग को प्रतिदिन करो। और इस सरल प्रक्रिया से बहुत कुछ घटित होता है।

मन को लेकिन पश्चिम सदा चिंतित रहता है और उनके उपाय भी करता है। लेकिन अब तक कोई उपाय काम करता नजर नहीं आता। हरेक चीज फैशन बनकर समाप्त हो जाती है। मनोविश्लेषण अब एक मृत आंदोलन है। उसकी जगह नए आंदोलन आ गए है—एनकांउटर समूह है, समूह मनोविज्ञान है, कर्म मनोविज्ञान है—और भी ऐसी ही चीजें है। लेकिन वे फैशन की तरह आती है और चली जाती है। क्यो?

इसलिए कि मन के भीतर तुम ज्यादा से ज्यादा व्यवस्था ही बिठा सकते हो। आरे ये व्यवस्थाएं बार-बार उपद्रव में पड़ेगी। मन की व्यवस्था, उसके साथ समायोजन करना रेत पर घर बनाने जैसा है। ताश का घर बनाने जैसा है। वह घर सदा हिलता रहेगा। और यह डर सदा रहेगा कि अब गिरा तब गिरा। वह किसी भी क्षण गिर सकता है।

आंतरिक रूप से सुखी और स्वस्थ होने के लिए, संपूर्ण होने के लिए मन के पार जाना ही एकमात्र उपाय है। तब तुम मन में भी लौट सकते हो। और उसे उपयोग में भी ला सकते हो। तब मन यंत्र का काम करता है। और तुम उससे तादात्म्य नहीं रखते।

तो दो चीजें है। एक कि मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य है। तंत्र के लिए यही रूग्णता है। दूसरे, मन के साथ तुम्हारा तादात्म्य नहीं रहा; तुम उसे यंत्र की तरह काम में लाते हो। तब तुम स्वस्थ और संपूर्ण हो।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—28 (ओशो)

तंत्र-सूत्र—विधि—29 (ओशो)

अचानक रूकने की कुछ विधियां:

तंत्र-सूत्र—विधि—29 (ओशो)
''भक्ति मुक्त करती है।''

पांचवी विधि:

थोड़े से शब्दों की यह विधि एक अर्थ में बहुत सरल है और दूसरे अर्थ में अत्यंत कठिन। यह पांचवी विधि कहती है:

''भक्ति मुक्त करती है।''
थोड़े से शब्द: भक्ति मुक्त करती है। सच में तो यह एक ही शब्द है। क्योंकि ''मुक्त करती है।'' भक्ति का परिणाम है। भक्ति का क्या मतलब है।

विज्ञान भैरव तंत्र में दो कोटि की विधियां है। एक कोटि उनके लिए है जो मस्तिष्क प्रधान है। विज्ञानोन्मुख है। और दूसरी उनके लिए है जो ह्रदय प्रधान है। भावोन्मुख है, कवि है। और दो ही तरह के मन है—वैज्ञानिक मन और काव्यात्मक मन। और इनमें जमीन आसमान का अंतर है। वे एक दूसरे से की नहीं मिलते है। मिलन असंभव है। कभी-कभी वे समानांतर चलते है। लेकिन मिलते कही नहीं।

कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई आदमी कवि भी है और वैज्ञानिक भी। यह दुर्लभ घटना है। कोई व्यक्ति कवि और विज्ञानी दोनो हो। तब उसका व्यक्तितत्व खंडित होगा। तब वह यथार्थ में दो होगा, एक नहीं। जब वह कवि होता है तब वैज्ञानिक नहीं होता। अन्यथा उसका वैज्ञानिक उपद्रव करेगा। और जब वह वैज्ञानिक होता है तो अपने कवि को बिलकुल भूल जाता है। और

तब वह दूसरे जगत में प्रवेश करता है—जो धारण, विचार, तर्क, बुद्धि और गणित का जगत है। वह जगत ही अलग है। और जब वह कविता के जगत में विचारण करता है तो वह गणित नहीं, संगीत होता है। वहां धारणाएं नहीं होती, वहां शब्द होते है। लेकिन तरल शब्द, ठोस नहीं। वहां एक शब्द दूसरे शब्द में प्रवेश कर जाता है। वहां एक शब्द के अनेक अर्थ हो सकते है। और हो सकता है कोई भी अर्थ न हो। वहां व्याकरण खो जाता है। सिर्फ काव्य रहता है। यह और ही दुनिया हे।
विचारक और भावुक, ये दो कोटियां है। पहली विधि, जिसकी चर्चा अभी मैंने की, वैज्ञानिक मन के लिए थी। ''भक्ति मुक्त करती है।'' भावुक मन के लिए है। और याद रहे कि तुम्हें अपनी कोटी खोज लेनी है। कोई भी कोटी छोटी या बड़ी नहीं है। यह मत सोचो की बौद्धिक मन श्रेष्ठ है। या भावुक मन श्रेष्ठ है। नहीं वे सिर्फ कोटियां है। ऊंच-नीच की कोई बात नहीं है। इसलिए खोजों कि तुम्हारी कोटि तथ्यतः: क्या है।

दूसरी विधि भावुक कोटि के लोगो के लिए है। क्यों? क्योंकि भक्ति किसी और के प्रति होती है। और भक्ति अंधी होती है। भक्ति में दूसरा तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण होता है। यह श्रद्धा है। बुद्धिवादी किसी पर श्रद्धा नहीं कर सकता है। वह सिर्फ आलोचना कर सकता है। श्रद्धा नहीं। वह संदेह कर सकता है। भरोसा नहीं। और अगर कभी कोई बुद्धि प्रधान व्यक्ति आस्था के निकट आता है तो उसकी आस्था प्रामाणिक नहीं होती।

पहली बात तो यह कि वह किसी तरह अपनी आस्था के संबंध में अपने को राज़ी करता है। ऐसी आस्था कभी प्रामाणिक नहीं होती। वह प्रमाण खोजता है। दलील खोजता है। और वह पाता है कि दलीलें ठोस है, तो ही विश्वास करता है। लेकिन यही वह चूक जाता है। क्योंकि आस्था तर्क नहीं करती है और न आस्था प्रमाणों पर आधारित है। अगर प्रमाण उपलब्ध है। तो आस्था की जरूरत क्या है।

तुम सूरज में विश्वास नहीं करते हो, तुम आसमान में विश्वास नहीं करते हो, तुम बस उन्हें जानते हो। सूरज उग रहा है। इसमें विश्वास करने की क्या बात है? अगर कोई तुमसे पूछे कि क्या तुम सूरज उग रहा है। इसमें विश्वास करते हो, तो तुम यह नहीं कहते कि हां, मैं विश्वास करती हू और एक बड़ा विश्वासी हूं। तुम यही कहती हो कि सूरज उग रहा है। और मैं यह जानता हूं। विश्वास या अविश्वास का प्रश्न की नहीं है। क्यों ऐसा व्यक्ति भी है जिसे सूरज में विश्वास हो? ऐसा कोई नहीं है।

श्रद्धा का अर्थ है: बिना किसी प्रमाण के अज्ञात में छलांग।

यह कठिन है, बौद्धिक कोटि के मनुष्य के लिए यह कठिन है। क्योंकि तब पूरी चीज बेतुकी हो जाती है। पागलपन की हो जाती है। पहले प्रमाण चाहिए। अगर तुम कहते हो कि ईश्वर है और उसके प्रति समर्पण करना है, तो पहले ईश्वर को सिद्ध करना होगा।

लेकिन तब ईश्वरा एक प्रमेय हो जाता है; सिद्ध तो हो जाता है। पर व्यर्थ हो जाता है। ईश्वर को असिद्ध ही रहना है; अन्यथा वह किसी काम का न रहेगा। क्योंकि तब श्रद्धा अर्थहीन हो जाती है। अगर तुम एक सिद्ध किए हुए ईश्वर में विश्वास करते हो तो तुम्हारा ईश्वर ज्यामिति का एक प्रमेय मात्र है। कोई यूक्लिड के प्रेमियों में विश्वास नहीं करता; उसकी जरूरत नहीं थी। वह प्रमेय सिद्ध किए जा सकते है। और जो सिद्ध किया जा सकता है वह श्रद्धा के लिए आधार नहीं हो सकता।

एक अत्यंत रहस्यवादी ईसाई संत तरतुलियन ने कहा है कि मैं ईश्वर में इसलिए विश्वास करता हूं क्योंकि वह बेतुका है। अविश्वासी है। और यह ठीक कहता है। भावुक लोगों की दृष्टि यही है। तरतुलियन कहता है कि चूंकि उसे सिद्ध नहीं किया जा सकता इसलिए मैं ईश्वर में विश्वास करता हूं।

और वह एक अर्थ में सही है; क्योंकि श्रद्धा का अर्थ है। किन्हीं कारणों के बिना अज्ञात में छलांग। और सिर्फ भावपूर्ण व्यक्ति ही यह कर सकता है।

भक्ति को छोड़ो; पहले प्रेम को समझो और तब तुम भक्ति को भी समझ सकोगे।

तुम किसी के प्रेम में पड़े हुए हो। अंग्रेजी में इसे फालिंग इन लव—प्रेम में गिरना कहते है। हम प्रेम में गिरना क्यों कहते है। कुछ नहीं गिरता है सिर्फ तुम्हारा सिर गिरता है। प्रेम में सिर के सिवाय और क्या गिरता है। तुम अपने सिरा से नीचे गिर जाते हो। इसी से हम इसे ''प्रेम में गिरना'' कहते है। भाषा बौद्धिक कोटि के लोग निर्मित करते है। उनके लिए प्रेम पागलपन है। विक्षिप्तता है। कोई प्रेम में गिर गया है। इसका मतलब हुआ कि अब वह कुछ भी कर सकता है। अब वह पागल हो गया है। बुद्धि उसे काम न आएगी। तुम उसके साथ तर्क न कर सकोगे। क्या तुम किसी प्रेमी के साथ तर्क कर सकते हो। लोग चेष्टा करते है। लेकिन कुछ हाथ नहीं आता।

तुम किसी के प्रेम में पड़ गए हो। हर कोई कहता है कि यह तुम्हारे योग्य नहीं है। या कि तुम मुसीबत मोल ल रहे हो, या कि तुम मुर्ख बन रहे हो, और इससे अच्छा प्रेम पात्र मिल सकता था। लेकिन यह सब कहने का तुम पर कोई असर न होगा। कोई दलील काम न आएगी। तुम प्रेम में हो; अब बुद्धि व्यर्थ हो गई। प्रेम की अपनी तर्क सरणी है।

दो प्रेमी मौन हो जाते है। और जब दो प्रेमी फिर बातचीत करने लग जाते है तो समझ लेना कि प्रेम विदा हो चुका है। कि वे फिर अजनबी हो गए है। जाओ और पति-पत्नियों को देखो। जब वे अकेले होते है तो वे किसी भी चीज के बारे में बातचीत करते रहते है। और वह दोनों जानते है कि बातचीत गैर-जरूरी है। लेकिन चुप रहना कितना कठिन है। इसलिए किसी क्षुद्र सी बात पर भी बात किए जाओ। ताकि संवाद चलता रहे।

लेकिन दो प्रेमी मौन हो जाये भाषा खो जायेगी; क्योंकि भाषा बुद्धि की चीज है। शुरूआत तो बच्चों जैसी बातचीत से होगी। लेकिन फिर वह नहीं रहेगी। तब वे मौन में संवाद करेंगे। उनका संवाद क्या है। उनका संवाद अतर्क्य है। वे अस्तित्व के एक भिन्न आयाम के साथ लयवद्ध हो जाते है। और वे उस लयबद्धता में सुखी अनुभव करते है। और अगर तुम उनसे पूछो कि उनका सुख क्या है तो वे उसे प्रमाणित नहीं कर सकते।

सेक्स और प्रेम में यही भेद है। अगर सिर्फ दो शरीर एक होते हों तो बहुत अड़चन नहीं है और उसमें पीड़ा भी नहीं है। यह बहुत सरल बात है; कोई पशु भी कर सकता है। लेकिन जब दो व्यक्ति प्रेम में मिलते है तो कठिनाई है, बहुत कठिनाई है। क्योंकि तब दो मनों को विसर्जित होना पड़ता है। अनुपस्थित होना पड़ता है। तभी वह स्थान निर्मित होता है। जिसमे प्रेम का फूल खिल सके।

प्रेम में होता क्या है? प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है। तुमसे ज्यादा महत्वपूर्ण। चीजें मेरे चारों और घूमती है। और मेरे लिए घूमती है। और केंद्र मैं हूं। बुद्धि सदा इसी भांति काम करती है।

तर्क सदा स्व-केंद्रित होता है। मन सदा अहं-केंद्रित होता है। मैं केंद्र हूं और शेष सब चीजें मेरे चारो और घूमती है, और मेरे लिए घूमती है। लेकिन केंद्र मैं हूं। बुद्धि सदा सी भांति काम करती है।

अगर तुम बुद्धि के साथ बहुत दूर तक चलोगे तो तुम उसी निष्कर्ष पर पहुंचोगे जिस पर बर्कले पहुंचा था। उसने कहा: केवल मैं हूं और शेष सब चीजें मेरे मन की धारणाएं भर है। मैं कैसे सिद्ध कर सकता हूं कि तुम सचमुच हो? हो सकता है, कि तुम बिलकुल न होओ। तुम एक सपना होओ। और मैं भी एक सपना होऊं और सपने में ही बोल रहा हूं। और हो सकता है कि तुम बिलकुल न होओ। मैं कैसे अपने को समझाऊं कि तुम सचमुच हो? हालांकि मैं तुमको छू सकता हूं लेकिन ऐसा छूना तो सपना में भी होता है। और सपने में भी मुझे किसी के छूने पर छूने की अनुभूति होती है। मैं तुम्हें चोट कर सकता हूं। और तुम रोओगे, लेकिन ऐसे में सपने में भी किसी को चोट कर मैं उस स्वप्न के व्यक्ति को रुला सकता हूं। यह भेद कैसे किया जाए कि जो व्यक्ति मेरे सामने है वह स्वप्न नहीं यथार्थ है? हो सकता है, वह काल्पनिक हो।

हृदय का मार्ग इसके विपरीत है। मैं खो जाता हूं और दूसरा प्रेम-पात्र यथार्थ हो जाता है। अगर तुम प्रेम को उसकी पराकाष्ठा पर पहुंचा दो तो वह भक्ति हो जाता है। अगर तुम्हारा प्रेम इस चरम बिंदु पर पहुंच जाए कि जहां तुम बिलकुल भूल जाओ कि मैं हूं। जहां तुम्हें अपना होश न रहे, और जहां दूसरा ही रह जाए, तो वही भक्ति है।

प्रेम भक्ति बन सकता है। प्रेम पहला चरण है, तभी भक्ति का फूल खिलता है। लेकिन हमारे लिए तो प्रेम भी दूर का तारा है। हमारे लिए सेक्स या काम ही सच्चाई है।

प्रेम की दो संभावनाएं है। प्रेम अगर नीचे गिरे तो काम बन जाता है। शारीरिक रह जाता है। और अगर प्रेम ऊपर उठे तो भक्ति बन जाता है। आत्मा की चीज बन जाता है। प्रेम दोनों के बीच में है। प्रेम के नीचे सेक्स का पाताल है। और उसके उपर भक्ति का अनंत आकाश है।

यदि तुम्हारा प्रेम गहरा हो तो दूसरा ज्यादा-ज्यादा अर्थपूर्ण हो जाता है—वह इतना अर्थपूर्ण हो जाता है कि तुम उसे अपना भगवान कहने लगते हो। यही कारण है कि मीरा कृष्ण को प्रभु कहे चली जाती है। न कृष्ण को कोई देख सकता है , न मीरास सिद्ध कर सकती है कि कृष्ण वहां है। लेकिन मीरा इसे सिद्ध करने में उत्सुक नहीं है। मीरा ने कृष्ण को अपना प्रेम-पात्र बना लिया है।

और याद रहे, तुम किसी यथार्थ व्यक्ति को अपना प्रेम पात्र बनाते हो या किसी कल्पना के व्यक्ति को, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। कारण यह है कि सारा रूपांतरण भक्ति के माध्यम से आता है। प्रेम-पात्र के माध्यम से नहीं। इस बात को सदा स्मरण रखो। कृष्ण नहीं भी हो सकते है। यह अप्रासंगिक है। प्रेम के लिए अप्रासंगिक है।

''भक्ति मुक्त करती है।''

इसलिए हमें प्रेम में ही स्वतंत्रता की झलक मिलती है। जब तुम प्रेम में होते हो तो तुम्हें सूक्ष्म ढंग की स्वतंत्रता का अहसास होता है। यह विरोधाभासी है; क्योंकि दूसरे तो वही देखेंगे कि तुम गुलाम हो गए हो। अगर तुम किसी के प्रेम में हो तो तुम्हारे इर्द-गिर्द के लोग सोचेंगे कि तुम एक दूसरे के गुलाम हो गए हो। लेकिन तुम्हें स्वतंत्रता की झलकें मिलने लगेंगी।

प्रेम मुक्ति है। क्यो? इसलिए कि अहंकार ही बंधन है। और कोई बंधन नहीं है। कल्पना करो कि तुम कारागृह में हो और उसके बाहर निकलने का कोई उपाय नहीं है। लेकिन तुम्हारी प्रेमिका उस कारागृह में पहूंच जाये तो वह कारागृह तत्क्षण खो जायेगा। दीवारें तो जहां की ताह होंगी। लेकिन अब तुम्हें कैद न कर सकेंगी। तुम उन्हें बिलकुल भूल जा सकते हो। तुम एक दूसरे में डूब सकते हो और तुम एक दूसरे के उड़ने के लिए आकाश बन जा सकते हो। कारागृह विलीन हो गया; वह कारागृह अब कारागृह न रहा।

और यह भी हो सकता है कि तुम खुले आकाश के नीचे हो सर्वथा बंधनहीन, सर्वथा मुक्त; लेकिन न हो कि कारागृह में ही हो। क्योंकि तब तुम्हारे उड़ने के लिए आकाश न रहा। यह बाहर का आकाश काम न देगा। इस आकाश में पक्षी उड़ते है; लेकिन तुम न उड़ सकोगे। तुम्हारे उड़ने के लिए एक भिन्न आकाश की जरूरत है। चेतना के आकाश में जरूरत है। कोई दूसरा हूं तुम्हें वह आकाश दे सकता है। उसका पहला स्वाद दे सकता है। जब दूसरा तुम्हारे लिए अपने को खोलना है तो तुम उसमें प्रवेश करते हो, तभी तुम उड़ सकते हो।

प्रेम स्वतंत्रता है। लेकिन समग्र स्वतंत्रता नहीं। जब प्रेम भक्ति बनता है तो ही वह समग्र स्वतंत्रता बनता है। उसका मतलब है कि तुम पूर्णरूपेण समर्पण कर दिया।

इसलिए ये सूत्र भक्ति मुक्त करती है। उनके लिए जो भाव प्रधान है। रामकृष्ण को लो। अगर राम कृष्ण को देखो तो तुम्हें लगेगा कि वे काली के, मां के गुलाम है। वे उसकी आज्ञा के बिना कुछ भी नहीं करते सकते है। लेकिन उनसे ज्यादा कौन स्वतंत्र हो सकता है।

रामकृष्ण जब पहले-पहले दक्षिणेश्वर मंदिर के पुजारी नियुक्त हुए तो उनका रंग-ढंग ही हैरान करने वाला था। मंदिर के ट्रस्टियों ने बैठक बुलायी और कहा के इस आदमी को निकाल बाहर करो। यह तो अभक्त जैसा व्यवहार करता है। ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि रामकृष्ण पहले खुद फूल को सूँघते और तब उसे काली के चरणों में चढ़ाते। लेकिन यह बात कर्मकांड के विपरीत हो जाती है। सूंघा हुआ फूल देवी-देवताओं को नहीं चढ़ाया जा सकता ; वह तो झूठा हो गया। अशुद्ध हो गया। रामकृष्ण पहले खुद चखते थे। फिर काली को भोग लगाते थे। और वे पुजारी थे। तो ट्रस्टियों ने कहा कि ऐसा नहीं चल सकता है।

रामकृष्ण ने ट्रस्टियों को जवाब दिया कि तब मुझे काम से मुक्त कर दो। मैं मंदिर से निकल जाना पसंद करूंगा। लेकिन मैं चखे बीन मां को भोग नहीं लगा सकता हूं। मेरी मां ऐसा ही करती थी। जब भी वह कुछ भोजन बनाती थी तो पहले खुद चखती थी। तब मुझे खिलाती थी। मैं सूंघ बिना कोई फूल नहीं चढ़ा सकता। मैं निकल जाने के राज़ी हूं। और तुम मुझे रोक नहीं सकते। मैं कहीं भी पूजा कर लुंगा। क्योंकि मां सर्वत्र है। वह तुम्हारे मंदिर में ही सीमित नहीं है। मैं जहां भी जाऊँगा इसी तरह मां की पूजा करता रहूंगा।

ऐसा हुआ कि किसी मुसलमान ने रामकृष्ण से कहा कि अगर आपकी काली सर्वत्र है तो आप हमारी मस्जिद में क्यों नहीं आते। उन्होंने कहा कि ठीक है, मैं आऊँगा। और वे छह महीने मस्जिद में रहे। वे दक्षिणेश्वर को पूरी तरह से भूल गये। और मस्जिद के ही होकर रह गये। तब उनके मित्रों ने आग्रह किया की अब तो बहुत दिन हो गये घर चलो। और उन मित्र ने कहां की आप सही है। और अब आप जा सकते है, सही में मां हर जगह है।

कोई सोच सकता है कि रामकृष्ण गुलाम है; लेकिन उनकी भक्ति ऐसी प्रगाढ़ है कि अब प्रेम-पात्र सब जगह है। जब तुम नहीं होते तो प्रेम-पात्र सर्वत्र होता है। और जब तुम होते हो तो प्रेम-पात्र कहीं नहीं होता।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—17

तंत्र-सूत्र—विधि—30 (ओशो)

देखने के संबंध में कुछ विधियां:

विज्ञान भैरव तंत्र, विधि–30 देखने की कुछ विधिया

''आंखें बंद करके अपने अंतरस्‌थ अस्तित्‌व को विस्तार से देखो। इस प्रकार अपने सच्चे स्वभाव को देख लो।''

''आंखें बंद करके......।''
अपनी आंखें बंद कर लो। लेकिन आंखे बंद करना ही काफी नहीं है। समग्र रूप से बंद करना है। उसका अर्थ है कि आँखो को बंद करते उनकी गति भी रोक दो।

अन्यथा आंखें बाहर की ही चीजें देखती रहेगी। बंद आंखें भी चीजों को चीजों के प्रतिबिंबों को देखती है। असली चीजें तो नहीं रहती। लेकिन उनके चित्र, विचार, संचित यादें तब भी सामने तैरती रहेंगी। ये चित्र ये यादें भी बाहर की है। इसलिए जब ते वे तैरती रहेगी तब तक आंखों को समग्ररूपेण बंद मत समझो। समग्र रूप से बंद होने का अर्थ है कि अब देखने को कुछ भी नहीं है।
इस फर्क को ठीक सक समझ लो। तुम अपनी आंखें बद कर सकते हो; वह आसान है। हर कोई हर क्षण आंखें बंद करता है। रात में भी तुम आंखें बंद रखते हो। लेकिन इससे अंतरस्‌थ स्वभाव प्रकट नहीं हो जाएगा। आंखें ऐसे बंद करो कि देखने को कुछ भी न बचे—न बाहर का विषय बचे न भीतर का विषय बचे। तुम्हारे सामने बस खाली अँधेरा रह जाए, मानो तुम अचानक अंधे हो गए हो—यथार्थ के प्रति ही नहीं, स्वप्‌न–यथार्थ के प्रति भी।

इसमे अभ्यास की जरूरत पड़ेगी—एक लंबे अभ्यास की जरूरत पड़ेगी। यह अचानक संभव नहीं है। एक लंबे प्रशिक्षण की जरूरत है। आंखें बंद कर लो जब भी तुम्हें लगे कि यह आसानी से किया जा सकता है और जब भी तुम्हें समय हो आंखें बंद कर लो। और आंखों की सभी भीतरी हलन-चलन को भी बंद कर दो। किसी तरह की भी गति मत होने दो। आंखों की सारी गतिया बंद हो जानी चाहिए। भाव करो कि आंखें पत्‌थर हो गई है। और तब आंखों की पथराई अवस्था में ठहरे रहो। कुछ भी मत करो; मात्र स्थित रहो। तब किसी दिन अचानक तुम्हें यह बोध होगा कि तुम अपने भीतर देख रहे हो।

यह विधि भीतर से देखने के लिए बहुत सहयोगी है। और यह दर्शन तुम्हारी समग्र चेतना को, तुम्हारे समूचे अस्तित्‌व को रूपांतरित कर देता है। कारण यह है कि जब तुम अपने को भी भीतर से देखते हो तो तुम तुरंत संसार से भिन्‌न हो जाते हो। यह झूठा तादात्‌म्य कि मैं शरीर हूं, इसलिए है कि हम अपने शरीर को बाहर से देखते है। अगर कोई उसे भीतर से देख सके तो

द्रष्टा शरीर से भिन्न हो जाता है। और तब तुम अपनी चेतना को अंगूठे से सिर तक अपने शरीर के भीतर गतिमान कर सकते हो; अब तुम शरीर के भीतर परिभ्रमण कर सकते हो।

और एक बार तुम शरीर को अंदर से देखने और उसमें गति करने में समर्थ हो गए तो फिर बाहर जाना जरा भी कठिन नहीं है। एक बार तुम गति करना सिख गये, एक बार तुम ने जान लिया कि तुम शरीर से पृथक हो, तो तुम एक महा बंधन से मुक्त हो गए। अब तुम पर गुरूत्वाकर्षण की पकड़ न रही। अब तुम्हारी कोई सीमा न रही। अब तुम परिपूर्ण स्वतंत्र हो, अब तुम शरीर के बाहर जा सकते हो। अब बाहर-भीतर होना आसान है। अब तुम्हारा शरीर महज निवास स्थान है।

आंखें बंद करो और अपने अंतरस्थ प्राणी को विस्तार से देखो। और भीतर-भीतर शरीर के अंग-अंग में परिभ्रमण करो। सबसे पहले अंगूठे के पास जाओ। पूरे शरीर को भूल जाओ। और अंगूठे पर पहुंचो। वहां रुको और उसका दर्शन करो। फिर पाँव से होकर ऊपर बढ़ो; और ऐसे प्रत्येक अंग को देखो।

तब बहुत सी बातें घटित होंगी—बहुत बातें। तब तुम्हारा शरीर ऐसा संवेदनशील वाहन बन जाएगा जिसका तुम कल्पना नहीं कर सकते। तब अगर तुम किसी को स्पर्श करोगे तो तुम पूरे अपने हाथ में गति कर जाओगे और वह स्पर्श रूपांतरकारी होगा। गुरु के स्पर्श का यही अर्थ है। गुरु अपने किसी अंग में भी समग्र रूप से पहुंच सकता है। और वहां एकाग्र हो सकता है।

अगर तुम समग्र रूप से अपने किसी अंग कसे चले जाओ तो वह अंग जीवंत हो जाता है। इतना जीवंत कि तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। कि उसे क्या हो गया है। तब तुम अपनी आंखों में समग्ररूपेण समा सकते हो। इस तरह आँखो में समाकर अगर तुम किसी दूसरे की आंखों में झांकोगे तो तुम उसमें प्रवेश कर जाओगे उसकी गहनत्म गहराई को छू जाओगे।

गुरु अनेक काम करता है। उनमें से एक बुनियादी काम यह है कि तुम्हारा विश्लेषण करने के लिए तुम में गहरे उतरता है। और वह तुम्हारे अंधेरे तल घरों में प्रवेश करता है। तुम्हें भी अपने इन तल घरों का पता नहीं है। अगर गुरु कहेगा कि तुम्हारे भी तर कुछ चीजें छीपी पड़ी है। तो तुम उसका विश्वास भी नहीं करोगे। कैसे विश्वास करोगे? तुम्हें उनका पता ही नहीं है। तुम अपने मन के एक ही हिस्से को जानते हो। और वह उसका बहुत छोटा हिस्सा है। ऊपरी हिस्सा है। वह उसका पहली पर्त भर है। उसके पीछे नौ पर्तें छिपी है जिनकी तुम्हें कोई खबर नहीं है। लेकिन आंखों के द्वारा उनमें प्रवेश किया जा सकता है।

''आंखें बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो।''

इस दर्शन का पहल चरण, बाहरी चरण अपने शरीर को भीतर से, अपने आंतरिक केंद्र से देखना है। केंद्र पर खड़े हो जाओ और देखो। तब तुम शरीर से पृथक हो जाओगे। क्योंकि द्रष्टा कभी दृश्य नहीं होता है, निरीक्षक अपने विषय से भिन्न होता है। अगर तुम अंदर से अपने शरीर को देख सको तो तुम कभी फिर इस भ्रम में नहीं पड़ोगे कि मैं शरीर हूं। तब तुम सर्वथा पृथक रहोगे। तब तुम शरीर में रहोगे। लेकिन शरीर नहीं रहोगे।

यह पहला चरण है। फिर तुम और गति कर सकते हो। तब तुम गति करने के लिए स्वतंत्र हो। शरीर से मुक्त होकर, तादात्म्य से मुक्त होकर तुम गति करने के लिए मुक्त हो। अब तुम अपने मन में, मन की गहराइयों में प्रवेश कर सकते हो। अब तुम उन नौ पर्तों में, जो भीतर है और अचेतन है, प्रवेश कर सकते हो।

यह मन की अंतरस्थ गुफा है। और अगर मन की गुफा में प्रवेश करते हो तो तुम मन से भी प्रथक हो जाते हो। तब तुम देखोगें कि मन भी एक विषय है जिसे देखा जा सकता है। और जो मन में प्रवेश कर रहा है वह मन से पृथक और भिन्न है।

अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो इसका यही अर्थ है—मन में प्रवेश करो। शरीर और मन दोनों के भीतर जाना है। और भीतर से उन्हें देखना है। तब तुम केवल साक्षी हो। और इस साक्षी में प्रवेश नहीं हो सकता। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जिसमें प्रवेश किया जा सकता है। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जिसमें प्रवेश किया जा सकता है। जिसे देखा जा सकता है। इसी से यह तुम्हारा अंतरतम है; यही तुम हो। जब तुम वहां आ गए जिससे आगे नहीं जाया जा सकता, जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता, वह तुम नहीं हो। जब तुम वहां आ गए जिससे आगे नहीं जाया जा सकता है। जिस देखा जा सकता है। जिसमें प्रवेश नहीं किया जा सकता। तभी तुम समझना कि तुम अपने सच्चे स्व के पास, अपनी आत्मा के पास पहुंचे।

तुम साक्षी के साक्षी नहीं हो सकते। यह स्मरण रह। यह बात ही बेतुकी है। अगर कोई कहता है कि मैंने अपने साक्षी को देखा है तो वह गलत कहता है। यह बात ही अनर्गल है। यह अनर्गल क्यों है?

यह इसलिए है कि अगर तुम ने साक्षी आत्मा को देख लिया तो वह साक्षी आत्मा साक्षी आत्मा ही नहीं है। साक्षी वह है जिसने उसको देखा है। जिसे तुम देख सकते हो वह तुम नहीं हो। जिसका तुम निरीक्षण कर सकते हो वह तुम नहीं हो। जिसका तुम्हें बोध हो सकता है वह तुम नहीं हो।

लेकिन मन के पार एक बिंदु आता है। जहां तुम मात्र होते हो। बस हो। अब तुम अपने अखंड अस्तित्व को दो में नहीं बांट सकते। दृश्य और द्रष्टा में नहीं बांट सकते।

वहां केवल द्रष्टा है, मात्र साक्षी भाव है। इस बात को बुद्धि से तर्क से समझना बहुत कठिन है। क्योंकि वहां बुद्धि की सभी कोटियां समाप्त हो जाती है।

तर्क की इस कठिनाई के कारण चार्वाक ने, जिसने संसार के एक अत्यंत तर्कपूर्ण दर्शनशास्त्र की स्थापना की। कहा कि तुम आत्मा हो नहीं जान सकते हो, कोई आत्म-ज्ञान नहीं होता। और क्योंकि आत्म-ज्ञान नहीं होता है, इसलिए तुम कैसे कह सकते हो कि आत्मा है। जो भी तुम जानते हो वह आत्मा नहीं है। जो जानता है वह आत्मा है। जो जाना जाता है वह आत्मा नहीं हो सकती है। इसलिए तुम तर्क के अनुसार नहीं कह सकते कि मैंने अपनी आत्मा को जान लिया। वह बेतुका है, तर्कहीन है। तुम अपनी आत्मा को कैसे जान सकते हो? क्योंकि तब कौन जानेगा और किसको जानेगा?

ज्ञान का अर्थ है द्वैत—विषय और विषयी के बीच, ज्ञाता और ज्ञात के बीच। इसलिए चार्वाक कहता है। कि जो लोग कहते है कि हमने आत्मा को जान लिया है वे मूढ़ता की बात करते है। आत्म ज्ञान असंभव है। क्योंकि आत्मा निर्विवाद रूप से जानने वाला है। उसे जाना जाने वाले में बदला नहीं जा सकता। और तब चार्वाक कहता है कि अगर तुम आत्मा को नह जान सकते तो यह कैसे कह सकते हो कि आत्मा है।

चार्वाक जैसे लोग, जो आत्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते, अनात्म वादी कहलाते है। वे कहते है कि आत्मा नह है; जिसे जाना नहीं जा सकता है।

और वे तर्क के अनुसार सही है। अगर तर्क ही सब कुछ है तो वे सही है। लेकिन जीवन का यह रहस्य है कि तर्क सिर्फ आरंभ है, अंत नहीं है। एक क्षण आता है जब तर्क समाप्त हो जाता है। लेकिन तुम समाप्त नहीं होते। एक क्षण आता है जब तर्क खतम हो जाता है, लेकिन तुम तब भी होते हो। जीवन अतर्क्य है। यही कारण है कि यह समझना बहुत कठिन होता है कि सिर्फ साक्षी बचता है।

आकाश को देखो नीला दिखाई देता है। लेकिन आकाश नीला नहीं है। वह कास्मिक किरणों से भरा है। क्योंकि वहां कोई विषय वस्तु नहीं है। इसीलिए आकाश नीला दिखाई देता है। वे किरणें प्रतिबिंबित नहीं कर सकती, तुम्हारी आंखों तक नहीं आ सकती। अगर तुम अंतरिक्ष में जाओ और वहां कोई वस्तु न हो तो तुम्हें वहां अँधेरा ही अँधेरा मालूम होगा। हालाकि तुम्हारे बगल से किरण गुजर रही है। लेकिन तुम्हें अँधेरा ही मालूम होगा। प्रकाश को जानने के लिए विषय वस्तु का होना अनिवार्य है।

तो चार्वाक कहता है कह अगर तुम भीतर जाते हो और उस बिंदू पर पहुंचते हो जहां सिर्फ साक्षी बचता है। और कुछ देखने को नहीं बचता। तो तुम यह बात कैसे जानोंगे? देखने के लिए कोई विषय अवश्य चाहिए। तभी तुम साक्षित्व को जान सकते हो।

तर्क के अनुसार विज्ञान के अनुसार यह सही है। लेकिन यह अस्तित्वत: यही नहीं है। जो लोग सचमुच भीतर प्रवेश करते है वे ऐसे बिंदू पर पहुंचते है जहां मात्र चैतन्य के अतिरिक्त कोई भी विषय नहीं रहता है। तुम हो, लेकिन देखने को कुछ भी नहीं है—मात्र दृष्टा है। एक मात्र दृष्टा। अपने आस-पास किसी विषय के बिना शुद्ध विषयी होता है। जिस क्षण तुम इस बिंदू पर पहुंचते हो। तुम अपने अस्तित्व के परम लक्ष्य पर पहूंच गए। उसे तुम आदि कह सकते हो। उसे तुम अंत भी कह सकते हो। वह आदि और अंत दोनों है। वह आत्म-ज्ञान है।

भाषागत रूप से आत्म ज्ञान शब्द गलत है। क्योंकि भाषा में इसके संबंध में कुछ भी नह कहा जा सकता। जब तुम अद्वैत के जगत में प्रवेश करते हो, तो भाषा व्यर्थ हो जाती है। भाषा तभी तक सार्थक है जब तक तुम द्वैत के जगत में हो। द्वैत के जगत में भाषा अर्थ वान है; क्योंकि भाषा द्वैतवादी जगत की कृति है। उसका हिस्सा है। अद्वैत में प्रवेश करते ही भाषा व्यर्थ हो जाती है।

लाओत्से ने कहा है कि जो कहा जा सकता है वह सच नहीं हो सकता और जो सच है वह कहा नह जा सकता। वह मौन रह गया। जिंदगी के अंतिम दिनों तक उसने कुछ भी लिखने से इनकार किया। उसने कहा कि अगर मैं कुछ कहूं तो वह असत्य हो जाएगा। क्योंकि उस जगत के संबंध में कुछ भी नहीं कहा जा सकता जहां एक ही बचता है।

''आंखे बंद करके अपने अंतरस्थ अस्तित्व को विस्तार से देखो।''

शरीर और मन दोनों को विस्तार से देखो।

''इस प्रकार अपने सच्चे स्वभाव को देख लो।''

तो इस विधि का प्रयोग कैसे करे? आंखों को समग्र रूप से बंद होना जरूरी है। अगर तुम इसका प्रयोग करते हो तो पहले आंखें बंद करो और फिर आंखों की सारी गति रोक दो। अपनी आंखों को पत्थर की तरह हो जाने दो, गति बिलकुल बंद करो और फिर आंखों की सारी गति रोक दो। इसका अभ्यास करते हुए किसी दिन अचानक, हठात तुम अपने अंदर देखने में समर्थ हो जाओगे। वे आंखें जो सतत बाहर देखने की आदी थी भीतर को मूड जाएंगी। और तुम्हें अपने अंतरस्थ की एक झलक मिल जायेगी। और तब कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

एक बार तुम्हें अंतरस्थ की झलक मिल गई तो तुम जानते हो कि क्या किया जाए और कैसे गति की जाए। पहल झलक ही कठिन है। उसके बाद तुम्हें तरकीब हाथ लग जायेगी। जब वह एक खेल, एक युक्ति की बात हो जाएगी। किसी भी क्षण तुम अपनी आंखे बंद कर सकते हो।

बुद्ध मर रहे थे। यह उनके जीवन का अंतिम दिन था। और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि कुछ पूछना हो तो पूछो। शिष्य रो रहे थे। आंसू बह रहे थे। उन्होंने बुद्ध से कहा कि आपने हमें इतना समझाया, अब पूछने को क्या बाकी है। बुद्ध की आदत थी कि वे एक बात को तीन बार पूछते थे। वे एक बार ही पूछकर चुप नहीं रह जाते थे। उन्होंने एक बार फिर पूछा। और फिर तीसरी बार भी पूछा। कि कोई प्रश्न तो नहीं है तुम्हारा।

कहा जाता है कि बुद्ध की इस आंतरिक यात्रा के चार चरण थे। पहले उन्होंने आंखें बंद की और तब उन्होंने आंखों को स्थिर कर लिया। उनमें कोई गति नहीं थी। उस समय यदि तुम रैम-रिकार्डिग कर प्रयोग करते, तो उसमे कोई ग्राफ नहीं बनता। आंखें स्थिर हो गई, यह दूसरी बात है। और तीसरी बात कि उन्होंने अपने शरीर का देखा और अंत में अपने केंद्र पर, मुल स्त्रोत पर पहुंच गए।

यह वजह है कि उनकी मृत्यु नह कहलाती। हम उसे निर्वाण कहते है। मृत्यु नहीं। यह फर्क है। सामान्यत: हम मरते है, क्योंकि हमारी मृत्यु घटित होती है। बुद्ध के साथ यह मृत्यु घटित नहीं हुई। मृत्यु के आने के पहले वे अपने स्त्रोत को वापस लौट गए थे। उनके मृत शरीर की ही मृत्यु हुई। वे वहां मौजूद नहीं थे।

बौद्ध परंपरा में कहा जाता है कि बुद्ध की कभी मृत्यु नहीं घटित हुई; मृत्यु उन्हें पकड़ ही नहीं पाई। मृत्यु ने उनका पीछा किया। जैसे कि वह सबका पीछा करती है। लेकिन वे उसके जाल में नहीं आए। मृत्यु उनके द्वारा छली गई। बुद्ध मृत्यु के पार खड़े होकर हंस रहे होंगे। क्योंकि मृत्यु मृत शरीर के पास खड़ी थी।

यह वही विधि है इसके चार चरण करो और आगे बढ़ो। और जब एक झलक मिल जाएगी तो पूरी चीज आसान और सरल हो जाएगी। तब तुम किसी भी क्षण अंदर जा सकते हो। और बाहर आ सकते हो—वैसे ही जैसे तुम अपने घर के बाहर-भीतर होते हो।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—31 (ओशो)

देखने के संबंध में दूसरी विधि:

तंत्र सूत्र–विधि –31 ओशो
देखने के संबंध में दूसरी विधि
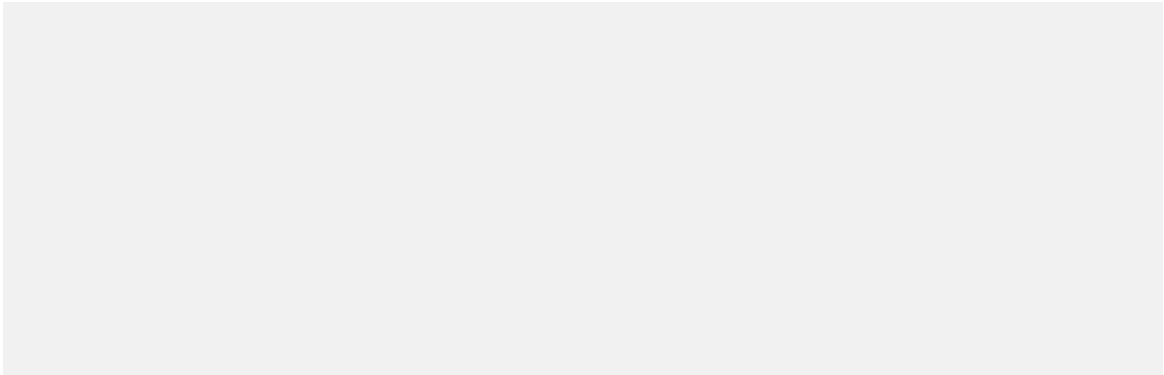
''किसी कटोरे को उसके पार्श्व-भाग या पदार्थ को देखे बिना देखो। थोड़े ही क्षणों में बोध का उपलब्ध हो जाओ।''

किसी भी चीज को देखो। एक कटोरा या कोई भी चीज काम देगी। लेकिन देखने की गुणवत्ता भिन्न हो।

''किसी कटोरे को उसके पार्श्व-भाग या पदार्थ को देखे बिना देखो।''
किसी विषय को पूरा का पूरा देखो, उसे टुकड़ो में मत बांटो। क्यो? इसलिए कि जब तुम किसी चीज को हिस्सों में बांटते हो तो आंखों को हिस्सों में देखने का मौका मिलता है। चीज को उसकी समग्रता में देखो। तुम यह कह सकते हो।
मैं तुम सभी को दो ढंग से देख सकता हूं। मैं एक तरफ से देखता हुआ आगे बढ़ सकता हूं। पहले अ को देखू, तब ब को तब स को, और इस तरह आगे बढ़ूं। लेकिन जब मैं अ, और ब या स को देखता हूं तो मैं उपस्थित नहीं रहता हूं। यदि उपस्थित भी रहूँ तो किनारे पर, परिधि पर उपस्थित रहता हूं। और उस हालत में मेरी दृष्टि एकाग्र और समग्र नहीं रहती है। क्योंकि जब मैं ब को देखता हूं तो अ से हट जाता हूं। और जब से को देखता हूं तो आ पूरी तरह खो जाता है। मेरी निगाह से बाहर चला जाता है। इस समूह को देखने का एक ढंग यह है। लेकिन मैं इस पूरे समूह को व्यक्तियों में, इकाइयों में बांटे बगैर भी पूरे का पूरा देख सकता हूं।

इसका प्रयोग करो। पले किसी चीज को अंश-अंश में देखो। एक अंश के बाद दूसरे अंश को। और तब अचानक उसे पूरे का पूरा देखो। उसे टुकड़ो-टुकड़ो में मत बांटो। जब तुम किसी चीज को पूरे का पूरा देखते हो, तो आंखों को गति करने की जरूरत नहीं रहती। आंखों को गति करने का मौका न मिले, इस उदेश्य से ही ये शर्तें रखी गई है।

पदार्थ कटोरे का भौतिक भाग है। और रूप उसका अभौतिक भाग है। और तुम पदार्थ से अपदार्थ की और गति करते हो। यह सहयोगी होगा; प्रयोग करो। किसी व्यक्ति के साथ भी प्रयोग कर सकते हो। कोई पुरूष या किसी स्त्री खड़ी है, उसे देखो। उस स्त्री या पुरूष को पूरे का पूरा समग्ररतः: अपनी दृष्टि में समेटो।

शुरू-शुरू में यह कुछ अजीब सा लगेगा। क्योंकि तुम इसके आदी नहीं हो। लेकिन अंत में यह बहुत सुंदर अनुभव होगा। और तब यह मत सोचो कि शरीर सुंदर है या असुंदर, गोरा है या काला, मर्द है या औरत। सोचो मत; रूप को देखो, सिर्फ रूप को, पदार्थ को भूल जाओ।

''थोड़े ही क्षणों में बोध को उपलब्ध हो जाओ।''

तुम एकाएक स्वयं के प्रति, अपने प्रति बोध कसे भर जाओगे। किसी चीज को देखते हुए तुम अपने को जान लोगे। क्यों? क्योंकि आंखों को बाहर गति करने की गुंजाइश नहीं है। रूप को समग्रता में लिया गया है। इसलिए तुम उसके अंशों में नहीं जा सकते। पदार्थ को छोड़ दिया गया है; शुद्ध रूप को लिया गया है। अब तुम उसके पदार्थ सोना, चाँदी, लकड़ी वगैरह के सबंध में नहीं सोच सकते । रूप शुद्ध है; उसके संबंध में सोचना संभव नहीं है। रूप बस रूप है; उसके संबंध में क्या सोचोगे।

स्वय के प्रति जागना जीवन का सर्वाधिक आनंदपूर्ण क्षण है। यही समाधि है। जब पहली बार तुम स्वयं के बोध से भरते हो तो उसके जो सौंदर्य, जो आनंद होता है, उसकी तुलना तुम किसी भी जानी हुई चीज से नहीं कर सकते हो। सच तो यह है कि पहली बार तुम स्वयं होते हो, आत्म वान होते हो। पहली बार तुम जानते हो कि मैं हूं। तुम्हारा होना बिजली की कौंध की तरह पहल बार प्रकट होता है। लेकिन यह क्यों होता है।

तुम ने देखा होगा, खासकर बच्चों की किताबों में या किसी मनोविज्ञान की किताब में—मुझे आशा है कि हरेक ने कहीं न कही देखा होगा—एक बूढ़ी स्त्री का चित्र। इस चित्र में, जिन रेखाओं से वह चित्र बना है, उसके भीतर ही एक सुंदर युवती का चित्र भी छिपा है। चित्र एक ही है। रेखाएं भी वही है। लेकिन आकृतियां दो है—एक बूढी स्त्री की और दूसरी युवती की।

उस चित्र की देखो तो एक साथ दोनों चित्रों को नहीं देख पाओगे। एक बार में उनमें से एक का ही बोध तुम्हें हो सकता है। अगर बूढी स्त्री दिखाई देगी तो वह जवान स्त्री नहीं दिखाई देगी, वह छिपी रहेगी। तुम उसे ढूंढना भी चाहोगे तो कठिन होगा; प्रयास ही बाधा बन जाएगा। कारण कि तुम बूढी स्त्री के प्रति बोधपूर्ण हो गए हो, तुम उसे न ढूंढ सकोगे। तो इसके लिए तुम्हें एक तरकीब करनी होगी।

बूढी स्त्री को एकटक देखो; युवती को बिलकुल भूल जाओ। बूढी स्त्री विदा हो जाएगी और उसके पीछे छिपी युवती को तुम देख लोगे। क्यों? अगर तुमने उसको ढूंढने की कोशिश की तो तुम चूक जाओगे।

तुम्हारी आंखें किसी एक बिंदू पर रुकी नहीं रह सकती है। अगर तुम बूढ़ी स्त्री के चित्र पर टकटकी लगाओगे, तो तुम्हारी आंखें थक जायेगी। तब वे अकस्मात उस चित्र से हटने लगेंगी। और इस हटने के क्रम में ही तुम दूसरे चित्र को देख लोगे। जो उस बूढी स्त्री के चित्र के बाजू में छिपा था। उन्हीं रेखाओं में छिपा था।

लेकिन चमत्कार यह है कि अब तुम्हें युवा स्त्री का बोध होगा तो बूढ़ी स्त्री तुम्हारी आंखों से ओझल हो जाएगी। पर अब तुम्हें पता है कि दोनों वहां है। शुरू में तो चाहे तुम को विश्वास नहीं होता कि वहां एक युवती छिपी है। लेकिन अब तो तुम जानते हो कि बूढी स्त्री छिपी है। क्योंकि तुम उसे पहले देख चुके हो। अब तुम जानते हो कि बूढ़ी स्त्री वहां है। लेकिन जब तक युवती को देखते रहोगे, तुम साथ-साथ बूढ़ी स्त्री को नहीं देख सकोगे। और जब बूढ़ी स्त्री को देखोगें तो युवती गायब हो जाएगी। दोनों चित्र युगपत नहीं देखे जा सकते। एक बार में एक ही देखा जा सकता है।

बाहर और भीतर को देखने के संबंध में भी यही बात घटित होती है, तुम दोनों को एक साथ नहीं देख सकते। जब तुम कटोरे या किसी चीज को देखते हो तो तुम बाहर देखते हो। चेतना बाहर गति करती है। नदी बाहर बह रही है। तुम्हारा ध्यान कटोरे पर है; उसे एकटक देखते रहो। यह टकटकी ही भीतर जाने की सुविधा बना देगी। तुम्हारी आंखें थक जाएंगी। वे गति करना चाहेंगी। बाहर जाने का कोई उपाय न देखकर नदी अचानक पीछे मुड़ जाएगी। वही एकमात्र संभावना बची है। तुम ने अपनी चेतना को पीछे लौटने के लिए मजबूर कर दिया। और जब तुम अपने प्रति जागरूक होगे तो कटोरा विदा हो जाएगा। कटोरा वहां नहीं होगा।

यही वजह है कि शंकर या नागार्जुन कहते है कि सारा जगत माया है। उन्होंने ऐसा ही जाना। जब हम अपने को जानते है तो जगत नहीं रहता। हकीकत में जगत माया नहीं है; वह है। लेकिन समस्या यह है कि तुम दोनों जागतों को एक साथ नहीं सकते हो। जब शंकर अपने में प्रवेश करते है, अपनी आत्मा को जान लेते है, जब वे साक्षी हो जाते है। तो संसार नहीं रहता है। वे भी सही है। वे कहते है वह माया है; यह भासता है, है नहीं।

तो तथ्य के प्रति जागों। जब तुम संसार को जानते हो तो तुम नहीं हो। तुम हो, लेकिन प्रच्छन्न हो; और तुम विश्वास नहीं कर सकते कि मैं प्रच्छन्न हूं। तुम्हारे लिए संसार अतिशय मौजूद है। और अगर तुम अपने को सीधे देखने की कोशिश करोगे तो यह कठिन होगा। प्रयत्न ही बाधा बन जा सकता है।

इस लिए तंत्र कहता है कि अपनी दृष्टि को कहीं भी संसार में, किसी भी विषय पर स्थित करो। और वहां से मत हटो। वहां टिके रहो। टिके रहने का यह प्रयत्न ही सह संभावना पैदा कर देगा कि चेतना प्रतिक्रमण करने लगे। पीछे लौटने लगे। पीछे लौटने लगे। तब तुम स्वयं के प्रति बोध से भरोंगे।

लेकिन जब तुम स्वयं के प्रति जागोगे तो कटोरा नहीं रहेगा। कटोरा तो है लेकिन वह तुम्हारे लिए नहीं रहेगा। इस लिए शंकर कहते है कि संसार माया है। जब तुम स्वयं को जान लेते हो तो जगत नहीं रहता है। स्वप्नवत विलीन हो जाता है।

लेकिन चार्वाक, ऐपिकुरस और मार्क्स, वे भी सही है। वे कहते है कि जगत सत्य है। और आत्मा मिथ्या है। वह कहीं मिलती नहीं है। वे कहते है विज्ञान सही है। विज्ञान कहता है कि केवल पदार्थ है, केवल विषय है; विषयी नहीं है। वे भी सही है। क्योंकि उनकी आंखे अभी विषय पर टिकी है। वैज्ञानिक का ध्यान निरंतर विषयों से बंधा होता है। वह आत्मा को बिलकुल भूल बैठता है।

शंकर और मार्क्स दोनों एक अर्थ में सही है। और एक अर्थ में गलत है। अगर तुम संसार से बंधे हो, अगर तुम्हारी दृष्टि संसार पर टीकी है। तो आत्मा माया मालूम होगी। स्वप्न वत लगेगी। और अगर तुम भीतर देख रहे हो तो संसार स्वप्नवत हो जाएगा। संसार और आत्मा दोनों सत्य है। लेकिन दोनों के प्रति युगपत सजग नहीं हुआ जा सकता। यही समस्या है, और इसमे कुछ भी नहीं किया जा सकता। या तो तुम बूढी स्त्री से मिलोंगे या युवती से। उनमें से एक सदा माया रहेगी।

यह विधि सरलता से उपयोग की जा सकती है। और यह थोड़ा समय लेगी। लेकिन यह कठिन नहीं है। एक बार तुम चेतना की प्रतिगति को, पीछे लौटने की प्रक्रिया को ठीक से समझ लो, तो इस विधि का प्रयोग कहीं भी कर सकते हो। किसी बस या रेलगाड़ी से यात्रा करते हुए भी यह संभव है। कही भी संभव है। और कटोरा या किसी खास विषय की जरूरत नहीं है। किसी भी चीज से काम चलेगा। किसी भी चीज को एकटक देखते रहो। देखते ही रहो। और अचानक तुम भीतर मुड़ जाओगे और रेलगाड़ी या बस खो जाएगी।

निश्चित ही तब तुम अपनी आंतरिक यात्रा से लौटोगे तो तुम्हारी बाहरी यात्रा भी काफी हो चुकेगी। लेकिन रेलगाड़ी खो जायेगी। तुम एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन पहुंच जाओगे। और उनके बीच रेलगाड़ी नहीं, अंतराल रहेगा। रेलगाड़ी तो थी; अन्यथा तुम दूसरे स्टेशन पर कैसे पहुंचते। लेकिन वह तुम्हारे लिए नहीं थी।

जो लोग इस विधि का प्रयोग कर सकते है वह इस संसार में सरला से रहा सकते है। याद रहे, वे किसी भी क्षण किसी भी चीज को गायब करा सकते है। तुम अपनी पत्नी या अपने पति से तंग आ गए हो, तुम उसे विलीन करा सकते हो। तुम्हारी पत्नी तुम्हारे बाजू में ही बैठी है, और वह नहीं है। यह माया हो गई है। प्रच्छन्न हो गई है। सिर्फ टकटकी बांधकर और अपनी चेतना को भीतर ले जाकर उसे तुम अपने लिए अनुपस्थित कर सकते हो। और ऐसा कई बार हुआ है।

मुझ सुकरात की याद आती है, उसकी पत्नी जेनथिप्पे उसके लिए बहुत चिंतित रहा करती थी। और कोई भी पत्नी उसकी जगह वैसे ही परेशान रहती। सुकरात को पति के रूप में बर्दाश्त कना महा कठिन काम है। सुकरात शिक्षक के रूप में ठीक है; लेकिन पति के रूप में नहीं।

एक दिन की बात है, और इस घटना के चलते सुकरात की पत्नी दो हजार वर्षों से निरंतर निंदित रही है। लेकिन मेरे विचार में यह निंदा उचित नहीं है। उसने कोई भूल नहीं की थी। सुकरात बैठा था और उसने इस विधि जैसा ही कुछ किया होगा। इसका उल्लेख नहीं है; यह मरा अनुमान है। उसकी पत्नी उसके लिए ट्रे में चाय लेकिर आई। उसने देखा सुकरात वहां नहीं है। और इसलिए, कहा जाता है कि, उसने सुकरात के चेहरे पर चाय उड़ेल दी। और अचानक वह वापस आ गया। आजीवन उसके चेहरे पर जलने के दाग पड़े रहे।

इस घटना के कारण सुकरात की पत्नी बहुत निंदित हुई। लेकिन कोई नहीं जानता है कि सुकरात उस क्या कर रहा था। क्योंकि कोई पत्नी अचानक ऐसा नहीं कर सकती। उसकी कोई जरूरत नहीं है। उसने अवश्य कुछ किया होगा। कोई ऐसी बात अवश्य हुई होगी। जिस वजह से जेनथिप्पे को उस पर चाय उड़ेल देनी पड़ी। वह जरूर किसी आंतरिक समाधि में चला गया होगा। और गरम चाय की जलन के कारण समाधि से वापस लोटा होगा। इस जली के कारण ही उसकी चेतना लौटी होगी। ऐसा हुआ होगा, यह मेरा अनुमान है। क्योंकि सुकरात के संबंध में ऐसी ही अनेक घटनाओं का उल्लेख मिलता है।

एक बार ऐसा हुआ कि सुकरात अड़तालीस घंटे तक लापता रहा। सब जगह उसकी खोजबीन की गई। सारा एथेंस सुकरात को तलाशता रहा। लेकिन वह कहीं नहीं मिला। और जब मिला तो वह नगर से बहुत दूर किसी वृक्ष के नीचे खड़ा था। उसका आधा शरीर बर्फ से ढक गया था। बर्फ गिर रही थी और वह बर्फ हो गया था। वह खड़ा था और उसकी आंखें खुली थी। लेकिन वे आंखें किसी भी चीज को देख नहीं रही थी।

जब लोग उसके चारों और जमा हो गए और उन्होंने उसकी आंखों में झाँका तो उन्हें लगा कि वह मर गया है। उसकी आंखें पत्थर जैसी हो गई थी। वे देख रही थी पर किसी खास चीज को नहीं देख रही थी। वे स्थिर थी, अचल थी। फिर लोगों ने उसकी छाती पर हाथ रखा और तब उन्हें भरोसा हुआ कि वह जीवित है। उसकी छाती हौले-हौले धड़क रही थी। तब उन्होंने उसे हिलाया-डुलाया और उसकी चेतना वापस लौटी।

होश में आने पर उससे पूछताछ की गई। पता चला कि अड़तालीस घंटों से वह यहां था और उसे इन घंटों का पता ही नी चला। मानो ये घंटे उसके लिए घटित नहीं हुए। इतनी देर वह देश काल से इस जगत में नहीं था। तो लोगों ने पूछा कि तुम इतनी देर से क्या कर रहे थे। हम तो समझे कि तुम मर गए। अड़तालीस घंटे।

सुकरात ने कहा: ''मैं तारों को एकटक देख रहा था और तब अचानक ऐसा हुआ कि तारे खो गए। और तब, मैं नहीं कह सकता, सारा संसार ही विलीन हो गया। लेकिन शीतल, शांत और आनंदपूर्ण अवस्था में रहा कि अगर उसे मृत्यु कहा जाए तो वह मृत्यु हजारों जिंदगी के बराबर है। अगर यह मृत्यु है तो मैं बार-बार मृत्यु में जाना पसंद करूंगा।

संभव है, यह बात उसकी जानकारी के बिना घटित हुई हो; क्योंकि सुकरात ने योगी था न तांत्रिक। सचेतन रूप से वह किसी आध्यात्मिक साधना से संबंधित नहीं था। लेकिन वह बड़ा चिंतक था। और हो सकता है यह बात आकस्मिक घटित हुई हो कि रात में वि तारों को देख रहा हो और अचानक उसकी निगाह अंतर्मुखी हो गई हो।

तुम भी यह प्रयोग कर सकते हो। तारे अद्भुत है और सुंदर है। जमीन पर लेट जाओ, अंधेरे आसमान को देखो और तब अपनी दृष्टि को किसी एक तारे पर स्थिर करो। उस पर अपने को एकाग्र करो। उस पर टकटकी बाँध दो। अपनी चेतना को समेटकर एक ही तारे को साथ जोड़ दो; शेष तारों को भूल जाओ। धीरे-धीरे अपनी दृष्टि को समेटो, एकाग्र करो।

दूसरे सितारे दूर हो जाएंगे। और धीरे-धीरे विलीन हो जायेगे। और सिर्फ एक तारा बच रहेगा। उसे एकटक देखते जाओ। देखते जाओ। एक क्षण आएगा जब वह तारा भी विलीन हो जाएगा। और जब वह तारा विलीन होगा तब तुम्हारा स्वरूप तुम्हारे सामने प्रकट हो जाएगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—32 (ओशो)

देखने के संबंध में तीसरी विधि:

''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

पहले कुछ बुनियादी बातें समझ लो, तब इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। हम सदा चीजों को पुरानी आंखों से देखते है। तुम अपने घर आते हो तो तुम उसे देखे बिना ही देखते हो। तुम उसे जानते हो, उसे देखने की जरूरत नहीं है। वर्षों से तुम इस घर में सतत आते रहे हो। तुम सीधे दरवाजे के पास आते हो, उसे खोलते हो और अंदर दाखिल हो जाते हो। उसे देखने की क्या जरूरत है?

यह पूरी प्रक्रिया यंत्र-मानव जैसी, रोबोट जैसी है। पूरी प्रक्रिया यांत्रिक है, अचेतन है। यदि कोई चूक हो जाए ताले में कुंजी न लेग, तो तुम ताले पर दृष्टि डालते हो। कुंजी जब जाए तो ताले को क्या देखना।
यांत्रिक आदत के कारण, एक ही चीज को बार-बार दुहराने के कारण तुम्हारी देखने की क्षमता नष्ट हो जाती है। तुम्हारी दृष्टि का ताजापन जाता रहता है। सच तो यह है कि तुम्हारी आँख का काम ही खत्म हो जाता है। इस बात को ख्याल में रख लो तो अच्छा। तुम बुनियादी रूप से अंधे हो जाते हो। आँख की जरूरत न रही।

स्मरण करो कि तुमने अपनी पत्नी को पिछली दफा कब देखा। संभव है, तुम्हें अपनी पत्नी या पति को देखे वर्षों हो गए हो। हालांकि दोनों साथ ही रहते हो। कितने वर्ष हो गये एक दूसरे को देखे। तुम एक दूसरे पर भागती नजर डालकर निकल जाते हो। लेकिन कभी उसे देखते नहीं। पूरी निगाह नहीं डालते। तो जाओ और अपनी पत्नी या पति को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो। क्यों?

क्योंकि जब तुम पहली बार देखते हो तो तुम्हारी आंखों में ताजगी होती है। तुम्हारी आंखें जीवंत होती है। समझो कि तुम रास्ते से गुजर रहे हो। एक सुंदर स्त्री सामने से आती है। उसे देखते ही तुम्हारी आंखें सजीव हो उठती है। दीप्त बन जाती है। उनमें अचानक एक ज्योति जलने लगती है। हो सकता है, यह स्त्री किसी की पत्नी हो। उसका पति उसे नहीं देखना चाहेगा। वह इस स्त्री के प्रति वैसे ही अंधा है जैसे तुम अपनी पत्नी के प्रति अंधे हो। क्यो? क्योंकि पहली बार ही आंखों की जरूरत पड़ती है। दूसरी बार उतनी नहीं और तीसरी बार बिलकुल नहीं। कुछ पुनरूक्तियां के बाद हम अंधे ही जीते है।

जरा होश से देखो। जब तुम अपने बच्चें से मिलते हो, क्या तुम उन्हें देखते भी हो? नहीं, तुम उन्हें नहीं देखते। नहीं देखने की आदत आंखों को मुर्दा बना देती है। आंखें ऊब जाती है। थक जाती है। उन्हें लगता है कि पुरानी चीज को ही बार-बार क्या देखना।

सच्चाई यह है कि कोई भी पुरानी नहीं है, तुम्हारी आदत के कारण ऐसा दिखाई पड़ता है। तुम्हारी पत्नी वही नहीं है। जो कल थी; हो नहीं सकती अन्यथा वह चमत्कार है। दूसरे क्षण कोई भी चीज वही नहीं रहती जो थी। जीवन एक प्रवाह है। सब कुछ बहा जा रहा है। कुछ भी तो वही नहीं है।

वही सूर्य कल नहीं होगा। जो आज ऊगा है। ठीक-ठीक अर्थों में सूरज कल वही नहीं रहेगा। हर रोज वह नया है। हर रोज उसमें बुनियादी बदलाहट हो रही है। आकाश भी कल वही नहीं था। आज की सुबह कल नहीं आयेगी। और प्रत्येक सुबह की अपनी निजता है, अपना व्यक्तितत्व है। आसमान और उसके रंग फिर उसी रूप में प्रकट नहीं होंगे।

लेकिन तुम ऐसे जीते हो जैसे कि सब कुछ वही का वही है। कहते है कि आसमान के नीचे कुछ भी नया नहीं है। लेकिन सचाई यह नहीं है। लेकिन सच्चाई यह है कि आसमान के नीचे कुछ भी पुराना नहीं है। सिर्फ तुम्हारी आंखें पुरानी हो गई है। चीजों की आदती हो गई है। तब कुछ नहीं है।

बच्चों के लिए सब कुछ नया है। इसलिए उन्हें सब कुछ उत्तेजित करता है। सुबह का सूरज, समुद्र-तट पर एक रंगीन पत्थर। किसी लकड़ी को टुकड़े को देख कर भी वह मचल उठता है। और तुम स्वंय भगवान को भी अपने घर आते देख कर भी उत्तेजित नहीं होते। तुम कहोगे, कि मैं उन्हें जानता हूं, मैंने उनके बारे में पढ़ा है। बच्चे उत्तेजित होते है। क्योंकि उनकी आंखें नई और ताजा है। और हरेक चीज एक नई दुनिया है, नया आयाम है। बच्चों की आंखों को देखो। उनकी ताजगी उनकी प्रभा पूर्ण सजीवता, उनकी जीवंतता को देखो। वे दर्पण जैसी है—शांत, किंतु गहरे जाने वाली और ऐसी आंखें ही भीतर पहुंच सकती है।

यह विधि कहती है: ''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे उसे पहली बार देख रहे हो।''

कोई भी चीज काम देगी। अपने जूतों को ही देखो। तुम वर्षों से उनका इस्तेमाल कर रहे हो। आज उन्हें ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो और फर्क को समझो। तुम्हारी चेतना की गुणवत्ता अचानक बदल जाती है।

पता नहीं, तुम ने वान गाग का अपने जूते का बना हुआ चित्र देखा है या नहीं। यह एक अति दुर्लभ चित्र है। एक पुराना जुता है—थका हुआ, उदास, मानो मृत्यु के मुंह में हो। यह एक महज फटा-पुराना जूता है। लेकिन उसे देखो, उसे महसूस करो। यह इतना दुःखी है, बिलकुल थका-मांदा है, जर्जरित है, कि बूढे आदमी की तरह यह बूढा जूता प्रार्थना कर रहा है कि है परमात्मा, मुझे दुनियां से उठा लो। सर्वाधिक मौलिक चित्रों में एक चित्र की गिनती है।

वान गाग के चित्र को गोर से देखो, और तब तुम्हें पता चलेगा कि उसे जूते में क्या–क्या दिखाई पडा था। उसमें सब कुछ है—उसके पहनने वाले का संपूर्ण जीवन-चरित्र। लेकिन उसने यह कैसे देख होगा?

चित्रकार होने के लिए बच्चे की दृष्टि की ताजगी फिर से प्राप्त करनी होती है। तभी वह किसी चित्र को देख सकता है। छोटी से छोटी चीज को भी देख सकता है। और केवल वही देख सकता है।

सिझान ने एक कुर्सी का चित्र बनाया है—महज मामूली कुर्सी का। और तुम हैरान होगे कि एक कुर्सी का क्या चित्र बनाना। उसकी जरूरत क्या है। लेकिन उसने उस चित्र पर महीनों काम किया। तुम उस कुर्सी को देखने के लिए एक क्षण भी नहीं देते

और सिझान ने उस पर महीनों काम किया। कारण कि वह कुर्सी को देख सकता था। कुर्सी के अपने प्राण है। उसकी अपनी कहानी है। उसके अपने सुख दुःख है। वह जिंदगी से गुजरी है। उसने जिंदगी देखी है। उसके अपने अनुभव है। अपनी स्मृतियां है। सिझान के चित्र में ये सब अभिव्यक्त हुआ है।

लेकिन क्या तुम अपनी कुर्सी को कभी देखते हो। नहीं, कोई नहीं देखता है और न किसी को ऐसा भाव ही उठता है।

कोई भी चीज चलेगी। वह विधि तुम्हारी आंखों को ताजा और जीवंत बना देगी। इतना ताजा और जीवंत कि वे भीतर मुड़ सकें और तुम अपने अंतरस्थ को देख लो। लेकिन ऐसे देखो, मानों पहली बार देख रहे हो। इस बात को ख्याल में रख लो कि किसी चीज को ऐसे देखना है जैसे कि पहली बार देख रहे हो। और तब अचानक किसी समय तुम चकित रह जाओगे। कि कैसा सौंदर्य भरा हुआ है संसार में।

अचानक होश से भर जाओ और अपनी पत्नी को देखो—ऐसे कि पहली बार देख रहे हो। और आश्चर्य नहीं कि तुम्हें उसके प्रति फिर उसी प्रेम की प्रतीति हो जिसका उद्रेक प्रथम मिलन में हुआ था। ऊर्जा की वह लहर, आकर्षण की वह पूर्णता तुम्हें अभिभूत कर देती है। लेकिन ''किसी सुंदर व्यक्ति या सामान्य विषय को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो।''

उससे क्या होगा। तुम्हारी दृष्टि तुम्हें वापस मिल जायेगी। तुम अंधे हो। अभी जैसे हो तुम अंधे हो। और वह अंधापन शारीरिक अंधेपन से ज्यादा घातक है; क्योंकि आँख के रहते हुए भी तुम नहीं देख सकते।

प्रत्येक क्षण अपने को अतीत से तोड़ते चलो। अतीत को अपने भीतर प्रवेश मत करने दो। अतीत को अपने साथ मत ढ़ोओ। अतीत को अतीत से ही छोड़ दो। और प्रत्येक चीज को ऐसे देखो जैसे कि पहली बार देख रहे हो। तुम्हें तुम्हारे अतीत से मुक्त करने की यह एक बहुत कारगर विधि है।

इस विधि के प्रयोग से तुम सतत वर्तमान में जीने लगोगे। और धीरे-धीरे वर्तमान के साथ तुम्हारी घनिष्ठता बन जाएगी। तब हरेक चीज नई होगी। और तब तुम हेराक्लाइटस के इस कथन को ठीक से समझ सकोगे। कि तुम एक ही नदी में दोबारा नहीं उतर सकते।

तुम एक ही व्यक्ति को दुबारा नहीं देख सकते। क्यो? क्योंकि जगत में कुछ भी स्थायी नहीं है। हर चीज नदी की भांति है—प्रवाहमान और प्रवाहमान। यदि तुम अतीत सक मुक्त हो जाओ और तुम्हें वर्तमान को देखने की दृष्टि मिल जाए तो तुम अस्तित्व में प्रवेश कर जाओगे। और यह प्रवेश दोहरा होगा। तुम प्रत्येक चीज में, उसके अंतरतम में प्रवेश कर सकोगे; और तुम अपने भीतर भी प्रवेश कर सकोगे।

वर्तमान द्वारा है। और सभी ध्यान किसी न किसी रूप में तुम वर्तमान से जोड़ने की चेष्टा करते हो। ताकि तुम वर्तमान में जी सको।

तो वह विधि सर्वाधिक सुंदर विधियों में से एक है और सरल भी है। और तुम इसका प्रयोग बिना किसी हानि क कर सकते हो।

तुम किसी गली से दूसरी बार गुजर रहे हो। लेकिन अगर उसे ताजा आंखों से देखते हो तो वही गली नई गली हो जाएगी। तब मिलने पर एक मित्र भी अजनबी मालूम पड़ेगा। ऐसे देखने पर तुम्हारी पत्नी ऐसी लगेगी जैसी पहली बार मिलने पर लगी थी। एक अजनबी। लेकिन क्या तुम कह सकते हो। कि तुम्हारी पत्नी या तुम्हारा पति तुम्हारे लिए आज भी अजनबी नहीं है। हो सकता है। तुम उसके साथ बीस, तीस या चालीस वर्षों से रह रहे हो। लेकिन क्या तुम कह सकते हो कि तुम उससे परिचित हो।

वह अभी भी अजनबी है। तुम दो अजनबी एक साथ रह रहे हो। तुम एक दूसरे की बाह्य आदतों को, बाहरी प्रतिक्रिया ओर को जानते हो; लेकिन अस्तित्व का अंतरस्थ अभी भी अपरिचित है, अस्पर्शित है। फिर अपनी पत्नी या पति को ताजा निगाह से देखो। मानो पहली बार देख रहे हो। नये-नये।

यह प्रयोग तुम्हारी दृष्टि को ताजगी से भर देगा। तुम्हारी आंखें निर्दोष हो जाएगी। वे निर्दोष आंखें ही देख सकती है। वे निर्दोष ही अंतरस्थ जगत में प्रवेश कर सकती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—21

तंत्र-सूत्र—विधि—33 (ओशो)

देखने के संबंध में चौथी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—33 (ओशो)
देखने के संबंध में चौथी विधि:

''बादलों के पार नीलाकाश को देखने से शांति को सौम्यता को उपलब्ध होओ।''
मैंने इतनी बातें इसलिए बताई कि ये विधियां बहुत सरल है। और उन्हें प्रयोग करके भी तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा। और तब तुम कहोगे, ये किस ढंग की विधियां है। तुम कहोगे कि इन विधियों को तो हम अपने आप ही कर सकते है। केवल आकाश को, बादलों के पर नीलाकाश को देखते-देखते कोई शांत हो जाए, आप्तकाम हो जाए।
बादलों के पार नीलाकाश को तुम देखते रह सकते हो, और कुछ भी घटित नहीं होगा। तब तुम कहोगे कि ये कैसी विधियां है। तुम कहोगे कि शिव के मन में जो भी आता है वे बोल देते है; उसमे कोई तर्क या बुद्धि नहीं है। यह कैसी विधि कि बादलों के पार नीलाकाश को देखते-देखते शांति को उपलब्ध हो जाओ।

लेकिन यदि तुम्हें मृत्यु, अर्थवत्ता और सिखावन के तीन सूत्र याद रहें तो यह विधि तुम्हें तुरंत भीतर की तरफ मुड़ने में सहायता देगी।

''बादलों के पार नीलाकाश को देखने मात्र से........।''

इस सूत्र से विचारना नहीं, देखना बुनियादी है। आकाश असीम है; उसका कहीं अंत नहीं है। उसे महज देखो। वहां कोई विषय वस्तु नहीं है। यही कारण है कि आकाश चुना गया है। आकाश कोई विषय नहीं है। भाषागत रूप से वह विषय है; लेकिन अस्तित्व में वि कोई विषय नहीं है। विषय वह है जिसका आरंभ और अंत हो। तुम किसी विषय के चारों और घूम सकते हो; लेकिन आकाश की परिक्रमा नहीं कर सकते। तुम आकाश में ही हो, लेकिन, लेकिन तुम आकाश के चारों और घूम नहीं सकते। तुम आकाश के विषय बन सकते हो। लेकिन आकाश तुम्हारा विषय नहीं बन सकता। आकाश में तो तुम झांक सकते हो; उसका कोई अंत नहीं है।

तो नीले आकाश को देखो। और देखते ही रहो। उसका अंत नहीं है; उसकी कोई सीमा नहीं है। और उसके संबंध में सोच-विचार मत करो। मत कहो कि यह कितना सुंदर है। मत को कि यह कितना मोहक है। उसके रंगों की प्रशंसा मत करो। उससे सोचना शुरू हो जाएगा। और सोचना शुरू करते ही देखना बंद हो जाता है; अब तुम्हारी आंखें अनंत आकाश में गति नहीं कर रहीं। इसलिए सिर्फ देखो। अनंत आकाश में गति करो। विचार मत करो। शब्द मत बनाओ। शब्द बाधा बन जाते है। इसलिए सिर्फ देखो। अनंत आकाश में गति करो। विचार मत करो। शब्द मत बनाओ। शब्द बाधा बन जाते है। इतना भी मत करो कि यह नीलाकाश है। इसे शब्द ही नहीं दो। इसे नीलाकाश का महज दर्शन रहने दो—निर्दोष दर्शन।

आकाश का कहीं अंत नहीं है। इसलिए तुम्हारे देखने का भी अंत नहीं आ सकता। तुम देखते जाओगे। देखते ही जाओगे। और क्योंकि वहां कोई विषय नहीं है। मात्र शून्य है, इसलिए अचानक तुम अपने प्रति जाग जाओगे। क्यो?

क्योंकि शून्य में इंद्रियाँ व्यर्थ हो जाती है। यदि कोई विषय हो तो इंद्रियाँ की सार्थकता है। अगर तुम किसी फूल को देख रहे हो तो वह किसी विषय को देखना हुआ। फूल है; लेकिन आकाश नहीं है।

हम किसे आकाश कहते है। उसे जो है नहीं। आकाश का अर्थ जगह या स्थान होता है। सभी चीजें आकाश में है। लेकिन आकाश स्वयं कोई चीज नहीं है। विषय नहीं है। आकाश शून्य है। रिक्तता है। खाली स्थान है। जिसमें विषय हो सकता है। आकाश स्वयं शुद्ध खालीपन है। इस शुद्ध खालीपन को देखो; इस शुद्ध रिक्तता को देखो।

इसलिए सूत्र कहता है कि बादलों के पार नीलाकाश को देखो। बादल आकाश नहीं है; वे आकाश में तैरते हुए विषय है। तुम बादलों को भी देख सकते हो; लेकिन उससे कुछ नहीं होगा। बादलों को नहीं, चाँद-तारों को भी नहीं , वरन विषय-शून्यता को देखना है, विराट रिक्तता को देखना है। उसे ही देखो। उससे होगा क्या?

शून्य में इंद्रियों के पकड़ने के लिए कोई विषय नहीं है। और जब पकड़ने को, चिपकने को कोई विषय न हो, तो इंद्रियाँ बेकार हो जाती है। और अगर तुम नीलाकाश को बिना सोचे-विचारे देखते ही चले जाओ तो अचानक किसी क्षण तुम्हें लगेगा कि सब कुछ विलीन हो गया है। सिर्फ शुन्य बचा है। और इस विलीनता में , इस शून्य में तुम्हें अपना बोध होगा। तुम अपने प्रति जाग जाओगे। रिक्तता को देखते-देखते तुम भी रिक्त हो जाओगे। क्यों? क्योंकि तुम्हारी आंखें दर्पण की भांति है। उनके सामने जो कुछ भी प्रकट होता है। दर्पण उसे प्रतिबिंबित कर देता है।

मैं तुम्हें देखता हूं; तुम दुःखी हो। और तब सहसा वह दुःख मुझे में प्रविष्ट हो जाता है। अगर कोई दुःखी आदमी तुम्हारे कमरे में प्रवेश करता है तो तुम भी दुःखी हो जाते हो। क्या हो जाता है? क्योंकि तुम्हारी आंखें दर्पण की भांति है। इस लिए वि दुःख तुममें प्रतिबिंबित हो जाता है। कोई व्यक्ति दिल खोलकर हंसता है और अचानक तुम भी हंसी से भर जाते हो।

लेकिन हुआ क्या? तुम दर्पण की तरह हो; तुम चीजों को प्रतिबिंबित करते हो। तुम कोई सुंदर चीज देखते हो; वह चीज तुममें प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम कोई कुरूप चीज देखते हो; वह चीज भी तुममें प्रतिबिंबित हो जाती है। तुम जो कुछ भी देखते हो वह तुम्हारे भीतर गहरे रूप से प्रविष्ट हो जाता है; वह तुम्हारी चेतना का हिस्सा बन जाता है।

अगर तुम रिक्तता को, शून्य को देख रहे हो तो कुछ भी प्रतिबिंबित होने जैसा नहीं है। या है तो सिर्फ अनंत नीलाकाश है। और अगर यह असीम नीलाकाश तुममें प्रतिबिंबित हो जाए, अगर तुम अपने अंतस में उस आकाश को अनुभव कर सको। तो तुम शांत हो जाओगे। सौम्य हो जाओगे। आकाश शांत और सौम्य है। और अगर तुम शून्य को अनुभव कर सको—जहां नीलिमा। आकाश सब कुछ विलीन हो जाता है। तो तुम्हारे अंतस में भी वह शून्य प्रतिबिंबित होगा। और शून्य में मन कैसे सक्रिय रह सकता है? तनावग्रस्त कैसे हो सकते हो? शून्य में मन कैसे सक्रिय रह सकता है? शून्य में मन ठहर जाता है। और मन के विदा होते ही—मन जो तनाव और चिंता है, संगत-असंगत विचारों से भरा है—उसके विदा होते ही तुम शांति को उपलब्ध हो जाते हो।

एक बात और। शून्य जब अंतस में प्रतिबिंबित होता है, तो निर्वासना बन जाता है। अचाह बन जाता है। चाह ही तनाव है। चाह करते ही तुम चिंताग्रस्त हो जाते हो। तुम्हें एक सुंदर स्त्री दिखाई पड़ती है। और अचानक कामवासना पैदा हो जाती है। तुम्हें एक सुंदर मकान दिखाई पड़ता है और तुम उसे पाना चाहते हो। तुम्हारे पास से एक सुंदर कार निकलती है और तुम्हें इच्छा पकड़ती है कि मैं भी इस कार में बैठकर चलू। बस वासना पैदा हो गई। और वासना के साथ ही मन चिंतित हो उठता है। कि उसे कैसे पाया जाए, क्या किया जाए। मन आशावान हो उठता है या निराशा; लेकिन दोनों हालातों में वह सपने देख रहा है। कई बातें हो सकती है।

जब चाह पैदा होती है तो तुम उपद्रव में पड़ते हो। मन अनेक खंडों में टूट जाता है और अनेक योजनाएं, सपने और प्रक्षेपण शुरू हो जाते है। बस पागलपन शुरू हुआ। चाह पागलपन का बीज है।

लेकिन शून्य कोई विषय नहीं है। वह बस शून्य है। तुम शून्य को देखते हो तो कोई चाह नहीं पैदा होती। हो नहीं सकती है। तुम शून्य पर अधिकार करना नहीं चाहते; न तुम शून्य को प्रेम करना चाहते हो। शून्य में मन की सब गति रूक जाती है। कोई कामना नहीं उठती। और जहां चाह नहीं है वहीं शांति है। तुम सौम्य और शांत हो जाते हो। तुम्हारे भीतर सहसा शांति का विस्फोट होता है। तुम आकाश वत हो गए।

दूसरी बात कि तुम जिस चीज का भी मनन चिंतन करते हो, तुम उसके जैसे ही हो जाते हो। तुम वहीं हो जाते हो। क्योंकि मन अनंत रूप धारण कर सकता है। तुम जो भी चाहते हो, मन उसके ही रूप ले लेता है; तुम वही बन जाते हो। जो आदमी धन-दौलत के पीछे भागता है, उसका मन धन-दौलत ही बन जाता है। उसे हिलाओ तुम उसके भीतर रुपयों की झनझनाहट सुनोंगे। और कुछ नहीं सुनोंगे। तुम जो भी चाहते हो तुम वहीं हो जाते हो। इसलिए अपनी चाह के प्रति सावधान रहो; क्योंकि तुम वही हो जाते हो।

आकाश सर्वथा रिक्त है, खाली है। उससे ज्यादा रिक्त और क्या हो सकता है। और वह दूसरे तुम्हारे बिलकुल निकट है। उसके लिए कुछ खर्चा करना की भी जरूरत नहीं है। और उसे पाने के लिए तुम्हें हिमालय या तिब्बत या कहीं भी नहीं जाना है। विज्ञान ने, टेक्नोलॉजी ने सब कुछ नष्ट कर दिया है। लेकिन आकाश बचा हुआ है। तुम उसका उपयोग कर सकते हो। इसके पहले कि वे उसे नष्ट कर दें। तुम उसका उपयोग कर लो। किसी भी दिन वे उसे नष्ट कर देंगे।

उसे देखो, उसमे प्रवेश करो। उसमें गहरे डुबो। लेकिन याद रहे, यह देखना निर्विचार देखना हो। तब तुम अपने अंतस में उसी आकाश को अनुभव करोगे। उसी आयाम को अनुभव करोगे। तब वह विराट, वहीं नीलिमा, वही शून्य तुम्हारे भीतर होगा।

यही कारण है कि शिव कहते है: ''बादलों के पार नीलाकाश को देखने मात्र से शांति को, सौम्यता को उपलब्ध होओ।''

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—34 (ओशो)

देखने के संबंध में पांचवी विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—34 (ओशो)

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो, उसे श्रवण करो। अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

''जब परम रहस्यम उपदेश दिया जा रहा हो। उसे श्रवण करो।''

यह एक गुह्म विधि है। इस गुह्म तंत्र में गुरु तुम्हें अपना उपदेश या मंत्र गुप्त ढंग से देता है। जब शिष्य तैयार होता है तब गुरु उसे उसकी निजता में वक परम रहस्य या मंत्र संप्रेषित करता है। वह उसके कान में चुपचाप कह दिया जाएगा। फुसफुसा दिया जाएगा। यह विधि उस फुसफुसाहट से संबंध रखती है।

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो, उसे श्रवण करो।''

जब गुरु निर्णय करे कि तुम तैयार हो और उसके अनुभव का गुह्म रहस्य तुम्हें बताया जा सकता है। जब वह समझो कि वह क्षण आ गया है कि तुम्हें वह कहा जा सकता है। जो अकथनीय है। तब इस विधि का उपयोग होता है।

''अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

जब गुरु अपना गुह्म ज्ञान या मंत्र तुम्हारे कान में कहे तो तुम्हारी आंखों को बिलकुल स्थिर रहना चाहिए। उनमें किसी तरह की भी गति नहीं होनी चाहिए।

इसका मतलब है कि मन निर्विचार हो, शांत हो। पलक भी नहीं हीले; क्योंकि पलक का हिलना आंतरिक अशांति का लक्षण है। जरा सी गति भी न हो। केवल कान बन जाओ। भीतर कोई भी हलचल न रहे। और तुम्हारी चेतना निष्क्रिय, खुली ग्राहक की अवस्था में रहे—गर्भ धारण करने की अवस्था में। जब ऐसा होगा, जब वह क्षण आएगा जिसमें तुम समग्रता: रिक्त होते हो, निर्विचार होते हो, प्रतीक्षा में होते हो—किसी चीज की प्रतीक्षा में नहीं। क्योंकि वह विचार कहना होगा, बस प्रतीक्षा में—

जब यह अचल क्षण, ठहरा हुआ क्षण घटित होगा, जब सब कुछ ठहर जाता है, समय का प्रवाह बंद हो जाता है, और चित समग्ररतः: रिक्त है, तब अ-मन का जन्म होता है। और अ-मन में ही गुरु उपदेश प्रेषित करता है।

और गुरु कोई लंबा प्रवचन नहीं देगा। वह बस दो या तीन शब्द ही कहेगा। उस मौन में उसके वे एक या दो या तीन शब्द तुम्हारे अंतर्तम में उतर जाएंगे। केंद्र में प्रविष्ट हो जायेंगे। और वे वहां बीज बनकर रहेंगे।

इस निष्क्रिय जागरूकता में, इस मौन में ''अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

मन से मुक्त होकर ही कोई मुक्त हो सकता है। मन से मुक्ति ही एकमात्र मुक्ति है; और कोई मुक्ति नहीं है, मन ही बंधन है, दासता है, गुलामी है।

इसलिए शिष्य को गुरु के पास उस सम्यक क्षण की प्रतीक्षा में रहना होगा जब गुरु उसे बुलाएगा और उपदेश देगा। उसे पूछना भी नहीं है। क्योंकि पूछने का मतलब चाह है, वासना है। उसे अपेक्षा भी नहीं करना है; क्योंकि अपेक्षा का अर्थ शर्त है। वासना है, मन है। उसे सिर्फ अनंत प्रतीक्षा में रहना है। और जब वह तैयार होगा। जब उसकी प्रतीक्षा समग्र हो जाएगी तो गुरु कुछ करेगा। कभी-कभी तो गुरु छोटी सी चीज करेगा और बात घट जाएगी।

और सामान्यत: यदि शिव एक सौ बारह विधियां भी समझा दें तो कुछ नहीं होगा। कुछ भी नहीं होगा। क्योंकि तैयारी नहीं है। तुम पत्थर पर बीज बोओ तो क्या होगा। उसमें बीज का दोष भी नहीं है। ऋतु के बाहर बीज बोने से कुछ नहीं होता है। उसमे बीज का दोष नहीं है। सम्यक मौसम चाहिए, सम्यक घड़ी चाहिए, सम्यक भूमि चाहिए। तो ही बीज जीवित हो उठेगा, रूपांतरित होगा।

तो कभी-कभी छोटी सी चीज काम कर जाती है। उदाहरण के लिए, लिंची ज्ञान को प्राप्त हुआ जब वह अपने गुरु के दालान में बैठा था। गुरु आया और हंसा। गुरु ने लिंची की आंखों में देखा और ठहाका मारकर हंस पडा। लिंची भी हंसा। गुरु के चरणों में सिर रखा और वहां से विदा हो गया।

लेकिन वह छह वर्षों से मौन प्रतीक्षा में था। वह दालान छह वर्षों तक उसका घर बना था। गुरु रोज आता था और लिंची को आँख उठाकर भी नहीं देखता था। और वह वहीं रहता था। दो वर्षों के बाद उसने पहली बार उसे देखा। जब और दो वर्ष बीते तो उसने उसकी पीठ थपथपाई। और लिंची प्रतीक्षा करता रहा, प्रतीक्षा करता रहा। छह वर्ष पूरे होने पर गुरु आया और उसकी आँख में आँख डालकर जोर से हंसा।

अवश्य ही लिंची ने इस विधि का अभ्यास किया होगा।

''जब परम रहस्यमय उपदेश दिया जा रहा हो। उसे श्रवण करो। अविचल, अपलक आंखों से; अविलंब परम मुक्ति को उपलब्ध होओ।''

गुरु ने देखा और हंसी को अपना माध्यम बनाया। वह महान सदगुरू था। सच तो यह है कि शब्द जरूरी नहीं थे। मात्र हंसी से काम हो गया। अचानक वह हंसी फूटी और लिंची के भीतर कुछ घटित हो गया। उसने सिर झुकाया, वह भी हंसा और विदा हो गया। उसने लोगो को बताया कि मैं अब नहीं हूं, कि मैं मुक्त हो गया।

वह अब नहीं था, यही मुक्ति का अर्थ है। तुम मुक्त नहीं होते, तुम अपने से मुक्त होते हो। और लिंची ने बताया की यह कैसे हुआ।

वह छह वर्षों तक प्रतीक्षा में रहा। यह लंबी प्रतीक्षा थी, धैर्य पूर्ण प्रतीक्षा थी। वह दालान में बैठा रहता था। गुरु रोज ही आता था। और वह ठीक घड़ी की प्रतीक्षा करता कि जब लिंची तैयार हो तो वह कुछ करे। और छह वर्षों तक प्रतीक्षा करते-करते तुम ध्यान में उतर ही जाओगे। और क्या करोगे। लिंची ने कुछ दिनों तक पुरानी बातों को सोचा विचारा होगा। लेकिन वह कब तक चलेगा।

अगर तुम मन को रोज-रोज भोजन न दो तो धीरे-धीरे मन ठहर जाता है। एक ही चीज को तुम कितने दिनों तक बार-बार चबाते रहोगे। वह बीती बातों पर विचार करता रहा। फिर धीरे-धीरे नया ईंधन न मिलने के कारण उसका मन ठहर गया। उसे न पढ़ने की इजाजत थी, न गपशप करने की। उसे घूमने-फिरने और किसी से मिलने की भी मनाही थी। उसे अपनी शारीरिक जरूरतों को पूरा करके चुपचाप इंतजार करना था। दिन आए और गए; रातें आई और गई। गर्मी आई और गई; जाड़ा आया और गया; वर्षा आई और गई। धीरे-धीरे वह समय की गिनती भूल गया। उसे पता नहीं था कि वह कहां कितने दिनों से टिका था।

और तब एक दिन सहसा गुरु आया और उसने लिंची की आंखों में झाँका। लिंची की आंखें भी सहसा ठहर गई होगी। अचल हो गई होगी। यही क्षण था। छह वर्षों की तपस्या के फल का। छह वर्ष लगे इसमें। उसकी आंखों में जरा भ गति नहीं थी। गति होती तो वह चूक जाता। सब कुछ मौन हो चुका था। और तब अचानक अट्टहास। गुरु पागल की तरह हंसने लगा। और वह हंसी लिंची के अंतर्तम से सुनी गई होगी। वहां तक पहुंच गई होगी।

तो जब लिंची से लोगो ने पूछा कि तुम्हें क्या हुआ तो उसने कहा: ''जब मेरे गुरु हंसे सहसा मुझे प्रतीति हुई कि सारी संसार एक मजाक है। उनकी हंसी में से संदेश था: सारा संसार महज एक मजाक है, नाटक है। उस प्रतीति के साथ गंभीरता विदा हो गई। अगर संसार एक मजाक है तो फिर कौन बंधन में है। और किसे मुक्त चाहिए।'' लिंची ने कहा कि, अब बंधन नहीं रहा। मैं सोचता था कि मैं बंधन में हूं। और इसलिए मैं बंधन-मुक्त होने की चेष्टा करता था गुरु की हंसी के साथ बंधन गिर गया।''

कभी-कभी इतनी छोटी-छोटी बातों से घटना घट गई है कि उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। ऐसी अनेक झेन कहानियां है। एक झेन गुरु मंदिर के घंटे की आवाज सुनकर संबोधि को प्राप्त हो गया। घंटे की आवाज सुनते-सुनते उसके भीतर कुछ चकनाचूर हो गया। एक झेन साध्वी पानी की बहँगी ढो रही थी। और ज्ञान को प्राप्त हो गई। एकाएक बांस टूट गया। और घड़े फूट गये। उसकी आवाज, घड़ों का फूटना पानी का बहना, और साध्वी आत्मोपलब्ध हो गई। क्या हुआ।

तुम बहुत से घड़े फोड़ दे सकते हो, और कुछ नहीं होगा। लेकिन साध्वी के लिए ठीक क्षण आ गया था। वह पानी भरकर लौट रही थी। उसके गुरु ने कहा था, आज रात मैं तुम्हें गुह्म मंत्र देने वाला हूं। इसलिए जाकर स्नान कर ले और मेरे लिए दो घड़े पानी ले आ। मैं भी स्नान कर लुंगा। और तब तुम्हें वह मंत्र बताऊंगा जिसके लिए तुम इंतजार कर रही थी।'' साध्वी जरूर आह्लादित हो उठी होगी कि सौभाग्य का क्षण आ गया। उसने स्नान किया, घड़े भरे और उन्हें लेकिन वापस चली।

पूर्णिमा की रात थी। और जब वह नदी से आश्रम को जा रही थी कि राह में ही बांस टूट गया। और जब वह पहुंची तो गुरु उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। गुरु ने उसे देखा और कहा कि अब जरूरत न रही; घटना घट गई। अब मुझे कुछ नहीं कहना। तुमने पा लिया।

वह बूढी साध्वी कहा करती थी कि बांस के टूटने के साथ ही मेरे भीतर कुछ टूट गया, मेरे भीतर भी कुछ मिट गया। ये दो घड़े क्या फूटे मेरा शरीर ही टूट गिरा। मैने आकाश में चाँद को देखा और पाया कि मेरे भीतर सब कुछ शांत हो गया। और तब से मैं नहीं हूं। मुक्त या मोक्ष का यही अर्थ है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

तंत्र-सूत्र—विधि—35 (ओशो)

देखने के संबंध में छट्ठी ओशो

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराइ..........

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराइयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय-विमुग्ध न हो जाओ।''
ये विधियां थोड़े से फर्क के साथ एक जैसी है।

''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराईयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय-विमुग्ध न हो जाओ।''

किसी गहरे कुएं में देखो; कुआं तुममें प्रतिबिंबित हो जाएगा। सोचना बिलकुल भूल जाओ; सोचना बिलकुल बंद कर दो; सिर्फ गहराई में देखते रहो। अब वे कहते है कि कुएं की भांति मन की भी गहराई है। अब पश्चिम में वे गहराई का मनोविज्ञान विकसित कर रहे है। वे कहते है कि मन कोई सतह पर ही नहीं है। वह उसका आरंभ भर है। उसकी गहराइयां है, अनेक गहराइयां है, छिपी गहराइयां है।
किसी कुएं में निर्विचार होकर झांको; गहराई तुममें प्रतिबिंबित हो जाएगी। कुआं भीतर गहराई का बाह्य प्रतीक है। और निरंतर झाँकते जाओ—जब तक कि तुम विस्मय विमुग्ध न हो जाओ। जब तक ऐसा क्षण न आए झाँकते चले जाओ, झाँकते ही चले जाओ। दिनों हफ्तों, महीनों झाँकते रहो। किसी कुएं पर चले जाओ। उसमे गहरे देखो। लेकिन ध्यान रहे कि मन में सोच-विचार न चले। बस ध्यान करो, गहराई में ध्यान करो। गहराई के साथ एक हो जाओ। ध्यान जारी रखो। किसी दिन तुम्हारे विचार विसर्जित हो जाएंगे। यह किसी क्षण भी हो सकता है। अचानक तुम्हें प्रतीत होगा। कि तुम्हारे भीतर भी वही कुआं है। वही गहराई है। और तब एक अजीब बहुत अजीब भाव का उदय होगा, तुम विस्मय विमुग्ध अनुभव करोगे।

च्वांत्सु अपने गुरु लाओत्से के साथ एक पुल पर से गुजर रहा था। कहा जाता है कि लाओत्से ने च्वांत्सु से कहा कि यहां रुको और यहां से नीचे देखो—और तब तक देखते रहो जब तक कि नदी रूक न जाये। और पुल न बहने लगे।

अब नदी बहती है, पुल कभी नहीं बहता। लेकिन च्वांत्सु को यह ध्यान दिया गया कि इस पुल पर रहकर नदी को देखते रहो। कहते है कि उसने पुल पर झोपड़ी बना ली और वहीं रहने लगा।

महीनों गुजर गये और वह पूल पर बैठकर नीचे नदी में झाँकता रहा, और उस क्षण की प्रतीक्षा करने लगा जब नदी रूक जाए और पुल बहने लगे। ऐसा होने पर ही उसे गुरु के पास जाना था।

ओ एक दिन ऐसा ही हुआ। नदी ठहर गई और पुल बहने लगा।

यह कैसे संभव है? यदि विचार पूरी तरह ठहर जाये तो कुछ भी संभव है। क्योंकि हमारी बंधी बंधाई मान्यता कि कारण ही नदी बहती हुई मालूम पड़ती है। और पुल ठहरा हुआ। यह सापेक्ष है, महज सापेक्ष।

आइन्सटीन कहता है, भौतिकी कहती है कि सब कुछ सापेक्ष है। तुम एक तेज चलने वाली रेलगाड़ी में यात्रा कर रहे हो। क्या होता है, पेड़ भाग रहे है। भागे जा रहे है। और अगर रेलगाड़ी में हलन-चलन न हो, जिससे रेल चलने का एहसास होता है। तो तुम खिड़की से बाहर देखो तो गाड़ी नहीं, पेड़ भागते हुए नजर आयेंगे।

आइन्सटीन ने कहा है कि अगर दो रेलगाड़ियाँ या दो अंतरिक्ष यान अंतरिक्ष में अगल-बगल एक ही गति से चले तो तुम्हें पता भी नहीं चलेगा कि वे चल रहे है। तुम्हें चलती गड़ी का पता इसलिए चलता है। क्योंकि उसके बगल में ठहरी हुई चीजें है। यदि वे न हों, या समझो कि पेड़ भी उसी गति से चलने लगे, तो तुम्हें गति का पता नहीं चलेगा। तुम्हें लगेगा कि सब कुछ ठहरा हुआ है। या दो गाड़ियाँ अगल-बगल विपरीत दिशा में भार रही हो तो प्रत्येक की गति दुगुनी हो जाएगी। तुम्हें लगेगा की वह बहुत तेज भाग रही है।

वे तेज नहीं भाग रही है। गाड़ियाँ वही है, गति वहीं है। लेकिन विपरीत दिशाओं में गति करने के कारण तुम्हें दुगुनी गति का अनुभव होता है। और अगर गति सापेक्ष है तो यह मन का कोई ठहराव है जो सोचता है कि नदी बहती है और पुल ठहरा हुआ है।

निरंतर ध्यान करते-करते च्वांत्सु को बोध हुआ कि सब कुछ सापेक्ष है। नदी बह रही है; क्योंकि तुम पुल को थिर समझते हो। बहुत गहरे में पुल भी बह रहा है। इस जगत में कुछ भी थिर नहीं है। परमाणु घूम रहे है; इलेक्ट्रॉन घूम रहे है। पुल भी अपने भीतर निरंतर घूम रहा है। सब कुछ बह रहा है। पुल भी बह रहा है। च्वांत्सु को पुल की आणविक संरचना की झलक मिल गई होगी।

अब तो वे कहते है कि यह जो दीवार थिर दिखाई देती हे। वह सच में थिर नहीं है। उसमे भी गति है। प्रत्येक इलेक्ट्रॉन भाग रहा है। लेकिन गति इतनी तीव्र है कि दिखाई नहीं देती। इसी वजह से तुम्हें थिर मालूम पड़ती है।

यदि यह पंखा अत्यंत तेजी से चलने लगे तो तुम्हें उसके पंख या उनके बीच के स्थान नहीं दिखाई देंगे। और अगर वह प्रकाश की गति से चलने लगा तो तुम्हें लगेगा की वह कोई थिर गोला है। क्योंकि इतनी तेज गति को आंखें पकड़ नहीं पाती।

च्वांत्सु को पुल के अणु-अणु की झलक जरूर मिल गई होगी। उसने इतनी प्रतीक्षा की कि उसकी बंधी बंधाई मान्यता विलीन हो गई। तब उसने देखा कि पुल बह रहा है और पुल का बहाव इतना तीव्र है कि उसकी तुलना में नदी ठहरी हुई मालूम हुई। तब च्वांत्सु भागा हुआ लाओत्से के पास गया। लाओत्से ने कहा कि ठीक है, अब पूछने की भी जरूरत नहीं है। घटना घट गई।

क्या घटना घटी? अ-मन घटित हुआ है।

यह विधि कहती है: ''किसी गहरे कुएं के किनारे खड़े होकर उसकी गहराईयों में निरंतर देखते रहो—जब तक विस्मय विमुग्ध न हो जाओ।''

जब तुम विस्मय-विमुग्ध हो जाओगे। जब तुम्हारे ऊपर रहस्य का अवतरण होगा। जब मन नहीं बचेगा। केवल रहस्य और रहस्य का माहौल बचेगा। तब तुम स्वयं को जानने में समर्थ हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—36 (ओशो)

देखने के संबंध में सातवीं ओशो
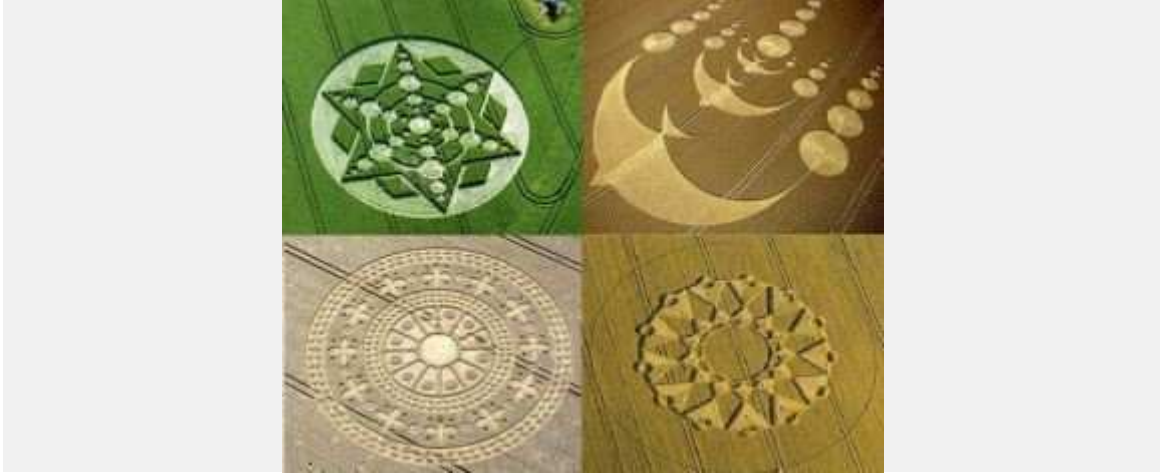
तंत्र-सूत्र—विधि—36 (ओशो)
देखने के संबंध में सातवीं ओशो

''किसी विषय को देखो, फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो, और फिर धीरे-धीरे उससे अपने विचार हटा लो। तब।''

''किसी विषय को देखो..........।''
किसी फूल को देखो। लेकिन याद रहे कि इस देखने का अर्थ क्या है। केवल देखो, विचार मत करो। मुझे यह बार-बार कहने की जरूरत नहीं है। तुम सदा स्मरण रखो कि देखने का देखना भर है; विचार मत करो। अगर तुम सोचते हो तो वह देखना नहीं है; तब तुमने सब कुछ दूषित कर दिया। यह शुद्ध देखना है महज देखना।

''किसी विषय को देखा.......।''

किसी फूल को देखो। गुलाब को देखा।

''फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो।''
पहले फूल को देखा, विचार हटाकर देखो। और जब तुम्हें लगे कि मन में कोई विचार नहीं बचा सिर्फ फूल बचा है। तब हल्के-हल्के अपनी आंखों को फूल से अलग करो। धीरे-धीर फूल तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। पर उसका विंब तुम्हारे साथ रहेगा। विषय तुम्हारी दृष्टि से ओझल हो जाएगा। तुम दृष्टि हटा लोगे। अब बाहरी फूल तो नहीं रहा; लेकिन उसका प्रतिबिंब तुम्हारी चेतना के दर्पण में बना रहेगा।

''किसी विषय को देखा, फिर धीरे-धीरे उससे अपनी दृष्टि हटा लो, और फिर धीरे-धीरे उससे अपने विचार हटा लो। अब।''

तो पहल बाहरी विषय से अपने को अलग करो। तब भीतरी छवि बची रहेगी; वह गुलाब का विचार होगा। अब उस विचार को भी अलग करो। यह कठिन होगा। यह दूसरा हिस्सा कठिन है। लेकिन अगर पहले हिस्से को ठीक ढंग से प्रयोग में ला सको जिस ढंग से वह कहा गया है, तो यह दूसरा हिस्सा उतना कठिन नहीं होगा। पहले विषय से अपनी दृष्टि को हटाओं। और तब आंखें बद कर लो। और जैसे तुमने विषय से अपनी दृष्टि अलग की वैसे ही अब उसकी छवि से अपने विचार को, अपने को अलग कर लो। अपने को अलग करो; उदासीन हो जाओ। भीतर भी उसे मत देखो; भाव करो कि तुम उससे दूर हो। जल्दी ही छवि भी विलीन हो जाएगी।

पहले विषय विलीन होता है, फिर छवि विलीन होती है। और जब छवि विलीन होती है, शिव कहते है, ''तब, तब तुम एकाकी रह जाते हो। उस एकाकीपन में उस एकांत में व्यक्ति स्वयं को उपलब्ध होता है, वह अपने केंद्र पर आता है, वह अपने मूल स्त्रोत पर पहुंच जाता है।

यह एक बहुत बढ़िया ध्यान है। तुम इसे प्रयोग में ला सकते हो। किसी विषय को चुन लो। लेकिन ध्यान रहे कि रोज-रोज वही विषय रहे। ताकि भीतर एक ही प्रतिबिंब बने और एक ही प्रतिबिंब से तुम्हें अपने को अलग करना पड़े। इसी विधि के प्रयोग के लिए मंदिरों में मूर्तियां रखी गई थी। मूर्तियां बची है, विधि खो गई।

तुम किसी मंदिर में जाओ और इस विधि का प्रयोग करो। वहां महावीर या बुद्ध या राम या कृष्ण किसी की भी मूर्ति को देखो। मूर्ति को निहारो। मूर्ति पर अपने को एकाग्र करो। अपने संपूर्ण मन को मूर्ति पर इस भांति केंद्रित करो कि उसकी छवि तुम्हारे भीतर साफ-साफ अंकित हो जाए। फिर अपनी आंखों को मूर्ति से अलग करो और आंखों को बंद करो। उसके बाद छवि को भी अलग करो, मन से उसे बिलकुल पोंछ दो। तब वहां तुम अपने समग्र एकाकीपन में, अपनी समग्र शुद्धता में, अपनी समग्र निर्दोषता में प्रकट हो जाओगे।

उसे पा लेना ही मुक्त है। उसे पा लेना ही सत्य है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—23

तंत्र-सूत्र—विधि—37 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पहली विधि:

ध्वनि-संबंधी पहली विधि:

''हे देवी, बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ में संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो—पहले अक्षरों की भांति, फिर सूक्ष्मतर ध्वनि की भांति, और फिर सूक्ष्मतर भाव की भांति। और तब, उन्हें छोड़कर मुक्त होओ।''

शब्द ध्वनि है। विचार एक अनुक्रम में, तर्कयुक्त अनुक्रम में बंधे, एक खास ढांचे में बंधे शब्द है। ध्वनि मूलभूत है। ध्वनि से शब्द बनते है और शब्दों से विचार बनते है। और तब विचार से धर्म और दर्शनशास्त्र बनता है। सब कुछ बनता है। लेकिन गहराई में ध्वनि है।

यह विधि विपरीत प्रक्रिया का उपयोग करती है।

शिव कहते है: ''हे देवी, बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ में संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो—पहल अक्षरों की भांति, फिर सूक्ष्मतर ध्वनि की भांति, फिर सूक्ष्म तम भाव की भांति। और जब उन्हें छोड़कर मुक्त होओ।''

हम दर्शनशास्त्र में जीते है। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई कुछ है। हम दर्शन शास्त्रों में जीते है। विचार तंत्रों में जीते है। और वे हमारे लिए इतने महत्वपूर्ण हो गए है कि हम उनके लिए अपनी जान दे सकते है। आदमी शब्दों के लिए मर सकता है। मात्र शब्दों के लिए। कोई उसके परमात्मा को, उसकी परमात्मा की धारणा को गलत कह दे और वह लड़ पड़ेगा। कोई राम या ईसा या किसी ऐसी धारणा को गलत कह दे और वह लड़ पड़ेगा। मनुष्य महज शब्द के लिए लड़ सकता है। हत्या कर सकता है।

शब्द इतना महत्वपूर्ण हो गया है। यह मूढ़ता है। लेकिन यही मूढ़ता हमारा इतिहास है। और हम अभी उसी भांति पेश आ रहे है। एक अकेला शब्द तुम्हारे भीतर इतना उपद्रव पैदा कर सकता है। कि तुम मरने-मारने को तैयार हो जाते हो। हम दर्शनशास्त्र में जीते है। विचार तंत्रों में जीते है।

दर्शनशास्त्र क्या है? तर्कयुक्त ढंग से, व्यवस्था से ढांचे में विचारों के जमाव को हम दर्शनशास्त्र कहते है। और विचार क्या है? व्यवस्था से और अर्थवता के साथ शब्दों के जमाव को हम विचार कहते है। और शब्द क्या है? शब्द वे ध्वनियां है जिनके बारे में आम सहमति है कि उनका मतलब यह या वह होगा।

ध्वनि बुनियादी है, आधारभूत है। मन की बुनियादी संरचना में ध्वनि है। दर्शनशास्त्र उसका शिखर है, लेकिन जिन ईंटों से पूरी इमारत बनी है वे ध्वनियां है। इससे गलत क्या है।

ध्वनि बस ध्वनि है। अर्थ हमारा दिया हुआ है। अर्थ आम सहमति से तय होता है। अन्यथा ध्वनि का काई अर्थ नहीं है। अर्थ हमारा दिया हुआ है। प्रक्षेपण है। अन्यथा राम शब्द मात्र ध्वनि है—अर्थहीन ध्वनि। अर्थ हम उसे देते है। और वह शब्द बहुत महत्वपूर्ण हो जाता है। और तब हम उसके इर्द-गिर्द विचारों का तंत्र निर्मित करते है। तब तुम सब कुछ कर सकते हो। कुछ भी कर सकते हो; उसके लिए जी मर सकते हो। अगर कोई इस ध्वनि राम का अपमान करे तो तुम क्रुद्ध हो जाओगे। और यह शब्द राम महज एक सहमति है, नियम गत सहमति है। कि इसका यह अर्थ होगा। अन्यथा अपने आप में किसी शब्द का कोई अर्थ नहीं है। वह महज ध्वनि है।

यह सूत्र प्रतिक्रमण करने को, विपरीत दिशा में चलने को कहता है। ध्वनि पर आ जाओ। फिर ध्वनि से भी ज्यादा बुनियादी चीज है भाव। जो कहीं गहरे में छिपा है। इसे समझना होगा।

आदमी शब्द का उपयोग करता है। शब्द का मतलब ऐसी ध्वनि है जिसको सहमति से अर्थ मिला हुआ है। पशु-पक्षी भी ध्वनि का प्रयोग करते है। लेकिन उनकी ध्वनि में कोई भाषा नहीं होती। उनकी कोई भाषा नहीं है। लेकिन वे मात्र भाव के

साथ ध्वनि करते है। कोई पक्षी गाता है। उसके गाने में भाव है। वह किसी भाव को प्रकट कर रहा है। हो सकता है कि वह अपनी प्रेमिका को पुकार रहा हो। या मां को पुकार रहा हो। या हो सकता है, बच्चा भूखा हो, और अपनी पीड़ा जता रहा हो। वह ध्वनि भाव-बोधक है।

ध्वनि के ऊपर शब्द है, विचार है, दर्शनशास्त्र है; ध्वनि के नीचे भाव है। और जब तुम भाव के नीचे नहीं उतरते तब तक मन के नीचे नहीं उतर सकते हो। सारा जगत ध्वनियों से भरा है। सिर्फ मनुष्य का जगत शब्दों से भरा है। मनुष्य का बच्चा भी जब तक भाषा नहीं सीखता है, ध्वनियों का ही प्रयोग करता है।

सच तो यह हे कि भाषा का सारा विकास उन ध्वनियों के आधार पर हुआ है जो दुनियाभर में बच्चें बोलते है। उदाहरण के लिए किसी भी भाषा में मां के लिए शब्द किसी न किसी रूप में मां ध्वनि से जुड़ा है। चाहे वह मातृ, मदर, मां; सब कमोवेश मां ध्वनि से जुड़ा है। बच्चा मां ध्वनि अत्यंत सरलता से बोल सकता है। यह वह पहली ध्वनि है जो बच्चा बोल सकता है। फिरा सारी इमारत मां ध्वनि पर उठती है। बच्चा मां कहना शुरू करता है; क्योंकि यह पहली ध्वनि है जिसे बच्चा आसानी से बोल सकता है। यह नियम सब देश और सब समय के लिए लागू है। शरीर और गले की संरचना ही ऐसी है कि मां बोलना उसके लिए सबसे आसान है। और बच्चे के लिए उसकी मां निकटतम व्यक्ति होता है। सबसे महत्वपूर्ण होता है। इसलिए पहली ध्वनि पहले अर्थपूर्ण व्यक्ति के साथ जुड़ गई और उससे ही मातृ, मदर, मादर, मां शब्द बने।

लेकिन बच्चा जब पहली दफा 'मां' कहता है तो उसमे कोई भाषागत अर्थ नहीं होता। पर भाव अवश्य रहता है। और उसी भाव के कारण यह ध्वनि मां का पर्याय बन गयी। वह भाव ध्वनि से ज्यादा बुनियादी है।

यह सूत्र कहता है कि ''संस्कृत वर्णमाला के अक्षरों की कल्पना करो।''

कोई भी भाषा काम दे देगी। क्योंकि शिव पार्वती से बोल रहे थे। इसलिए उन्होंने संस्कृत का नाम लिया। तुम अंग्रेजी, लैटिन या अरबी भाषा भी इस्तेमाल कर सकते हो। किसी भाषा से भी काम चल जाएगा। संस्कृत यहां इस लिए कही गई है कि क्योंकि शिव पार्वती से संस्कृत में चर्चा कर रहे थे। ऐसी बात नहीं है कि संस्कृत और भाषाओं से श्रेष्ठ है। नहीं, कोई भी भाषा चलेगी।

पहले अपने भीतर, अपनी चेतना में, ''बोध के मधु-भरे दृष्टि पथ'' में अ, ब, से, आदि अक्षरों को अनुभव करो। किसी भी भाषा के अक्षरों से काम चल जाएगा। और यह किया जा सकता है। यह बहुत सुंदर प्रयोग है। अगर तुम इसे प्रयोग करना चाहो तो पहले आँख बंद कर लो और भीतर अपने चेतना को इन अक्षरों से भर जाने दो। चेतना को काली पट्टी समझो और तब उस पर अ, ब, स अक्षरों की कल्पना करो। कल्पना में उन्हें सावचेत होकर और साफ-साफ लिखो और उनको देखो। फिर धीरे-धीरे अक्षर अ को भूल जाओ और उसकी ध्वनि को स्मरण रखो—सिर्फ ध्वनि को।

लेकिन पहले कल्पना की आंखों से देखना जरूरी है; क्योंकि हमारे लिए आँख बहुत महत्वूर्ण है। कान उतने महत्वपूर्ण नहीं है। हम आँख-केंद्रित है। कारण वही है कि आँख अन्या किसी भी चीज से ज्यादा हमें जीने में सहयोग देती है; हमारी नब्बे प्रतिशत चेतना आंखों में बसती है। आँख को हटाकर अपने संबंध में कल्पना करो और तुम मरे-मरे से हो जाओगे। बहुत न्यून बच रहेगा।

इसलिए पहले देखा। दृष्टि को भीतर ले जाओ और अक्षरों को देखो। वैसे अक्षर आंखों की बजाय कानों से ज्यादा संबंधित है; क्योंकि वे ध्वनियां है। लेकिन हमारे लिए वे आँख से जुड़ गए है। क्योंकि हम पढ़ने के इतने आदी हो गए है। बुनियादी रूप से वे कान से संबंधित है, वे ध्वनियां है। तो आँख से शुरू करो। और फिर धीरे-धीर आँख को भूल जाओ। और आँख से कान पर

चले जाओ। पहले उन्हें अक्षरों के रूप में कल्पना करो, फिर उन्हें देखो और फिर उन्हें सूक्ष्मतर ध्वनियों की भांति सुनो और अंत में सूक्ष्मतम भाव की भांति भाव करो।

यह एक बहुत सुंदर प्रयोग है। जब तुम अ कहते हो तो तुम्हारे भीतर क्या भाव होता है। हो सकता है, तुम्हें इसका बोध न हो कि क्या भाव रहता है। जब भी तुम कोई ध्वनि करते हो तो तुम्हारे भीतर कैसे भाव का उदय होता है? हम इतने भाव शून्य हो गये है कि भल ही गये है। जब तुम कोई ध्वनि देखते हो तो क्या होता है? तुम उसका उपयोग किए जाते हो और ध्वनि को बिलकुल भूल जाते हो। उसे तुम निरंतर देखते हो। यदि मैं अ कहता हूं तो तुम पहले अ को देखोगें, तुम्हारे मन में अ दृश्य हो जाएगा। लेकिन अब जब मैं अ कहूं तो उसे देखो नहीं, सुनो। और तब अनुभव करो कि तुम्हारे भाव-केंद्र में क्या घटित होता है। क्या कुछ भी नहीं होता है।

शिव कहते है कि अक्षरों से ध्वनि की तरफ चलो; इन अक्षरों के जरिए ध्वनि को उघाड़ो। पहले ध्वनि को उघाड़ो, और फिरा ध्वनि के जरिए भाव को उघाड़ो। तुम कैसा भाव होता है, इसके प्रति सजग होओ।

कहते है कि मनुष्य बहुत संवेदन शून्य हो गया है; वह अभी धरती पर सब से संवेदन शून्य जानवर है। मैं एक जर्मन कवि का संस्मरण पढ़ रहा था। वह अपने बचपन की एक घटना बताता है। उसके पिता को घोड़ों का बहुत शौक होता है। उसके घर में अनेक घोड़े थे; एक बड़ा अस्तबल था। लेकिन उसका बाप उसे घोड़ों के पास नहीं जाने देता था। बाप डरता था; क्योंकि बच्चा अभी बहुत छोटा था। लेकिन कभी-कभी जब बाप घर पर नहीं होता तो बच्चा चुपचाप अस्तबल में चला जाता था। वहां उसकी एक घोड़े से दोस्ती हो गई। और जब वह लड़का वहां पहुंचता तो घोड़ा हिनहिनाने लगता था।

उस कवि ने लिखा है कि तब मैं भी घोड़े के साथ कुछ ध्वनि करने लगा; क्योंकि उससे भाषा में बोलने का तो कोई उपाय न था। और तब घोड़े के साथ इस तरह संवाद करते हुए मुझे पहल बार ध्वनियों का बोध हुआ, उनके सौंदर्य का, उनके भाव का बोध हुआ।

तुम्हें किसी मनुष्य के साथ संवाद करके यह बोध नहीं हो सकता। क्योंकि मनुष्य मुर्दा हो चला है। घोड़ा ज्यादा जीवंत है और उसके पास भाषा नहीं है। उसके पास शुद्ध ध्वनि है। वह ह्रदय से भरा है। मन से नहीं।

तो कवि ने संस्मरण में कहा ह कि पहली बार मुझे ध्वनि के सौंदर्य का, उसके अर्थ का बोध हुआ। यह वह अर्थ नहीं था जो शब्दों और विचारों से आता है। यह अर्थ भाव से भरा था। अगर वहां और कोई मौजूद होता तो घोड़ा नहीं हिनहिनाता; उससे बच्चा समझ जाता कि यहां मत आओ। यहां कोई है। और तुम्हारे पिता नाराज हो जायेगे। और जब वहां कोई नहीं होता तो घोड़ा हिनहिनाता, जिसका मतलब होता कि आ जाओ, यहां कोई नहीं है। कवि याद करता है कि यह एक साजिश थी जिससे मुझे बहुत सहायता मिली; उस घोड़े ने मेरी बड़ी मदद की।

कवि ने यह भी बताया कि जब मैं जाता था और घोड़े को प्रेम करता था तो यदि मेरा प्रेम घोड़े को पसंद आता तो वह एक ढंग से सिर हिलाता था। और यदि नहीं पसंद आता तो वह सिर ही नहीं हिलाता। पसंदगी की बात और थी। घोड़ा उसे प्रकट करता था। और जब उसका मूड उसकी भाव दशा और होती तो वह उस ढंग से सिर नहीं हिलाता था। और कवि कहता है कि यह सिलसिला वर्षो चला कि मैं जाता और घोड़े को सहलाता। और घोड़े के साथ यह प्रेम इतना प्रगाढ़ था कि मुझे कभी किसी और के साथ उस घनिष्ठता का एहसास नहीं हुआ।

कवि आगे कहता है कि एक दिन मैं घोड़े की गरदन सहला रहा था और वह मस्ती में डोलकर उसका आनंद ले रहा था। कि मैं अचानक पहली बार अपने हाथ के प्रति सजग हो गया। और मुझे ख्याल हुआ कि मैं घोड़े का सहला रहा हूं। इसके साथ ही घोड़े ने डोलना बंद कर दिया। और गरदन हिलाना बिलकुल बंद कर दिया। और वह कवि कहता है, फिर तो मैंने वर्षो कोशिश की;

लेकिन घोड़े से कोई प्रत्युतर नहीं मिला। बहुत समय बीतने पर मुझे बोध हुआ। कि मेरे हाथ के प्रति, मेरे अहंकार के प्रति सजग होते ही मेरा घोड़े के साथ संवाद समाप्त हो गया। और उसे मैं फिर कभी प्राप्त नहीं कर सका। क्या हुआ ?

वह भाव का संवाद था। ज्यों ही अहंकार आता है, शब्द आता है, भाषा आती है। विचार आता है, त्यों ही पूरा तल ही बदल जाता है। अब तुम ध्वनि के ऊपर हो; पहले ध्वनि के नीचे थे। वे घ्वनियां भाव है और घोड़ा भाव समझ सकता था। वह अहंकार की भाषा नहीं समझ सकता था, इसलिए संवाद टूट गया।

कवि ने बहुत चेष्टा की; लेकिन कोई चेष्टा सफल नहीं हुई। कारण यह है कि तुम्हारी चेष्टा भी तुम्हारे अहंकार का ही हिस्सा है। कवि ने अपने हाथ को भूलने की चेष्टा की; लेकिन भूल न सका। यह भूलना असंभव है। तुम जितनी भूलने की कोशिश करोगे उतनी ही हाथ की याद आयेगी। चेष्टा से कुछ भी भूला नहीं जा सकता है। चेष्टा स्मृति को और भी सबल बना देगी। कवि कहता है कि मैं अपने हाथ में उलझ गया; मैं घोड़े को फिर उद्वेलित न कर सका। मैं अपने हाथ ले जाता था, लेकिन उससे कोई उर्जा घोड़े की और नहीं बहती थी। और घोड़े को इसका पता चल गया।

अगर मैं अचानक कोई दूसरी भाषा बोलने लगू तो संवाद बंद हो जाएगा। तब तुम मुझे नहीं समझ सकोगे। और अगर यह भाषा तुम्हारे लिए परिचित नहीं है तो तुम अचानक रूक जाओगे। तुम्हें भाषा ही नहीं समझ पड़ेगी। घोड़ा ऐसे ही रूक गया था।

प्रत्येक बच्चा भाव के साथ जीता है। पहले ध्वनि आती है। तब वह ध्वनि भाव से भरती है। तब शब्द , विचार, व्यवस्था, धर्म और दर्शनशास्त्र आते है। और तब आदमी भाव के केंद्र से दूर-दूर हटता जाता है।

यह सूत्र कहता है कि ध्वनि से भाव पर लौट आओ, भाव की भूमि पर खड़े होओ। भाव तुम्हारा मन नहीं है। यही कारण है कि तुम भाव से डरते हो। तुम तर्क से नहीं डरते। लेकिन तुम भाव से सदा डरते हो। क्योंकि भाव तुम्हें अराजकता में ले जा सकता है। जिस पर तुम्हारा काबू नहीं है। तर्क तुम्हारे नियंत्रण में है। सिर के तुम मालिक हो। सिर के नीचे उतरते ही तुम्हारी मलकियत खत्म हो जाती है। तब तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता; तब तुम मन मानी नहीं कर सकते। भाव ठीक मन के नीचे है; भाव तुम्हारे और तुम्हारे मन के बीच की कड़ी है।

फिर शिव कहते है: ''तब उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

तब भाव को भी छोड़ दो। स्मरण रहे, भाव के गहनत्म तल पर पहुंचकर ही तुम भाव को छोड़ सकते हो। अगर तुम उनके गहन तल पर नहीं हो तो उन्हें कैसे छोड़ सकते हो? पहले तुम्हें दर्शनशास्त्र को छोड़ना होगा; हिन्दू धर्म, ईसाइयत धर्म, इस्लाम धर्म, को छोड़ना होगा। पहले दर्शन छोड़ना होगा। और तब विचार छोड़ना होगा। फिर क्रमश: शब्द, अक्षर, ध्वनि और भाव को छोड़ना है।

तुम उसी जगह को छोड़ सकते हो जहां तुम हो। तुम उसी सीढ़ी को छोड़ सकते हो जिस पर तुम खड़े हो। उस सीढ़ी को कैसे छोड़ सकते हो, जिस पर तुम खड़े ही नहीं हो, तुम दर्शनशास्त्र की सीढी पर खड़े हो। यह सबसे दूर की सीढी है। यही कारण है कि मैं इस बात पर इतना जोर देता हूं कि जब तक तुम धर्मों को नहीं छोड़ते, तुम धार्मिक नहीं हो सकते।

यह सूत्र, यह विधि बहुत आसानी से प्रयोग की जा सकती है। कठिनाई भाव के साथ नहीं है; कठिनाई शब्दों के साथ है। किसी भाव को तुम वैसे ही छोड़ सकते हो जैसे तुम अपने कपड़े उतारते हो। जैसे तुम अपने शरीर के कपड़े उतरते कर फेंक देते हो। ठीक वैसे ही तुम अपने भावों को अपने से अलग कर सकेत हो। लेकिन अभी तुम यह नहीं कर सकते, अभी यह करना असंभव है। इसलिए कदम-कदम चलना ठीक है।

अ, ब, स, आदि अक्षरों को कल्पना की आंखों से देखो, और तब उनके लिखित रूप से हटकर उनके सुने हुए स्वर पर ध्यान दो। अब तुम गहराई में उतर रहे हो। सतह पीछे छूट रहा है। तुम गहराई में डूब रहे हो। और अब देखो कि किसी विशेष ध्वनि से क्या भाव पैदा होता है।

ऐसी विधियों के कारण ही भारत अनेक चीजों का अविष्कार कर सका। जो भाव-विशेष से संबंधित है। इन विज्ञान के कारण ही मंत्र का विकास हुआ। एक खास ध्वनि एक खास भाव के साथ जुड़ी है; इसके अन्यथा नहीं हो सकता। तो तुम अपने भीतर वह ध्वनि पैदा करो तो उससे उस विशेष भाव का जन्म होगा। तुम एक मंत्र के द्वारा उससे संबंधित भाव पैदा कर सकते हो। मंत्र से वह वातावरण पैदा होता है। जिसमे वह विशेष भाव जन्म लेता है।

इसलिए यूं ही किसी मंत्र का उपयोग मत करो। वह ठीक नहीं है; वह तुम्हारे लिए खतरनाक सिद्ध हो सकता है। अगर तुम नहीं जानते हो या वह व्यक्ति नहीं जानता है जिससे तुम मंत्र लेते हो किस ध्वनि से कौन-कौन भाव निर्मित होता है। या अगर तुम नहीं जानते हो कि तुम्हें उस भाव की जरूरत है या नहीं। तो मंत्र का उपयोग मत करो। मारण मंत्र जैसे भी मंत्र है। अगर तुम मारण मंत्र का जाप करोगे तो एक निश्चित अवधि के भीतर तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी। वह मंत्र तुम्हारे भीतर मृत्यु की कामना पैदा कर देगा। और एक निश्चित समय के अंदर तुम समाप्त हो जाओगे।

फ्रायड कहता है कि आदमी में दो बुनियादी वृतियां है। उनमें एक है जीवेषणा, इरोस; यानि जीने की कामना। और दूसरी है मृत्यु एषणा थानाटोस; यानी मरने की कामना, मृत्यु की चाह।

ऐसी ध्वनियां है जिनके सतत उच्चारण से तुम्हारे भीतर मरण-कामना का जन्म होगा, तुम मृत्यु में समा जाना चाहोगे। वैसे ही ऐसी ध्वनियां है जो तुम्हें अधिक जीवेषणा प्रदान करेंगी। जिनसे जीने से जीवन में तुम्हारा रस बढ़ जाएगा; तुम ज्यादा जीवित रहना चाहोगे। तो अगर तुम अपने भीतर उन ध्वनियों को पैदा करोगे तो उनसे संबंधित भाव तुम्हें अभिभूत कर देंगे। ऐसी ध्वनियां को पैदा करोगे तो उनसे संबंधित भाव तुम्हें अभिभूत कर देंगे। ऐसी ध्वनियां है जिनसे मौन और शांति प्राप्त होती है और ऐसी ध्वनियां भी है जिनसे क्रोध का जन्म होता है। इसलिए जब तक किसी जानकर गुरु से मंत्र न मिले तब तक मंत्र का प्रयोग करना ठीक नहीं है।

जब तुम ध्वनि से नीचे उतरते हो तो तुम्हें पता चलता है कि प्रत्येक ध्वनि का अपना एक भाव है, जो उसके साथ चलता है। जो उसके पीछे रहता है। जब तुम भाव में गति कर जाओ, जब तुम ध्वनि को भूल जाओ और भाव में सरक जाओ। इसे समझना कठिन है; लेकिन यह तुम कर सकते हो।

और इसके लिए विशेष विधियां है। विशेषकर झेन साधना में इसके लिए अलग विधियां है। किसी साधक को एक खास मंत्र दिया जाता है। और अगर वह उसका ठीक प्रयोग करता है तो यह बात गुरु उसके चेहरे से जान लेता है। चेहरा देखकर ही गुरु जान जाता है कि साधक ठीक प्रयोग कर रहा है या नहीं। क्योंकि ठीक प्रयोग से एक भाव विशेष का उदय होता है। अगर ध्वनि ठीक से पैदा की जाए तो भाव का आविर्भाव निशचित है। और यह भाव चेहरे पर प्रकट होगा; तुम गुरु को धोखा नहीं दे सकते। वह तुम्हारे चेहरे से जान लेगा। कि तुम्हारे भीतर क्या घट रहा है।

डोजो एक बड़ा झेन गुरु हुआ। जब वह शिष्य ही था तो उसे बड़ी हैरानी होती है कि मेरे गुरु यह कैसे जानते है कि मेरे भीतर क्या अनुभव घट रहा है। और झेन गुरु अपना डंडा लिए घूमता था और शिष्य के सिर पर डंडे से चोट कर देता था। अगर तुम्हारे मंत्र के प्रयोग से कोई भूल हो रही है तो वह तुम्हारे सिर पर चोट कर देगा। तो डोजो ने पूछा कि आप कैसे जान लेते है कि ठीक वक्त पर ही चोट करते है। आप जानते कैसे है।

चेहरा भाव को प्रकट कर देता है। वह ध्वनि को नहीं प्रकट कर सकता, लेकिन भाव को प्रकट कर देता है। और तुम जितने गहरे जाओगे उठता ही तुम्हारा चेहरा अभिव्यक्ति के योग्य, नमनीय और तरल होता जाएगा। वह तुरंत बता देता है कि भीतर क्या हो रहा है। अभी जो तुम्हारा चेहरा वह नहीं रहेगा। वह तो मुखौटा है, चेहरा नहीं। जब तुम भीतर जाते हो तो मुखौटे गिर जाते है। क्योंकि उनकी जरूरत नहीं रहती। मुखौटे तो दूसरों के लिए होते है।

यही कारण है कि पुराने गुरु संसार छोड़ने के लिए जोर देते थे। यह इसलिए कि तुम आसानी से अपने मुखौटे से मुक्त हो जाओ। अन्यथा जब तक दूसरे रहेंगे तुम उनके लिए मुखौटे लगाते रहोगे। तुम अपने पति या पत्नी को प्रेम नहीं करते हो; लेकिन तुम्हें एक मुखौटा पहले रहना होता है। एक प्रीति पूर्ण चेहरा बनाए रखना पड़ता है। जिस क्षण तुम अपने घर में प्रवेश करते हो, तुम अपना चेहरा सजाने लगते हो, तुम भीतर जाते ही मुस्कुराने लगते हो। वह तुम्हारा असली चेहरा नहीं है।

झेन गुरु इस बात पर जोर देते थे कि पहले तुम जानो कि तुम्हारा मौलिक चेहरा क्या है। मौलिक चेहरे के साथ सब कुछ आसान हो जाता है। तब गुरु को सब पता चल जाता है। कि क्या हो रहा है। इसलिए ज्ञानोपलब्धि की घटना बतानी नहीं पड़ती थी। अगर कोई साधक ज्ञान को उपलब्ध हो ता था तो उसे यह बात गुरु को बताने की जरूरत नहीं पड़ती थी। गुरु अपने आप ही जान लेता था और वही शिष्य को कहता था। शिष्य को अपनी तरफ से जाकर गुरु को बताने की इजाजत नहीं थी। उसकी जरूरत नहीं थी। चेहरा बात देता था, आँख बता देती थी। चलने का ढंग बात देता था। उसका प्रत्येक कृत्य, उसकी हरेक भाव-भंगिमा बताती है कि वह पहुंच गया।

जब तुम ध्वनि से भाव पर जाते हो तो तुम बहुत ही आनंदित संसार में गति करते हो—एक अस्तित्वगत संसार में। तुम मन से दूर हट जाते हो। भाव अस्तित्वगत है; भाव शब्द का अर्थ ही वह है। तुम भावों को अनुभव करते हो। तुम उन्हें देख नहीं सकते, सुन नहीं सकते, सिर्फ अनुभव कर सकते हो।

और जब तुम इस बिंदू पर पहुंचते हो तो छलांग लगा सकते हो। यह आखिरी कदम है। अब तुम अनंत खड्ड के पास खड़े हो; अब कूद सकते हो। और अगर तुम भाव से छलांग लगाते हो तो तुम अपने में छलांग लगाते हो। वह अनंत, वह अतल तुम हो—मन की तरह नहीं अस्तित्व की तरह; संचित भविष्य की तरह नहीं, बल्कि वर्तमान की तरह, यहां और अभी की तरह। तुम मन से अस्तित्व पर गति कर जाते हो; और भाव उनके बीच सेतु का काम करता है।

लेकिन भाव पर पहुंचने के लिए तुम्हें सो चीजें छोड़नी होगी। शब्द, ध्वनि और मन की सब प्रवंचना छोड़नी होगी।

''तब उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

तब तुम मुक्त हो। ''मुक्त हो जाओ'' का यह मतलब नहीं है कि तुम्हें मुक्त होने के लिए कुछ करना होगा। ''तब उन्हें अलग छोड़ कर मुक्त हो जाओ।'' का मतलब है कि तुम मुक्त हो।

होना है मुक्त; मन बंधन है। इससे ही कहा है कि मन संसार है। संसार को मत छोड़ो; तुम उसे छोड़ भी नहीं सकते। अगर मन है तो तुम दूसरा संसार निर्मित कर लोगे। बीज बचा है। तुम पहाड़ पर जा सकते हो। तुम भागकर किसी आश्रम में रह सकते हो। लेकिन मन तुम्हारे साथ जाएगा। मन को छोड़कर तो नहीं जा सकते। और मन के साथ संसार चलता है। तुम फिर दूसरा संसार गढ़ लोगे। आश्रम में भी तुम संसार बनाने लगोगे; क्योंकि बीज साथ में है। तुम फिर संबंध बना लोगे। चाहे वो संबंध पेड़ से हो पशु पक्षियों से ही क्यों न हो। फिर तुम्हारी अपेक्षाएं खड़ी हो जाएंगी। जाल बढ़ता ही जाएगा। क्योंकि बीज मौजूद है। तुम फिर संसार में होगे। मन ही संसार है; मन को तुम कहीं नहीं छोड़ सकते हो।

तुम मन को तभी छोड़ सकते हो जब तुम अपने भीतर यात्रा करो। वही एक हिमालय है; कोई दूसरा हिमालय नहीं है। अगर तुम शब्द से भाव पर और भाव से होने पर आ जाओ तो तुम संसार से मुक्त हो जाओगे। और जब तुम इस अस्तित्व के अनंत विराट को जान लोगे तब तुम कही भी रह सकते हो। नरक में भी रह सकते हो। तब कोई फर्क नहीं पड़ेगा। अगर मन नहीं है। तो नरम तुममें प्रवेश नहीं कर सकता। और मन के साथ सिर्फ नरक आता है। मन नरक का द्वार है।

''उन्हें अलग छोड़कर मुक्त हो जाओ।''

लेकिन भाव के साथ सीधा प्रयोग मत करो; तुम सफल न हो सकोगे। पहले शब्दों के साथ प्रयोग करो। लेकिन अगर तुमने दर्शनशास्त्र नहीं छोड़ा, विचारों को नहीं छोड़ा तो शब्दों के साथ भी सफल न हो पाओगे। शब्द सिर्फ इकाइयां है। और अगर तुम शब्दों को महत्व दोगे तो तुम उन्हें नहीं छोड़ सकते हो।

यह भलीभाँति जान लो कि भाषा मनुष्य की बनाई हुई है। उसका उपयोग है; वह जरूरी है। और ध्वनियों को जो अर्थ मिला है। वह भी हमारा दिया हुआ है। इस बात को भलीभाँति समझ लो तो यात्रा सरल हो जाएगी। अगर कोई कुरान या वेद के विरूद्ध बोलता है तो तुम्हें कैसा लगता है। क्या तुम उस पर हंस सकते हो? या कि तुम्हारे भीतर कुछ भिंच जाता है। कोई गीता का अपमान कर रहा है, या कोई कृष्ण, राम या क्राइस्ट के खिलाफ बोल रहा है। क्या तुम उस पर हंस सकते हो। क्या तुम देख सकते हो कि वे महज शब्द है।

नहीं तुम्हें चोट लगेगी। और तब शब्दों को छोड़ना कठिन होगा। समझना होगा कि शब्द सिर्फ शब्द है। वे ध्वनियां है। जिन्हें सर्वसम्मत अर्थ दिया गया है। वे और कुछ भी नहीं है। इस बात को ठीक से आत्मसात कर लो। हकीकत यही है कि शब्द मात्र शब्द है।

पहले शब्दों से विरक्त होओ। शब्दों से विरक्त होकर ही तम जानोंगे कि वे ध्वनियां भर है। यह वैसे ही है जैसे मिलिट्री में वि संख्याओं का प्रयोग करते है। कोई सिपाही एक सौ एक नंबर का सिपाही है। वह एक सौ एक के साथ तादात्म्य कर ले सकता है। और अगर कोई व्यक्ति एक सौ एक नंबर के विरूद्ध कुछ कहेगा तो उसे बुरा लगेगा। वह झगडा करेगा। और एक सौ एक महज संख्या है। लेकिन उससे उसका तादात्म्य हो गया है।

तुम्हारा नाम भी संख्या जैसा ही है—गिनती के लिए है। उसके बिना काम चलाना कठिन होगा वह बस एक लेबल है। कोई दूसर लेबल भी वही काम देगा। लेकिन तुम्हारे लिए वह लेबल ही नहीं रहा है। वह कुछ और हो गया है। तुम्हारा नाम तुममें गहरे उतर गया है। वह अब तुम्हारा अहंकार बन गया है। इसीलिए बड़े-बूढे कहते है कि नाम पैदा करो, अपने नाम की शान रखो। ऐसा कुछ करो कि मरने के बाद भी तुम्हारा नाम रहे।

यह नाम पहले भी नहीं था। और वह कोड़ नंबर से ज्यादा नहीं है। तुम मरोगे और नाम रहेगा। जब तुम ही नहीं रहोगे तो नाम कैसे रहेगा।

शब्दों को देखा: उनकी व्यर्थता को, अर्थहीनता को देखा। उनसे आसक्त मत होओ, लगाव मत बनाओ। केवल तभी इस विधि का प्रयोग तुम कर सकोगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—38 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी दूसरी विधिः

ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो

" ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो। या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।"

इस विधि का प्रयोग कई ढंग से क्या जा सकता है। एक ढंग यह है कि कहीं भी बैठकर इसे शुरू कर दो। ध्वनियां तो सदा मौजूद है। चाहे बाजार हो या हिमालय की गुफा, ध्वनियां सब जगह है। चुप होकर बैठ जाओ।

और ध्वनियों के साथ एक बड़ी विशेषता है, एक बड़ी खूबी है। जहां भी, जब भी कोई ध्वनि होगी, तुम उसके केंद्र होगे। सभी ध्वनियां तुम्हारे पास आती है, चाहे वे कहीं से आएं, किसी दिशा से आएं। आँख के साथ, देखने के साथ यह बात नहीं है। दृष्टि रेखाबद्ध है। मैं तुम्हें देखता हूं तो मुझसे तुम तक एक रेखा खिंच जाती है। लेकिन ध्वनि वर्तुलाकार है; वह रेखाबद्ध नहीं है। सभी ध्वनियां वर्तुल में आती है। और तुम उसके केंद्र हो। समूचे ब्रह्मांड का केंद्र। हरेक ध्वनि वर्तुल में तुम्हारी तरफ यात्रा कर रही है।
यह विधि कहती है: ''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो।''

अगर तुम इस विधि का प्रयोग कर रहे हो तो तुम जहां भी हो वहीं आंखें बंद कर लो और भाव करो कि सारा ब्रह्मांड ध्वनियों से भरा है। तुम भाव करो कि हरेक ध्वनि तुम्हारी और बही आ रही है। और तुम उसके केंद्र हो। यह भाव भी कि मैं केंद्र हूं तुम्हें गहरी शांति से भर देगा। सारा ब्रह्मांड परिधि बन जाता है। और तुम उसके केंद्र होते हो। और हर चीज, हर ध्वनि तुम्हारी तरफ बह रही है।

''मानों किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो।''

अगर तुम किसी जलप्रपात के किनारे खड़े हो तो वहीं आँख बंद करो और अपने चारो और से ध्वनि को अपने ऊपर बरसतें हुए अनुभव करो। और भाव करो कि तुम उसके केंद्र हो।

अपने को केंद्र समझने पर यह जोर क्या है? क्योंकि केंद्र में कोई ध्वनि नहीं है; केंद्र ध्वनि शून्य है। यही कारण है कि तुम्हें ध्वनि सुनाई पड़ती है; अन्यथा नहीं सुनाई पड़ती। ध्वनि ही ध्वनि को नहीं सुन सकती। अपने केंद्र पर ध्वनि शून्य होने के कारण तुम्हें ध्वनियां सुनाई पड़ती है। केंद्र तो बिलकुल ही मौन है, शांत है। इसलिए तुम ध्वनि को अपनी और आते, अपने भीतर प्रवेश करते, अपने को घेरते हुए सुनते हो।

अगर तुम खोज लो कि यह केंद्र कहां है, तुम्हारे भीतर वह जगह कहां है। जहां सब ध्वनियां बहकर आ रही है। तो अचानक सब ध्वनियां विलीन हो जाएंगी और तुम निर्ध्वनि में, ध्वनि शून्यता में प्रवेश कर जाओगे। अगर तुम उस केंद्र को महसूस कर सको जहां सब ध्वनियां सुनी जाती है तो अचानक चेतना भीतर मुड़ जाती है। एक क्षण तुम निर्ध्वनि से भरे संसार को सुनोंगे और दूसरे ही क्षण तुम्हारी चेतना की और मुड़ जाएगी और तुम बस ध्वनि को, मौन को सुनोंगे। जो जीवन का केंद्र है। और एक बार तुमने उस ध्वनि को सुन लिया तो कोई भी ध्वनि तुम्हें विचलित नहीं कर सकती। वह तुम्हारी और आती है; लेकिन वह तुम तक पहुँचती नहीं है। वह सदा तुम्हारी और बह रही है। लेकिन वह कभी तुम तक पहुंच नहीं पाती। एक बिंदु है जहां कोई ध्वनि नहीं प्रवेश करती है; वह बिंदु तुम हो।

बीच बाजार में इस विधि का प्रयोग करो। बाजार जैसा कोई दूसरा स्थान नहीं है। वह शोरगुल है, पागल शोरगुल से इस कदर भरा रहता है। लेकिन इस शोरगुल के संबंध में सोच-विचार मत करो; यह मत कहो कि यह ध्वनि अच्छी है, यह बुरी है। यह उपद्रव पैदा करती है, यह सुंदर और लयपूर्ण है। ध्वनियों के संबंध में तुम्हें सोच-विचार नहीं करना है। तुम्हारा यह काम नहीं है। कि जो भी ध्वनि तुम्हारी तरफ बहकर आए उस पर तुम विचार करो कि यह काम नहीं है। कि यह अच्छी है, बुरी है, सुंदर है, तो तुम इतना ही स्मरण रखना है कि मैं केंद्र हूं और सभी ध्वनियां बहकर मेरे पास आ रही है।

शूरू-शूरू में घबराहट होगी; क्योंकि तुम अपने चारों और उठने वाली सब ध्वनियों को नहीं सुनते हो। तुम सुनने में चुनाव करते हो। अब वैज्ञानिक शोध करती है कि हम सिर्फ दो प्रतिशत सुनते है। अठ्ठानवे प्रतिशत अनसुना कर देते है। अगर तुम शत प्रतिशत सुनो तो तुम पागल हो जाओगे। अपने चारों और की आवाज़ों को शत-प्रतिशत सुनकर तुम पागल होने सक नहीं बच सकते।

पहले यह समझा जाता था कि इंद्रियाँ द्वार दरवाजे है। जिनसे बाहर की दुनियां भीतर प्रवेश करती है। लेकिन अब वे कहते है कि ऐसी बात नहीं है। वे दरवाजे नहीं है, वे उतनी खुली नहीं है जितना समझा जाता था। वे द्वार नहीं है, बल्कि वे नियंत्रण का, सेंसर का काम करती है; वे पहरेदार की तरह हर क्षण देखती रहती है कि किसे भीतर जाने दिया जाए और किसे नहीं। दो प्रतिशत सुनकर ही तो तुम पागल हो गए हो; शत-प्रतिशत सुनकर तुम्हारा क्या हाल होगा।

तो जब तुम इस विधि का प्रयोग शुरू करोगे तो तुम्हारा सिर चकराने लगेगा। उस से मत डरना। केंद्र पर रहो, और जो कुछ भी हो रहा है उसे होने दो। सब कुछ को आने दो। अपनी इंद्रियों को शिथिल करो, पहरेदारों को आराम करने दो। सब कुछ को विश्राम में जाने दो और तब सब कुछ को अपने भीतर प्रवेश करने दो। अब तुम ज्यादा तरल हो गए हो; तुम खुले हो। और सब ध्वनियां सब आवाजें तुम्हारी और आ रही है, तब ध्वनियों के साथ चल पड़ो और इस केंद्र पर पहुंचो जहां तुम उन्हें सुनते हो।

ध्वनियों काम में नहीं सुनी जाती है। कान उन्हें सुन भी नहीं सकते; कान सिर्फ संचारण करने का काम करते है। और इस संचारण के क्रम में वे उस सब को छांट देते है जो तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। वे चुनाव करते है, वे छाँटते है, और फिर वे चुनी हुई ध्वनियां तुम्हारे भीतर प्रवेश करती है। अब भीतर खोजों कि तुम्हारा केंद्र कहां है। कान केंद्र नहीं है। तुम कहीं किसी गहराई में सुनते हो। कान तो कुछ चुनी हुई ध्वनियों को ही भेजते है। तुम कहां है? तुम्हारा केंद्र कहां है?

अगर तुम ध्वनियों के साथ प्रयोग जारी रखते हो तो देर अबेर तुम जानकर चकित होगे कि यह केंद्र सिर में नहीं है। मालूम तो होता है कि सिर में है। क्योंकि तुम ध्वनि नहीं, शब्द सुनते हो, शब्दों के लिए तो सिर ही केंद्र है; लेकिन ध्वनि के लिए वह केंद्र

नहीं है। यही कारण है कि जापान में वह कहते है कि आदमी सिर से नहीं, पेट से सोचता है। जापान में उन्होंने बहुत लंबे समय से ध्वनि पर काम किया है।

तुमने मंदिरों में घंटे लगे देखे होंगे। वे वहां साधकों के लिए ही ध्वनि पैदा करने के लिए रखे गए है। कोई साधक ध्यान कर रहा है और घंटे बजाएं जा रहे है। तुम्हें लगेगा कि इस घंटे की आवाज से साधक के लिए बाधा खड़ी हो रही है। लगेगा कि ध्यान करने वाले को बाधा महसूस हो रही है। यह क्या उपद्रव है। मंदिर में आने वाला हरेक दर्शनार्थी घंटे को बजा देता है।

पर यह आवाज उपद्रव नहीं है। वह साधक तो इस ध्वनि की प्रतीक्षा कर रहा है। हर दर्शनार्थी इसमे सहयोग दे रहा है। बार-बार घंटा बजता है। ध्वनि होती है और ध्यानी फिर अपने में डूब जाता है। वह उस केंद्र को देखता है जहां वह ध्वनि गहरे में उतरती जाती है। पहली चोट दर्शनार्थी घंटे पर लगाता है। दूसरी चोट कही ध्यानी के भीतर होती है। यह दूसरी चोट कहां लगती है।

यह दूसरी चोट सदा पेट में लगती है; सिर में कभी नहीं। अगर चोट सिर में लगे तो समझना चाहिए कि वह ध्वनि नहीं है, शब्द है। तब तुमने ध्वनि के संबंध में सोचना शुरू कर दिया। तब शुद्धता नष्ट हो गई।

अभी गर्भस्थ शिशुओं पर बहुत अनुसंधान हो रहा है। उन्हें भी ध्वनि का आघात लगता है। और वे भी प्रतिक्रिया करते है। वे भाषा के प्रति प्रतिक्रिया नहीं कर सकते, अभी उनके सिर नहीं है। उन्हें अभी तर्क करना नहीं आता है। वे भाषा और समाज-सम्मत नियम नहीं जानते है। वे भाषा नहीं जानते है, लेकिन वे ध्वनि ठीक कसे सुनते है। और हर ध्वनि मां से ज्यादा बच्चे को प्रभावित करती है। क्योंकि मां ध्वनि नहीं सुनत वह शब्द सुनती है। और हम पागल और अराजक आवाजें पैदा करते रहते है और वे आवाजें गर्भस्थ बच्चों को पीडित कर रही है। वे बच्चे पागल पैदा होंगे। तुमने उन्हें बहुत उपद्रव में डाल दिया है।

ध्वनि से पौधे भी प्रभावित होते है। अगर पौधों के निकट संगीत पूर्ण ध्वनि पैदा की जाए तो उनका विकास अधिक होता है। और उनके निकट अराजक ध्वनि पैदा करने से विकास कम होता है। तुम उन्हें बढ़ने में मदद दे सकते हो। ध्वनियों के द्वारा तुम उन्हें बहुत मदद दे सकते हो।

अब तो वह कहते है कि ट्रैफिक के शोर से, आधुनिक शहरों में होने वाले यातायात के शोर से आदमी पागल हुआ जा रहा है। ट्रैफिक का शोर अराजक है, उसमे जरा भी लयबद्धता नहीं है। कहते है कि यह शोर अपनी चरम सीमा पर पहुंच गया है। और अगर वह इससे भी आगे गया तो आदमी के लिए कोई आशा नहीं रहेगी।

ये ध्वनियां निरंतर तुम पर आघात कर रही है। अगर तुम उनके संबंध में विचार करोगे तो वह तुम्हारे सिर पर चोट करेंगी। और सिर केंद्र नहीं है। केंद्र नाभि में है—नाभि केंद्र, इसलिए ध्वनियों के संबंध में विचार मत करो।

सभी मंत्र अर्थहीन ध्वनियां है। अगर कोई गुरु किसी मंत्र को अर्थ बताता है तो समझना चाहिए कि वह मंत्र ही नहीं है। यह जरूरी है कि मंत्र में कोई अर्थ न हो। उसकी उपयोगिता है; लेकिन उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह तुम्हारे भीतर कुछ करेगा। लेकिन उसमे कोई अर्थ नहीं है। उसे तुम्हारे भीतर शुद्ध ध्वनि के रूप में ही काम करना है। यही कारण है कि मंत्र का विकास हुआ। उसमें कोई अर्थ नहीं है। वह अर्थहीन है। वह शुद्ध ध्वनि है। अगर तुम्हारे भीतर यह शुद्ध ध्वनि पैदा की जा सके, अगर तुम इसे पैदा कर सको तो भी यही विधि प्रयोग की जा सकती है।

''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो, मानों किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो। या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत नाद को सुनो।''

तुम अंगुलि के जरिए कानों को बंद करके भी ध्वनि पैदा कर सकते हो। कोई भी चीज जो बलपूर्वक कानों को बंद कर दे, काम दे देगी। उस हालत में भी एक ध्वनि सुनाई देती है। वह कौन सी ध्वनि है जो कान के बंद करने पर सुनाई देती है? और उसे तुम क्यों सुनते हो?

अमेरिका में ऐसी घटना घटी। किसी नगर के पास से रेलगाड़ी गुजरती थी। आधी रात उसके गुजरने का समय था; कोई दो बजे। फिर एक नई लाइन का उदघाटन हुआ; पुरानी लाइन से गाड़ी का चलना बंद हो गया। लेकिन एक बड़ी हैरानी की बात हुई कि जिस इलाके से पुरानी लाइन गुजरती थी और जिधर से गाड़ी का चलना बंद हो गया था। उन लोगों ने पुलिस से शिकायत की कि उन्हें रात के दो बजे के समय कुछ रहस्यपूर्ण आवाज सुनाई देती है। और इस तरह की इतनी शिकायतें आईं कि पुलिस को जांच-पड़ताल करनी पड़ी।

और पहली बार पता चला कि अगर कोई ध्वनि तुम निरंतर सुनते रहे हो तो और फिर वह बंद हो जाए तो तुम उसकी अनुपस्थिति को सुनने लगोगे। यह मत सोचो कि बस तुम्हें उसका सुनाई देना बंद हो जाएगा; उसका अभाव सुनाई देने लगेगा।

यह ऐसा ही है कि मैं यहां तुम्हें देख रहा हूं और फिर अगर मैं आंखें बंद कर लूं तो तुम्हारा निगेटिव, तुम्हारा उलटा रूप दिखाई देने लगेगा। अगर तुम खिड़की को देखो और फिर आंखें बंद कर लो तो तुम्हें खिड़की का निगेटिव दिखाई देने लगेगा। और यह निगेटिव चित्र इतना जोरदार हो सकता है कि अगर तुम अचानक दीवार को देखो, तो वह दीवार पर प्रक्षेपित हो जाएगा और तुम उसे देख सकोगे।

''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।''

वह निगेटिव ध्वनि ही अनाहत कहलाती हे। क्योंकि वह दरअसल ध्वनि नहीं है। ध्वनि की अनुपस्थिति है। या वह नैसर्गिक ध्वनि है; क्योंकि वह पैदा नहीं की जाती है। सभी ध्वनियां पैदा की जाती है। लेकिन तुम जो ध्वनि कान बंद करके सुनते हो वह अनाहत ध्वनि है। अगर सारा संसार पूरी तरह मौन हो जाए तो तुम उस मौन का भी सुनोंगे।

पास्कल ने कही कहा है कि जिस क्षण मैं अनंत ब्रहमांड की सोचता हूं, उसका मौन मुझे बहुत भयभीत कर देता है। उसे मौन भयभीत करता है, क्योंकि ध्वनियां तो पृथ्वी पर ही है। ध्वनि के लिए वायुमंडल चाहिए। जिस क्षण तुम पृथ्वी के वायुमंडल के बाहर निकल जाते हो वहां कोई ध्वनि नहीं मिलेगी। वहां परम मौन है। उस मौन को तुम पृथ्वी पर भी पैदा कर सकते हो, अगर तुम अपने दोनों कान पूरी तरह से बंद कर लो। तूम धरती पर होकर भी धरती पर नहीं हो, तुम ध्वनि से नीचे उतर गये।

अंतरिक्ष यात्रियों को अनेक चीजों के लिए प्रशिक्षित किया जा रहा है। उनमें उन्हें मौन में रहना भी सिखाया जाता है। उन्हें ध्वनि शून्य कक्षों में रखकर निर्ध्वनि में रहने का अभ्यास कराया जाता है। अन्यथा वे अंतरिक्ष में जाकर पागल हो जाएंगे। उन्हें अनेक समस्यों का सामना करना पड़ता है। उन्हें सबसे गंभीर समस्या यह है कि मनुष्य के ध्वनि भरे जगत के बाहर कैसे रहा जाए। वहां तुम अलग थलग पड़ जाते हो। अकेले हो जाते हो।

अगर तुम किसी जंगल में खो जाओ और कोई आवाज तुम्हें सुनाई दे तो उसके स्त्रोत को न जानते हुए भी तुम कम भयभीत होते हो। तुम्हें लगता है कि कोई है। तुम अकेले नहीं हो; कोई है। सन्नाटे में तुम अकेले हो जाते हो। अगर तुम भीड़ में अपने दोनों कान पूरी तरह से बंद करके अपने में डूब जाओ। तो तुम अकेले हो जाओगे। भीड़ विलीन हो जाएगी। क्योंकि तुम शोरगुल से ही भीड़ को जानते हो।

''कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत नाद को सुनो।''

यह ध्वनियों की अनुपस्थिति बहुत ही सूक्ष्म अनुभव है। यह तुम्हें क्या दे सकता है? जिस क्षण ध्वनियों नहीं रहती है, तुम अपने पर आ जाते हो। ध्वनि के साथ तुम अपने से दूर चले जाते हो। ध्वनि के साथ तुम दूसरे की तरफ चल पड़ते हो। इसे समझने की कोशिश करो। ध्वनि से हम दूसरे से संबंधित होते है। दूसरे से संवाद करते है।

इसीलिए एक अंधा आदमी भी उतनी कठिनाई में नहीं होता जितनी कठिनाई में गूंगा होता है। किसी बहरे आदमी का निरीक्षण करो; वह अमानुषिक मालूम पड़ता है। अंधा आदमी अमानुषिक नहीं मालूम पड़ता, लेकिन गूंगा अमानुषिक मालूम पड़ता है। गुँगा आदमी अंधे से अधिक कठिनाई में होता है। अंधा आदमी देख नहीं सकता। लेकिन वह दूसरे से संवाद तो कर सकता है। वह समाज और परिवार वह बडी मनुष्यता का अंग हो सकता है। वह बातचीत कर सकता है। गुँगा आदमी अचानक समाज से बहार पड़ जाता है।

तुम कल्पना करो कि तुम एक वातानुकूलित और साउंड-प्रूफ कांच के कमरे में हो। वहां न कोई ध्वनि पहूंच सकती है। वहां तुम चीख नह सकते। अपने को अभिव्यक्त करने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते हो। एक बहरा आदमी सतत ऐसे ही दुख स्वप्न में जीता है। संवाद के बिना वह मनुष्यता का अंग नहीं हो पाता है। अभिव्यक्ति के बिना उसके जीवन का फूल नहीं खिल सकता है। वह किसी के भी संपर्क में नहीं आ सकता है। वह तुम्हारे साथ होकर भी तुमसे बहुत दूर रहता है।

अगर ध्वनि दूसरे तक पहुंचने का वाहन है तो मौन स्वयं तक पहुंचने का वाहन है। ध्वनि के द्वारा तुम दूसरे के साथ संवाद करते हो; मौन के द्वारा तुम अपने में, अपने अतल में उतर जाते हो। यही कारण है कि अनेक विधियों में अंतर्यात्रा के लिए मौन को काम में लाया जाता है। बिलकुल गूंगे और बहरे हो जाओ—जरा देर के लिए ही सही। तब तुम अपने अतिरिक्त और कहीं नहीं जा सकते हो। अचानक तुम्हें लगेगा की तुम अपने अंतस में विराज गये हो।

गुरूजिएफ अपने शिष्यों को लंबे मौन में जाने को कहता था। वह इस बात पर जोर देता था कि मौन में न सिर्फ भाषा का व्यवहार बंद रहे। बल्कि आँख या हाथ के इशारे से भी बातचीत न की जाए। किसी तरह का भी संवाद निषिद्ध था। मौन का अर्थ ही है, संवाद शून्यता।

तुमने शायद ये देखा होगा कि जो लोग खूब बात करना जानते है वे समाज में प्रसिद्ध हो जाते है; जो अपने विचारों को ठीक से संप्रेषित कर सकते है वे नेता हो जाते है। धार्मिक, राजनीतिक या साहित्यक, किसी भी क्षेत्र में यही होता है कि जो कुशलता से अपने विचार व्यक्त कर सकते है, जो निपुणता से बातचीत कर सकते है, वे नेता बन जाते है? क्योंकि वे ज्यादा से ज्यादा लोगों तक सर्वसाधारण तक पहुंच सकते है।

क्या तुमने कभी सुना है कि कोई गूंगा आदमी नेता हुआ है? अंधा आदमी आसानी से नेता हो सकता है। कोई कठिनाई नहीं है। कभी-कभी तो वह बड़ा नेता हो जाता है, क्योंकि उसकी आंखों की उर्जा भी उसके कानों को मिल जाती है। कोई गूंगा आदमी जीवन के किसी क्षेत्र में नेता नहीं हो सकता है। उसमे संवाद की क्षमता ही नहीं है। वह समाजिक नहीं हो सकता।

समाज भाषा है। सामाजिक जीवन के लिए, संबंध के लिए भाषा आधारभूत है। भाषा को छोड़कर तुम अकेले पड़ जाते हो। पृथ्वी करोड़ो लोगों से भरी हो; लेकिन भाषा के खोते ह तुम अकेले हो जाओगे।

मेहर बाबा निरंतर चालीस वर्षों तक मौन में रहे। मौन में वे क्या करते थे? सच तो यह है कि मौन में तुम कुछ नहीं कर सकते। क्योंकि हर कृत्य किसी न किसी भांति दूसरों से संबंधित होता है। यदि कल्पना में भी तुम कुछ करोगे तो तुम्हें दूसरों को कल्पित करना होगा। तुम अकेले नहीं कर सकते हो। अगर तुम बिलकुल अकेले हो तो कृत्य असंभव हो जाएगा। करना दूसरों से संबंधित है। यदि तुम भीतर भाषा छोड़ दो तो सब करना समाप्त हो जाता है। तुम तो हो, लेकिन तुम कुछ कर नहीं रहे हो।

कभी-कभी मेहर बाबा अपने शिष्यों को लिखकर सूचित करते थे कि अमुक तारीक को मैं अपना मौन तोड़ने जा रहा हूं। लेकिन उस दिन के आने पर वे मौन नहीं तोड़ते थे। यह सिलसिला चालीस वर्षों तक चलता रहा। और तब वे मौन ही मर गए। बात क्या थी। वे क्यों कहते थे कि मैं अमुक वर्ष, माह और दिन को अपना मौन तोड़ूगा। लेकिन उसे तोड़ नहीं पाते थे? उन्हें अपना यह कार्यक्रम क्यों बार-बार स्थगित करना पड़ता था। उनके भीतर क्या हो रहा था? वे अपना वचन क्यों नहीं पूरा कर पाते थे?

अगर तुम लंबे अरसे के लिए मौन में रह जाओ, उसे जान लो तो तुम्हारे लिए ध्वनि के जगत में लौटना असंभव हो जाएगा। एक नियम है जिसका कि पालन मेहर बाबा ने नहीं किया और इसीलिए वे मौन से नहीं लौट सके। नियम यह है कि किसी को तीन साल से ज्यादा समय तक मौन में नहीं रहना चाहिए। अगर तुम उस सीमा को पार कर जाओ तो तुम ध्वनि के जगत में फिर वापस नहीं आ सकते। तुम प्रयेत्न कर सकते हो। लेकिन यह असंभव है। ध्वनि से मौन में जाना आसान है। लेकिन मौन से ध्वनि में लौटना बहुत कठिन है। तीन वर्षो के बाद बहुत बातें कठिन हो जाती है। तब मैकेनिज्म वही नहीं रह जाता है। पुराने ढंग से काम नहीं कर सकता है। उसको निरंतर उपयोग में लाना जरूरी है। कोई ज्यादा से ज्यादा तीन साल मौन रह सकता है। उससे आगे उसे खींचने से ध्वनि और शब्द पैदा करने वाला मैकेनिज्म बेकार हो जाता है। वह मर जाता है।

दूसरी बात यह है कि अपने साथ अकेले रहते-रहते आदमी इतना मौन और शांत हो जाता है कि अब उसके लिए बातचीत बहुत दुखदायी हो जाती है। तब किसी से बातचीत करने में उसे लगेगा कि मैं दीवार से बात कर रहा हूं। क्योंकि जो व्यक्ति इतने दिन मौन रह गया है वह जानता है कि तुम उसे समझ पाओगे। वह यह भी जानता है कि मैं वही नहीं कह रहा हूं जो कहना चाहता हूं। पूरी बात ही समाप्त हो गई। इतने गहरे मौन के बाद अब वह ध्वनियों के जगत में नहीं लौट सकता है।

यही कारण है कि मेहर बाबा कोशिश करने के बावजूद फिर बोल नहीं पाए। और वे कुछ कहना चाहते थे; उनके पास कुछ कहने योग्य भी था। लेकिन नीचे तल पर उतरने का यंत्र ही व्यर्थ हो चला था। ऐसे जो वे कहना चाहते थे उसे वे कहे बिना चले गए।

यह समझना उपयोगी होगा। जो भी करो, उसके विपरीत भी करते चलो। विपरीत में गति करना मत भूलों। कुछ घंटों के लिए मौन रहो और बातचीत करो। किसी एक ही ढांचे में बंद मत हो जाओ। तब तुम अधिक जीवित और गतिमान रहोगे। कुछ दिनों तक ध्यान करो, और फिर उसे अचानक बंद कर दो। और कुछ ऐसा करो की जिससे तनाव निर्मित हो सके। तब फिर ध्यान में उतर जाओ। विपरीत छोरों के बीच गति करते रहो; उससे तुम ज्यादा जीवित और गति मान रहोगे। बंध मत जाओ। अटक मत जाओ। अटक मत जाओ। एक बार अटक गए तो तुम दूसरे छोर पर गति नहीं कर पाओगे। और दूसरे छोर पर गति करना ही जीवन है। यह गति गई कि तुम भी गए। तब तुम गुर्दा हो। यह गति बहुत शुभ है।

गुरजिएफ अपने शिष्यों को आकस्मिक बदलाहट करना सिखाता था। पहले वह उपवास पर जोर देता था। और फिर कहता था कि जितना खा सको खाओ। और फिर उपवास करवाता था। कुछ शिष्यों से वह कहता था लगातार कुछ दिन-रात जागते रहो। और फिर कुछ दिन-रात सोते रहो।

ध्रुवीय विपरीतताओं के बीच गति करते रहने से जीवंतता और गति उपलब्ध होती है।

''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद, अनाहत को सुनो।''

एक ही विधि में दो विपरीत बातें कही गई है।

''ध्वनि के केंद्र में स्नान करो। मानो किसी जलप्रपात की अखंड ध्वनि में स्नान कर रहे हो।'' यक एक अति है। ''या कानों में अंगुलि डालकर नांदों के नाद को सुनो।'' यह दूसरी अति है। एक हिस्सा कहता है कि अपने केंद्र पर पहुंचने वाली ध्वनियों को सुनो और दूसरा हिस्सा कहता है कि सब ध्वनियों को बंद कर ध्वनियों की ध्वनि को सुनो। एक ही विधि में दोनों को समाहित करने का एक विशेष करण है। ताकि तुम एक छोर से दूसरे छोर पर गति कर सको।

यहां ''या'' शब्द चुनाव करने को नहीं कहता है कि इनमें से किसी एक को प्रयोग करना है। नहीं, दोनों को प्रयोग करो। इसीलिए एक विधि में दोनों को समाविष्ट किया गया है। पहले कुछ महीने तक एक का प्रयोग करो और फिर कुछ महीने बाद दूसरे का प्रयोग करो। इस प्रयोग से तुम ज्यादा जीवंत होगे। और तुम दोनों छोरों को जान लोगे। और अगर तुम दोनों छोरों के बीच आसानी से डोलते रहो तो तुम सदा-सर्वदा युवा बने रहोगे। जो लोग सदा एक ही छोर से अटके रहते है वह बूढे हो जाते है। और मर जाते है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25
तंत्र-सूत्र—विधि—39 (ओशो)
ध्वनि-संबंधी तीसरी विधि:

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चरण करो।

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चरण करो। जैस-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है। वैसे-वैसे तुम भी।''

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो।''
उदाहरण के लिए ओम को लो। यह एक आधारभूत ध्वनि है। उ, इ और म, ये तीन ध्वनियां ओम में सम्मिलित है। ये तीनों बुनियादी ध्वनियां है। अन्य सभी ध्वनियां उनसे ही बनी है। उनसे ही नकली है, या उनकी ही यौगिक ध्वनियां है। ये तीनों बुनियादी है। जैसे भौतिकी के लिए इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन बुनियादी है। इस बात को गहराई से समझना होगा।

गुरजिएफ ने तीन के नियम की बात की है। वह कहता है कि आत्यंतिक अर्थ में अस्तित्व एक है। आत्यंतिक अर्थ में परम अर्थ में एक ही नियम है। लेकिन यह परम है। और जो कुछ हम देखते है वह सापेक्ष है। वह परम नहीं है। वह परम तो सदा प्रच्छन्न है। छिपा है। हम उसे देख नहीं सकते। क्योंकि जैसे ही हमें कुछ दिखाई पड़ता है, वह तीन में विभाजित हो जाता है। वह तीन में, द्रष्टा, दृश्य और दर्शन में बंट जाता है।

मैं तुम्हें देख रहा हूं, तो मैं हूं, तुम हो और हम दोनों के बीच दर्शन का, ज्ञान का संबंध है। प्रक्रिया तीन में बंट गई। परम तीन में विभाजित हो गया। जिस क्षण वह ज्ञान बनता है उसी क्षण वह तीन में बंट जाता है। अज्ञात वह एक है; ज्ञात होते ही वह तीन हो जाता है। ज्ञात सापेक्ष है; अज्ञात परम है। परम के संबंध में हमारी चर्चा भी, हमारी बातचीत भी परम नहीं है। क्योंकि ज्यों ही हम उसे परम कहकर पुकारते है, वह ज्ञात हो जात है। जो भी हम जानते है वह सापेक्ष है; यह परम शब्द भी सापेक्ष हो जाता है।

यही कारण है कि लाओत्से जोर देकर कहता है कि सत्या कहा नहीं जा सकता है। जैसे ही तुम उसे कहते हो वह असत्य हो जाता है। कारण यह है कि शब्द देते ही वह सापेक्ष हो जाता है। हम जो भी शब्द दें, चाहे सत्य, परम, परब्रह्म या ताओ कहें, बोलते ही वह सापेक्ष हो जाता है। बोलते ही वह असत्य हो जाता है। एक तीन में बंट जाता है।

तो गुरजिएफ कहता है कि जिस जगत को हम जानते है उसके लिए तीन कास नियम आधारभूत है। अगर हम गहरे में उतरें तो पाएंगे—पाएंगे ही—कि प्रत्येक चीज तीन में बंधी है। इसे ही तीन का नियम कहते है। ईसाई इसे ट्रिनिटी कहते है, जिसमे ईश्वर पिता, जीसस पुत्र और पवित्र आत्मा सम्मिलित है। भारतीय इसे त्रिमूर्ति कहते है, जिसमें ब्रहमा, विष्णु, महेश के मुख एक ही सिर में है। और अब भौतिक शास्त्र कहता है कि अगर हम पदार्थ का विश्लेषण करते हुए उसके भीतर प्रवेश करें तो पदार्थ भी तीन में टूट जाएगा—इलेक्ट्रॉन, न्यूट्रॉन और प्रोटोन।

वैसे ही कवि कहते है कि यदि हम मनुष्य के सौंदर्य-बोध की, उसके भाव की गहराई में उतरे तो वहां भी तीन ही मिलेंगे। सत्य, शिव और सुंदर। मानवीय भावना भी तीन में बंटी है। और रहस्यवादी कहते है कि अगर हम समाधि का विश्लेषण करें तो वहां भी सच्चिदानंद की त्रयी है—सत, चित और आनंद ही त्रयी है। मनुष्य की पूरी चेतना, चाहे वह जिस किसी आयाम में गति करे, तीन के नियम पर पहुंच जाती है।

और तीन के नियम का प्रतीक है। अ, उ और म—ये तीन बुनियादी ध्वनियां है। तुम उन्हें आणविक ध्वनियां भी कह सकते हो। जिन्हें ओम में सम्मिलित कर दिया है। ओम परम के, परमात्मा के अत्यंत निकट है; उसके पीछे ही परम का अज्ञात का वास है। जहां तक ध्वनियों का संबंध है, ओम उनका अंतिम पड़ाव है। अगर तुम ओम अंतिम ध्वनि है। ये तीन अंतिम है। ये अस्तित्व की सीमा बनाती है; इन तीन के पार अज्ञात में परम में प्रवेश है।

भौतिकविद कहते है कि अब हम इलेक्ट्रॉन पर पहुंचकर अंतिम सीमा पर पहुंच गए है; क्योंकि इलेक्ट्रॉन को पदार्थ नहीं कहा जा सकता। ये इलेक्ट्रॉन, ये विद्युत-अणु दृश्य नहीं है; उनमें पदार्थ तत्व नहीं है। और उन्हें अपदार्थ भी नह कहा जा सकता; क्योंकि सब पदार्थ उनसे ही बनता है। और अगर वह न पदार्थ है और न अपदार्थ है तो फिर उसे क्या कहा जाए। किसी ने भी इलेक्ट्रॉन को नहीं देखा। उनका अनुमान भर होता है। गणित के आधार पर माना गया है कि वे है। उनका प्रभाव जाना गया है; लेकिन उन्हें देखा नहीं गया है। और हम उनके आगे नहीं जा सकते; तीन का नियम आखिरी है। और अगर तुम तीन के नियम के पार जाते हो तो तुम अज्ञात में प्रवेश कर जाते हो। तब कुछ कहना असंभव है। इलेक्ट्रॉन के बारे में बहुत कम कहा जा सकता है।

जहां तक ध्वनि का संबंध है, ओम आखिरी है; तुम ओम के आगे नहीं जा कसते। यही कारण है कि ओम का इतना अधिक उपयोग किया गया। भारत में ही नहीं, सारी दुनियां में ओम का व्यवहार होता आया है। ईसाइयों और मुसलमानों का आमीन ओम का ही दूसरा रूप है। आमीन की बुनियादी ध्वनियां भी वही है। अंग्रेजी के शब्द ओमनीप्रेजेंट, में भी वही है। ओमनीपोटैंट का अर्थ है कि जो परम शक्तिशाली हो।

ईसाई और मुसलमान तो अपनी प्रार्थना के अंत में आमीन कहते है; लेकिन हिंदुओं ने ओम का एक पूरा विज्ञान ही निर्मित किया है। वह ध्वनि का विज्ञान है; वह ध्वनि के अतिक्रमण का विज्ञान है। और अगर मन ध्वनि है तो अ-मन अवश्य निध्वनि होगा। या पूर्णध्वनि होगा। दोनों का एक ही अर्थ है।

इसे ठीक से समझ लेना चाहिए। परम को विधायक या नकारात्मक, किसी भी ढंग से कहा जा सकता है। सापेक्ष का दोनों ढंग से कहना होगा, विधायक और नकारात्मक दोनों ढंग से; क्योंकि वह द्वैत है। लेकिन जब तुम परम को अभिव्यक्त देते चलोगे। तो या तो तुम विधायक शब्द प्रयोग करोगे या नकारात्मक। मनुष्य की भाषा में दोनों तरह के शब्द है। विधायक और नकारात्मक दोनों है। जब तुम परम को, अनिर्वचनीय को बताने चलोगे तो तुम्हें कोई शब्द उपयोग करना होगा। जो प्रयोगात्मक हो। यह मन-मन पर निर्भर है।

सूत्र कहता है : ''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, वैसे-वैसे तुम भी।''

''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो।''

ध्वनि का उच्चारण एक सूक्ष्म विज्ञान है। पहले तुम्हें उसका उच्चारण जोर से करना है, बाहर-बाहर करना है; ताकि दूसरे सुन सकें। जोर से उच्चारण शुरू करना अच्छा है। क्यों? क्योंकि जब तुम जोर से उच्चार करते हो तो तुम भी उसे साफ-साफ सुनते हो। जब तुम कुछ कहते हो तो दूसरे से कहते हो; वह तुम्हारी आदत बन गई है। जब तुम बात करते हो तो दूसरों से करते हो। इसलिए तुम अपने को भी तभी सुनते हो जब दूसरों से बात करते हो। तो एक स्वाभाविक आदत से आरंभ करना अच्छा है।

ओम ध्वनि का उच्चार करो, और फिर धीरे-धीरे उस ध्वनि के साथ लयबद्ध अनुभव करो। जब ओम का उच्चार करो तो उससे भर जाओ। और सब कुछ भूलकर ओम ही बन जाओ। ध्वनि ही बन जाओ। और ध्वनि बन जाना बहुत आसान है; क्योंकि ध्वनि तुम्हारे शरीर में तुम्हारे मन में, तुम्हारे समूचे स्नायु संस्थान में गूंजने लग सकती है। ओम की अनुगूँज को अनुभव करो। उसका उच्चार करो और अनुभव करो कि तुम्हारा सारा शरीर उससे भर गया है। शरीर का प्रत्येक कोश उससे गुंज उठा है।

उच्चार करना लयबद्ध होना भी है। ध्वनि के साथ लयबद्ध होओ। ध्वनि ही बन जाओ। और तब तुम अपने और ध्वनि के बीच गहरी लयबद्धता अनुभव करोगे। तब तुममें उसके लिए गहरा अनुराग पैदा होगा। यह ओम की ध्वनि इतनी सुंदर और संगीतमय है। जितना ही तुम उसका उच्चार करोगे उतने ही तुम उसकी सूक्ष्म मिठास से भर जाओगे। ऐसी ध्वनियां है जो बहुत तीखी है। और ऐसी ध्वनियां है जो बहुत मीठी है। ओम बहुत ही मीठी ध्वनि है। और शुद्धतम ध्वनि है। उसका उच्चार करो और उससे भर जाओ।

जब तुम ओम के साथ लयबद्ध अनुभव करने लगोगे तो तुम उसका जोर से उच्चार करना छोड़ सकते हो। फिर होठो को बंद कर लो और भीतर ही भीतर उच्चार करो। लेकिन यह भीतर उच्चर पहले जोर से करना है। शुरू में यह भीतर उच्चार भी जोर से करना है। ताकि ध्वनि तुम्हारे समूचे शरीर में फैल जाए। उसके हरेक हिस्से को, एक-एक कोशिका को छुए। उससे तुम नव जीवन प्राप्त करोगे। वह तुम्हें फिर से युवा और शक्तिशाली बना देगी।

तुम्हारा शरीर भी एक वाद्य-यंत्र है; उसे लयबद्धता की जरूरत है। जब शरीर की लयबद्धता टूटती है तो तुम अड़चन में पड़ते हो। और यही कारण है कि जब तुम संगीत सुनते हो तो तुम्हें अच्छा लगाता है। तुम्हें अच्छा क्यों लगता है? संगीत थोड़े से लय-ताल के अतिरिक्त क्या है? जब तुम्हारे चारों तरफ संगीत होता है तो तुम अच्छा क्यों महसूस करते हो। और शोरगुल

और अराजकता के बीच तुम्हें बेचैनी क्यों होती है? कारण यह है कि तुम स्वयं संगीतमय हो। तुम वाद्य-यंत्र हो; और वह यंत्र प्रतिध्वनि करता है।

अपने भीतर ओम का उच्चार करो और तुम्हें अनुभव होगा कि तुम्हारा समूचा शरीर उसके साथ नृत्य करने लगा है। तब तुम्हें महसूस होगा कि तुम्हारा सारा शरीर उसमें स्नान कर रहा है; उसका पोर-पोर इस स्नान से शुद्ध हो रहा है। लेकिन जैसे-जैसे इसकी प्रतीति गहरी हो, जैसे-जैसे यह ध्वनि ज्यादा से ज्यादा तुम्हारे भीतर प्रवेश करे, वैसे-वैसे उच्चार को धीमा करते जाओ। क्योंकि ध्वनि जितनी धीमी होगी, वह उतनी ही गहराई प्राप्त करेंगी। वह होम्योपैथी की खुराक जैसी है। जितनी छोटी खुराक उतनी ही गहरी उसकी पैठ। गहरे जाने के लिए तुम्हें सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होता जाना होगा।

भोंडे और कर्कश स्वर तुम्हारे ह्रदय में नहीं उतर सकते। वे तुम्हारे कानों में तो प्रवेश करेंगे। ह्रदय में नहीं। ह्रदय का मार्ग इतना संकरा है और ह्रदय स्वयं इतना कोमल है कि सिर्फ बहुत धीमे, लयपूर्ण और सूक्ष्म स्वर ही उसमे प्रवेश पा सकते है। और जब तक कोई ध्वनि तुम्हारे ह्रदय तक न जाए तब तक मंत्र पूरा नहीं होता। मंत्र तभी पूरा होता है जब उसकी ध्वनि तुम्हारे ह्रदय में प्रवेश करे, तुम्हारे अस्तित्व के गहनत्म, केंद्रीय मर्म को स्पर्श करे। इसलिए उच्चार को धीमा ओ धीमा करते चलो।

और इन ध्वनियों को धीमा और सूक्ष्म बनाने के और भी कारण है। ध्वनि जितनी सूक्ष्म होगी उतने ही तीव्र बोध की जरूरत होगी उसे अनुभव करने के लिए। ध्वनि जितनी भोंडी होगी उतने ही कम बोध की जरूरत होगी। वह ध्वनि तुम पर चोट करने क लिए काफी है। तुम्हें उसका बोध होगा ही। लेकिन वह हिंसात्मक है। अगर ध्वनि संगीत पूर्ण लयपूर्ण और सूक्ष्म हो तो तुम्हें उसे अपने भीतर सुनना होगा। और उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग, बहुत सावधान होना होगा। अगर तुम सावधान न रहे तो तुम सो जा सकते हो। और तब तुम पूरी बात ही चूक जाओगे।

किसी मंत्र या जप के साथ, ध्वनि के प्रयोग के साथ यही कठिनाई है कि वह नींद पैदा करता है। वह एक सूक्ष्म ट्रैंक्विलाइजर है, नींद की दवा है। अगर तुम किसी ध्वनि को निरंतर दोहराते रहे और उसके प्रति सजग न रहे तो तुम सो जाओगे। क्योंकि तब यांत्रिक पुनरूक्ति हो जाती है। तब ओम-ओम यांत्रिक हो जाता है। और पुनरूक्ति ऊब पैदा करती है। नींद के लिए ऊब बुनियादी तौर से जरूरी है; तुम ऊब के बिना नहीं सो सकते। अगर तुम उत्तेजित हो तो तुम्हें नींद नहीं आएगी।

यही कारण है कि आधुनिक मनुष्य धीरे-धीरे नींद खो बैठा है। कारण क्या है? इतनी उत्तेजना है जितनी पहले कभी नहीं थी। पुरानी दुनियां में जीवन ऊब से भरा होता था। पुनरूक्ति की ऊब से भरा होता था। आज भी अगर तुम कहीं पहाड़ियों में छिपे किसी गांव में चले जाओ तो वहां का जीवन ऊब से भरा मिलेगा। हो सकता है, वह ऊब तुम्हें न महसूस हो; क्योंकि तुम वहां का जीवन ऊब से भरा मिलेगा। हो सकता है, हो सकता है वह ऊब तुम्हें न महसूस हो। क्योंकि तुम वहां रहते तो नहीं वहां केवल छुट्टियों के लिए गये हो। ये उत्तेजना बंबई के कारण है। उन पहाड़ियों के कारण नहीं। वे पहाडियाँ बिलकुल उबाने वाली है। जो वहां रहते है वे ऊबे है और सोए है। एक ही चीज, एक ही चर्चा है, जिसमें कोई उत्तेजना नहीं, कोई बदलाहट नहीं। वहां मानो कुछ होता ही नहीं; वहां समाचार नहीं बनते। चीजें वैसे ही चलती रहती है। जैसे सदा से चलती रही है। वे वर्तुल में घूमती रहती है। जैसे ॠतुऐ घूमती है। प्रकृति घूमती है, दिन-रात वर्तुल में घूमते रहते है। वैसे ही गांव में, पुराने गांव में जीवन वर्तुल में घूमता है। यही वजह है कि गांव वालों को इतनी आसानी से नींद आ जाती है। वहां सब कुछ उबाने वाला है।

आधुनिक जीवन उत्तेजनाओ से भर गया है; वहां कुछ भी दोहराता नहीं है। वहां सब कुछ बदलता रहता है, नया होता रहता है। जीवन की भविष्यवाणी वहां नहीं की जा सकती। और तुम इतने उत्तेजना से भरे हो कि नींद नहीं आती। हर रोज तुम नयी फिल्म देख सकते हो, हर रोज तुम नया भाषण सुन सकते हो। हर रोज एक नयी किताब पढ़ सकते हो। हर रोज कुछ न कुछ नया उपलब्ध है। यह सतत उत्तेजना जारी है। जब तुम सोने को जाते हो तब भी उत्तेजना मौजूद रहती है। मन जागते रहना चाहता है। उसे सोना व्यर्थ मालूम होता है।

अगर तुम किसी विशेष ध्वनि को दोहराते रहो तो वह तुम्हारे भीतर वर्तुल निर्मित कर देती है। उससे ऊब पैदा होती है। उससे नींद आती है। यही कारण है कि पश्चिम में महेश योगी का टी. एम. भावतित ध्यान बिना दवा का ट्रैंक्विलाइजर माना जाने लगा है। वह इसलिए क्योंकि वह मात्र मंत्र-जाप है। लेकिन अगर मंत्र-जाप केवल जाप बन जाए, तुम्हारे भीतर कोई सावचेत न रहे तो जाप को सुनता हो, तो उससे नींद तो आ सकती है। लेकिन और कुछ नहीं हो सकता। ट्रैंक्विलाइजर के रूप में वह ठीक है; अगर तुम्हें अनिद्रा का रोग है तो टी. एम. ठीक है। उसे सहायता मिलेगी।

तो ओम के उच्चार को सजग आंतरिक कान से सुनो। और तब तुम्हें दो काम करने है। एक और मंत्र के स्वर को धीमे से धीमा करते जाओ, उसको मंद और सूक्ष्म करते जाओ और दूसरी और उसके साथ-साथ ज्यादा से ज्यादा सजग होते जाओ। जैसे-जैसे ध्वनि सूक्ष्म होगी। तुम्हें अधिकाधिक सजग होना होगा। अन्यथा तुम चूक जाओगे।

यह विधि है: ''ओम जैसी किसी ध्वनि का मंद-मंद उच्चारण करो। जैसे-जैसे ध्वनि पूर्णध्वनि में प्रवेश करती है, वैसे-वैसे तुम भी।''

और उस क्षण की प्रतीक्षा करो जब ध्वनि इतनी सूक्ष्म , इतनी आणविक हो जाए कि अब किसी भी क्षण नियमों के जगत से, तीन के जगत से एक के जगत में, परम के जगत में छलांग ले ले। तब तक प्रतीक्षा करो। ध्वनि का विलीन हो जाना—यह मनुष्य के लिए सर्वाधिक सुंदर अनुभव है। तब तुम्हें अचानक पता चलता है कि ध्वनि कही विलीन हो गई। जरा देर पहले तक तुम ओम-ओम की सूक्ष्म ध्वनि को सुन रहे थे और अब वह बिलकुल नहीं है। तुम एक के जगत में प्रवेश कर गए; तीन का जगत जाता रहा। तंत्र इसे पूर्णध्वनि कहता है। बुद्ध इसे ही निर्ध्वनि कहते है।

यह एक मार्ग है—सर्वाधिक सहयोगी, सर्वाधिक आजमाया हुआ। इस कारण ही मंत्र इतने महत्वपूर्ण हो गए। ध्वनि मौजूद ही है और तुम्हारा मन ध्वनि से भरा है; तुम उसे जंपिग बोर्ड बना सकते हो।

लेकिन इस मार्ग की अपनी कठिनाइयां है। पहली कठिनाई नींद है। जिसे भी मंत्र का उपयोग करना हो उसे इस कठिनाई के प्रति सजग होना चाहिए। नींद ही बाधा है। यह उच्चार इतना पुनरूक्ति भरा है। इतना लयपूर्ण है, इतना उबाने वाला है। कि नींद का आना लाजिमी है। तुम नींद के शिकार हो सकते हो। और यह मत सोचो कि तुम्हारी नींद ध्यान है। नींद ध्यान नहीं है। नींद अपने आप में अच्छी है। लेकिन सावधान रहो। नींद के लिए ही अगर मंत्र का उपयोग करना है तो बात अलग है। लेकिन अगर उसका उपयोग आध्यात्मिक जागरण के लिए करना है तो नींद से सावधान रहना जरूरी है। जो मंत्र का उपयोग साधना की तरह करते है उनके लिए नींद दुश्मन है। और यह नींद बहुत आसानी से घटती है और बहुत सुंदर है।

यह भी स्मरण रहे कि यह और ही तरह की नींद है। यह सामान्य नींद नहीं है। मंत्र से पैदा होने वाली नींद सामान्य नींद नहीं है। यह और ही तरह की नींद है। यूनानी उसे ही हिप्नोस कहते है; उससे ही ''हिप्नोसिस'' शब्द बना है। जिसका अर्थ सम्मोहन होता है। योग उसे योग-तंद्रा कहता है। एक विशेष नींद, जो सिर्फ योगी को घटित होती है। साधारणजन को नहीं। यह हिप्नोस है, सम्मोहन-निद्रा है; यह आयोजित है, सामान्य नहीं है। और भेद बुनियादी है, यह ठीक से समझ लेना चाहिए।

अनेक मंदिरों में, चर्चों में लोग सो जाते है। धर्म-चर्चा सुनते हुए लोग सो जाते है। उन्होंने उन शास्त्रों को इतनी बार सुना है कि उन्हें ऊब होने लगती है। उस चर्चा में अब कोई उत्तेजना न रही। पूरी कथा उन्हें मालूम है। तुमने रामायण इतनी बार सूनी है कि तुम मजे से सो सकते हो। और नींद में ही इसे सून सकते हो। और तुम्हें कभी ऐसा भी नहीं लगेगा कि तुम सो रहे थे। क्योंकि तुम कुछ चुकोगे भी नहीं। कथा से तुम इतने परिचित हो।

उपदेशकों की आवाज गहन रूप से उबाने वाली होती है। नींद पैदा करने वाली होती है। अगर एक ही सुर में तुम कुछ बोलते रहो तो उससे नींद पैदा होगी। अनेक मानस्विद अपने अनिद्रा के रोगियों को धार्मिक चर्चा सुनने की सलाह देते है। उससे नींद

में जाना सरल है। जब भी तुम ऊब से भरोंगे तो तुम सो जाओगे। लेकिन यह नींद सम्मोह है, यह नींद योग-तंद्रा है। इसमें भेद क्यों है?

साधारण नींद में प्रश्न करने वाला मन मौजूद रहता है। वह सौ नहीं जाता है। सम्मोहन में तुम्हारा प्रश्न करने वाला मन सो जाता है। लेकिन तुम नहीं सोए होते हो। यही कारण है कि सम्मोहन विद तुम्हें जो कुछ कहता है उसे तुम सुन पाते हो और तुम उसके आदेश का पालन करते हो। नींद में तुम सुन नहीं सकते; तुम तो सोए हो। लेकिन तुम्हारी बुद्धि नहीं सोती है। इसलिए अगर कुछ ऐसी चीज हो जो तुम्हारे लिए घातक हो सकती है। तो तुम्हारी बुद्धि तुम्हारी नींद को तोड़ देगी।

एक मां अपने बच्चे के साथ सोयी है। वह मां और कुछ नहीं सुनेगा, लेकिन अगर उसका बच्चा जरा सी भी आवाज करेगा, जरा भी हरकत करेगा तो वह तुरंत जाग जाएगी। अगर बच्चे को जरा सी बेचैनी होगी तो मां जाग जायेगी। उसकी बुद्धि सजग है; तर्क करने वाला मन जागा हुआ है।

साधारण नींद में तुम सोए होते हो; लेकिन तुम्हारी तर्क-बुद्धि जागी होती है। इसीलिए कभी-कभी नींद में भी पता चलता है कि वे सपने है। हां, जिस क्षण तुम समझते हो कि यह स्वप्न है, तुम्हारा स्वप्न टूट जाता है। तुम समझ सकते हो कि यह व्यर्थ है; लेकिन ऐसी प्रतीति के साथ ही स्वप्न टूट जाता है। तुम्हारा मन सजग है; उसका एक हिस्सा सतत देख रहा है। लेकिन सम्मोहन या योग तंद्रा से द्रष्टा सो जाता है।

यही उन सबकी समस्या है। जो निर्ध्वनि या पूर्णध्वनि में जाने के लिए, पार जाने के लिए ध्वनि की साधना करते है। उन्हें सावधान रहना है। कि मंत्र आत्मा सम्मोहन न पैदा करे। तो तुम क्या कर सकते हो।

तुम सिर्फ एक चीज कर सकते हो। जब भी तुम मंत्र का उपयोग करते हो, मंत्रोच्चार करते हो, तो सिर्फ उच्चार ही मत करो, उसके साथ-साथ सजग होकर उसको सुनो भी। दोनों काम करो: उच्चार भी करो और सुनो भी। उच्चार और श्रवण दोनों करना अन्यथा खतरा है। अगर सचेत होकर नहीं सुनते हो तो उच्चार तुम्हारे लिए लोरी बन जाएगा। और तुम गहन नींद में सो जाओगे। वह नींद बहुत अच्छी होगी। उस नींद से बाहर आने पर तुम ताजे और जीवंत हो जाओगे। तुम अच्छा अनुभव करोगे। लेकिन यह असली चीज नहीं है। तुम तब असली चीज ही चूक गए।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—25

तंत्र-सूत्र—विधि—40 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी चौथी विधि:

निर्ध्वनि में जागों।'' स्वामी डयूटर

''किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्ध्वनि में जागों।''

कभी-कभी गुरूओं ने इस विधि का खूब उपयोग किया है। और उनके अपने नए-नए ढंग है। उदाहरण के लिए, अगर तुम किसी झेन गुरु के झोंपड़े पर जाओ तो वह अचानक एक चीख मारेगा और उससे तुम चौंक उठोगे। लेकिन अगर तुम खोजोंगे तो तुम्हें पता चलेगा कि वह तुम्हें महज जगाने के लिए ऐसा कर रहा है। कोई भी आकस्मिक बात जगाती है। वह आकस्मिकता तुम्हारी नींद तोड़ देती है।

सामान्य: हम सोए रहते है। जब तक कुछ गड़बड़ी न हो, हम नींद से नहीं जागते। नींद में ही हम चलते है; नींद में ही हम काम करते है। यही कारण है कि हमे अपने सोए होने का पता नहीं चलता। तुम दफ्तर जाते हो, तुम गाड़ी चलाते हो। तुम लौटकर घर आते हो और अपने बच्चों को दुलार करते हो। तुम अपनी पत्नी से बातचीत करते हो। यह सब करने से तुम सोचते हो कि मैं बिलकुल जागा हुआ हूं। तुम सोचते हो कि मैं सोया-सोया ये काम कैसे कर सकता हूं।

लेकिन क्या तुम जानते हो कि ऐसे लोग है जो नींद में चलते है? क्या तुम्हें नींद में चलने वालों के बारे में कछ खबर है।

नींद में चलने वालों की आंखें खुली होती है। और वे सोए रहते है। और उसी हालत में वे अनेक काम कर गुजरते है। लेकिन दूसरी सुबह उन्हें याद भी नहीं रहता कि नींद में मैंने क्या-क्या किया। वे यहां तक कर सकते है कि दूसरे दिन थाने चले जाएं और रपट दर्ज कराए कि कोई व्यक्ति रात उनके घर आया था और उपद्रव कर रहा था। और बाद में पता चलता है कि यह सारा उपद्रव उन्होंने ही किया था। वे ही रात में सोए-सोए उठ आते है। चलते-फिरते है, काम कर गुजरते है; फिर जाकर बिस्तर में सो जाते है। अगली सुबह उन्हें बिलकुल याद नहीं रहता कि क्या-क्या हुआ। वे नींद में दरवाजे तक खोल लेते है, चाबी से ताले तक खोलते है; वे अनेक काम कर गुजरते है। उनकी आंखें खुली रहती है। और वे नींद में होते है।

किसी गहरे अर्थ में हम सब नींद में चलने वाले है। तुम अपने दफ्तर जा सकते हो। तुम लौट कर आ सकते हो, तुम अनेक काम कर सकते हो। तुम वही-वही बात दोहराते रह सकते हो। तुम अपनी पत्नी को कहोगे कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं; और इस कहने में कुछ मतलब नहीं होगा। शब्द मात्र यांत्रिक होंगे। तुम्हें इसका बोध भी नहीं रहेगा। कि तुम अपनी पत्नी से कहते हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। जाग्रत पुरूष के लिए ये सारा जगत नींद में चलने वालों का जगत है।

यह नींद टूट सकती है। उसके लिए कुछ विधियों का प्रयोग करना होगा।

यह विधि कहती है: ''किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्ध्वनि में जागों।''

किसी ध्वनि, किसी अक्षर के साथ प्रयोग करो। उदाहरण के लिए, ओम के साथ ही प्रयोग करो। उसके आरंभ में ही जागों, जब तुमने ध्वनि निर्मित नहीं की। या जब ध्वनि निर्ध्वनि में प्रवेश करे, तब जागों। ये कैसे करोगे?

किसी मंदिर में चले जाओ। वहां घंटा होगा या घंटी होगी। घंटे को हाथ में ले लो और रुको। पहले पूरी तरह से सजग हो जाओ। ध्वनि होने वाली है और तुम्हें उसका आरंभ नहीं चूकना है। पहले तो समग्ररूपेण सजग हो जाओ—मानो इस पर ही तुम्हारी जिंदगी निर्भर है। ऐसा समझो कि अभी कोई तुम्हारी हत्या करने जा रहा है। और तुम्हें सावधान रहना है। ऐसी सावधान रहो—मानों कि यह तुम्हारी मृत्यु बनने वाली है।

और यदि तुम्हारे मन में कोई विचार चल रहा हो तो अभी रुको; क्योंकि विचार नींद है। विचार के रहे तुम सजग नहीं हो सकते। और जब तुम सजग होते हो तो विचार नहीं रहता है। रुको। जब लगे कि अब मन निर्विचार हो गया, कि अब मन में कोई विचार नहीं है। सब बादल छंट गये है। तब ध्वनि के साथ गति करो।

पहले जब ध्वनि नहीं है। तब उस पर ध्यान दो। और फिर आंखें बंद कर लो। और जब ध्वनि हो, घंटा बजे, तब ध्वनि के साथ गति करो। ध्वनि धीमी से धीमी, सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जायेगी और फिर खो जाएगी। इस ध्वनि के साथ यात्रा करो। सजग और सावधान रहो। ध्वनि के साथ उसके अंत तक यात्रा करो। उसके दोनों छोरों को, आरंभ और अंत को देखो।

पहले किसी बाहरी ध्वनि के साथ, घंटा या घंटी के साथ प्रयोग करो। फिर आँख बंद करके भीतर किसी अक्षर का, ओम या किसी अन्या अक्षर का उच्चार करो। उसके साथ वही प्रयोग करो। यह कठिन होगा। इसीलिए हम पहले बाहर की ध्वनि के साथ प्रयोग करते है। जब बाहर करने में सक्षम हो जाओगे तो भीतर करना भी आसान होगा। तब भीतर करो। उस क्षण को प्रतीक्षा करो जब मन खाली हो जाए। और फिर भीतर ध्वनि निर्मित करो। उसे अनुभव करो, उसके साथ गति करो, जब तक वह बिलकुल न खो जाए।

इस प्रयोग को करने में समय लगेगा। कुछ महीने लग जाएंगे कम से कम तीन महीने। तीन महीनों में तुम बहुत ज्यादा सजग हो जाओगे। अधिकाधिक जागरूक हो जाओगे। ध्वनि पूर्व अवस्थ और ध्वनि के बाद की अवस्था का निरीक्षण करना है। कुछ भी नहीं चूकना है। और जब तुम इतने सजग हो जाओ कि ध्वनि के आदि और अंत को देख सको तो इस प्रक्रिया के द्वारा तुम बिलकुल भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

कभी-कभी यह अविश्वसनीय सा लगता है कि ऐसी सरल विधियों से रूपांतरण कैसे हो सकता है। आदमी इतना अशांत है। दुःखी और संतप्त है। और ये विधियां इतनी सरल मालूम देती है। ये विधियां धोखाधड़ी जैसी लगती है। अगर तुम कृष्ण मूर्ति के पास जाओ और उनसे कहो कि यह एक विधि है तो कहेंगे कि यह एक मानसिक धोखाधड़ी है। इसके धोखे में मत पड़ो। इसे भूल जाओ। इसे छोड़ो। देखने पर तो वह ऐसी ही लगती है। धोखे जैसी लगती है। ऐसी सरल विधियों से तुम रूपांतरित कैसे हो सकते हो।

लेकिन तुम्हें पता नहीं है। वे सरल नहीं है। तुम जब उनका प्रयोग करोगे तब पता चलेगा कि वे कितनी कठिन है। मुझसे उनके बारे में सुनकर तुम्हें लगता है कि वे सरल है। अगर मैं तुमसे कहूं कि यह जहर है और उसकी एक बूंद से तुम मर जाओगे। और अगर तुम जहर के बारे में कुछ नहीं जानते हो कि तुम कहोगे; ''आप भी क्या बात करते है? बस, एक बूंद और मेरे सरीखा स्वस्थ और शक्तिशाली आदमी मर जाएगा। अगर तुम्हें जहर के संबंध में कुछ नहीं पता है तो ही तुम ऐसा कह सकते हो। यदि तुम्हें कुछ पता है तो नहीं कह सकते।

यह बहुत सरल मालूम पड़ता है: किसी ध्वनि का उच्चार करो और फिर उसके आरंभ और अंत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ। लेकिन यह बोधपूर्ण होना बहुत कठिन बात है। जब तुम प्रयोग करोगे तब पता चलेगा। कि यह बच्चों का खेल नहीं है। तुम बोधपूर्ण नहीं हो। जब तुम इस विधि को प्रयोग करोगे तो पहली बार तुम्हें पता चलेगा कि मैं आजीवन सोया-सोया रहा हूं अभी तो तुम समझते हो कि मैं जागा हुआ हूं, सजग हूं।

इसका प्रयोग करो, किसी भी छोटी चीज के साथ प्रयोग करो। अपने को कहो कि में लगातार दस श्वासों के प्रति सजग रहूंगा, बोधपूर्ण रहूंगा। और फिर श्वासों की गिनती करो। सिर्फ दस श्वासों की बात है। अपने को कहो कि मैं सजग रहूंगा और एक से दस तक गिनुंगा आती श्वासों को, जाती श्वासों को, दस श्वासों को सजग रहकर गिनुंगा।

तुम चूक-चूक जाओगे। दो या तीन श्वासों के बाद तुम्हारा अवधान और कहीं चला जाएगा। तब तुम्हें अचानक होश आएगा कि मैं चूक गया हूं, मैं श्वासों को गिनना भूल गया। या अगर गिन भी लोगे तो दस तक गिनने के बाद पता चलेगा कि मैंने बेहोशी में गिनी, मैं जागरूक नहीं रहा।

सजगता अत्यंत कठिन बात है। ऐसा मत सोचो कि ये उपाय सरल है विधि जो भी हो। सजगता साधनी है। उसे बोध पूर्वक करना है। बाकी चीजें सिर्फ सहयोगी है। और तुम अपनी विधियां स्वयं भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन एक चीज सदा याद रखने जैसी है कि सजगता बनी रहे। नींद में तुम कुछ भी कर सकते हो; उसमे कोई समस्या नहीं है। समस्या तो तब खड़ी होती है जब यह शर्त लगायी जाती है कि इसे होश से करो, बोध पूर्वक करो।

(इस ध्यान को अति सुंदर और विकसित कर ओशो ने कुंडलिनी ध्यान बनाया है। उसमें दो चरण ओशो ने और जोड़ दिये, पहले तो उर्जा को जगाओं, और फिर नृत्य कर उर्जा का प्रफुलित कर के फैलने दो, केवल आनंदित उर्जा का एक पुंज आपको घेरे रहे। तब तुम अति ऊर्जा से लबरेज हो, फिर सुनो संगीत को....ओर वह भी छम-छम अविरल बहते संगीत को आदि से अंत से अनेक......वाद्य की ध्वनियों के साथ ''स्वामी दूतर'' द्वारा तैयार किया संगीत)

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—41 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पाँचवीं विधि:

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रित ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।
वही चीज।

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो—सितार या किसी अनय वाद्य को। उसमें कई स्वर है। सजग होकर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो। उस स्वर को जो उसका केंद्र हो और उसके चारों और सभी स्वर घूमते हों; उसकी आंतरिक धारा को सुनो, जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे समूचे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुए है। वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है। संगीत को सुनते हुए सजग होकर उसमे प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजों—उस केंद्रीय स्वर को खोजों जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए है। स्वर तो आते जाते रहते है। लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है। उसके प्रति जागरूक होओ।
बुनियादी रूप से मूलत: संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ था। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान विधि के लिए के लिए तैयार किया गया था। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र टेक्नीशियन भी हो सकता है। अगर उसके नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है। लेकिन तब उसने संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी हो। संगीत तो बाहरी चीज है। सितार बजाते हुए वादक सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगाता है। बाहर सितार बजता है और भीतर उसका गहन बोध गति करता है। बहार संगीत बहता रहता है; लेकिन संगीतज्ञ अपने अंतरस्थ केंद्र पर सदा सजग बोधपूर्ण बना रहता है। वही बोध समाधि बन जाता है। वही शिखर बन जाता है।

कहते है कि संगीतज्ञ जब सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है तो वह अपना वाद्य तोड़ देता है। वह अब उसके काम का न रहा है। और अगर उसे अब भी वाद्य की जरूरत पड़ती है तो वह अभी संगीतज्ञ नहीं हुआ है। वह अभी सिक्खड़ ही है। सीख रहा है। अगर तुम ध्यान के साथ संगीत का अभ्यास करते हो, उसे ध्यान बनाते हो तो देर-अबेर आंतरिक संगीत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगा। और बाहरी संगीत ने सिर्फ कम महत्वपूर्ण रहेगा, बल्कि अंतत: वह बाधा बन जाएगा। तुम सितार को उठाकर फेंक दोगे। तुम वाद्य को अलग रख दोगे। क्योंकि अब तुम्हें तुम्हारा आंतरिक वाद्य मिल गया है। लेकिन वह बहारी वाद्य के बिना नहीं मिल सकता। बहारी वाद्य के साथ आसानी से सजग हुआ जा सकता है। लेकिन जब सजगता सध जाए तो तुम बाहर को छोड़ो और भीतर गति कर जाओ। यही बात श्रोता के लिए भी सही है।

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो, तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम विश्राम के लिए उसका उपयोग करते हो। यही दुर्भाग्य है। यही पीड़ा है। जो विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थी उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है। और ऐसे ही आदमी अपने को धोखा दिये जा रहा है। अगर तुम्हें कोई चीज जागने के लिए दि जा रही है।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक सदगुरूओं के उपदेशों को गुप्त रखा गया। क्योंकि सोचा गया कि सोए हुए व्यक्ति को विधियां बताना व्यर्थ है। वह उसे सोने के ही काम लगाएगा; अन्यथा वह नहीं कर सकता। इसलिए पात्रों को ही विधियां दी जाती थी। ऐसे विशेष शिष्यों को ही उनका प्रयोग बताया जाता था जो अपनी नींद को छोड़ने को राज़ी है। जो अपनी नींद से जागने के लिए तैयार है।

ओस्पेंस्की ने अपनी एक पुस्तक जार्ज गुरजिएफ को यह कहकर समर्पित की है कि ''इस व्यक्ति ने मेरी नींद तोड़ी है।''

ऐसे लोग उपद्रवी होते है। गुरजिएफ, बुद्ध या जीसस जैसे लोग उपद्रवी ही होंगे। यही कारण है कि हम उनसे बदला लेते है। जो हमारी नींद में बाधा डालता है। उसे हम सूली पर चढ़ा देते है। वह हमें नहीं भाता है। हम सुंदर सपने देख रहे थे और वह आकर हमारी नींद में बाधा डालता है। तुम उसकी हत्या कर देना चाहते हो। स्वप्न इतना मधुर था।

स्वप्न मधुर हो चाहे न हो, लेकिन एक बात निश्चित है कि वह स्वप्न है और व्यर्थ है, बेकार है। और स्वप्न अगर सुंदर है तो ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि उसमें आकर्षण अधिक होगा। वह नशे का काम कर सकता है।

हम संगीत का, नृत्य का उपयोग नशे के रूप कर रहे है। और अगर तुम संगीत और नृत्य का उपयोग नशे की तरह कर रहे हो तो वे तुम्हारी नींद के लिए ही नहीं, तुम्हारी कामुकता के लिए भी नशे का काम देंगे। और यह स्मरण रहे कि कामुकता और नींद संगी-साथी है। जो जितना सोया-सोया होगा, वह उतना ही कामुक होगा। जो जितना जागा हुआ होगा, वह उतना ही कम कामुक होगा। कामुकता की जड़ नींद में है। जब तुम जागोगे तो ज्यादा प्रेमपूर्ण होओगे; कामवासना की पूरी ऊर्जा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सूत्र कहता है: ''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त कैंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

और तब तुम उसे जान लोगे जो जानना है, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके केंद्रीय तत्व को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे। और उसे जागरूकता के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते है। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। अगर तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जायेगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होगे, सब जगह होगे। सर्वव्यापी हो जाओगे। तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे, तुम अनंत हो जाओगे।

मन सीमा है; ध्यान से अनंत में प्रवेश है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी छठवीं विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)
किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे;

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

कोई भी ध्वनि काम देगी; लेकिन अगर तुम्हारी कोई प्रिय ध्वनि हो तो वह बेहतर होगी। क्योंकि तुम्हारी प्रिय ध्वनि मात्र ध्वनि नहीं रहती; जब तुम उसका उच्चार करते हो तो उसके साथ एक अप्रकट भाव भी उठता है। और फिर धीरे-धीरे वह ध्वनि तो विलीन हो जाएगी और भाव भर रह जाएगा।

ध्वनि को भाव की तरह से जाने वाले मार्ग की तरह उपयोग करना चाहिए। ध्वनि मन है और भाव ह्रदय है। मन को ह्रदय से मिलने के लिए मार्ग चाहिए। ह्रदय में सीधा प्रवेश कठिन है। हम ह्रदय को इतना भुला दिए है। हम ह्रदय के बिना इतने जन्मों से रहते आए है कि हमें पता ही नहीं रहा कि कहां से उसमे प्रवेश करें। द्वार बंद मालूम पड़ता है। हम ह्रदय की बात बहुत करते है। लेकिन वह बातचीत भी मन की ही है। हम कहते है कि हम ह्रदय से प्रेम करते है। लेकिन हमारा प्रेम भी मानसिक है। मस्तिष्क गत है। हमारा प्रेम भी बौद्धिक प्रेम है। ह्रदय की बात भी मस्तिष्क में घटित होती है। हमें पता ही नहीं रहा है कि ह्रदय कहां है।

ह्रदय से मेरा अभिप्राय शारीरिक ह्रदय से नहीं है। उसे तो हम जानते है। लेकिन शरीर शास्त्री और वैद्य-डाक्टर कहेंगे कि उस ह्रदय में प्रेम की संभावना नहीं है; वह तो केवल पंप का काम करता है, फुफ्फुस का काम करता है। उसमे और कुछ नहीं है। और बातें बस कपोलकल्पना है, कविता है, स्वप्न है।

लेकिन तंत्र जानता है कि तुम्हारे शारीरिक ह्रदय के पीछे ही एक गहरा केंद्र छिपा है। उस गहरे केंद्र तक मन के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। क्योंकि हम मन में है। हम अपने मन में है और अंतस की और कोई भी यात्रा वहीं से आरंभ हो सकती है।

मन ध्वनि है। आवाज है। अगर सब ध्वनि बंद हो जाए तो तुम्हारा मन नहीं रहेगा। मौन में मन नहीं है। यही कारण है कि मौन पर इतना बल दिया जाता है। मौन अ-मन अवस्था है। आमतौर से हम कहते है कि मेरा मन शांत हो रहा है। यह बात ही बेतुकी है। अर्थहीन है। क्योंकि मन का अर्थ है मौन की अनुपस्थिति। तुम यह नहीं कह सकते कि मन शांत है। मन है तो शांत नहीं हो सकता और शांति है तो मन नहीं हो सकता। शांत मन नाम की कोई चीज नहीं होती। हो नहीं सकती। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम कहो कि कोई व्यक्ति जीवित मृत है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर वह मृत है तो वह जीवित नहीं हो सकता।

और अगर वह जीवित है तो मृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मन जब विदा होता है तो शांति आती है। या कहो कि शांति आती है तो मन विदा हो जाता है। दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

मन ध्वनि है। अगर यह ध्वनि व्यवस्थित है तो तुम स्वस्थ चित हो। और अगर वह अराजक हो तो तुम विक्षिप्त कहलाओगे। लेकिन दोनों हालत में ध्वनि है। आवाज है। और हम मन के तल पर रहते है। उस तल से हृदय के आंतरिक तल पर कैसे उतरा जाए?
ध्वनि का उपयोग करो। ध्वनि का उच्चार करो। किसी एक ध्वनि का उच्चार उपयोगी होगा। अगर मन में अनेक ध्वनियां है तो उन्हें छोड़ना कठिन होगा। और अगर एक ही ध्वनि हो तो उसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। इसलिए पहले एक ध्वनि के लिए अनेक का त्याग करना होगा। एकाग्रता का यही उपयोग है।

इसलिए अच्छा हो कि कोई ध्वनि, कोई नाम, कोई मंत्र लो, जो तुम्हें प्रीतिकर हो, जिससे तुम्हारा भाव जुड़ा हो। अगर कोई हिंदू राम शब्द का उपयोग करता है तो उसके साथ उसका भाव जुड़ा होगा। यह उसके लिए मात्र शब्द नहीं रहेगा। यह उसकी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहेगा; इसकी तरंगें उसके हृदय तक चली जाएंगी उसको भला इसका पता न हो; लेकिन यह ध्वनि उसके रक्त में समाई है। उसकी मांस मज्जा में सम्माहित है। उसके पीछे लंबी परंपरा है। गहरे संस्कार है; उसके पीछे जन्मों-जन्मों के संस्कार है। जिस ध्वनि के साथ तुम्हारा लंबा लगाव बन जाता है। वह तुममें गहरी जड़ें जमा लेती है। इसका उपयोग करो। उसका उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि दुनिया के दो सबसे पुराने धर्म—हिंदू और यहूदी—धर्म परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं करते। वे सबसे प्राचीन धर्म है, आदि धर्म है; और सारे धर्म उनकी ही शाखा प्रशाखा है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी परंपरा की शाखाएं है। और बौद्ध, जैन और सिक्‍ख धर्म हिंदू धर्म की शाखाएं है। और ये दोनों आदि धर्म धर्म-परिवर्तन को नहीं मानती।

अगर तुम्हें किसी ध्वनि से प्रेम नहीं है तो अपना नाम ही उपयोग करो। लेकिन यह भी बहुत कठिन है। कारण यह है कि तुम अपने प्रति इतनी निंदा से भरे हो कि तुम्हें अपने प्रति कोई भाव नहीं है। कोई आदर नहीं है। दूसरे भले तुम्हारा आदर करते हों; लेकिन तुम खुद अपना आदर नहीं करते हो।

तो पहले बात है कि कोई उपयोगी ध्वनि खोजों। उदाहरण के लिए, अपने प्रेमी या अपनी प्रेमिका का नाम भी चलेगा। अगर तुम्हें फूल से प्रेम है तो गुलाब शब्द काम दे देगा। कोई भी ध्वनि जो तुम्हें भाती है। जिसे सुनकर तुम स्वस्थ अनुभव करते हो। उसका उपयोग कर लो। और अगर तुम्हें ऐसा कोई शब्द न मिले तो परंपरागत स्रोतों से जो कुछ शब्द उपलब्ध है उनका उपयोग कर सकते हो। ओम का उपयोग करो। आमीन का उपयोग करो। मरिया भी चलेगा। राम भी चलेगा। बुद्ध भी चलेगा। महावीर का नाम भी काम में लाया जा सकता है। कोई भी नाम जिसके लिए तुम्हें भाव हो, चलेगा। लेकिन भाव होना जरूरी है। इसीलिए गुरु का नाम सहयोगी हो सकता है। लेकिन भाव चाहिए। भाव अनिवार्य है।

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो, कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

ध्वनि को निरंतर घटाते जाओ। उच्चार को इतना धीमा करो कि तुम्हें भी उसे सुनने के लिए प्रयत्न कना पड़े। ध्वनि को कम करते जाओ, और तुम्हें फर्क मालूम होगा। ध्वनि जितनी धीमी होगी, तुम उतने ही भाव से भरोंगे। और जब ध्वनि विलीन होती है तो भाव ही शेष रहता है। इस भाव को नाम नहीं दिया जा सकता वह प्रेम है, प्रगाढ़ प्रेम है। लेकिन यह प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं है। यही फर्क है।

जब तुम कोई ध्वनि या शब्द उपयोग करते हो तो उसके साथ प्रेम जुड़ा रहता है। तुम राम-राम करते हो तो इस शब्द के प्रति तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा भाव है। लेकिन यह भाव राम के प्रति निवेदित है, राम पर सीमित है। लेकिन जब तुम राम ध्वनि को मंद से मंदतर करते जाते हो तो एक क्षण आयेगा। जब राम विदा हो जाएगा। ध्वनि विदा हो जाएगी और सिर्फ भाव शेष रहेगा। यह प्रेम का भाव है जो राम के प्रति नहीं है। यह किसी के भी प्रति नहीं है। केवल प्रेम का भाव है—मानो तुम प्रेम के सागर हो।

प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होता तो वह ह्रदय का प्रेम होता है। और जब वह निवेदित प्रेम होता है तो वह मस्तिष्क का होता है। जो प्रेम किसी के प्रति है, वह मस्तिष्क से घटित होता है। और केवल प्रेम मात्र प्रेम ह्रदय को होता है। और यह केवल प्रेम अनिवेदित प्रेम ही प्रार्थना बनता है। अगर वह किसी के प्रति निवेदित है तो वह प्रार्थना नहीं बन सकता; तब तुम अभी रहा पर ही हो।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर तुम ईसाई हो तो तुम हिंदू की भांति नहीं आरंभ कर सकते; तुम्हें ईसाई की भांति आरंभ करना चाहिए। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम ईसाई की तरह शुरू नहीं कर सकते। तुम्हें मुसलमान की तरह ही शुरू करना चाहिए। लेकिन तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही कम मुसलमान या ईसाई या हिंदू रहोगे। सिर्फ आरंभ हिंदू मुसलमान या ईसाई की तरह से होगा।

तुम जितना ही ह्रदय की तरफ गति करोगे—ध्वनि जिनी कम होगी और भाव जितना बढ़ेगा—तुम उतने ही कम हिंदू या मुसलमान रह जाओगे। और जब ध्वनि विलीन हो जाएगी तो तुम केवल मनुष्य होगे...न हिंदू। न मुसलमान। न ईसाई।

संप्रदाय या धर्म का यही फर्क है। धर्म एक है; संप्रदाय अनेक है। संप्रदाय शुरू करने में सहयोगी है। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि संप्रदाय अंत है, मंजिल है, तो तुम कही के नहीं रहोगे। वे आरंभ भर है। तुम्हें उनके पार जाना होगा; क्योंकि आरंभ अंत नहीं है। अंत में धर्म है; आरंभ में संप्रदाय है। संप्रदाय का उपयोग धर्म के लिए करो। सीमित का उपयोग असीम के लिए करो; क्षुद्र का उपयोग विराट के लिए करो।

यदि तुम किसी हिंदू मंदिर में गये हो तो वहां तुमने गर्भ-गृह का नाम सुना होगा। मंदिर के अंतरस्थ भाग को गर्भ कहते है। शायद तुमने ध्यान न दिया हो कि उसे गर्भ क्यों कहते है। अगर तुम मंदिर की ध्वनि का उच्चार करोगे—हरेक मंदिर की अपनी ध्वनि है, अपना मंत्र है। अपना इष्ट देवता है। और इस इष्ट देवता से संबंधित मंत्र है। अगर उस ध्वनि का उच्चार करोगे तो पाओगे कि उससे वहां वही उष्णता पैदा होती है जो मां के गर्भ में पाई जाती है। यही कारण है कि मंदिर के गर्भ जैसा गोल और बंद, करीब-करीब बंद बनाया जाता है। उसमे एक ही छोटा सा द्वारा रहता है।

जब ईसाई पहली बार भारत आये और उन्होंने हिंदू मंदिरों को देखा तो उन्हें लगा कि ये मंदिर तो बहुत अस्वास्थ्यकर कर है। उनमें खिड़की नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा है। लेकिन मां के गर्भ में भी तो एक ही द्वार होता है। और उसमे भी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं रहती। यही वजह है कि मंदिर को ठीक मां के पेट जैसा बनाया जाता है। उसमे एक ही दरवाजा रखा जाता है। अगर तुम उसकी ध्वनि का उच्चार करते हो तो गर्भ सजीव हो उठता है। और इसे इसलिए भी गर्भ कहा जाता है। क्योंकि वहां तुम नया जन्म ग्रहण कर सकते हो। तुम नया मनुष्य बन सकते हो।

यही कारण है कि मंदिरों में अन्य धर्मों के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। अगर कोई मुसलमान नहीं है तो उसे मक्का में प्रवेश नहीं मिल सकता है। और यह ठीक है। इसमे कोई भूल नहीं है। इसका कारण यह है कि मक्का एक विशेष विज्ञान का स्थान है। जो व्यक्ति मुसलमान नहीं है वह वहां ऐसी तरंग लेकिर जाएगा जो पूरे वातावरण के लिए उपद्रव हो सकती है। अगर किसी मुसलमान को हिंदू मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता है तो यह अपमानजनक नहीं है। जो सुधारक है, वह मंदिरों के विषय में कुछ नहीं जानते। धर्म एक गुह्म विज्ञान है। वे केवल उपद्रव पैदा करते है।

हिंदू मंदिर केवल हिंदुओं के लिए है। क्योंकि हिंदू मंदिर एक विशेष स्थान है, विशेष उदेश्य से निर्मित हुआ है। सदियों-सदियों से वे इस प्रयत्न में लगे है। कि कैसे जीवंत मंदिर बनाएँ जाएं। और कोई भी व्यक्ति उसमे उपद्रव पैदा कर सकता है। और यह उपद्रव खतरनाक है। सिद्ध हो सकता है। मंदिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। वहाँ एक विशेष उदेश्य से और विशेष लोगों के लिए बनाया गया है। वह आम दर्शकों के लिए नहीं है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में आम दर्शकों को वहां प्रवेश नहीं मिलता था। अब सब को जाने दिया जाता है; क्योंकि हम नहीं जानते है कि हम क्या कर रहे है। दर्शकों को नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह कोई खेल तमाशे का स्थान नहीं है। यह स्थान विशेष तरंगों से तरंगायित है, विशेष उदेश्य के लिए निर्मित हुआ है।

इसलिए एक स्थान का उपयोग करो—स्थान के रूप में मंदिर अच्छा है। ये विधियां मंदिर के लिए है। मंदिर अच्छा है; मस्जिद अच्छी है। चर्च अच्छा है। तुम्हारा अपना धर इन विधियों के लिए उपयुक्त नहीं है। वहां इतना कोलाहल है कि वह अराजकता का स्थान बन गया है। और तुम इतने बलवान नहीं हो कि अपनी ध्वनि से उस वातावरण को बदल सको। तो अच्छा है कि किसी ऐसी जगह चले जाओ। जो किसी विशेष ध्वनि के लिए बना हो। ऐसे स्थान का उपयोग करो। और अच्छा है कि रोज-रोज एक ही स्थान को काम में लाओ।

धीरे-धीरे तुम शक्ति शाली हो जाओगे। और धीरे-धीरे मन से ह्रदय में उतर जाओगे। तब तुम कही भी यह प्रयोग कर सकते हो। तब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा मंदिर बन जाएगा। तब समस्या नहीं रहेगी।

लेकिन आरंभ में स्थान का चुनाव जरूरी है। और अगर समय का, निश्चित समय का चुनाव कर सको तो यह और अच्छा। क्योंकि तब वह मंदिर उस निश्चित समय पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। रोज ठीक उसी समय पर मंदिर तुम्हारा इंतजार करेगा। उस वक्त वह ज्यादा खुला होगा। उसे प्रसन्नता होगी कि तुम आ गए। वह सारा स्थान प्रसन्न होगा। और मैं ये बात प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, यह एक सच्चाई है।

यह ऐसा है कि जैसे तुम किसी निश्चित समय पर भोजन लेते हो और रोज ठीक उसी समय पर तुम्हारा शरीर भूख अनुभव करने लगता है। शरीर की अपनी अलग आंतरिक घड़ी है। शरीर अपने ठीक समय पर भूख प्यास अनुभव करता है। अगर तुम प्रतिदिन एक विशेष समय पर सोते हो तो तुम्हारा पूरा शरीर उस समय सोने के लिए तैयार हो जाता है। और अगर तुम रोज-रोज अपने खाने और सोन का समय बदलते रहते हो तुम अपने शरीर को उपद्रव में डाल रहे हो।

अब तो वे कहते है कि ऐसे परिवर्तन से तुम्हारी आयु प्रभावित हो सकती है। अगर तुम रोज-रोज अपने शरीर की चर्या को, रूटीन को बदलते हो तो संभव है कि तुम्हारी उम्र कम हो जाए। यदि तुम अस्सी साल जीने वाले थे तो इस सतत परिवर्तन के कारण तुम सत्तर साल ही जीओगे। तुम दस साल गंवा दोगे। और अगर तुम शरीर की घड़ी के अनुसार अपनी चर्या चलाते हो तो तुम आसानी से अस्सी साल की बजाएं नब्बे साल वर्षो तक जीवित रह सकत हो। दस वर्ष जोड़े जा सकते है।

ठीक इसी तरह तुम्हारे चारों तरफ हर चीज की अपनी घड़ी है और सारा संसार जागतिक समय में गति करता है। अगर तुम प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर तुम्हारे लिए तैयार होता है। और तुम मंदिर के लिए तैयार होते हो। ये दो तैयारियाँ आपस में मिलती है। और उसका फल हजार गुना हो जाता है।

यह तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए सुरक्षित कर ले सकते हो। लेकिन तब उस स्थान को किसी और काम के लिए उपयोग मत करो। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें है। अगर तुम उस स्थान को व्यवसाय के काम में लाते हो, वहां ताश खेलते हो, तो वह स्थान कनफ्यूज्ड हो जाएगा। अब तो इन कनफ्यूज्ड को रेकार्ड करने के यंत्र है; जाना जा सकता है कि स्थान कनफ्यूज्ड है।

अगर तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए अलग कर लो तो अच्छा । घर में एक छोटा सा मंदिर ही बना लो; बहुत अच्छा रहेगा। अगर तुम एक छोटा मंदिर बना सको तो सर्वोतम है। लेकिन फिर उसे किसी दूसरे काम में मत लाओ। उसे अपना निजी मंदिर रहने दो। और शीध्र ही परिणाम आने लगेंगे।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—43 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी सातवीं विधि:

स्वामी आनंद प्रसाद ”मनसा”

‘’मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।‘’

मन को शरीर में कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। सामान्यत: हमने उसे सिर में स्थिर कर रखा है; लेकिन उसे कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। और स्थिर करने के स्थान के बदलने से तुम्हारी गुणवता बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्व के कई देशों में, जापान, चीन, कोरिया आदि में परंपरा से सिखाया जाता है कि मन पेट में है। सि में नहीं है। और इस करण उन लोगों के मन के गुण बदल जाते है। जो सोचते है कि मन पेट में है। जो लोग सोचते है कि मन सिर में है। उनके ये गुण नहीं हो सकते।

असल में मन कहीं भी नहीं है। सिर में है मस्तिष्क; मन का अर्थ है एकाग्रता; तुम मन को कही भी स्थिर कर सकते हो। और जहां उसे एक बार स्थिर कर दोगे वहां से उसे हटाना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, अब मनोवैज्ञानिक और मनुष्य के गहरे में शोध करने वाले लोग कहते है कि जब तुम संभोग कर रहे हो तो तुम्हारा मन सिर से उतर कर कामेंद्रित पर चला जाता है। अन्यथा तुम्हारी काम-क्रिया बेकार जाएगी। अगर मन सिर में ही रहे तो तुम काम-भोग में गहरे नहीं उतर पाओगे। तब

काम-समाधि नहीं घटित होगी और तुम्हें आर्गाज्म का अनुभव नहीं होगा। तब तुम्हें उसका शिखर नहीं प्राप्त होगा। तुम बच्चे पैदा कर सकेत हो; लेकिन तुम्हें प्रेम के शिखर का कोई अनुभव नहीं होगा।
तुम्हें उसकी कोई समझ नहीं है। जिसकी तंत्र चर्चा करता है या जिसे खजुराहो चित्रित करता है। तुम नहीं समझ सकते। क्या तुमने खजुराहो देखा है, अगर तुम खजुराहो नहीं गए हो तो तुमने खजुराहो के मंदिरों के चित्र अवश्य देखे होंगे। उनके चेहरों को ध्यान से देखो; संभोग रत जोड़ों को देखो, उनके चेहरो को देखो। वे चेहरे दिव्य मालूम पड़ते है। वे काम-भोग में संलग्न है; लेकिन उनके चेहरों में बुद्ध की समाधि झलकती है। उन्हें क्या हो गया है?

उनका काम भोग मानसिक नहीं है। वे बुद्धि से संभोग नहीं करते है; वे उसके संबंध में विचार नहीं करते है। वे बुद्धि से नीचे उतर आए है; उनका फोकस बदल गया है; और सिर से हट जाने के कारण उनकी चेतना कर्मेंद्रिय पर उतर आई है। अब मन नहीं है। अब मन अ-मन हो गया है। इसीलिए उनके चेहरों पर बुद्ध की समाधि झलकती है। उनका काम-भोग ध्यान बन गया है।

क्यों फोकस बदल गया। अगर तुम अपने मन के फोकस को बदल देते हो, अगर तुम उसे सिर से हटा लेते हो। तो सिर विश्राम में होता है। चेहरा विश्राम में होता है। तब सभी तनाव विलीन हो जाते है। तब तुम नहीं हो, तब अहंकार नहीं है।

यही कारण है कि चित जितना बौद्धिक होता है, बुद्धिवादी होता है, उतना ही वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रेम के लिए भिन्न फोकसिंग की जरूरत है। प्रेम में तुम्हारा फोकस ह्रदय के पास होने की जरूरत है; संभोग में तुम्हारा फोकस काम केंद्र के पास होने की जरूरत है। जब तुम गणित करते हो तो सिर उसके लिए उचित जगह है। लेकिन प्रेम गणित नहीं है; संभोग बिलकुल गणित नहीं है। और अगर सिर में गणित से भरे होकर तुम संभोग में उतरते हो तो तुम अपनी ऊर्जा नष्ट करते हो। तब सारा श्रम बेचैनी पैदा करेगा।

लेकिन मन को बदला जा सकता है। तंत्र कहता है कि शरीर में सात चक्र है और मन को उनमें से किसी भी चक्र पर स्थिर किया जा सकता है। प्रत्येक चक्र का अलग गुण है। और अगर तुम एक विशेष चक्र पर एकाग्र करोगे तो तुम भिन्न ही व्यक्ति हो जाओगे।

जापान में एक सैनिक समुदाय हुआ है, जो भारत के क्षत्रियों जैसा है। उन्हें समुराई कहते है, उन्हें सैनिक के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। और उन्हें पहली सीख यह दी जाती है कि तुम अपने मन को सिर से उतार कर नाभि-केंद्र के ठीक दो इंच नीचे ले आओ। जापान में इस केंद्र को हारा कहते हे। समुराई को मन को हारा पर लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक समुराई हारा को अपने मन का केंद्र नहीं बना लेना है तब तक उसे युद्ध में भाग लेने की इजाजत नहीं है।

और यही उचित है। समुराई संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गिने जाते है। दुनिया में समुराई का कोई मुकाबला नहीं है। वह भिन्न ही किस्म का मनुष्य है, भिन्न ही प्राणी है; क्योंकि उसका केंद्र भिन्न है।

वे कहते है कि जब तुम युद्ध करते हो तो समय नहीं रहता है। और मन को समय की जरूरत पड़ती है। वह हिसाब-किताब करता है। अगर तुम पर कोई आक्रमण करे और उसे समय तुम्हारा मन सोच-विचार करने लगे कि कैसे बचाव किया जाए, तो तुम गए; तुम अपना बचाव न कर सकोगे। समय नहीं है; तुम्हें तब समयातित में काम करना होगा। और मन समयातित में काम नहीं कर सकता है। मन को समय चाहिए। मन को समय चाहिए। चाहे कितना भी थोड़ा हो, मन को समय चाहिए।

नाभि के नीचे एक केंद्र है जिसे हारा कहते है; यह हारा समयातित में काम करता है। अगर चेतना को हारा पर स्थिर किया जाए और तब योद्धा लड़े तो वह युद्ध प्रज्ञा से लड़ा जाएगा। मस्तिष्क से नहीं। हारा पर स्थिर योद्धा आक्रमण होने के पूर्व जान जाता है के आक्रमण होने वाला है। यह हारा का एक सूक्ष्म भाव है। बुद्धि का नहीं। यह कोई अनुमान नहीं है; यह टेलीपैथी है।

इसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करो, उसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करने की सोचो। वह विचार उसे पहुंच जाता है। उसके हारा पर चोट लगती है और वह अपना बचाव करने को तत्पर हो जाता है। वह आक्रमण होने के पहले ही अपने बचाव में लग जाता है। उसने अपना बचाव कर लिया।

कभी-कभी जब दो समुराई आपस में लड़ते है तो हार-जीत मुश्किल हो जाती है। समस्या यह होती है कि कोई किसी को नहीं हरा सकता। किसी को विजेता नहीं घोषित कर सकता। एक तरह से निर्णय असंभव है; क्योंकि आक्रमण ही नहीं हो सकता। तुम्हारे आक्रमण करने के पहले ही वह जान जाता है।

एक भारतीय गणितज्ञ हुआ। सारा संसार चकित था; क्योंकि वह कोई हिसाब-किताब नहीं करता था। उसका नाम रामानुजम था। तुम उसे कोई भी समस्या दो और वह तुरंत उत्तर बता देता था। इंग्लैंड का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हार्डी तो रामानुजम के पीछे पागल था। हार्डी सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। लेकिन उसे भी किसी-किसी प्रश्न को हल करने में छह-छह घंटे लग जाते थे। लेकिन रामानुजम का हाल यह था कि तुम उसे प्रश्न दो और वह उसका उत्तर तुरंत बता देता था। इस ढंग से मन के काम करने का कोई उपाय नहीं है। मन को तो समय चाहिए। रामानुजम को बार-बार पूछा गया कि तुम यह कैसे करते हो? वह कहता था कि मैं नहीं जानता; तुम मुझे प्रश्न कहते हो और मुझे उसका उत्तर आ जाता है। वह कहीं नीचे से आता है। वह मेरे सिर से नहीं आता है।

यह उत्तर उसके हारा से आता था। उसे खुद यह बात नहीं मालूम थी। उसे कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिला था। लेकिन मेरे देखे वह अपने पिछले जन्म में जापानी रहा होगा; क्योंकि भारत में हमने हारा पर काम नहीं किया है।

तंत्र कहता है कि अपने मन को भिन्न-भिन्न केंद्रों पर स्थिर करो और उसके भिन्न-भिन्न-भिन्न परिणाम होंगे। यह विधि मन को जीभ पर, जीभ के मध्य भाग पर स्थिर करने को कहती है।

''मुंह को थोड़ा सा खुला रखते हुए....।''

मानो तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को बंद नहीं, थोड़ा सा खुला रखना है—मानो तुम बोलने वाले हो। ऐसा नहीं है कि तुम बोल रहे हो; ऐसा ही कि तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को इतना ही खोलों जितना उस समय खोलते हो जब बोलने को होते हो। और तब मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। तब तुम्हें अनूठा अनुभव होगा। क्योंकि जीभ के ठीक बीच में एक केंद्र है जो तुम्हारे विचारों को नियंत्रित करता है। अगर तुम अचानक सजग हो जाओ और उस केंद्र पर मन को स्थिर करो तो तुम्हारे विचार बंद हो जाते है। जीभ के ठीक बीच में मन को स्थिर करो—मानो तुम्हारा समस्त मन जीभ में चला आया है। जीभी के ठीक बीच में।

मुंह को थोड़ा सा खुला रखो, जैसे कि तुम बोलने जा रहे हो। और तब मन को इस तरह स्थिर करो कि वह सिर में न होकर जीभ में आ जाए, जीभ के ठीक मध्य भाग में।

जीभ में वाणी का, बोलने का केंद्र है; और विचार वाणी है। जब तुम सोचते हो, विचार करते हो तो क्या करते हो? तुम अपने भीतर बातचीत करते हो। क्या तुम भीतर बातचीत किए बिना विचार कर सकते हो? तुम अकेले हो; तुम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत नहीं कर रहे हो। लेकिन तब भी तुम विचार कर रहे हो। तब तुम विचार कर रहे हो तो क्या कर रहे हो? तुम अपने बातचीत कर रहे हो, उसमें तुम्हारी जी संलग्न है।

अगली दफा जब तुम विचार में संलग्न होओ तो सजग होकर अपनी जीभ पर अवधान दो। उस वक्त तुम्हारी जीभ ऐसे कंपित होगी जैसे वह किसी के साथ बातचीत करते समय होती है। फिर अवधान दो और तुम्हें पता चलेगा कि तरंगें जीभ के मध्य में केंद्रित है; वे मध्य से उठकर पूरी जीभ पर फैल जाती है।

विचार करना अंतस की बातचीत है। और अगर तुम अपनी चेतना को, अपने मन को जीभ के मध्य में केंद्रित कर सको तो विचार ठहर जाते है। जो लोग मौन का अभ्यास करते है, वे यही तो करते है कि बातचीत के प्रति बहुत बोधपूर्ण हो जाते है। और अगर तुम महीने दो महीने, या वर्ष भर बिलकुल मौन रह सको। बिना बातचीत के रह सको , तो तुम देखोगें कि तुम्हारी जीभ कितनी जोर से कंपित होती है। तुम्हें इसका पता नहीं चलता है; क्योंकि तुम निरंतर बात करते रहते हो। और उससे तरंगों का निरसन हो जाता है।

लेकिन अगर अभी भी तुम रुककर अपने विचार के प्रति सजग होओ तो तुम्हें मालूम होगा कि जीभ थोड़ी-थोड़ी कंपित हो रही है। अब अपनी जीभ को पूरी तरह ठहरा दो, रोक दो और तब सोचने की चेष्टा करो; तुम नहीं सोच पाओगे। जीभ को ऐसे स्थिर कर दो जैसे वह जग गई हो। उसमें कोई गति मत होने दो; और तब तुम्हारा सोचना-विचारना असंभव हो जाएगा। केंद्र ठीक मध्य में है; मन को वहीं स्थिर करो।

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

यह दूसरी विधि है और पहली जैसी ही है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

पहली विधि से तुम्हारा विचार बंद हो जाएगा। तुम अपने भीतर एक ठोसपन अनुभव करोगे—मानो तुम ठोस हो गए हो। जब विचार नहीं होते है तो तुम अचल हो जाते हो। थिर हो जाते हो। और जब विचार नहीं है और तुम अचल हो तो तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो। यह शाश्वत बदलता हुआ लगाता है। लेकिन दरअसल वह अचल है, ठहरा हुआ है। निर्विचार में तुम शाश्वत के, अचल के अंग हो जाते हो।

विचार के रहते तुम चलायमान के, परिवर्तनशील के अंग हो; क्योंकि प्रकृति चलायमान है, संसार चलायमान है। यही कारण है कि हम इसे संसार कहते है। संसार का अर्थ है: चक्र, चाक। यह चल रहा है। चल रहा है; यह सतत घूम रहा है। संसार निरंतर गति है। और जो अदृश्य है, परम है, वह अचल है, ठहरा हुआ है।

यह ऐसा है जैसे की चाक तो घूमता है। लेकिन जिसके सहारे वह घूमता है वह धुरी अचल है। चाक तभी घूम सकता है जब उसके केंद्र पर कुछ है जो सदा अचल है—धुरी अचल है। संसार चल रहा है, और ब्रह्मा अचल है। जब विचार विसर्जित होता है तो तुम अचानक इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। भीतरी गति के बंद होते ही तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो—उस शाश्वत के, जो कभी बदलता नहीं है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, अकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मुंह को थोड़ा-सा खुला रखे, मानों तुम बोलने जा रहे हो। और तब श्वास को भीतर ते जाओ। और उस ध्वनि के प्रति सजग रहो जो भीतर आती हुई श्वास से पैदा होती है। वह ही हकार है। चाहे श्वास भीतर जाती है, या बाहर। इस ध्वनि को तुम्हें पैदा नहीं करना है; तुम्हें तो अंदर आती श्वास को अपनी जीभ पर केवल महसूस करना है। यह बहुत धीमा स्वर है। लेकिन है। वह

हकार जैसा मालूम होता है। वह बहुत मौन है; मुश्किल से सुनाई देता है। उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना पड़ेगा। लेकिन उसे पैदा करने की चेष्टा मत करना। अगर तुमने उसे पैदा करने की चेष्टा की तो तुम चुक जाओगे। पैदा की हुई ध्वनि किसी काम की नहीं होती। जब-जब श्वास भीतर जाती है या बाहर आती है, तब जो ध्वनि अपने आप पैदा होती है वह स्वाभाविक है।

लेकिन विधि कहती है कि भीतर आती श्वास के साथ प्रयोग करना है, बाहर जाती श्वास के साथ नहीं। क्योंकि बाहर जाती श्वास के साथ तुम भी बाहर चल जाओगे। ध्वनि के साथ-साथ तुम भी बाहर चले जाओगे। जब कि चेष्टा भीतर जाने की है। अंत: भीतर जाती श्वास के साथ हकार ध्वनि को अनुभव करो। देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि यह ध्वनि सिर्फ जीभ में ही नहीं, कंठ में भी हो रही है। लेकिन तब वह बहुत ही धीमी हो जाती है। उसे सुनने के लिए प्रगाढ़ जागरूकता की जरूरत है।

तो जीभ से शुरू करो; फिर धीरे-धीरे सजगता को बढ़ाओं, उसे महसूस करो। तब तुम उसे कंठ से सुनोंगे। और उसके बाद उसे अपने ह्रदय में सुनने लगोगे। और जब वह ह्रदय में पहुँचती है तो तुम मन के पार चले गए। ये सारी विधियां वह सेतु निर्मित करती है जहां से तुम विचार से निर्विचार में, मन से अ-मन में, सतह से कैंद्र में प्रवेश करते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—44 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी आठवीं विधि:

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

ओम ध्वनि पर एकाग्र करो; लेकिन इस ओम में म न रहें। तब सिर्फ उ बचता है। यह कठिन विधि है; लेकिन कुछ लोगों के लिए यह योग्य पड़ सकती है। खासकर जो लोग ध्वनि के साथ काम करते है। संगीतज्ञ, कवि, जिनके काम बहुत संवेदनशील है, उनके लिए यह विधि सहयोगी हो सकती है। लेकिन दूसरों के लिए जिनके कान संवेदनशील नहीं है, यह विधि कठिन पड़ेगी। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है।

तो तुम्हें ओम का उच्चारण करना है और इस उच्चारण में तीनों ध्वनियों को—अ, उ और म को महसूस करना है। ओम का उच्चारण करो और उसमें तीन ध्वनियों को—अ, उ और म को अनुभव करो। वे तीनों ओम में समाहित है। बहुत संवेदनशील काम ही इन तीनों ध्वनियों को अलग-अलग सुन सकते है। वे अलग-अलग है, यद्यपि बहुत करीब-करीब भी है। अगर तुम उन्हें अलग-अलग नहीं सुन सकते तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारे कानों को उनके लिए प्रशिक्षित करना होगा।

जापान में, विशेषकर झेन परंपरा में, वे पहले कानों को प्रशिक्षित करते है। कानों के प्रशिक्षण के उपाय है। बाहर हवा चल रही है; उसकी एक ध्वनि है। गुरु शिष्य से कहता है कि इस ध्वनि पर अपने कान को एकाग्र करो; उसके सूक्ष्म भेदों को, उसकी बदलाहटों को समझो; देखो कि कब ध्वनि कुपित है और कब उन्मत्त, कब ध्वनि करणावान है और कब प्रेमपूर्ण हे। कब वह शक्तिशाली है। और कब नाजुक है। ध्वनि की बारीकियों को अनुभव करो। वृक्षों से होकर हवा गुजर रही है। उस महसूस करो। नदी बह रही है; उसके सूक्ष्म भेदों को पहिचानों।

और महीनों साधक नदी के किनारे बैठकर उसके कलकल स्वर को सुनता रहता है। नदी का स्वर भी भिन्न-भिन्न होता है। वह सतत बदलता रहता है। बरसात में नदी पूर पर होती है; बहुत जीवंत होती है, उमड़ती होती है। उस समय उसके स्वर भिन्न होते है। और गर्मी में नदी ना कुछ होती है। उसका कलकल भी समाप्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम सुनना चाहो तो वह सूक्ष्म स्वर भी सूना जा सकता है। साल भर नदी बदलती रहती है और साधक को सजग रहना पड़ता है।

हरमन हेस के उपन्यास सिद्धार्थ एक माझी के साथ रहता है। नदी है, माझी है और सिद्धार्थ है; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। और माझी बहुत शांत व्यक्ति है। वह आजीवन नदी के साथ रहता है; वह इतना शांत हो गया है कि कभी-कभार ही बोलता है। और जब भी सिद्धार्थ अकेलापन महसूस करता है, माझी उससे कहता है कि तुम जाओ नदी के किनारे और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनो। मनुष्य की बकवास कि बजाएं नदी को सुनना बेहतर है।

और सिद्धार्थ धीरे-धीरे नदी के साथ लयबद्ध हो जाता है। और तब उसे नदी की भाव दशा का बोध होने लगता है। नदी की भाव दशा बदलती रहती है। कभी वह मैत्रीपूर्ण है और कभी नहीं; कभी वह गाती है और कभी रोती-चीखती है; कभी वह हंसती है और कभी उसे उदासी घेर लेती है। और सिद्धार्थ उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को पकड़ने लगता है। उसके कान नदी के साथ लयबद्ध हो जाते है।

तो हो सकता है, आरंभ में तुम्हें यह विधि कठिन मालूम पड़े। लेकिन प्रयोग करो; ओम का उच्चार करो और उच्चार करते हुए ओम की ध्वनि को अनुभव करो। इसके तीन, ध्वनियों सम्मिलित; ओम तीन स्वरों का समन्वय है। और जब तुम इन तीन स्वरों को अलग-अलग अनुभव कर लो तो उनमें से अ और म को छोड़ दो। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया, म भी निकल गया। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया , म भी निकल गया। तब सिर्फ उ बच रहेगा। क्या होगा?

मंत्र असली चीज नहीं है। असली चीज ओम नहीं है और न उसका छोडना है। असली चीज तुम्हारी संवेदनशीलता है। पहले तुम तीन ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होते हो, जो कठिन काम है। और जब तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि तुम उनमें से दो स्वरों को, अ और म को छोड़ सकते हो तो सिर्फ बीच का स्वर बचता है। और इस प्रयत्न में तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है। तुम उसमे इतने तल्लीन हो जाओगे, उसके प्रति इतने अवधान से भरे जाओगे, तुम इतने संवेदनशील हो जाओगे कि विचार विसर्जित हो जाएंगे। और अगर तुम सोच-विचार करते हो तो तुम स्वरों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते।

यह तुम्हें तुम्हारे सिर से बारह निकालने का परोक्ष उपाय है। बहुत सारे उपाय प्रयोग में लाए गए है। और वे बहुत सरल प्रतीत होते है। तुम्हें आश्चर्य होता है कि इन सरल उपायों से क्या हो सकता है। लेकिन चमत्कार घटित होता है; क्योंकि वे उपाय परोक्ष है। तुम्हारे मन को बहुत सूक्ष्म चीज पर स्थिर किया जा सकता है। इस प्रयत्न में सोच-विचार नहीं चल सकता है।

तुम्हारा मन खो जाएगा। और तब किसी दिन अचानक तुम्हें इस बात का पता चलेगा। और तुम चकित रह जाओगे कि क्या हुआ।

झेन में कोआन का, पहेली का प्रयोग होता है। एक बहुत प्रचलित कोआन है जो नए साधकों को दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ की ताली सुनो। अब ताली तो दो हाथों से बजती है। लेकिन उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ से बजने वाली ताली को सुनो।

किसी झेन गुरु की सेवा में एक लड़का रहता था। वह देखता था कि अनेक लोग आते है, गुरु के पैर पर सिर रखते है और कहते है कि हमे बताएं कि हम किस पर ध्यान करें। गुरु उन्हें कोई कोआन दिया करता था। वह लड़का गुरु के छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। वह उसकी सेवा में था। उसकी उम्र नौ साल की रही होगी। रोज-रोज साधकों को आते-जाते देखकर वह भी एक दिन बहुत गंभीरता के साथ गुरु के निकट गया और उसके चरणों में सिर रखकर निवेदन किया कि मुझे भी ध्यान करने के लिए कोई कोआन दें।

गुरु हंसा। लेकिन लड़का गंभीर बना रहा। तो गुरु ने उसे कहा कि ठीक है, एक हाथ की ताली सुनने की चेष्टा करो। और जब सुनाई पड़ जाए तो आकर मुझे बताना।

लड़के ने बहुत प्रयत्न किया। रात-रात भर उसे नींद नहीं आई। कुछ दिनों बात वह आकर कहता है मैंने सून ली। वह वृक्षों से गुजरती हवा है। लेकिन गुरु ने पूछा; इसमें हाथ कहा है? जाओ और फिर प्रयत्न करो। ऐसे लड़का रोज आत ही रहा। वह कोई ध्वनि खोज लेता और गुरु को बताता। लेकिन हर बार गुरु कहता कि यह भी नहीं है; और प्रयत्न करो।

फिर एक दिन लड़का गुरु के पास नहीं आया। गुरु ने उसकी बहुत प्रतीक्षा की; लेकिन वह नहीं आया। तब उसने अपने दूसरे शिष्यों से कहा कि जाकर पता करो कि क्या हुआ। गुरु ने कहा कि मालूम होता है कि उसने एक हाथ की ताली सुन ली है। शिष्य गए। लड़का एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठा था—मानों एक नवजात बुद्ध बैठा हो।

उन्होंने लौटकर गुरु को खबर दी। उन्होंने कहा कि हमें उसे हिलाने में डर लगा; वह तो नवजात बुद्ध मालूम होता है। मालूम पड़ता है कि उसने ताली सुन ली। तब गुरु स्वयं आया, उसने लड़के के चरणों में सिर रखा और पूछा: ''क्या तुमने सुना?'' मालूम होता है कि तुमने सुन लिया। लड़के ने स्वीकृति से सिर हिलाते हुए कहा: ''हां, लेकिन वह तो मौन है।

इस लड़के ने कैसे सुना? उसकी संवेदनशीलता विकसित हुई। उसने प्रत्येक ध्वनि को सुनने की चेष्टा की और उसने बहुत अवधान से सुना। उसका अवधान विकसित हुआ। उसकी नींद जाती रही। वह रात भर जाग कर सुनता कि एक हाथ की ताली क्या है। वह तुम्हारे जैसा बुद्धिमान नहीं था। उसने यह सोचा ही नहीं कि एक हाथ की ताली नहीं हो सकती।

वही पहेली तुम्हें दी जाए तो तुम प्रयोग करने वाले नहीं हो। तुम कहोगे कि यह मूढता है; एक हाथ की ताली नहीं हो सकती। लेकिन उस लड़के ने प्रयोग क्या। उसने सोचा कि जब गुरु ने कहा है तो उसमें जरूर कुछ होगा; उसमे श्रम किया। वह सरल था। जब भी उसे लगता है। कि कोई नई चीज है तो वह दौड़ाकर गुरु के पास जाता। इस ढंग से उसकी संवेदनशीलता विकसित होती गई। वह और-और सजग और बोध पूर्ण होता गया। वह एकाग्र हो गया। वह लड़का खोज में लगा था। इसलिए उसका मन विसर्जित हो गया। गुरु ने उससे कहा था कि अगर तुम सोच विचार करते रहोगे। तो तुम चूक जाओगे। कभी-कभी ऐसी ध्वनि होती है कि जो एक हाथ की होती है। इसलिए सजग रहना ताकि चूक न जाओ। और उसने प्रयत्न किया।

एक हाथ की ताली नहीं होती है। लेकिन यह तो संवेदनशीलता को, बोध को पैदा करने का एक परोक्ष उपाय था। और एक दिन अचानक सब कुछ विलीन हो गया। वह इतना अवधान पूर्ण हो गया कि अवधान ही रह गया। वह इतना संवेदनशील हो गया

कि संवेदनशीलता ही रह गई। वह इतना बोधपूर्ण हो गया कि बोध ही रह गया। वह सिर्फ बोधपूर्ण था; किसी चीज के प्रति बोधपूर्ण नहीं। और तब उसने कहा: ''मैंने सुन लिया। लेकिन यह तो मौन है, शुन्य है।''

लेकिन इसके लिए तुम्हें सतत और होश पूर्ण होने का अभ्यास करना होगा।

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

यह विधि है जो तुम्हें ध्वनि के सूक्ष्म भेदों के प्रति नाजुक भेदों के प्रति सजग बनाती है। इसका प्रयोग करते-करते तुम ओम को भूल जाओगे। न सिर्फ अ गिरेगा। न सिर्फ म गिरेगा। बल्कि किसी दिन तुम भी अचानक खो जाओगे। तब शून्य का, मौन का जन्म होगा। और तब तुम भी किसी वृक्ष के नीचे बैठे नवजात बुद्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—45 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी नौवीं विधिः

अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।–तंत्र-सूत्र

''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो। और तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''
''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

कोई भी शब्द जिसका अंत अ: से होता है, उसका उच्चार चुपचाप करो। शब्द के अंत में अ: के होने पर जोर है। क्यो? क्योंकि जि क्षण तुम अ: का उच्चार करते हो, तुम्हारी श्वास बाहर जाती है। तुमने ख्याल नहीं किया होगा। अब ख्याल करना कि जब भी तुम्हारी श्वास बाहर जाती है, तुम ज्यादा शांत होते हो। और जब भी श्वास भीतर जाती है, तुम ज्यादा तनावग्रस्त होते हो। कारण यह है कि बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। और भीतर आने वाली श्वास जीवन है। तनाव जीवन का हिस्सा है।

मृत्यु का नहीं। विश्राम मृत्यु का अंग है, मृत्यु का अर्थ है पूर्ण विश्राम। जीवन पूर्ण विश्राम नहीं बन सकता। वह असंभव है। जीवन का अर्थ है तनाव, प्रयत्न; सिर्फ मृत्यु विश्रामपूर्ण है।
तो जब भी कोई व्यक्ति पूरी तरह विश्रामपूर्ण हो जाता है, वह दोनों हो जाता है—बाहर से वह जीवित होता है। और भीतर से मृत। तुम बुद्ध के चेहरे पर जीवन मृत्यु एक साथ देख सकते हो। इसलिए उनके चेहरे पर इतना मौन, इतनी शांति है—मौन और शांति मृत्यु के अंग है।

जीवन विश्रामपूर्ण नहीं है, राम में जब तुम सो जाते हो तो तुम विश्राम में होते हो। इसी लिए पुरानी परंपराएं कहती है कि मृत्यु और नींद समान है। नींद अस्थायी मृत्यु है। और यही कारण है कि रात्रि विश्राम दायी होती है। वह बाहर जाने वाली श्वास है। सुबह भीतर आने वाली श्वास है। दिन तुम्हें तनाव से भर देता है। रात तुम्हें विश्राम से भरती है। प्रकाश तनाव पैदा करता है, अंधकार विश्राम लाता है। यही वजह है कि तुम दिन में नहीं सो सकते। दिन में विश्राम करना कठिन है। प्रकाश जीवन जैसा है, वह मृत्यु विरोधी है। अंधकार मृत्यु जैसा है। वह मृत्यु के अनुकूल है।

तो अंधकार में गहरी विश्रांति है। और जो लोग अंधकार से डरते है, वे विश्राम में नहीं उतर सकते। यह असंभव है।

विश्राम अंधेरे में घटित होता है। और तुम्हारे जीवन के दोनों छोरों पर अंधरा है। जन्म के पहले तुम अंधेरे में होते हो। और मृत्यु के बाद तुम फिर अंधेरे में होते हो। अंधकार असीम है। और यह प्रकाश, यह जीवन उस अंधकार के भीतर एक क्षण जैसा है। अंधकार के समुद्र में प्रकाश लहर जैसा है जो उठता-गिरता रहता है। अगर तुम जीवन के दोनों छोरों को घेरने वाले अंधकार को स्मरण रख सको तो तुम यहीं और अभी विश्राम में हो सकते हो।

जीवन और मृत्यु अस्तित्व के दो छोर हे। भीतर आने वाली श्वास जीवन है, बहार जाने वाली श्वास मृत्यु है। ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे, तुम प्रत्येक श्वास के साथ मर रहे हो।

यही कारण है कि हिंदू जीवन को श्वासों की गिनती कहते है, वे उसे वर्षों की गिनती नहीं कहते। तंत्र, योग आदि सभी भारतीय परंपराएं जीवन को श्वासों में गिनती है। वे कहती है कि तुम्हें इतनी श्वासों का जीवन मिला है। वे कहती है कि अगर तुम तेजी से श्वास लोगे, थोड़े समय में ज्यादा श्वासें लोगे तो तुम बहुत जल्दी मरोगे। और अगर तुम बहुत धीरे-धीरे श्वास लोगे, अगर एक निश्चित समय में कम श्वास लोगे तो तुम ज्यादा समय तक जीओगे।

और बात ऐसी ही है। अगर तुम पशुओं का निरीक्षण करोगे तो पाओगे कि बहुत धीमी श्वास लेने वाले पशु लंबी उम्र जीते है। उदाहरण के लिए हाथी है, हाथी की उम्र बड़ी है। क्योंकि उसकी श्वास धीमी चलती है। फिर कुत्ता है, उसकी श्वास तेज चलती है। और उसकी उम्र बहुत कम है। जो भी पशु बहुत तेज श्वास लेता होगा, उसकी उम्र लम्बी नहीं हो सकती। लंबी उम्र सदा धीमी श्वास के साथ जुड़ी है।

तंत्र, योग और अन्य भारतीय साधना पथ तुम्हारे जीवन का हिसाब तुम्हारी श्वासों से लगाते है। सच तो यह है कि तुम हरेक श्वास के साथ जन्मते हो और हरेक श्वास के साथ मरते हो। यह विधि बाहर जाने वाली श्वास को गहरे मौन में उतरने का माध्यम बनाती है। उपाय बनाती है। यह एक मृत्यु-विधि है।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

श्वास बाहर गई है—इसलिए अ: से अंत होने वाले शब्द का उपयोग है यह अ: अर्थपूर्ण है; क्योंकि जब तुम अ: कहते हो वह तुम्हें पूरी तरह खाली कर देता है। उसके साथ पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। कुछ भी भीतर बची नहीं रहती है। तुम

बिलकुल खाली हो जाते हो—खाली और मृत। एक क्षण के लिए, बहुत थोड़ी देर के लिए जीवन तुमसे बाहर निकल गया है और तुम मृत और खाली हो।

अगर इस रिक्ता इस खाली पन को तुम जान लो। उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो तुम पूर्णत: रूपांतरित हो जाओगे। तुम और ही आदमी हो जाओगे। तब तुम भली भांति जान लोगे कि न यह जीवन तुम्हारा जीवन है और न यह मृत्यु ही तुम्हारी मृत्यु है। तब तुम उसे जान लोगे जो आती-जाती श्वासों के पास है, तब तुम साक्षी आत्मा को जान लोगे। और साक्षित्व उस समय आसानी से घट सकता है जब तुम श्वासों से खाली हो, क्योंकि तब जीवन उतार पर होता है। और सारे तनाव भी उतार पर होते है। तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह बहुत ही सुंदर विधि है।

लेकिन आमतौर से, सामान्य आदत के मुताबिक, हम सदा भीतर आने वाली श्वास को ही महत्व देते है। हम बाहर जाने वाली श्वास को कभी महत्व नहीं देते। हम सदा भीतर लेते है। उसे बाहर नहीं छोड़ते। हम श्वास लेते है और शरीर उसे छोड़ता है। तुम अपनी श्वसन क्रिया का निरीक्षण करो और तुम्हें यह पता चल जाएगा।

हम सदा श्वास लेते है। हम उसे छोड़ते नहीं। छोड़ने का काम शरीर करता है। और इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से भयभीत है। बस यही कारण है। अगर हमारा बस चलता तो हम कभी श्वास को बाहर जाने ही नहीं देते। हम श्वास को भीतर ही रोक रखते। कोई भी व्यक्ति श्वास छोड़ने पर जोर नहीं देता। सब लोग श्वास लेने की ही बात करते है। लेकिन श्वास को भीतर लेने के बाद उसे बाहर निकालना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए हम मजबूरी में उसे बाहर जाने देते है। उस हम किसी तरह बरदाश्त कर लेते है। क्योंकि श्वास छोड़े बगैर श्वास लेना असंभव है। इसलिए श्वास छोड़ना आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकृत है। लेकिन बुनियादी तौर से श्वास छोड़ने में हमारा कोई रस नहीं है।

और यह बात श्वास के संबंध में ही सही नहीं है। पूरे जीवन के प्रति हमारी दृष्टि यही है। जो भी हमें मिलता है, उसे हम मुट्ठी में बाँध लेते है। उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। यही मन का कृपणता है। और याद रहे, इसके बहुत परिणाम होते है। अगर तुम कब्जियत से पीडित हो तो उसका कारण यह है कि तुम श्वास तो लेते हो, लेकिन उसे छोड़ते नहीं। जो व्यक्ति श्वास लेना जानता है। लेकिन छोड़ना नहीं, वह कब्जियत से पीडित होगा। कब्जियत उसी चीज का दूसरा छोर है। वह किसी भी चीज को अपने से बाहर जाने देने के लिए राज़ी नहीं है। वह सिर्फ इकट्ठा करता जाता है। यह भयभीत है और भय के कारण यह इकट्ठा किए जाता है।

लेकिन जो चीज रोक ली जाती है वह विषाक्त हो जाती है। तुम श्वास तो लेते हो लेकिन अगर उसे छोड़ते नहीं तो वह श्वास जहर बन जाएगी और तुम उसके कारण मरोगे। अगर तुमने कंजूसी की तो तुम एक जीवनदायी तत्व को जहर में बदल दोगे। क्योंकि श्वास का बाहर जाना नितांत जरूरी है। बाहर जाती श्वास तुम्हारे भीतर से सब जहर को बाहर निकाल फेंकती है।

तो सच तो यह कि मृत्यु शुत्रि की प्रक्रिया है और जीवन अशुद्धि की, विषाक्त करने की प्रक्रिया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। जीवन विषाक्त करने की प्रक्रिया है, क्योंकि जीने के लिए बहुत सी चीजों को उपयोग में लाना पड़ता है। और जैसे ही तुम उनका उपयोग करते हो। वे विष में बदल जाती है। तब तुम श्वास लेते हो तो तुम आक्सीजन का उपयोग कर रहे हो, लेकिन उपयोग करने के बाद जो चीज बच रहती है वह विष है। आक्सीजन के कारण ही वह जीवन था। लेकिन जब तुमने उसका उपयोग कर लिया तो शेष विष हो जाता है। ऐसे ही जीवन हर चीज को जहर में बदलता रहता है।

मृत्यु शुद्ध की प्रकिया है। जब सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। तब मृत्यु तुम्हें उस शरीर से मुक्त कर देती है। मृत्यु तुम्हें फिर से नया बना देती है। तुम्हें नया जन्म दे देगी। तुम्हें नया शरीर मिल जाएगा। मृत्यु के द्वारा शरीर का सब संग्रहीत विष प्रकृति में विलीन हो जाता है। और तुम्हें एक नया शरीर उपलब्ध होता है।

और यह बात प्रत्येक श्वास के साथ घटित होती है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु के समान है, वह विष को बाहर ले जाती है। और जब वह श्वास बाहर जाती है। तो तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत होने लगता है। अगर तुम सारी की सारी श्वास बाहर फेंक दो, कुछ भी भीतर न रहने पाए तो तुम शांति के उस बिंदु को छू लोगे जो श्वास के भीतर रहते हुए कभी नहीं छुआ जा सकता था। यह ज्वार-भाटे जैसा है। आती हुई श्वास के साथ तुम्हारे पास जीवन-ज्वार आती है और जाती हुई श्वास के साथ सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार चला गया तब, तुम खाली, रिक्त सागरतट भर रह जाते हो। इस विधि का यही उपयोग करो।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। और तुम इस विधि का उपयोग मन में अनेक परिवर्तन लाने के लिए कर सकते हो। अगर तुम कब्जियत से पीड़ित हो तो श्वास भूल जाओ। सिर्फ श्वास को बहार फेंको। श्वास भीतर ले जाने का काम शरीर को करने दो। तुम छोड़ने भर का काम करो। तुम श्वास को बाहर निकाल दो और भीतर ले जाने की फिक्र ही मत करो। शरीर वह काम अपने आप ही कर लेगा, तुम्हें उसकी चिंता नहीं लेनी है। उससे तुम मर नहीं जाओगे। शरीर ही श्वास को भीतर ले जाएगा। तुम छोड़ने भर का काम करो, शेष शरीर कर लेगा। और तुम्हारी कब्जियत जाती रहेगी।

अगर तुम ह्रदय रोग से पीड़ित हो तो श्वास को बाहर छोड़ो। लेने की फिक्र मत करो। फिर ह्रदय रोग तुम्हें कभी नहीं होगा। अगर सीढ़ियां चढ़ते हए या कहीं जाते हुए तुम्हें थकावट महसूस हो, तुम्हारा दम घूटने लगे तो तुम इतना ही करो: श्वास को बाहर छोड़ो, लो नहीं। और तब तुम कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाओगे। और नहीं थकोंगे। क्या होता है?

जब तुम श्वास छोड़ने पर जोर देते हो तो उसका मतलब है कि तुम अपने को छोड़ने का, अपने खोने को राज़ी हो। तब तुम मरने को राज़ी हो, तब तुम मत्यु से भयभीत नहीं हो। और यही चीज तुम्हें खोलती है। अन्यथा तुम बंद रहते हो। भय बंद करता है। जब बंद करता है। जब तुम श्वास छोड़ते हो तो पूरी व्यवस्था बदल जाती है। और वह मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। भय जाता रहता है और तुम मृत्यु के लिए राज़ी हो जाते हो।

और वही व्यक्ति जीता है जो मरने के लिए तैयार है। सच तो यह हे कि वही जीता है जो मृत्यु से राज़ी है। केवल वही व्यक्ति जीवन के योग्य है। क्योंकि वह भयभीत नहीं है, जो व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करता है, मृत्यु का स्वागत करता है, मेहमान मानकर उसकी आवभगत करता है। उसके साथ रहता है। वही व्यक्ति जीवन में गहरे उतर सकता है।

जब एक कुत्ता मरता है तो दूसरे कुत्ते को कभी पता नहीं होता की मैं भी मर सकता हूं। जब भी मरता है, कोई दूसरा ही मरता है। तो कोई कुत्ता कैसे कल्पना करे के मैं भी मरने वाला हूं। उसने कभी अपने को मरते नहीं देखा। सदा किसी दूसरे ही मरते है। वह कैसे कल्पना करे, कैसे निष्पति निकाले कि मैं भी मरूंगा। पशु को मृत्यु का बोध नहीं होता। इसलिए कोई पशु संसार का त्याग नहीं करता। कोई पशु संन्यासी नहीं हो सकता है।

केवल एक बहुत ऊंच्ची कोटि की चेतना ही तुम्हें संन्यास की तरफ ले जा सकती है। मृत्यु के प्रति जागने से ही संन्यास घटित होता है। और अगर आदमी होकर भी तुम मृत्यु के प्रति जागरूक नहीं हो तो तुम अभी पशु ही हो। मनुष्य नहीं हुए हो। मनुष्य तो तुम तभी बनते हो जब मृत्यु का साक्षात्कार करते हो। अन्यथा तुममें और पशु में कोई फर्क नहीं है। पशु और मनुष्य में सब कुछ समान है, सिर्फ मृत्यु फर्क लाती है। मृत्यु का साक्षात्कार कर लेने के बाद तुम पशु नहीं रहते। तुम्हें कुछ घटित हुआ है जो कभी किसी पशु को घटित नहीं होता है। अब तुम एक भिन्न चेतना हो।

ऐसा ही इन विधियों के साथ है। वे सरल मालूम होती है। लेकिन वे बुनियादी सत्य को स्पर्श करती है। जब श्वास बाहर जा रही है, जब तुम जीवन से सर्वथा रिक्त हो, तब तुम मृत्यु को छूते हो, तब तुम उसके बहुत करीब पहुंच जाते हो। तब तुम्हारे भीतर सब कुछ मौन और शांत हो जाता है।

इसे मंत्र की तरह उपयोग करो। जब भी तुम्हें थकावट महसूस हो, तनाव महससू हो तो अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार करो। अल्लाह से भी काम चलेगा। कोई शब्द जो तुम्हारी श्वास को समग्रत: से बाहर ले आए। जो तुम्हें श्वास से बिलकुल खाली कर दे। जिस क्षण तुम श्वास से रिक्त होते हो उसी क्षण तुम जीवन से भी रिक्त हो जाते हो।

और तुम्हारी सारी समस्याएं जीवन की समस्याएं है, मृत्यु की कोई समस्या नहीं हे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारे दुःख-संताप, तुम्हारा क्रोध, सब जीवन की समस्याएं है। मृत्यु तो समस्याहीन है। मृत्यु असमस्या है। मृत्यु कभी किसी को सतस्या नहीं देती है। तुम भला सोचते हो कि मैं मृत्यु से डरता हूं, कि मृत्यु समस्या पैदा करती है। लेकिन हकीकत यह है कि मृत्यु नहीं जीवन के प्रति तुम्हारा आग्रह, जीवन के प्रति तुम्हारा लगाव समस्या पैदा करता है। जीवन ही समस्या खड़ी करता है। मृत्यु तो सब समस्याओं का विसर्जन कर देती है।

तो जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए—अ:ss—तुम जीवन से रिक्त हो गए। उस क्षण अपने भीतर देखो। जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए। दूसरी श्वास लेने के पहले उस अंतराल में गहरे उतरो जो रिक्त है और उसके आंतरिक मौन और शांति के प्रति सजग होओ। उस क्षण तुम बुद्ध हो।

और अगर तुम उस क्षण को पकड़ लो। तो तुम्हें वह स्वाद मिल जाएगा जिसे बुद्ध ने जाना। और एक बार यह सवाद जान लिया गया तो फिर तुम उसे आने-जाने वाली श्वास से अलग कर ले सकते हो। फिर श्वास आती-जाती रह सकती है। और तुम चेतना की उस अवस्था में रह सकते हो। वह तो सदा है, फिर उसे उधाड़ना है। और उसे उस समय उघाड़ना आसान होता है जब तुम जीवन से, श्वास से रिक्त होते हो।

और जब श्वास बाहर निकल जाती है, तब सब कुछ निकल जाता है। इस क्षण किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। इस क्षण अनायास बिना प्रयास के सजगता को, बोध को उपल्बध हुआ जा सकता हे। मृत्यु के इस क्षण को उपलब्ध होओ। यही वह क्षण है जब तुम द्वार के बिलकुल करीब होते हो, परमात्मा के द्वार के बिलकुल पास होते हो। जो प्रकट है, जा असार है, वह बाहर चला गया; इस क्षणमे तुम लहर नहीं रहे। सागर हो गए। अभी तुम बिलकुल सागर के निकट हो। अगर तुम बोधपूर्ण हो सके, सजग हो सके, तो तुम भूल जाओगे कि मैं लहर हूं। फिर लहर आएगी। लेकिन अब तुम लहर के साथ कभी तादात्म्य नहीं बनाओगे। तुम सागर बने रहोगे। एक बार तुमने जान लिया कि तुम सागर हो, फिर तुम लहर नहीं हो सकते।

जीवन लहर है, मृत्यु सागर है। इस कारण ही बुद्ध इस बात पर जोर देते है कि मेरा निर्वाण मृत्युवत है। वे कभी नहीं कहते कि तुम अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। वे इतना ही कहते है कि तुम मिटोगे, समग्रत: जीसस कहते है; मेरे पास आओ और मैं तुम्हें विराट जीवन दूंगा। बुद्ध कहते है: मेरे पास मिटने के लिए आओ, मैं तुम्हें समग्र मृत्यु दूंगा। और दोनों एक ही बात है। लेकिन बुद्ध की शब्दावली ज्याद बुनियादी है। मगर तुम उससे भयभीत हो।

यही कारण है कि बुद्ध का भारत में प्रभाव नहीं पड़ सका। उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका गया। और हम कहे चले जाते है कि भूमि धार्मिक है। लेकिन यहां जो सर्वाधिक धार्मिक पूरूष हुआ उसे यहां हमने जमने नहीं दिया। किस तरह की धार्मिक भूमि है यह? हम दूसरा बुद्ध नहीं पैदा कर सकते। बुद्ध अप्रतिम है। जब भी संसार भारत को धर्म-भूमि के रूप में स्मरण करता है, वह बुद्ध को स्मरण करता है। और किसी को नहीं। बुद्ध के कारण ही भारत धार्मिक समझा जाता है। किसी प्रकार की धर्म-भूमि हे यह। बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया। कारण यह था कि बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली, उनहें सर्वथा उखाड़ फेंका गया।

कारण यह था कि बुद्ध ने मृत्यु की भाषा उपयोग की। ब्राह्मण जीवन की भाषा उपयोग करते है। वे कहते है ब्रह्म; बुद्ध ने कहा निर्वाण। ब्रह्म का अर्थ जीवन, अनंत जीवन है; और निर्वाण का अर्थ परिसमाप्ति, मृत्यु , समग्र मृत्यु। बुद्ध कहते है कि तुम्हारी सामान्य मृत्यु समग्र नहीं होती। तुम्हें फिर-फिर जन्म लेना होता है। साधारण मृत्यु समग्र नहीं है। तुम पून: संसार

में आना पड़ता है। बुद्ध कहते थे कि मैं तुम्हें ऐसी समग्र मृत्यु दूंगा। कि तुम्हें फिर कभी जन्म लेने की जरूरत नहीं पडेगी। समग्र मृत्यु का अर्थ है कि अब दूबारा जन्म संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध कहते है कि यह तथाकथित मृत्यु-मृत्यु नहीं है। यह विश्राम है, तुम फिर जीवित हो उठते हो। यह मृत्यु तो बाहर गई श्वास जैसी है। तुम फिर श्वास भीतर लोगे। और तुम्हारा पुन: जन्म हो जाएगा। बुद्ध कहते है कि मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूं कि बाहर गई श्वास फिर वापस नहीं लौटेगी। वही समग्र मृत्यु है। निर्वाण है।

''तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''

इसका प्रयोग करो। किसी भी समय यह प्रयोग कर सकते हो। बस या रेलगाड़ी में यात्रा कराते हुए, या अपने आफिस जाते हुए। जब भी तुम्हें समय मिले अल्लाह शब्द बड़ा काम का है—इस कारण नहीं कि वहां आसमान में कोई अल्लाह है। वरन इस अ: के कारण। यह शब्द सुंदर है। और जितना कही कोई अल्लाह-अल्लाह कहता है उतना ही वह शब्द छोटा होता जाता है। अल्लाह से वह लाह हो जाता है। और फिर लाह से आह रह जाता है। यह अच्छा है। लेकिन तुम अ: से अंत होने वाले किसी भी शब्द को काम में ला सकते हो, केवल अ: से भी चलेगा।

तुमने देखा होगा कि जब भी तुम तनाव से भरते हो, तुम एक आह भरकर हलके हो जाते हो। या जब तुम खुशी से भरते हो, बहुत खुशी से, तब तुम अहा कहते हो और पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। और तुम अपने भीतर एक अपूर्व शांति अनुभव करते हो। इसे प्रयोग करो। जब तुम खूब प्रसन्न हो तो श्वास अंदर लो और देखो कि क्या होता है। तुम स्वस्थ अनुभव नहीं करोगे। जितना अहा कहने से करते हो। वह फर्क श्वास के कारण है।

भाषाएं अलग-अलग है, लेकिन ये दो चीजें सभी भाषाओं में समान हे। सारी धरती पर जहां भी कोई थकावट अनुभव करता है वह आह करता है। दरअसल वह मृत्यु को बुलाकर कहता है कि मुझे विश्राम दो। और जब वह आह्लादित होता है। आनंदित होता है, तब वह अहा कहता है। वह आनंद से इतना पूरित है कि वह मृत्युसे नहीं डरता। वह अपने को पूरी तरह छोड़ने को खोने को राज़ी है।

और अगर तुम इस विधि का निरंतर प्रयोग करते रहो तो उसके गहरे परिणाम होंगे। तब तुम्हारे भी जो सहज है, तुम उसके बोध से भर जाओगे। तब तुम अपनी सहजता को उपलब्ध हो जाओगे। तुम सहज ही हो, लेकिन तुम जीवन से इतने बंधे हो, ग्रस्त हो कि उसके पीछे खड़ी सहज सत्ता से अपरिचित रह जाते हो। लेकिन तब तुम जीवन से, आने वाली श्वास से ग्रस्त नही हो, तब वह सहज सत्ता प्रकट होती है। तब उसकी झलक मिलती है। और धीरे-धीरे वह झलक उपलब्धि में बदल जाती है। तुम्हारी सिद्धि बन जाएगी।

और तुमने उसे एक बार जान लिया तो फिर तुम उसे भुला नहीं सकोगे। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम निर्मित करते हो। वह सवाभाविक है, सहज है; उसे बनाना नहीं , उघाड़ना भर है। वह तो है ही, तुम भूल गए हो। बस स्मरण करना है, उधाड़ना है।

शरीर अपने विवेक से चलता है। वह उतना ही ग्रहण करता है जितना जरूरी है। जब उसे ज्यादा की जरूरत होती है तो वैसी स्थिति बना लेता है और कम की जरूरत होती है तो वैसी ही स्थिति बना लेता है। शरीर कभी अति पर नहीं जाता है। वह सदा संतुलित रहता है। जब तुम श्वास लेते हो तब वह संतुलित नहीं है। क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि शरीर की जरूरत क्या है। और यह जरूरत क्षण-क्षण बदलती रहती है।

इसलिए शरीर को मौका दो, तुम तो बस श्वास छोड़ने भर का काम करो, उसे बाहर फेंको। और तब शरीर खुद श्वास लेने का काम कर लेगा। और शरीर जब खुद श्वास अंदर लेता है तो वह धीरे-धीरे लेता है। और गहरे लेता है। और पेट तक ले जाता है। वह श्वास ठीक नाभि-केंद्र पर चोट करती है। जिससे तुम्हारा पेट ऊपर नीचे होता है। और अगर श्वास लेने का काम भी तुम करोगे तो फिर समग्रता से श्वास छोड़ ने सकोगे। तब श्वास भीतर बची रहेगी। और उपर से ली गई श्वास गहराई में न उतर सकेगी। इसीलिए श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तुम श्वास भीतर लेते रहते हो और भीतर जहर इकट्ठा होता जाता है।

वे कहते है कि तुम्हारे फेंफड़े में कई हजार छिद्र है। और उनमें से सिर्फ दो हजार छिद्रों तक ही श्वास पहुंच पाती है। बाकी चार हजार छिद्र तो सदा जहरीली गैस से भरे रहते है। जिन्हें सदा खाली करने की जरूरत है। वह जो तुम्हारी छाती का दो तिहाई हिस्सा जहर से भरा रहता है। वह तुम्हारे शरीर में मन में दुःख और चिंता और संताप लाता है।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है लेता नहीं। लेने का काम सदा शरीर करता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह जो पहला काम करता है वह रोना है। उसे रोने के साथ ही उसका कंठ खुलता है। रोने के साथ ही वह पहल अ: बोलता है, उस रोने के साथ ही मां के द्वारा भीतर ली गई हवा बाहर निकल जाती है। वह उसकी पहल श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया का आरंभ।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है। और जब बच्चा श्वास लेने लगे, जब उसका जोर छोड़ने से हटकर लेने पर चला जाए तो सावधान हो जाना; तब बच्चा बूढ़ा होने लगा। उसका अर्थ है कि बच्चे ने वह तुमसे सीखा है, वह तनावग्रस्त हो गया है।

जब तुम तनाव ग्रस्त होते हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। क्यों? तब तुम्हारा पेट सख्त होता है। जब तुम तनाव में होते हो तो तुम्हारा पेट सख्त हो जाता है। वह सख्ती श्वास को गहरे नहीं जाने देती। तब तुम उथली श्वास ही लेने लगते हो।

अ: का प्रयोग करो। वह तुम्हारे चारो और एक सुंदर भाव निर्मित करता है। जब भी तुम थकावट महसूस करो, अ: कहकर श्वास को बाहर फेंको। और श्वास छोड़ने पर बल दो। तुम भिन्न ही आदमी होगे और एक भिन्न ही मन विकसित होगा। श्वास लेने पर जोर देकर तुमने कंजूस मन और कंजुस शरीर विकसित किए है। श्वास छोड़ने पर बल देकर वह कंजूसी विदा हो जाएगी। और उसके साथ ही अन्य अनेक समस्याएं विदा हो जाएंगी। तब दूसरे पर मालकियत करने का भाव तिरोहित हो जायेगा।

तो तंत्र यह नहीं कहता है कि मालकियत का भाव छोड़ो, तंत्र कहता है कि अपने श्वास-प्रश्वास का ढंग बदल दो और मालकियत अपने आप छूट जायेगी। तुम अपनी श्वास को देखो, अपने भावों को देखो और तुम्हें बोध हो जाएगा। जो भी गलत है वह भीतर जाने वाली श्वास को महत्व देने के कारण है और जो भी शुभ है ओर सत्य है , शिव है, और सुंदर है। वह बाहर जाने वाली श्वास के साथ संबंधित है। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम अपनी श्वास को रोक रखते हो, और जब सच बोलते हो तो श्वास को कभी नहीं रोकते। झूठ बोलते समय तुम्हें डर लगता है और उस डर के कारण तुम श्वास को रोक रखते हो। तुम्हें यह डर भी होता है कि बाहर जाने वाली श्वास के साथ कही छिपाया गया सत्य भी प्रकट न हो जाये।

इस अ: का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करो और तुम शरीर और मन से ज्यादा स्वस्थ रहोगे। और तुम्हें एक विशेष ढंग की शांति और विश्राम का अनुभव होगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—41 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पाँचवीं विधि:

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए …….–ओशो

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रित ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।
वही चीज।

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो—सितार या किसी अनय वाद्य को। उसमें कई स्वर है। सजग होकर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो। उस स्वर को जो उसका केंद्र हो और उसके चारों और सभी स्वर घूमते हों; उसकी आंतरिक धारा को सुनो, जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे समूचे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुए है। वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है। संगीत को सुनते हुए सजग होकर उसमे प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजों—उस केंद्रीय स्वर को खोजों जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए है। स्वर तो आते जाते रहते है। लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है। उसके प्रति जागरूक होओ।
बुनियादी रूप से मूलत: संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ था। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान विधि के लिए के लिए तैयार किया गया था। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र टेक्नीशियन भी हो सकता है। अगर उसके नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है। लेकिन तब उसने संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी हो। संगीत तो बाहरी चीज है। सितार बजाते हुए वादक सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगाता है। बाहर सितार बजता है और भीतर उसका गहन बोध गति करता है। बहार संगीत बहता रहता है; लेकिन संगीतज्ञ अपने अंतरस्थ केंद्र पर सदा सजग बोधपूर्ण बना रहता है। वही बोध समाधि बन जाता है। वही शिखर बन जाता है।

कहते है कि संगीतज्ञ जब सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है तो वह अपना वाद्य तोड़ देता है। वह अब उसके काम का न रहा है। और अगर उसे अब भी वाद्य की जरूरत पड़ती है तो वह अभी संगीतज्ञ नहीं हुआ है। वह अभी सिक्खड़ ही है। सीख रहा है। अगर तुम ध्यान के साथ संगीत का अभ्यास करते हो, उसे ध्यान बनाते हो तो देर-अबेर आंतरिक संगीत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगा। और बाहरी संगीत ने सिर्फ कम महत्वपूर्ण रहेगा, बल्कि अंतत: वह बाधा बन जाएगा। तुम सितार को उठाकर फेंक

दोगे। तुम वाद्य को अलग रख दोगे। क्योंकि अब तुम्हें तुम्हारा आंतरिक वाद्य मिल गया है। लेकिन वह बहारी वाद्य के बिना नहीं मिल सकता। बहारी वाद्य के साथ आसानी से सजग हुआ जा सकता है। लेकिन जब सजगता सध जाए तो तुम बाहर को छोड़ो और भीतर गति कर जाओ। यही बात श्रोता के लिए भी सही है।

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो, तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम विश्राम के लिए उसका उपयोग करते हो। यही दुर्भाग्य है। यही पीड़ा है। जो विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थी उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है। और ऐसे ही आदमी अपने को धोखा दिये जा रहा है। अगर तुम्हें कोई चीज जागने के लिए दि जा रही है।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक सदगुरूओं के उपदेशों को गुप्त रखा गया। क्योंकि सोचा गया कि सोए हुए व्यक्ति को विधियां बताना व्यर्थ है। वह उसे सोने के ही काम लगाएगा; अन्यथा वह नहीं कर सकता। इसलिए पात्रों को ही विधियां दी जाती थी। ऐसे विशेष शिष्यों को ही उनका प्रयोग बताया जाता था जो अपनी नींद को छोड़ने को राज़ी है। जो अपनी नींद से जागने के लिए तैयार है।

ओस्पेंस्की ने अपनी एक पुस्तक जार्ज गुरजिएफ को यह कहकर समर्पित की है कि ''इस व्यक्ति ने मेरी नींद तोड़ी है।''

ऐसे लोग उपद्रवी होते है। गुरजिएफ, बुद्ध या जीसस जैसे लोग उपद्रवी ही होंगे। यही कारण है कि हम उनसे बदला लेते है। जो हमारी नींद में बाधा डालता है। उसे हम सूली पर चढ़ा देते है। वह हमें नहीं भाता है। हम सुंदर सपने देख रहे थे और वह आकर हमारी नींद में बाधा डालता है। तुम उसकी हत्या कर देना चाहते हो। स्वप्न इतना मधुर था।

स्वप्न मधुर हो चाहे न हो, लेकिन एक बात निश्चित है कि वह स्वप्न है और व्यर्थ है, बेकार है। और स्वप्न अगर सुंदर है तो ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि उसमें आकर्षण अधिक होगा। वह नशे का काम कर सकता है।

हम संगीत का, नृत्य का उपयोग नशे के रूप कर रहे है। और अगर तुम संगीत और नृत्य का उपयोग नशे की तरह कर रहे हो तो वे तुम्हारी नींद के लिए ही नहीं, तुम्हारी कामुकता के लिए भी नशे का काम देंगे। और यह स्मरण रहे कि कामुकता और नींद संगी-साथी है। जो जितना सोया-सोया होगा, वह उतना ही कामुक होगा। जो जितना जागा हुआ होगा, वह उतना ही कम कामुक होगा। कामुकता की जड़ नींद में है। जब तुम जागोगे तो ज्यादा प्रेमपूर्ण होओगे; कामवासना की पूरी ऊर्जा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सूत्र कहता है: ''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

और तब तुम उसे जान लोगे जो जानना है, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके केंद्रीय तत्व को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे। और उसे जागरूकता के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते है। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। अगर तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जायेगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होगे, सब जगह होगे। सर्वव्यापी हो जाओगे। तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे, तुम अनंत हो जाओगे।

मन सीमा है; ध्यान से अनंत में प्रवेश है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी छठवीं विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)
किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे;

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

कोई भी ध्वनि काम देगी; लेकिन अगर तुम्हारी कोई प्रिय ध्वनि हो तो वह बेहतर होगी। क्योंकि तुम्हारी प्रिय ध्वनि मात्र ध्वनि नहीं रहती; जब तुम उसका उच्चार करते हो तो उसके साथ एक अप्रकट भाव भी उठता है। और फिर धीरे-धीरे वह ध्वनि तो विलीन हो जाएगी और भाव भर रह जाएगा।

ध्वनि को भाव की तरह से जाने वाले मार्ग की तरह उपयोग करना चाहिए। ध्वनि मन है और भाव ह्रदय है। मन को ह्रदय से मिलने के लिए मार्ग चाहिए। ह्रदय में सीधा प्रवेश कठिन है। हम ह्रदय को इतना भुला दिए है। हम ह्रदय के बिना इतने जन्मों से रहते आए है कि हमें पता ही नहीं रहा कि कहां से उसमे प्रवेश करें। द्वार बंद मालूम पड़ता है। हम ह्रदय की बात बहुत करते है। लेकिन वह बातचीत भी मन की ही है। हम कहते है कि हम ह्रदय से प्रेम करते है। लेकिन हमारा प्रेम भी मानसिक है। मस्तिष्क गत है। हमारा प्रेम भी बौद्धिक प्रेम है। ह्रदय की बात भी मस्तिष्क में घटित होती है। हमें पता ही नहीं रहा है कि ह्रदय कहां है।

ह्रदय से मेरा अभिप्राय शारीरिक ह्रदय से नहीं है। उसे तो हम जानते है। लेकिन शरीर शास्त्री और वैद्य-डाक्टर कहेंगे कि उस ह्रदय में प्रेम की संभावना नहीं है; वह तो केवल पंप का काम करता है, फुफ्फुस का काम करता है। उसमे और कुछ नहीं है। और बातें बस कपोलकल्पना है, कविता है, स्वप्न है।

लेकिन तंत्र जानता है कि तुम्हारे शारीरिक ह्रदय के पीछे ही एक गहरा केंद्र छिपा है। उस गहरे केंद्र तक मन के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। क्योंकि हम मन में है। हम अपने मन में है और अंतस की और कोई भी यात्रा वहीं से आरंभ हो सकती है।

मन ध्वनि है। आवाज है। अगर सब ध्वनि बंद हो जाए तो तुम्हारा मन नहीं रहेगा। मौन में मन नहीं है। यही कारण है कि मौन पर इतना बल दिया जाता है। मौन अ-मन अवस्था है। आमतौर से हम कहते है कि मेरा मन शांत हो रहा है। यह बात ही बेतुकी है। अर्थहीन है। क्योंकि मन का अर्थ है मौन की अनुपस्थिति। तुम यह नहीं कह सकते कि मन शांत है। मन है तो शांत नहीं हो सकता और शांति है तो मन नहीं हो सकता। शांत मन नाम की कोई चीज नहीं होती। हो नहीं सकती। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम कहो कि कोई व्यक्ति जीवित मृत है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर वह मृत है तो वह जीवित नहीं हो सकता। और अगर वह जीवित है तो मृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मन जब विदा होता है तो शांति आती है। या कहो कि शांति आती है तो मन विदा हो जाता है। दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

मन ध्वनि है। अगर यह ध्वनि व्यवस्थित है तो तुम स्वस्थ चित हो। और अगर वह अराजक हो तो तुम विक्षिप्त कहलाओगे। लेकिन दोनों हालत में ध्वनि है। आवाज है। और हम मन के तल पर रहते है। उस तल से ह्रदय के आंतरिक तल पर कैसे उतरा जाए?
ध्वनि का उपयोग करो। ध्वनि का उच्चार करो। किसी एक ध्वनि का उच्चार उपयोगी होगा। अगर मन में अनेक ध्वनियां है तो उन्हें छोड़ना कठिन होगा। और अगर एक ही ध्वनि हो तो उसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। इसलिए पहले एक ध्वनि के लिए अनेक का त्याग करना होगा। एकाग्रता का यही उपयोग है।

इसलिए अच्छा हो कि कोई ध्वनि, कोई नाम, कोई मंत्र लो, जो तुम्हें प्रीतिकर हो, जिससे तुम्हारा भाव जुड़ा हो। अगर कोई हिंदू राम शब्द का उपयोग करता है तो उसके साथ उसका भाव जुड़ा होगा। यह उसके लिए मात्र शब्द नहीं रहेगा। यह उसकी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहेगा; इसकी तरंगें उसके ह्रदय तक चली जाएंगी उसको भला इसका पता न हो; लेकिन यह ध्वनि उसके रक्त में समाई है। उसकी मांस मज्जा में सम्माहित है। उसके पीछे लंबी परंपरा है। गहरे संस्कार है; उसके पीछे जन्मों-जन्मों के संस्कार है। जिस ध्वनि के साथ तुम्हारा लंबा लगाव बन जाता है। वह तुममें गहरी जड़ें जमा लेती है। इसका उपयोग करो। उसका उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि दुनिया के दो सबसे पुराने धर्म—हिंदू और यहूदी—धर्म परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं करते। वे सबसे प्राचीन धर्म है, आदि धर्म है; और सारे धर्म उनकी ही शाखा प्रशाखा है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी परंपरा की शाखाएं है। और बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म हिंदू धर्म की शाखाएं है। और ये दोनों आदि धर्म धर्म-परिवर्तन को नहीं मानती।

अगर तुम्हें किसी ध्वनि से प्रेम नहीं है तो अपना नाम ही उपयोग करो। लेकिन यह भी बहुत कठिन है। कारण यह है कि तुम अपने प्रति इतनी निंदा से भरे हो कि तुम्हें अपने प्रति कोई भाव नहीं है। कोई आदर नहीं है। दूसरे भले तुम्हारा आदर करते हों; लेकिन तुम खुद अपना आदर नहीं करते हो।

तो पहले बात है कि कोई उपयोगी ध्वनि खोजों। उदाहरण के लिए, अपने प्रेमी या अपनी प्रेमिका का नाम भी चलेगा। अगर तुम्हें फूल से प्रेम है तो गुलाब शब्द काम दे देगा। कोई भी ध्वनि जो तुम्हें भाती है। जिसे सुनकर तुम स्वस्थ अनुभव करते हो। उसका उपयोग कर लो। और अगर तुम्हें ऐसा कोई शब्द न मिले तो परंपरागत स्रोतों से जो कुछ शब्द उपलब्ध है उनका उपयोग कर सकते हो। ओम का उपयोग करो। आमीन का उपयोग करो। मरिया भी चलेगा। राम भी चलेगा। बुद्ध भी चलेगा। महावीर का नाम भी काम में लाया जा सकता है। कोई भी नाम जिसके लिए तुम्हें भाव हो, चलेगा। लेकिन भाव होना जरूरी है। इसीलिए गुरु का नाम सहयोगी हो सकता है। लेकिन भाव चाहिए। भाव अनिवार्य है।

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो, कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

ध्वनि को निरंतर घटाते जाओ। उच्चार को इतना धीमा करो कि तुम्हें भी उसे सुनने के लिए प्रयत्न कना पड़े। ध्वनि को कम करते जाओ, और तुम्हें फर्क मालूम होगा। ध्वनि जितनी धीमी होगी, तुम उतने ही भाव से भरोंगे। और जब ध्वनि विलीन होती है तो भाव ही शेष रहता है। इस भाव को नाम नहीं दिया जा सकता वह प्रेम है, प्रगाढ़ प्रेम है। लेकिन यह प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं है। यही फर्क है।

जब तुम कोई ध्वनि या शब्द उपयोग करते हो तो उसके साथ प्रेम जुड़ा रहता है। तुम राम-राम करते हो तो इस शब्द के प्रति तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा भाव है। लेकिन यह भाव राम के प्रति निवेदित है, राम पर सीमित है। लेकिन जब तुम राम ध्वनि को मंद से मंदतर करते जाते हो तो एक क्षण आयेगा। जब राम विदा हो जाएगा। ध्वनि विदा हो जाएगी और सिर्फ भाव शेष रहेगा। यह प्रेम का भाव है जो राम के प्रति नहीं है। यह किसी के भी प्रति नहीं है। केवल प्रेम का भाव है—मानो तुम प्रेम के सागर हो।

प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होता तो वह हृदय का प्रेम होता है। और जब वह निवेदित प्रेम होता है तो वह मस्तिष्क का होता है। जो प्रेम किसी के प्रति है, वह मस्तिष्क से घटित होता है। और केवल प्रेम मात्र प्रेम हृदय को होता है। और यह केवल प्रेम अनिवेदित प्रेम ही प्रार्थना बनता है। अगर वह किसी के प्रति निवेदित है तो वह प्रार्थना नहीं बन सकता; तब तुम अभी रहा पर ही हो।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर तुम ईसाई हो तो तुम हिंदू की भांति नहीं आरंभ कर सकते; तुम्हें ईसाई की भांति आरंभ करना चाहिए। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम ईसाई की तरह शुरू नहीं कर सकते। तुम्हें मुसलमान की तरह ही शुरू करना चाहिए। लेकिन तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही कम मुसलमान या ईसाई या हिंदू रहोगे। सिर्फ आरंभ हिंदू मुसलमान या ईसाई की तरह से होगा।

तुम जितना ही हृदय की तरफ गति करोगे—ध्वनि जिनी कम होगी और भाव जितना बढ़ेगा—तुम उतने ही कम हिंदू या मुसलमान रह जाओगे। और जब ध्वनि विलीन हो जाएगी तो तुम केवल मनुष्य होगे...न हिंदू। न मुसलमान। न ईसाई।

संप्रदाय या धर्म का यही फर्क है। धर्म एक है; संप्रदाय अनेक है। संप्रदाय शुरू करने में सहयोगी है। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि संप्रदाय अंत है, मंजिल है, तो तुम कही के नहीं रहोगे। वे आरंभ भर है। तुम्हें उनके पार जाना होगा; क्योंकि आरंभ अंत नहीं है। अंत में धर्म है; आरंभ में संप्रदाय है। संप्रदाय का उपयोग धर्म के लिए करो। सीमित का उपयोग असीम के लिए करो; क्षुद्र का उपयोग विराट के लिए करो।

यदि तुम किसी हिंदू मंदिर में गये हो तो वहां तुमने गर्भ-गृह का नाम सुना होगा। मंदिर के अंतरस्थ भाग को गर्भ कहते है। शायद तुमने ध्यान न दिया हो कि उसे गर्भ क्यों कहते है। अगर तुम मंदिर की ध्वनि का उच्चार करोगे—हरेक मंदिर की अपनी ध्वनि है, अपना मंत्र है। अपना इष्ट देवता है। और इस इष्ट देवता से संबंधित मंत्र है। अगर उस ध्वनि का उच्चार करोगे तो पाओगे कि उससे वहां वही उष्णता पैदा होती है जो मां के गर्भ में पाई जाती है। यही कारण है कि मंदिर के गर्भ जैसा गोल और बंद, करीब-करीब बंद बनाया जाता है। उसमे एक ही छोटा सा द्वारा रहता है।

जब ईसाई पहली बार भारत आये और उन्होंने हिंदू मंदिरों को देखा तो उन्हें लगा कि ये मंदिर तो बहुत अस्वास्थ्यकर कर है। उनमें खिड़की नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा है। लेकिन मां के गर्भ में भी तो एक ही द्वार होता है। और उसमे भी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं रहती। यही वजह है कि मंदिर को ठीक मां के पेट जैसा बनाया जाता है। उसमे एक ही दरवाजा

रखा जाता है। अगर तुम उसकी ध्वनि का उच्चार करते हो तो गर्भ सजीव हो उठता है। और इसे इसलिए भी गर्भ कहा जाता है। क्योंकि वहां तुम नया जन्म ग्रहण कर सकते हो। तुम नया मनुष्य बन सकते हो।

यही कारण है कि मंदिरों में अन्य धर्मों के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। अगर कोई मुसलमान नहीं है तो उसे मक्का में प्रवेश नहीं मिल सकता है। और यह ठीक है। इसमे कोई भूल नहीं है। इसका कारण यह है कि मक्का एक विशेष विज्ञान का स्थान है। जो व्यक्ति मुसलमान नहीं है वह वहां ऐसी तरंग लेकिर जाएगा जो पूरे वातावरण के लिए उपद्रव हो सकती है। अगर किसी मुसलमान को हिंदू मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता है तो यह अपमानजनक नहीं है। जो सुधारक है, वह मंदिरों के विषय में कुछ नहीं जानते। धर्म एक गुह्म विज्ञान है। वे केवल उपद्रव पैदा करते है।

हिंदू मंदिर केवल हिंदुओं के लिए है। क्योंकि हिंदू मंदिर एक विशेष स्थान है, विशेष उदेश्य से निर्मित हुआ है। सदियों-सदियों से वे इस प्रयत्न में लगे है। कि कैसे जीवंत मंदिर बनाएँ जाएं। और कोई भी व्यक्ति उसमे उपद्रव पैदा कर सकता है। और यह उपद्रव खतरनाक है। सिद्ध हो सकता है। मंदिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। वहाँ एक विशेष उदेश्य से और विशेष लोगों के लिए बनाया गया है। वह आम दर्शकों के लिए नहीं है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में आम दर्शकों को वहां प्रवेश नहीं मिलता था। अब सब को जाने दिया जाता है; क्योंकि हम नहीं जानते है कि हम क्या कर रहे है। दर्शकों को नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह कोई खेल तमाशे का स्थान नहीं है। यह स्थान विशेष तरंगों से तरंगायित है, विशेष उदेश्य के लिए निर्मित हुआ है।

इसलिए एक स्थान का उपयोग करो—स्थान के रूप में मंदिर अच्छा है। ये विधियां मंदिर के लिए है। मंदिर अच्छा है; मस्जिद अच्छी है। चर्च अच्छा है। तुम्हारा अपना धर इन विधियों के लिए उपयुक्त नहीं है। वहां इतना कोलाहल है कि वह अराजकता का स्थान बन गया है। और तुम इतने बलवान नहीं हो कि अपनी ध्वनि से उस वातावरण को बदल सको। तो अच्छा है कि किसी ऐसी जगह चले जाओ। जो किसी विशेष ध्वनि के लिए बना हो। ऐसे स्थान का उपयोग करो। और अच्छा है कि रोज-रोज एक ही स्थान को काम में लाओ।

धीरे-धीरे तुम शक्ति शाली हो जाओगे। और धीरे-धीरे मन से ह्रदय में उतर जाओगे। तब तुम कही भी यह प्रयोग कर सकते हो। तब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा मंदिर बन जाएगा। तब समस्या नहीं रहेगी।

लेकिन आरंभ में स्थान का चुनाव जरूरी है। और अगर समय का, निश्चित समय का चुनाव कर सको तो यह और अच्छा। क्योंकि तब वह मंदिर उस निश्चित समय पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। रोज ठीक उसी समय पर मंदिर तुम्हारा इंतजार करेगा। उस वक्त वह ज्यादा खुला होगा। उसे प्रसन्नता होगी कि तुम आ गए। वह सारा स्थान प्रसन्न होगा। और मैं ये बात प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, यह एक सच्चाई है।

यह ऐसा है कि जैसे तुम किसी निश्चित समय पर भोजन लेते हो और रोज ठीक उसी समय पर तुम्हारा शरीर भूख अनुभव करने लगता है। शरीर की अपनी अलग आंतरिक घड़ी है। शरीर अपने ठीक समय पर भूख प्यास अनुभव करता है। अगर तुम प्रतिदिन एक विशेष समय पर सोते हो तो तुम्हारा पूरा शरीर उस समय सोने के लिए तैयार हो जाता है। और अगर तुम रोज-रोज अपने खाने और सोन का समय बदलते रहते हो तुम अपने शरीर को उपद्रव में डाल रहे हो।

अब तो वे कहते है कि ऐसे परिवर्तन से तुम्हारी आयु प्रभावित हो सकती है। अगर तुम रोज-रोज अपने शरीर की चर्या को, रूटीन को बदलते हो तो संभव है कि तुम्हारी उम्र कम हो जाए। यदि तुम अस्सी साल जीने वाले थे तो इस सतत परिवर्तन के कारण तुम सत्तर साल ही जीओगे। तुम दस साल गंवा दोगे। और अगर तुम शरीर की घड़ी के अनुसार अपनी चर्या चलाते हो तो तुम आसानी से अस्सी साल की बजाएं नब्बे साल वर्षो तक जीवित रह सकत हो। दस वर्ष जोड़े जा सकते है।

ठीक इसी तरह तुम्हारे चारों तरफ हर चीज की अपनी घड़ी है और सारा संसार जागतिक समय में गति करता है। अगर तुम प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर तुम्हारे लिए तैयार होता है। और तुम मंदिर के लिए तैयार होते हो। ये दो तैयारियाँ आपस में मिलती है। और उसका फल हजार गुना हो जाता है।

यह तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए सुरक्षित कर ले सकते हो। लेकिन तब उस स्थान को किसी और काम के लिए उपयोग मत करो। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें है। अगर तुम उस स्थान को व्यवसाय के काम में लाते हो, वहां ताश खेलते हो, तो वह स्थान कनफ्यूज्ड हो जाएगा। अब तो इन कनफ्यूज्ड को रेकार्ड करने के यंत्र है; जाना जा सकता है कि स्थान कनफ्यूज्ड है।

अगर तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए अलग कर लो तो अच्छा । घर में एक छोटा सा मंदिर ही बना लो; बहुत अच्छा रहेगा। अगर तुम एक छोटा मंदिर बना सको तो सर्वोतम है। लेकिन फिर उसे किसी दूसरे काम में मत लाओ। उसे अपना निजी मंदिर रहने दो। और शीध्र ही परिणाम आने लगेंगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—43 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी सातवीं विधिः

स्वामी आनंद प्रसाद ”मनसा”

‘’मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।‘’

मन को शरीर में कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। सामान्यत: हमने उसे सिर में स्थिर कर रखा है; लेकिन उसे कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। और स्थिर करने के स्थान के बदलने से तुम्हारी गुणवता बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्व के

कई देशों में, जापान, चीन, कोरिया आदि में परंपरा से सिखाया जाता है कि मन पेट में है। सि में नहीं है। और इस करण उन लोगों के मन के गुण बदल जाते है। जो सोचते है कि मन पेट में है। जो लोग सोचते है कि मन सिर में है। उनके ये गुण नहीं हो सकते।

असल में मन कहीं भी नहीं है। सिर में है मस्तिष्क; मन का अर्थ है एकाग्रता; तुम मन को कही भी स्थिर कर सकते हो। और जहां उसे एक बार स्थिर कर दोगे वहां से उसे हटाना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, अब मनोवैज्ञानिक और मनुष्य के गहरे में शोध करने वाले लोग कहते है कि जब तुम संभोग कर रहे हो तो तुम्हारा मन सिर से उतर कर कामेंद्रित पर चला जाता है। अन्यथा तुम्हारी काम-क्रिया बेकार जाएगी। अगर मन सिर में ही रहे तो तुम काम-भोग में गहरे नहीं उतर पाओगे। तब काम-समाधि नहीं घटित होगी और तुम्हें आर्गाज्म का अनुभव नहीं होगा। तब तुम्हें उसका शिखर नहीं प्राप्त होगा। तुम बच्चे पैदा कर सकेत हो; लेकिन तुम्हें प्रेम के शिखर का कोई अनुभव नहीं होगा।
तुम्हें उसकी कोई समझ नहीं है। जिसकी तंत्र चर्चा करता है या जिसे खजुराहो चित्रित करता है। तुम नहीं समझ सकते। क्या तुमने खजुराहो देखा है, अगर तुम खजुराहो नहीं गए हो तो तुमने खजुराहो के मंदिरों के चित्र अवश्य देखे होंगे। उनके चेहरों को ध्यान से देखो; संभोग रत जोड़ों को देखो, उनके चेहरो को देखो। वे चेहरे दिव्य मालूम पड़ते है। वे काम-भोग में संलग्न है; लेकिन उनके चेहरों में बुद्ध की समाधि झलकती है। उन्हें क्या हो गया है?

उनका काम भोग मानसिक नहीं है। वे बुद्धि से संभोग नहीं करते है; वे उसके संबंध में विचार नहीं करते है। वे बुद्धि से नीचे उतर आए है; उनका फोकस बदल गया है; और सिर से हट जाने के कारण उनकी चेतना कर्मेंद्रिय पर उतर आई है। अब मन नहीं है। अब मन अ-मन हो गया है। इसीलिए उनके चेहरों पर बुद्ध की समाधि झलकती है। उनका काम-भोग ध्यान बन गया है।

क्यों फोकस बदल गया। अगर तुम अपने मन के फोकस को बदल देते हो, अगर तुम उसे सिर से हटा लेते हो। तो सिर विश्राम में होता है। चेहरा विश्राम में होता है। तब सभी तनाव विलीन हो जाते है। तब तुम नहीं हो, तब अहंकार नहीं है।

यही कारण है कि चित जितना बौद्धिक होता है, बुद्धिवादी होता है, उतना ही वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रेम के लिए भिन्न फोकसिंग की जरूरत है। प्रेम में तुम्हारा फोकस ह्रदय के पास होने की जरूरत है; संभोग में तुम्हारा फोकस काम केंद्र के पास होने की जरूरत है। जब तुम गणित करते हो तो सिर उसके लिए उचित जगह है। लेकिन प्रेम गणित नहीं है; संभोग बिलकुल गणित नहीं है। और अगर सिर में गणित से भरे होकर तुम संभोग में उतरते हो तो तुम अपनी ऊर्जा नष्ट करते हो। तब सारा श्रम बेचैनी पैदा करेगा।

लेकिन मन को बदला जा सकता है। तंत्र कहता है कि शरीर में सात चक्र है और मन को उनमें से किसी भी चक्र पर स्थिर किया जा सकता है। प्रत्येक चक्र का अलग गुण है। और अगर तुम एक विशेष चक्र पर एकाग्र करोगे तो तुम भिन्न ही व्यक्ति हो जाओगे।

जापान में एक सैनिक समुदाय हुआ है, जो भारत के क्षत्रियों जैसा है। उन्हें समुराई कहते है, उन्हें सैनिक के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। और उन्हें पहली सीख यह दी जाती है कि तुम अपने मन को सिर से उतार कर नाभि-केंद्र के ठीक दो इंच नीचे ले आओ। जापान में इस केंद्र को हारा कहते हे। समुराई को मन को हारा पर लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक समुराई हारा को अपने मन का केंद्र नहीं बना लेना है तब तक उसे युद्ध में भाग लेने की इजाजत नहीं है।

और यही उचित है। समुराई संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गिने जाते है। दुनिया में समुराई का कोई मुकाबला नहीं है। वह भिन्न ही किस्म का मनुष्य है, भिन्न ही प्राणी है; क्योंकि उसका केंद्र भिन्न है।

वे कहते है कि जब तुम युद्ध करते हो तो समय नहीं रहता है। और मन को समय की जरूरत पड़ती है। वह हिसाब-किताब करता है। अगर तुम पर कोई आक्रमण करे और उसे समय तुम्हारा मन सोच-विचार करने लगे कि कैसे बचाव किया जाए, तो तुम गए; तुम अपना बचाव न कर सकोगे। समय नहीं है; तुम्हें तब समयातित में काम करना होगा। और मन समयातित में काम नहीं कर सकता है। मन को समय चाहिए। मन को समय चाहिए। चाहे कितना भी थोड़ा हो, मन को समय चाहिए।

नाभि के नीचे एक केंद्र है जिसे हारा कहते है; यह हारा समयातित में काम करता है। अगर चेतना को हारा पर स्थिर किया जाए और तब योद्धा लड़े तो वह युद्ध प्रज्ञा से लड़ा जाएगा। मस्तिष्क से नहीं। हारा पर स्थिर योद्धा आक्रमण होने के पूर्व जान जाता है के आक्रमण होने वाला है। यह हारा का एक सूक्ष्म भाव है। बुद्धि का नहीं। यह कोई अनुमान नहीं है; यह टेलीपैथी है। इसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करो, उसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करने की सोचो। वह विचार उसे पहुंच जाता है। उसके हारा पर चोट लगती है और वह अपना बचाव करने को तत्पर हो जाता है। वह आक्रमण होने के पहले ही अपने बचाव में लग जाता है। उसने अपना बचाव कर लिया।

कभी-कभी जब दो समुराई आपस में लड़ते है तो हार-जीत मुश्किल हो जाती है। समस्या यह होती है कि कोई किसी को नहीं हरा सकता। किसी को विजेता नहीं घोषित कर सकता। एक तरह से निर्णय असंभव है; क्योंकि आक्रमण ही नहीं हो सकता। तुम्हारे आक्रमण करने के पहले ही वह जान जाता है।

एक भारतीय गणितज्ञ हुआ। सारा संसार चकित था; क्योंकि वह कोई हिसाब-किताब नहीं करता था। उसका नाम रामानुजम था। तुम उसे कोई भी समस्या दो और वह तुरंत उत्तर बता देता था। इंग्लैंड का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हार्डी तो रामानुजम के पीछे पागल था। हार्डी सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। लेकिन उसे भी किसी-किसी प्रश्न को हल करने में छह-छह घंटे लग जाते थे। लेकिन रामानुजम का हाल यह था कि तुम उसे प्रश्न दो और वह उसका उत्तर तुरंत बता देता था। इस ढंग से मन के काम करने का कोई उपाय नहीं है। मन को तो समय चाहिए। रामानुजम को बार-बार पूछा गया कि तुम यह कैसे करते हो? वह कहता था कि मैं नहीं जानता; तुम मुझे प्रश्न कहते हो और मुझे उसका उत्तर आ जाता है। वह कहीं नीचे से आता है। वह मेरे सिर से नहीं आता है।

यह उत्तर उसके हारा से आता था। उसे खुद यह बात नहीं मालूम थी। उसे कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिला था। लेकिन मेरे देखे वह अपने पिछले जन्म में जापानी रहा होगा; क्योंकि भारत में हमने हारा पर काम नहीं किया है।

तंत्र कहता है कि अपने मन को भिन्न-भिन्न केंद्रों पर स्थिर करो और उसके भिन्न-भिन्न-भिन्न परिणाम होंगे। यह विधि मन को जीभ पर, जीभ के मध्य भाग पर स्थिर करने को कहती है।

''मुंह को थोड़ा सा खुला रखते हुए....।''

मानो तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को बंद नहीं, थोड़ा सा खुला रखना है—मानो तुम बोलने वाले हो। ऐसा नहीं है कि तुम बोल रहे हो; ऐसा ही कि तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को इतना ही खोलों जितना उस समय खोलते हो जब बोलने को होते हो। और तब मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। तब तुम्हें अनूठा अनुभव होगा। क्योंकि जीभ के ठीक बीच में एक केंद्र है जो तुम्हारे विचारों को नियंत्रित करता है। अगर तुम अचानक सजग हो जाओ और उस केंद्र पर मन को स्थिर करो तो तुम्हारे विचार बंद हो जाते है। जीभ के ठीक बीच में मन को स्थिर करो—मानो तुम्हारा समस्त मन जीभ में चला आया है। जीभी के ठीक बीच में।

मुंह को थोड़ा सा खुला रखो, जैसे कि तुम बोलने जा रहे हो। और तब मन को इस तरह स्थिर करो कि वह सिर में न होकर जीभ में आ जाए, जीभ के ठीक मध्य भाग में।

जीभ में वाणी का, बोलने का केंद्र है; और विचार वाणी है। जब तुम सोचते हो, विचार करते हो तो क्या करते हो? तुम अपने भीतर बातचीत करते हो। क्या तुम भीतर बातचीत किए बिना विचार कर सकते हो? तुम अकेले हो; तुम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत नहीं कर रहे हो। लेकिन तब भी तुम विचार कर रहे हो। तब तुम विचार कर रहे हो तो क्या कर रहे हो? तुम अपने बातचीत कर रहे हो, उसमें तुम्हारी जी संलग्न है।

अगली दफा जब तुम विचार में संलग्न होओ तो सजग होकर अपनी जीभ पर अवधान दो। उस वक्त तुम्हारी जीभ ऐसे कंपित होगी जैसे वह किसी के साथ बातचीत करते समय होती है। फिर अवधान दो और तुम्हें पता चलेगा कि तरंगें जीभ के मध्य में केंद्रित है; वे मध्य से उठकर पूरी जीभ पर फैल जाती है।

विचार करना अंतस की बातचीत है। और अगर तुम अपनी चेतना को, अपने मन को जीभ के मध्य में केंद्रित कर सको तो विचार ठहर जाते है। जो लोग मौन का अभ्यास करते है, वे यही तो करते है कि बातचीत के प्रति बहुत बोधपूर्ण हो जाते है। और अगर तुम महीने दो महीने, या वर्ष भर बिलकुल मौन रह सको। बिना बातचीत के रह सको , तो तुम देखोगें कि तुम्हारी जीभ कितनी जोर से कंपित होती है। तुम्हें इसका पता नहीं चलता है; क्योंकि तुम निरंतर बात करते रहते हो। और उससे तरंगों का निरसन हो जाता है।

लेकिन अगर अभी भी तुम रुककर अपने विचार के प्रति सजग होओ तो तुम्हें मालूम होगा कि जीभ थोड़ी-थोड़ी कंपित हो रही है। अब अपनी जीभ को पूरी तरह ठहरा दो, रोक दो और तब सोचने की चेष्टा करो; तुम नहीं सोच पाओगे। जीभ को ऐसे स्थिर कर दो जैसे वह जग गई हो। उसमें कोई गति मत होने दो; और तब तुम्हारा सोचना-विचारना असंभव हो जाएगा। केंद्र ठीक मध्य में है; मन को वहीं स्थिर करो।

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

यह दूसरी विधि है और पहली जैसी ही है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

पहली विधि से तुम्हारा विचार बंद हो जाएगा। तुम अपने भीतर एक ठोसपन अनुभव करोगे—मानो तुम ठोस हो गए हो। जब विचार नहीं होते है तो तुम अचल हो जाते हो। थिर हो जाते हो। और जब विचार नहीं है और तुम अचल हो तो तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो। यह शाश्वत बदलता हुआ लगाता है। लेकिन दरअसल वह अचल है, ठहरा हुआ है। निर्विचार में तुम शाश्वत के, अचल के अंग हो जाते हो।

विचार के रहते तुम चलायमान के, परिवर्तनशील के अंग हो; क्योंकि प्रकृति चलायमान है, संसार चलायमान है। यही कारण है कि हम इसे संसार कहते है। संसार का अर्थ है: चक्र, चाक। यह चल रहा है। चल रहा है; यह सतत घूम रहा है। संसार निरंतर गति है। और जो अदृश्य है, परम है, वह अचल है, ठहरा हुआ है।

यह ऐसा है जैसे की चाक तो घूमता है। लेकिन जिसके सहारे वह घूमता है वह धुरी अचल है। चाक तभी घूम सकता है जब उसके केंद्र पर कुछ है जो सदा अचल है—धुरी अचल है। संसार चल रहा है, और ब्रह्मा अचल है। जब विचार विसर्जित होता है तो तुम अचानक इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। भीतरी गति के बंद होते ही तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो—उस शाश्वत के, जो कभी बदलता नहीं है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, अकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मुंह को थोड़ा-सा खुला रखे, मानों तुम बोलने जा रहे हो। और तब श्वास को भीतर ते जाओ। और उस ध्वनि के प्रति सजग रहो जो भीतर आती हुई श्वास से पैदा होती है। वह ही हकार है। चाहे श्वास भीतर जाती है, या बाहर। इस ध्वनि को तुम्हें पैदा नहीं करना है; तुम्हें तो अंदर आती श्वास को अपनी जीभ पर केवल महसूस करना है। यह बहुत धीमा स्वर है। लेकिन है। वह हकार जैसा मालूम होता है। वह बहुत मौन है; मुश्किल से सुनाई देता है। उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना पड़ेगा। लेकिन उसे पैदा करने की चेष्टा मत करना। अगर तुमने उसे पैदा करने की चेष्टा की तो तुम चुक जाओगे। पैदा की हुई ध्वनि किसी काम की नहीं होती। जब-जब श्वास भीतर जाती है या बाहर आती है, तब जो ध्वनि अपने आप पैदा होती है वह स्वाभाविक है।

लेकिन विधि कहती है कि भीतर आती श्वास के साथ प्रयोग करना है, बाहर जाती श्वास के साथ नहीं। क्योंकि बाहर जाती श्वास के साथ तुम भी बाहर चल जाओगे। ध्वनि के साथ-साथ तुम भी बाहर चले जाओगे। जब कि चेष्टा भीतर जाने की है। अंत: भीतर जाती श्वास के साथ हकार ध्वनि को अनुभव करो। देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि यह ध्वनि सिर्फ जीभ में ही नहीं, कंठ में भी हो रही है। लेकिन तब वह बहुत ही धीमी हो जाती है। उसे सुनने के लिए प्रगाढ़ जागरूकता की जरूरत है।

तो जीभ से शुरू करो; फिर धीरे-धीरे सजगता को बढ़ाओं, उसे महसूस करो। तब तुम उसे कंठ से सुनोंगे। और उसके बाद उसे अपने ह्रदय में सुनने लगोगे। और जब वह ह्रदय में पहुँचती है तो तुम मन के पार चले गए। ये सारी विधियां वह सेतु निर्मित करती है जहां से तुम विचार से निर्विचार में, मन से अ-मन में, सतह से केंद्र में प्रवेश करते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—44 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी आठवीं विधि:

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

ओम ध्वनि पर एकाग्र करो; लेकिन इस ओम में म न रहें। तब सिर्फ उ बचता है। यह कठिन विधि है; लेकिन कुछ लोगों के लिए यह योग्य पड़ सकती है। खासकर जो लोग ध्वनि के साथ काम करते है। संगीतज्ञ, कवि, जिनके काम बहुत संवेदनशील है, उनके लिए यह विधि सहयोगी हो सकती है। लेकिन दूसरों के लिए जिनके कान संवेदनशील नहीं है, यह विधि कठिन पड़ेगी। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है।
तो तुम्हें ओम का उच्चारण करना है और इस उच्चारण में तीनों ध्वनियों को—अ, उ और म को महसूस करना है। ओम का उच्चारण करो और उसमें तीन ध्वनियों को—अ, उ और म को अनुभव करो। वे तीनों ओम में समाहित है। बहुत संवेदनशील काम ही इन तीनों ध्वनियों को अलग-अलग सुन सकते है। वे अलग-अलग है, यद्यपि बहुत करीब-करीब भी है। अगर तुम उन्हें अलग-अलग नहीं सुन सकते तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारे कानों को उनके लिए प्रशिक्षित करना होगा।

जापान में, विशेषकर झेन परंपरा में, वे पहले कानों को प्रशिक्षित करते है। कानों के प्रशिक्षण के उपाय है। बाहर हवा चल रही है; उसकी एक ध्वनि है। गुरु शिष्य से कहता है कि इस ध्वनि पर अपने कान को एकाग्र करो; उसके सूक्ष्म भेदों को, उसकी बदलाहटों को समझो; देखो कि कब ध्वनि कुपित है और कब उन्मत्त, कब ध्वनि करणावान है और कब प्रेमपूर्ण हे। कब वह शक्तिशाली है। और कब नाजुक है। ध्वनि की बारीकियों को अनुभव करो। वृक्षों से होकर हवा गुजर रही है। उस महसूस करो। नदी बह रही है; उसके सूक्ष्म भेदों को पहिचानों।

और महीनों साधक नदी के किनारे बैठकर उसके कलकल स्वर को सुनता रहता है। नदी का स्वर भी भिन्न-भिन्न होता है। वह सतत बदलता रहता है। बरसात में नदी पूर पर होती है; बहुत जीवंत होती है, उमड़ती होती है। उस समय उसके स्वर भिन्न होते है। और गर्मी में नदी ना कुछ होती है। उसका कलकल भी समाप्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम सुनना चाहो तो वह सूक्ष्म स्वर भी सूना जा सकता है। साल भर नदी बदलती रहती है और साधक को सजग रहना पड़ता है।

हरमन हेस के उपन्यास सिद्धार्थ एक माझी के साथ रहता है। नदी है, माझी है और सिद्धार्थ है; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। और माझी बहुत शांत व्यक्ति है। वह आजीवन नदी के साथ रहता है; वह इतना शांत हो गया है कि कभी-कभार ही बोलता है। और जब भी सिद्धार्थ अकेलापन महसूस करता है, माझी उससे कहता है कि तुम जाओ नदी के किनारे और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनो। मनुष्य की बकवास कि बजाएं नदी को सुनना बेहतर है।

और सिद्धार्थ धीरे-धीरे नदी के साथ लयबद्ध हो जाता है। और तब उसे नदी की भाव दशा का बोध होने लगता है। नदी की भाव दशा बदलती रहती है। कभी वह मैत्रीपूर्ण है और कभी नहीं; कभी वह गाती है और कभी रोती-चीखती है; कभी वह हंसती है और कभी उसे उदासी घेर लेती है। और सिद्धार्थ उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को पकड़ने लगता है। उसके कान नदी के साथ लयबद्ध हो जाते है।

तो हो सकता है, आरंभ में तुम्हें यह विधि कठिन मालूम पड़े। लेकिन प्रयोग करो; ओम का उच्चार करो और उच्चार करते हुए ओम की ध्वनि को अनुभव करो। इसके तीन, ध्वनियों सम्मिलित; ओम तीन स्वरों का समन्वय है। और जब तुम इन तीन स्वरों को अलग-अलग अनुभव कर लो तो उनमें से अ और म को छोड़ दो। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया, म भी निकल गया। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया , म भी निकल गया। तब सिर्फ उ बच रहेगा। क्या होगा?

मंत्र असली चीज नहीं है। असली चीज ओम नहीं है और न उसका छोडना है। असली चीज तुम्हारी संवेदनशीलता है। पहले तुम तीन ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होते हो, जो कठिन काम है। और जब तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि तुम उनमें से दो स्वरों को, अ और म को छोड़ सकते हो तो सिर्फ बीच का स्वर बचता है। और इस प्रयत्न में तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है। तुम उसमे इतने तल्लीन हो जाओगे, उसके प्रति इतने अवधान से भरे जाओगे, तुम इतने संवेदनशील हो जाओगे कि विचार विसर्जित हो जाएंगे। और अगर तुम सोच-विचार करते हो तो तुम स्वरों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते।

यह तुम्हें तुम्हारे सिर से बारह निकालने का परोक्ष उपाय है। बहुत सारे उपाय प्रयोग में लाए गए है। और वे बहुत सरल प्रतीत होते है। तुम्हें आश्चर्य होता है कि इन सरल उपायों से क्या हो सकता है। लेकिन चमत्कार घटित होता है; क्योंकि वे उपाय परोक्ष है। तुम्हारे मन को बहुत सूक्ष्म चीज पर स्थिर किया जा सकता है। इस प्रयत्न में सोच-विचार नहीं चल सकता है। तुम्हारा मन खो जाएगा। और तब किसी दिन अचानक तुम्हें इस बात का पता चलेगा। और तुम चकित रह जाओगे कि क्या हुआ।

झेन में कोआन का, पहेली का प्रयोग होता है। एक बहुत प्रचलित कोआन है जो नए साधकों को दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ की ताली सुनो। अब ताली तो दो हाथों से बजती है। लेकिन उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ से बजने वाली ताली को सुनो।

किसी झेन गुरु की सेवा में एक लड़का रहता था। वह देखता था कि अनेक लोग आते है, गुरु के पैर पर सिर रखते है और कहते है कि हमे बताएं कि हम किस पर ध्यान करें। गुरु उन्हें कोई कोआन दिया करता था। वह लड़का गुरु के छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। वह उसकी सेवा में था। उसकी उम्र नौ साल की रही होगी। रोज-रोज साधकों को आते-जाते देखकर वह भी एक दिन बहुत गंभीरता के साथ गुरु के निकट गया और उसके चरणों में सिर रखकर निवेदन किया कि मुझे भी ध्यान करने के लिए कोई कोआन दें।

गुरु हंसा। लेकिन लड़का गंभीर बना रहा। तो गुरु ने उसे कहा कि ठीक है, एक हाथ की ताली सुनने की चेष्टा करो। और जब सुनाई पड़ जाए तो आकर मुझे बताना।

लड़के ने बहुत प्रयत्न किया। रात-रात भर उसे नींद नहीं आई। कुछ दिनों बात वह आकर कहता है मैंने सून ली। वह वृक्षों से गुजरती हवा है। लेकिन गुरु ने पूछा; इसमें हाथ कहा है? जाओ और फिर प्रयत्न करो। ऐसे लड़का रोज आत ही रहा। वह कोई ध्वनि खोज लेता और गुरु को बताता। लेकिन हर बार गुरु कहता कि यह भी नहीं है; और प्रयत्न करो।

फिर एक दिन लड़का गुरु के पास नहीं आया। गुरु ने उसकी बहुत प्रतीक्षा की; लेकिन वह नहीं आया। तब उसने अपने दूसरे शिष्यों से कहा कि जाकर पता करो कि क्या हुआ। गुरु ने कहा कि मालूम होता है कि उसने एक हाथ की ताली सुन ली है। शिष्य गए। लड़का एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठा था—मानों एक नवजात बुद्ध बैठा हो।

उन्होंने लौटकर गुरु को खबर दी। उन्होंने कहा कि हमें उसे हिलाने में डर लगा; वह तो नवजात बुद्ध मालूम होता है। मालूम पड़ता है कि उसने ताली सुन ली। तब गुरु स्वयं आया, उसने लड़के के चरणों में सिर रखा और पूछा: ''क्या तुमने सुना?'' मालूम होता है कि तुमने सुन लिया। लड़के ने स्वीकृति से सिर हिलाते हुए कहा: ''हां, लेकिन वह तो मौन है।

इस लड़के ने कैसे सुना? उसकी संवेदनशीलता विकसित हुई। उसने प्रत्येक ध्वनि को सुनने की चेष्टा की और उसने बहुत अवधान से सुना। उसका अवधान विकसित हुआ। उसकी नींद जाती रही। वह रात भर जाग कर सुनता कि एक हाथ की ताली क्या है। वह तुम्हारे जैसा बुद्धिमान नहीं था। उसने यह सोचा ही नहीं कि एक हाथ की ताली नहीं हो सकती।

वही पहेली तुम्हें दी जाए तो तुम प्रयोग करने वाले नहीं हो। तुम कहोगे कि यह मूढ़ता है; एक हाथ की ताली नहीं हो सकती। लेकिन उस लड़के ने प्रयोग क्या। उसने सोचा कि जब गुरु ने कहा है तो उसमें जरूर कुछ होगा; उसमे श्रम किया। वह सरल था। जब भी उसे लगता है। कि कोई नई चीज है तो वह दौड़ाकर गुरु के पास जाता। इस ढंग से उसकी संवेदनशीलता विकसित होती गई। वह और-और सजग और बोध पूर्ण होता गया। वह एकाग्र हो गया। वह लड़का खोज में लगा था। इसलिए उसका मन विसर्जित हो गया। गुरु ने उससे कहा था कि अगर तुम सोच विचार करते रहोगे। तो तुम चूक जाओगे। कभी-कभी ऐसी ध्वनि होती है कि जो एक हाथ की होती है। इसलिए सजग रहना ताकि चूक न जाओ। और उसने प्रयत्न किया।

एक हाथ की ताली नहीं होती है। लेकिन यह तो संवेदनशीलता को, बोध को पैदा करने का एक परोक्ष उपाय था। और एक दिन अचानक सब कुछ विलीन हो गया। वह इतना अवधान पूर्ण हो गया कि अवधान ही रह गया। वह इतना संवेदनशील हो गया कि संवेदनशीलता ही रह गई। वह इतना बोधपूर्ण हो गया कि बोध ही रह गया। वह सिर्फ बोधपूर्ण था; किसी चीज के प्रति बोधपूर्ण नहीं। और तब उसने कहा: ''मैंने सुन लिया। लेकिन यह तो मौन है, शुन्य है।''

लेकिन इसके लिए तुम्हें सतत और होश पूर्ण होने का अभ्यास करना होगा।

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

यह विधि है जो तुम्हें ध्वनि के सूक्ष्म भेदों के प्रति नाजुक भेदों के प्रति सजग बनाती है। इसका प्रयोग करते-करते तुम ओम को भूल जाओगे। न सिर्फ अ गिरेगा। न सिर्फ म गिरेगा। बल्कि किसी दिन तुम भी अचानक खो जाओगे। तब शून्य का, मौन का जन्म होगा। और तब तुम भी किसी वृक्ष के नीचे बैठे नवजात बुद्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—45 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी नौवीं विधि:

अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।–तंत्र-सूत्र

''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

कोई भी शब्द जिसका अंत अ: से होता है, उसका उच्चार चुपचाप करो। शब्द के अंत में अ: के होने पर जोर है। क्यो? क्योंकि जि क्षण तुम अ: का उच्चार करते हो, तुम्हारी श्वास बाहर जाती है। तुमने ख्याल नहीं किया होगा। अब ख्याल करना कि जब भी तुम्हारी श्वास बाहर जाती है, तुम ज्यादा शांत होते हो। और जब भी श्वास भीतर जाती है, तुम ज्यादा

तनावग्रस्त होते हो। कारण यह है कि बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। और भीतर आने वाली श्वास जीवन है। तनाव जीवन का हिस्सा है। मृत्यु का नहीं। विश्राम मृत्यु का अंग है, मृत्यु का अर्थ है पूर्ण विश्राम। जीवन पूर्ण विश्राम नहीं बन सकता। वह असंभव है। जीवन का अर्थ है तनाव, प्रयत्न; सिर्फ मृत्यु विश्राम पूर्ण है।
तो जब भी कोई व्यक्ति पूरी तरह विश्राम पूर्ण हो जाता है, वह दोनों हो जाता है—बाहर से वह जीवित होता है। और भीतर से मृत। तुम बुद्ध के चेहरे पर जीवन मृत्यु एक साथ देख सकते हो। इसलिए उनके चेहरे पर इतना मौन, इतनी शांति है—मौन और शांति मृत्यु के अंग है।

जीवन विश्राम पूर्ण नहीं है, राम में जब तुम सो जाते हो तो तुम विश्राम में होते हो। इसी लिए पुरानी परंपराएं कहती है कि मृत्यु और नींद समान है। नींद अस्थायी मृत्यु है। और यही कारण है कि रात्रि विश्राम दायी होती है। वह बाहर जाने वाली श्वास है। सुबह भीतर आने वाली श्वास है। दिन तुम्हें तनाव से भर देता है। रात तुम्हें विश्राम से भरती है। प्रकाश तनाव पैदा करता है, अंधकार विश्राम लाता है। यही वजह है कि तुम दिन में नहीं सो सकते। दिन में विश्राम करना कठिन है। प्रकाश जीवन जैसा है, वह मृत्यु विरोधी है। अंधकार मृत्यु जैसा है। वह मृत्यु के अनुकूल है।

तो अंधकार में गहरी विश्रांति है। और जो लोग अंधकार से डरते है, वे विश्राम में नहीं उतर सकते। यह असंभव है।

विश्राम अंधेरे में घटित होता है। और तुम्हारे जीवन के दोनों छोरों पर अंधरा है। जन्म के पहले तुम अंधेरे में होते हो। और मृत्यु के बाद तुम फिर अंधेरे में होते हो। अंधकार असीम है। और यह प्रकाश, यह जीवन उस अंधकार के भीतर एक क्षण जैसा है। अंधकार के समुद्र में प्रकाश लहर जैसा है जो उठता-गिरता रहता है। अगर तुम जीवन के दोनों छोरों को घेरने वाले अंधकार को स्मरण रख सको तो तुम यहीं और अभी विश्राम में हो सकते हो।

जीवन और मृत्यु अस्तित्व के दो छोर हे। भीतर आने वाली श्वास जीवन है, बहार जाने वाली श्वास मृत्यु है। ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे, तुम प्रत्येक श्वास के साथ मर रहे हो।

यही कारण है कि हिंदू जीवन को श्वासों की गिनती कहते है, वे उसे वर्षों की गिनती नहीं कहते। तंत्र, योग आदि सभी भारतीय परंपराएं जीवन को श्वासों में गिनती है। वे कहती है कि तुम्हें इतनी श्वासों का जीवन मिला है। वे कहती है कि अगर तुम तेजी से श्वास लोगे, थोड़े समय में ज्यादा श्वासें लोगे तो तुम बहुत जल्दी मरोगे। और अगर तुम बहुत धीरे-धीरे श्वास लोगे, अगर एक निश्चित समय में कम श्वास लोगे तो तुम ज्यादा समय तक जीओगे।

और बात ऐसी ही है। अगर तुम पशुओं का निरीक्षण करोगे तो पाओगे कि बहुत धीमी श्वास लेने वाले पशु लंबी उम्र जीते है। उदाहरण के लिए हाथी है, हाथी की उम्र बड़ी है। क्योंकि उसकी श्वास धीमी चलती है। फिर कुत्ता है, उसकी श्वास तेज चलती है। और उसकी उम्र बहुत कम है। जो भी पशु बहुत तेज श्वास लेता होगा, उसकी उम्र लम्बी नहीं हो सकती। लंबी उम्र सदा धीमी श्वास के साथ जुड़ी है।

तंत्र, योग और अन्य भारतीय साधना पथ तुम्हारे जीवन का हिसाब तुम्हारी श्वासों से लगाते है। सच तो यह है कि तुम हरेक श्वास के साथ जन्मते हो और हरेक श्वास के साथ मरते हो। यह विधि बाहर जाने वाली श्वास को गहरे मौन में उतरने का माध्यम बनाती है। उपाय बनाती है। यह एक मृत्यु-विधि है।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

श्वास बाहर गई है—इसलिए अ: से अंत होने वाले शब्द का उपयोग है यह अ: अर्थपूर्ण है; क्योंकि जब तुम अ: कहते हो वह तुम्हें पूरी तरह खाली कर देता है। उसके साथ पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। कुछ भी भीतर बची नहीं रहती है। तुम

बिलकुल खाली हो जाते हो—खाली और मृत। एक क्षण के लिए, बहुत थोड़ी देर के लिए जीवन तुमसे बाहर निकल गया है और तुम मृत और खाली हो।

अगर इस रिक्ता इस खाली पन को तुम जान लो। उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो तुम पूर्णतः रूपांतरित हो जाओगे। तुम और ही आदमी हो जाओगे। तब तुम भली भांति जान लोगे कि न यह जीवन तुम्हारा जीवन है और न यह मृत्यु ही तुम्हारी मृत्यु है। तब तुम उसे जान लोगे जो आती-जाती श्वासों के पास है, तब तुम साक्षी आत्मा को जान लोगे। और साक्षित्व उस समय आसानी से घट सकता है जब तुम श्वासों से खाली हो, क्योंकि तब जीवन उतार पर होता है। और सारे तनाव भी उतार पर होते है। तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह बहुत ही सुंदर विधि है।

लेकिन आमतौर से, सामान्य आदत के मुताबिक, हम सदा भीतर आने वाली श्वास को ही महत्व देते है। हम बाहर जाने वाली श्वास को कभी महत्व नहीं देते। हम सदा भीतर लेते है। उसे बाहर नहीं छोड़ते। हम श्वास लेते है और शरीर उसे छोड़ता है। तुम अपनी श्वसन क्रिया का निरीक्षण करो और तुम्हें यह पता चल जाएगा।

हम सदा श्वास लेते है। हम उसे छोड़ते नहीं। छोड़ने का काम शरीर करता है। और इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से भयभीत है। बस यही कारण है। अगर हमारा बस चलता तो हम कभी श्वास को बाहर जाने ही नहीं देते। हम श्वास को भीतर ही रोक रखते। कोई भी व्यक्ति श्वास छोड़ने पर जोर नहीं देता। सब लोग श्वास लेने की ही बात करते है। लेकिन श्वास को भीतर लेने के बाद उसे बाहर निकालना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए हम मजबूरी में उसे बाहर जाने देते है। उस हम किसी तरह बरदाश्त कर लेते है। क्योंकि श्वास छोड़े बगैर श्वास लेना असंभव है। इसलिए श्वास छोड़ना आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकृत है। लेकिन बुनियादी तौर से श्वास छोड़ने में हमारा कोई रस नहीं है।

और यह बात श्वास के संबंध में ही सही नहीं है। पूरे जीवन के प्रति हमारी दृष्टि यही है। जो भी हमें मिलता है, उसे हम मुट्ठी में बाँध लेते है। उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। यही मन का कृपणता है। और याद रहे, इसके बहुत परिणाम होते है। अगर तुम कब्जियत से पीडित हो तो उसका कारण यह है कि तुम श्वास तो लेते हो, लेकिन उसे छोड़ते नहीं। जो व्यक्ति श्वास लेना जानता है। लेकिन छोड़ना नहीं, वह कब्जियत से पीडित होगा। कब्जियत उसी चीज का दूसरा छोर है। वह किसी भी चीज को अपने से बाहर जाने देने के लिए राज़ी नहीं है। वह सिर्फ इकट्ठा करता जाता है। यह भयभीत है और भय के कारण यह इकट्ठा किए जाता है।

लेकिन जो चीज रोक ली जाती है वह विषाक्त हो जाती है। तुम श्वास तो लेते हो लेकिन अगर उसे छोड़ते नहीं तो वह श्वास जहर बन जाएगी और तुम उसके कारण मरोगे। अगर तुमने कंजूसी की तो तुम एक जीवनदायी तत्व को जहर में बदल दोगे। क्योंकि श्वास का बाहर जाना नितांत जरूरी है। बाहर जाती श्वास तुम्हारे भीतर से सब जहर को बाहर निकाल फेंकती है।

तो सच तो यह कि मृत्यु शुद्धि की प्रक्रिया है और जीवन अशुद्धि की, विषाक्त करने की प्रक्रिया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। जीवन विषाक्त करने की प्रक्रिया है, क्योंकि जीने के लिए बहुत सी चीजों को उपयोग में लाना पड़ता है। और जैसे ही तुम उनका उपयोग करते हो। वे विष में बदल जाती है। तब तुम श्वास लेते हो तो तुम आक्सीजन का उपयोग कर रहे हो, लेकिन उपयोग करने के बाद जो चीज बच रहती है वह विष है। आक्सीजन के कारण ही वह जीवन था। लेकिन जब तुमने उसका उपयोग कर लिया तो शेष विष हो जाता है। ऐसे ही जीवन हर चीज को जहर में बदलता रहता है।

मृत्यु शुद्ध की प्रकिया है। जब सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। तब मृत्यु तुम्हें उस शरीर से मुक्त कर देती है। मृत्यु तुम्हें फिर से नया बना देती है। तुम्हें नया जन्म दे देगी। तुम्हें नया शरीर मिल जाएगा। मृत्यु के द्वारा शरीर का सब संग्रहीत विष प्रकृति में विलीन हो जाता है। और तुम्हें एक नया शरीर उपलब्ध होता है।

और यह बात प्रत्येक श्वास के साथ घटित होती है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु के समान है, वह विष को बाहर ले जाती है। और जब वह श्वास बाहर जाती है। तो तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत होने लगता है। अगर तुम सारी की सारी श्वास बाहर फेंक दो, कुछ भी भीतर न रहने पाए तो तुम शांति के उस बिंदु को छू लोगे जो श्वास के भीतर रहते हुए कभी नहीं छुआ जा सकता था। यह ज्वार-भाटे जैसा है। आती हुई श्वास के साथ तुम्हारे पास जीवन-ज्वार आती है और जाती हुई श्वास के साथ सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार चला गया तब, तुम खाली, रिक्त सागर तट भर रह जाते हो। इस विधि का यही उपयोग करो।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। और तुम इस विधि का उपयोग मन में अनेक परिवर्तन लाने के लिए कर सकते हो। अगर तुम कब्जियत से पीड़ित हो तो श्वास भूल जाओ। सिर्फ श्वास को बहार फेंको। श्वास भीतर ले जाने का काम शरीर को करने दो। तुम छोड़ने भर का काम करो। तुम श्वास को बाहर निकाल दो और भीतर ले जाने की फिक्र ही मत करो। शरीर वह काम अपने आप ही कर लेगा, तुम्हें उसकी चिंता नहीं लेनी है। उससे तुम मर नहीं जाओगे। शरीर ही श्वास को भीतर ले जाएगा। तुम छोड़ने भर का काम करो, शेष शरीर कर लेगा। और तुम्हारी कब्जियत जाती रहेगी।

अगर तुम ह्रदय रोग से पीड़ित हो तो श्वास को बाहर छोड़ो। लेने की फिक्र मत करो। फिर ह्रदय रोग तुम्हें कभी नहीं होगा। अगर सीढ़ियां चढ़ते हुए या कहीं जाते हुए तुम्हें थकावट महसूस हो, तुम्हारा दम घुटने लगे तो तुम इतना ही करो: श्वास को बाहर छोड़ो, लो नहीं। और तब तुम कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाओगे। और नहीं थकोंगे। क्या होता है?

जब तुम श्वास छोड़ने पर जोर देते हो तो उसका मतलब है कि तुम अपने को छोड़ने का, अपने खोने को राज़ी हो। तब तुम मरने को राज़ी हो, तब तुम मृत्यु से भयभीत नहीं हो। और यही चीज तुम्हें खोलती है। अन्यथा तुम बंद रहते हो। भय बंद करता है। जब बंद करता है। जब तुम श्वास छोड़ते हो तो पूरी व्यवस्था बदल जाती है। और वह मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। भय जाता रहता है और तुम मृत्यु के लिए राज़ी हो जाते हो।

और वही व्यक्ति जीता है जो मरने के लिए तैयार है। सच तो यह हे कि वही जीता है जो मृत्यु से राज़ी है। केवल वही व्यक्ति जीवन के योग्य है। क्योंकि वह भयभीत नहीं है, जो व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करता है, मृत्यु का स्वागत करता है, मेहमान मानकर उसकी आवभगत करता है। उसके साथ रहता है। वही व्यक्ति जीवन में गहरे उतर सकता है।

जब एक कुत्ता मरता है तो दूसरे कुत्ते को कभी पता नहीं होता की मैं भी मर सकता हूं। जब भी मरता है, कोई दूसरा ही मरता है। तो कोई कुत्ता कैसे कल्पना करे के मैं भी मरने वाला हूं। उसने कभी अपने को मरते नहीं देखा। सदा किसी दूसरे ही मरते है। वह कैसे कल्पना करे, कैसे निष्पति निकाले कि मैं भी मरूंगा। पशु को मृत्यु का बोध नहीं होता। इसलिए कोई पशु संसार का त्याग नहीं करता। कोई पशु संन्यासी नहीं हो सकता है।

केवल एक बहुत ऊंच्ची कोटि की चेतना ही तुम्हें संन्यास की तरफ ले जा सकती है। मृत्यु के प्रति जागने से ही संन्यास घटित होता है। और अगर आदमी होकर भी तुम मृत्यु के प्रति जागरूक नहीं हो तो तुम अभी पशु ही हो। मनुष्य नहीं हुए हो। मनुष्य तो तुम तभी बनते हो जब मृत्यु का साक्षात्कार करते हो। अन्यथा तुममें और पशु में कोई फर्क नहीं है। पशु और मनुष्य में सब कुछ समान है, सिर्फ मृत्यु फर्क लाती है। मृत्यु का साक्षात्कार कर लेने के बाद तुम पशु नहीं रहते। तुम्हें कुछ घटित हुआ है जो कभी किसी पशु को घटित नहीं होता है। अब तुम एक भिन्न चेतना हो।

ऐसा ही इन विधियों के साथ है। वे सरल मालूम होती है। लेकिन वे बुनियादी सत्य को स्पर्श करती है। जब श्वास बाहर जा रही है, जब तुम जीवन से सर्वथा रिक्त हो, तब तुम मृत्यु को छूते हो, तब तुम उसके बहुत करीब पहुंच जाते हो। तब तुम्हारे भीतर सब कुछ मौन और शांत हो जाता है।

इसे मंत्र की तरह उपयोग करो। जब भी तुम्हें थकावट महसूस हो, तनाव महसूस हो तो अः से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार करो। अल्लाह से भी काम चलेगा। कोई शब्द जो तुम्हारी श्वास को समग्ररतः: से बाहर ले आए। जो तुम्हें श्वास से बिलकुल खाली कर दे। जिस क्षण तुम श्वास से रिक्त होते हो उसी क्षण तुम जीवन से भी रिक्त हो जाते हो।

और तुम्हारी सारी समस्याएं जीवन की समस्याएं है, मृत्यु की कोई समस्या नहीं हे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारे दुःख-संताप, तुम्हारा क्रोध, सब जीवन की समस्याएं है। मृत्यु तो समस्याहीन है। मृत्यु असमस्या है। मृत्यु कभी किसी को समस्या नहीं देती है। तुम भला सोचते हो कि मैं मृत्यु से डरता हूं, कि मृत्यु समस्या पैदा करती है। लेकिन हकीकत यह है कि मृत्यु नहीं जीवन के प्रति तुम्हारा आग्रह, जीवन के प्रति तुम्हारा लगाव समस्या पैदा करता है। जीवन ही समस्या खड़ी करता है। मृत्यु तो सब समस्याओं का विसर्जन कर देती है।

तो जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए—अ:sis—तुम जीवन से रिक्त हो गए। उस क्षण अपने भीतर देखो। जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए। दूसरी श्वास लेने के पहले उस अंतराल में गहरे उतरो जो रिक्त है और उसके आंतरिक मौन और शांति के प्रति सजग होओ। उस क्षण तुम बुद्ध हो।

और अगर तुम उस क्षण को पकड़ लो। तो तुम्हें वह स्वाद मिल जाएगा जिसे बुद्ध ने जाना। और एक बार यह स्वाद जान लिया गया तो फिर तुम उसे आने-जाने वाली श्वास से अलग कर ले सकते हो। फिर श्वास आती-जाती रह सकती है। और तुम चेतना की उस अवस्था में रह सकते हो। वह तो सदा है, फिर उसे उघाड़ना है। और उसे उस समय उघाड़ना आसान होता है जब तुम जीवन से, श्वास से रिक्त होते हो।

और जब श्वास बाहर निकल जाती है, तब सब कुछ निकल जाता है। इस क्षण किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। इस क्षण अनायास बिना प्रयास के सजगता को, बोध को उपल्बध हुआ जा सकता हे। मृत्यु के इस क्षण को उपलब्ध होओ। यही वह क्षण है जब तुम द्वार के बिलकुल करीब होते हो, परमात्मा के द्वार के बिलकुल पास होते हो। जो प्रकट है, जा असार है, वह बाहर चला गया; इस क्षण मे तुम लहर नहीं रहे। सागर हो गए। अभी तुम बिलकुल सागर के निकट हो। अगर तुम बोधपूर्ण हो सके, सजग हो सके, तो तुम भूल जाओगे कि मैं लहर हूं। फिर लहर आएगी। लेकिन अब तुम लहर के साथ कभी तादात्म्य नहीं बनाओगे। तुम सागर बने रहोगे। एक बार तुमने जान लिया कि तुम सागर हो, फिर तुम लहर नहीं हो सकते।

जीवन लहर है, मृत्यु सागर है। इस कारण ही बुद्ध इस बात पर जोर देते है कि मेरा निर्वाण मृत्यु वत है। वे कभी नहीं कहते कि तुम अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। वे इतना ही कहते है कि तुम मिटोगे, समग्ररतः: जीसस कहते है; मेरे पास आओ और मैं तुम्हें विराट जीवन दूँगा। बुद्ध कहते है: मेरे पास मिटने के लिए आओ, मैं तुम्हें समग्र मृत्यु दूँगा। और दोनों एक ही बात है। लेकिन बुद्ध की शब्दावली ज्यादा बुनियादी है। मगर तुम उससे भयभीत हो।

यही कारण है कि बुद्ध का भारत में प्रभाव नहीं पड़ सका। उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका गया। और हम कहे चले जाते है कि भूमि धार्मिक है। लेकिन यहां जो सर्वाधिक धार्मिक पुरूष हुआ उसे यहां हमने जमने नहीं दिया। किस तरह की धार्मिक भूमि है यह? हम दूसरा बुद्ध नहीं पैदा कर सकते। बुद्ध अप्रतिम है। जब भी संसार भारत को धर्म-भूमि के रूप में स्मरण करता है, वह बुद्ध को स्मरण करता है। और किसी को नहीं। बुद्ध के कारण ही भारत धार्मिक समझा जाता है। किसी प्रकार की धर्म-भूमि हे यह। बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया। कारण यह था कि बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली, उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया।

कारण यह था कि बुद्ध ने मृत्यु की भाषा उपयोग की। ब्राहमण जीवन की भाषा उपयोग करते है। वे कहते है ब्रहम; बुद्ध ने कहा निर्वाण। ब्रहम का अर्थ जीवन, अनंत जीवन है; और निर्वाण का अर्थ परिसमाप्ति, मृत्यु , समग्र मृत्यु। बुद्ध कहते है कि तुम्हारी सामान्य मृत्यु समग्र नहीं होती। तुम्हें फिर-फिर जन्म लेना होता है। साधारण मृत्यु समग्र नहीं है। तुम पूनः संसार

में आना पड़ता है। बुद्ध कहते थे कि मैं तुम्हें ऐसी समग्र मृत्यु दूँगा। कि तुम्हें फिर कभी जन्म लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। समग्र मृत्यु का अर्थ है कि अब दुबारा जन्म संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध कहते है कि यह तथाकथित मृत्यु-मृत्यु नहीं है। यह विश्राम है, तुम फिर जीवित हो उठते हो। यह मृत्यु तो बाहर गई श्वास जैसी है। तुम फिर श्वास भीतर लोगे। और तुम्हारा पुनः जन्म हो जाएगा। बुद्ध कहते है कि मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूं कि बाहर गई श्वास फिर वापस नहीं लौटेंगी। वही समग्र मृत्यु है। निर्वाण है।

''तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''

इसका प्रयोग करो। किसी भी समय यह प्रयोग कर सकते हो। बस या रेलगाड़ी में यात्रा कराते हुए, या अपने आफिस जाते हुए। जब भी तुम्हें समय मिले अल्लाह शब्द बड़ा काम का है—इस कारण नहीं कि वहां आसमान में कोई अल्लाह है। वरन इस अः के कारण। यह शब्द सुंदर है। और जितना कही कोई अल्लाह-अल्लाह कहता है उतना ही वह शब्द छोटा होता जाता है। अल्लाह से वह लाह हो जाता है। और फिर लाह से आह रह जाता है। यह अच्छा है। लेकिन तुम अः से अंत होने वाले किसी भी शब्द को काम में ला सकते हो, केवल अः से भी चलेगा।

तुमने देखा होगा कि जब भी तुम तनाव से भरते हो, तुम एक आह भरकर हलके हो जाते हो। या जब तुम खुशी से भरते हो, बहुत खुशी से, तब तुम अहा कहते हो और पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। और तुम अपने भीतर एक अपूर्व शांति अनुभव करते हो। इसे प्रयोग करो। जब तुम खूब प्रसन्न हो तो श्वास अंदर लो और देखो कि क्या होता है। तुम स्वस्थ अनुभव नहीं करोगे। जितना अहा कहने से करते हो। वह फर्क श्वास के कारण है।

भाषाएं अलग-अलग है, लेकिन ये दो चीजें सभी भाषाओं में समान हे। सारी धरती पर जहां भी कोई थकावट अनुभव करता है वह आह करता है। दरअसल वह मृत्यु को बुलाकर कहता है कि मुझे विश्राम दो। और जब वह आह्लादित होता है। आनंदित होता है, तब वह अहा कहता है। वह आनंद से इतना पूरित है कि वह मृत्यु से नहीं डरता। वह अपने को पूरी तरह छोड़ने को खोने को राज़ी है।

और अगर तुम इस विधि का निरंतर प्रयोग करते रहो तो उसके गहरे परिणाम होंगे। तब तुम्हारे भी जो सहज है, तुम उसके बोध से भर जाओगे। तब तुम अपनी सहजता को उपलब्ध हो जाओगे। तुम सहज ही हो, लेकिन तुम जीवन से इतने बंधे हो, ग्रस्त हो कि उसके पीछे खड़ी सहज सत्ता से अपरिचित रह जाते हो। लेकिन तब तुम जीवन से, आने वाली श्वास से ग्रस्त नही हो, तब वह सहज सत्ता प्रकट होती है। तब उसकी झलक मिलती है। और धीरे-धीरे वह झलक उपलब्धि में बदल जाती है। तुम्हारी सिद्धि बन जाएगी।

और तुमने उसे एक बार जान लिया तो फिर तुम उसे भुला नहीं सकोगे। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम निर्मित करते हो। वह स्वाभाविक है, सहज है; उसे बनाना नहीं , उघाड़ना भर है। वह तो है ही, तुम भूल गए हो। बस स्मरण करना है, उघाड़ना है।

शरीर अपने विवेक से चलता है। वह उतना ही ग्रहण करता है जितना जरूरी है। जब उसे ज्यादा की जरूरत होती है तो वैसी स्थिति बना लेता है और कम की जरूरत होती है तो वैसी ही स्थिति बना लेता है। शरीर कभी अति पर नहीं जाता है। वह सदा संतुलित रहता है। जब तुम श्वास लेते हो तब वह संतुलित नहीं है। क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि शरीर की जरूरत क्या है। और यह जरूरत क्षण-क्षण बदलती रहती है।

इसलिए शरीर को मौका दो, तुम तो बस श्वास छोड़ने भर का काम करो, उसे बाहर फेंको। और तब शरीर खुद श्वास लेने का काम कर लेगा। और शरीर जब खुद श्वास अंदर लेता है तो वह धीरे-धीरे लेता है। और गहरे लेता है। और पेट तक ले जाता है। वह श्वास ठीक नाभि-केंद्र पर चोट करती है। जिससे तुम्हारा पेट ऊपर नीचे होता है। और अगर श्वास लेने का काम भी तुम करोगे तो फिर समग्रता से श्वास छोड़ ने सकोगे। तब श्वास भीतर बची रहेगी। और उपर से ली गई श्वास गहराई में न उतर सकेगी। इसीलिए श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तुम श्वास भीतर लेते रहते हो और भीतर जहर इकट्ठा होता जाता है।

वे कहते है कि तुम्हारे फेफड़े में कई हजार छिद्र है। और उनमें से सिर्फ दो हजार छिद्रों तक ही श्वास पहुंच पाती है। बाकी चार हजार छिद्र तो सदा ज़हरीली गैस से भरे रहते है। जिन्हें सदा खाली करने की जरूरत है। वह जो तुम्हारी छाती का दो तिहाई हिस्सा जहर से भरा रहता है। वह तुम्हारे शरीर में मन में दुःख और चिंता और संताप लाता है।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है लेता नहीं। लेने का काम सदा शरीर करता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह जो पहला काम करता है वह रोना है। उसे रोने के साथ ही उसका कंठ खुलता है। रोने के साथ ही वह पहल अः बोलता है, उस रोने के साथ ही मां के द्वारा भीतर ली गई हवा बाहर निकल जाती है। वह उसकी पहल श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया का आरंभ।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है। और जब बच्चा श्वास लेने लगे, जब उसका जोर छोड़ने से हटकर लेने पर चला जाए तो सावधान हो जाना; तब बच्चा बूढ़ा होने लगा। उसका अर्थ है कि बच्चे ने वह तुमसे सीखा है, वह तनावग्रस्त हो गया है।

जब तुम तनाव ग्रस्त होते हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। क्यों? तब तुम्हारा पेट सख्त होता है। जब तुम तनाव में होते हो तो तुम्हारा पेट सख्त हो जाता है। वह सख्ती श्वास को गहरे नहीं जाने देती। तब तुम उथली श्वास ही लेने लगते हो।

अः का प्रयोग करो। वह तुम्हारे चारो और एक सुंदर भाव निर्मित करता है। जब भी तुम थकावट महसूस करो, अः कहकर श्वास को बाहर फेंको। और श्वास छोड़ने पर बल दो। तुम भिन्न ही आदमी होगे और एक भिन्न ही मन विकसित होगा। श्वास लेने पर जोर देकर तुमने कंजूस मन और कंजूस शरीर विकसित किए है। श्वास छोड़ने पर बल देकर वह कंजूसी विदा हो जाएगी। और उसके साथ ही अन्य अनेक समस्याएं विदा हो जाएंगी। तब दूसरे पर मलकियत करने का भाव तिरोहित हो जायेगा।

तो तंत्र यह नहीं कहता है कि मलकियत का भाव छोड़ो, तंत्र कहता है कि अपने श्वास-प्रश्वास का ढंग बदल दो और मलकियत अपने आप छूट जायेगी। तुम अपनी श्वास को देखो, अपने भावों को देखो और तुम्हें बोध हो जाएगा। जो भी गलत है वह भीतर जाने वाली श्वास को महत्व देने के कारण है और जो भी शुभ है ओर सत्य है , शिव है, और सुंदर है। वह बाहर जाने वाली श्वास के साथ संबंधित है। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम अपनी श्वास को रोक रखते हो, और जब सच बोलते हो तो श्वास को कभी नहीं रोकते। झूठ बोलते समय तुम्हें डर लगता है और उस डर के कारण तुम श्वास को रोक रखते हो। तुम्हें यह डर भी होता है कि बाहर जाने वाली श्वास के साथ कही छिपाया गया सत्य भी प्रकट न हो जाये।

इस अः का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करो और तुम शरीर और मन से ज्यादा स्वस्थ रहोगे। और तुम्हें एक विशेष ढंग की शांति और विश्राम का अनुभव होगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—31

तंत्र-सूत्र—विधि—46 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी दसवीं विधि:

'कानों को दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करो,

''कानों को दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करो, और ध्वनि में प्रवेश करो।''

हम अपने शरीर से भी परिचित नहीं है। हम नहीं जानते कि शरीर कैसे काम करता है और उकसा ताओ क्या है। ढंग क्या है। मार्ग क्या है। लेकिन अगर तुम निरीक्षण करो तो आसानी से उसे जान सकते हो।

अगर तुम अपने कानों को बंद कर लो और गुदा को ऊपर की और सिकोड़ो तो तुम्हारे लिए सब कुछ ठहर जायेगा। ऐसा लगेगा कि सारा संसार रूक गया। ठहर गया है। गतिविधियां ही नहीं, तुम्हें लगेगा कि समय भी ठहर गया है। जब तुम गुदार को ऊपर खींचकर सिकोड़ लेते हो। क्या होता है ऐसा? अगर दोनों कान बंद कर लिए जाएं तो बंद कानों से तुम अपने भीतर एक ध्वनि सुनोंगे। लेकिन अगर गदा को ऊपर खींचकर नहीं सिकुड़ा जाए तो वह ध्वनि गुदा-मार्ग से बहार निकल जाती है। वह ध्वनि बहुत सूक्ष्म है। अगर गुदा को ऊपर खींचकर सिकोड़ लिया जाए और कानों को बंद किया जाए तो तुम्हारे भीतर एक ध्वनि का स्तंभ निर्मित होगा। और वह ध्वनि मौन की ध्वनि होगी। वह नकारात्मक ध्वनि है। जब सब ध्वनियां समाप्त हो जाती है। तब तुम्हें मौन की ध्वनि या निध्वनि का एहसास होता है। लेकिन वह निर्ध्वनि गुदा से बहार निकल जाती है। इसलिए कानों को बंद करो और गुदा को सिकोड़ लो। तब तुम दोनों और से बंद हो जाते हो। तुम्हारा शरीर भी बंद हो जाता है। और ध्वनि से भर जाता है। ध्वनि से भरने का यह भाव गहन संतोष को जन्म देता है। इस संबंध में बहुत सी चीजें समझने जैसी है। और तभी तुम उसे समझ सकोगे जो घटित होता है।

हम अपने शरीर से परिचित नहीं है। साधक के लिए यह एक बुनियादी समस्या है। और समाज शरी से परिचय के विरोध में है। क्योंकि समाज शरीर से भयभीत है। हम हरेक बच्चे को शरीर से अपरिचित रहने की शिक्षा देते है। हम उसे संवेदन शून्य बना देते है। हम बच्चे के मन और शरीर के बीच एक दूरी पैदा कर देते है। ताकि वह अपने शरीर से ठीक से परिचित न हो जाए। क्योंकि शरीर बोध समाज के लिए समस्या पैदा करेगा।

इमें बहुत सी चीजें निहित है। अगर बच्चा शरीर से परिचित है तो वह देर-अबेर काम या सेक्स से भी परिचित हो जाएगा। अगर वह शरीर से बहुत ज्यादा परिचित हो जाएगा तो वह अपना कामुक और इंद्रियोन्मुख अनुभव करेगा। इसलिए हमें उसकी जड़ को ही काट देना है। हम बच्चे को उसके शरीर के प्रति जड़ और संवेदन शुन्य बना देते है। ताकि उसे उसका एहसास न हो। तुम्हें तुम्हारे शरीर का एहसास ही नहीं होता। हां, जब किसी उपद्रव में पड़ता है तो ही उसका एहसास होता है।

तुम्हारे सिर में दर्द होता है तो तुम्हें सिर का पता चलता है। जब पाँव में कांटा गड़ता है तो पाव का पता चलता है। और जब शरीर में दर्द होता है तो तुम जानते हो कि मेरा शरीर भी है। जब शरीर रूग्ण होता है तो ही उसका पता चलता है। लेकिन वह भी शीध्र नहीं। तुम्हें अपने रोगों का पता भी तुरंत नहीं चलता है। कुछ समय बीतने पर ही पता चलता है। जब रोग तुम्हारी चेतना के द्वार पर बार-बार दस्तक देता है। जब पता चलता है। यही कारण है कि कोई भी व्यक्ति समय रहते डाक्टर के पास नहीं पहुंचता है। वह देर कर के पहुंचता है। जब रोग गहन हो चूका होता है। और वह अपनी बहुत हानि कर चूका होता है।

इस लिए समस्याएं पैदा होती है—विशेषकर तंत्र के लिए। तंत्र गहन संवेदनशीलता और शरीर के बोध में भरोसा करता है।

तुम अपने काम में लगे हो और तुम्हारा शरीर बहुत कुछ कर रहा है, जिसका तुम्हें कोई बोध नहीं है। अब तो शरीर की भाषा पर बहुत काम हो रहा है। शरीर की अपनी भाषा है। और मनोचिकित्सकों और मानस्विद को शरीर की भाषा का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। क्योंकि वे कहते है कि आधुनिक मनुष्य का भरोसा नहीं किया जा सकता। आधुनिक मनुष्य जो कहता है उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उससे अच्छा है उसके शरीर का निरीक्षण करना क्योंकि शरीर उसके बारे में ज्यादा खबर रखता है।

विलहेम रेख ने शरीर की संरचना पर बहुत काम किया है। और उसे शरीर और मन के बीच बहुत गहरा संबंध दिखाई दिया है। यदि कोई आदमी भयभीत है तो उसका पेट कोमल नहीं होगा। तुम उसका पेट छुओ और वह पत्थर जैसा होगा। और अगर वह निडर हो जाए तो उसका पेट छुओ तो वह तुरंत शिथिल हो जाएगा। या अगर पेट को शिथिल कर लो तो भय चला जाएगा। पेट पर थोड़ी मालिश करो और तुम देखोगें कि डर कम हो गया। निर्भयता आई। जो व्यक्ति प्रेमपूर्ण है। उसके शरीर का गुण धर्म और होगा। उसके शरीर में उष्णता होगी, जीवन होगा। और जो व्यक्ति प्रेम पूर्ण नहीं होगा उसका शरीर ठंडा होगा।

यही ठंडापन और अन्य चीजें तुम्हारे शरीर में प्रविष्ट हो गई है। और वे ही बाधाएं बन गई है। वे तुम्हें तुम्हारे शरीर को नही जानने देती है। लेकिन शरीर अपने ढंग से अपना काम करता रहता है। और तुम अपने ढंग से अपना काम करते रहते हो। दोनों के बीच एक खाई पैदा हो जाती है। उस खाई को पाटना है।

मैंने देखा है अगर कोई व्यक्ति दमन करता है, अगर तुम क्रोध को दबाते हो तो तुम्हारे हाथों में, तुम्हारी अंगुलियों में दमित क्रोध की उतैजना होगी। और जो जानता है वह तुम्हारे हाथों को छूकर बता देगा कि तुमने क्रोध को दबाया है।

अगर तुमने कामवासना को दबाया है तो वह कामवासना तुम्हारे काम-अंगों में दबी पड़ी रहेगी। ऐसी किसी अंग को छूकर बताया जा सकता है। यहां काम दमित पडा है। वह अंग भयभीत हो जाएगा। और तुम्हारे स्पर्श से बचना चाहेगा। वह खुला या ग्रहणशील नहीं रहेगा। चूंकि तुम बचना चाहते हो इसलिए वह अंग भी संकुचित हो जाएगा। वह तुम्हें द्वार नहीं देगा।

अब वे कहते है कि पचास प्रतिशत स्त्रियां ठंडी है, उनकी कामवासना को उतेजित नहीं किया जा सकता। और कारण यह है कह हम लड़कों से बढ़ कर लड़कियों को काम दमन सिखाते है। लड़कियां बहुत दमन करती है। और जब वे बीस वर्ष की उम्र तक करती है तो उसकी लंबी आदत बन जाती है। बीस वर्षो का दमन। फिर जब वह प्रेम करेगी तो वह प्रेम की बात ही करेगी, प्रेम के प्रति उसका शरीर उन्मुख नहीं होगा। नहीं खुलेगा। उनका शरीर एक तरह से सेक्स के प्रति बंद जो जाता है। जड़ हो जाता है। और तब एक सर्वथा विरोधपूर्ण घटना घटती है। उसके भीतर परस्पर विरोधी दो धाराएं एक साथ बहती है। वह प्रेम

करना चाहती है, लेकिन उसका शरीर दमित है। शरीर असहयोग करता है। शरीर पीछे हटने लगता है। वह पास आने को तैयार नहीं होता।

अगर तुम किसी स्त्री को किसी पुरूष के पास बैठे देखो और अगर वह स्त्री पुरूष को प्रेम करती है तो तुम पाओगे कि वह स्त्री उस पुरूष की तरफ झुककर बैठी है। अगर स्त्री पुरुष से डरती है तो उसका शरीर उसके विपरीत दिशा में झुका होगा। अगर स्त्री पुरूष के प्रेम में है तो वह अपनी टांगों को एक दूसरे पर रख नहीं बैठेगी। वह ऐसा तभी करेगी जब वह पुरूष से भयभीत होगी। उसे इस बात की खबर नहीं है, वह अनजाने कर रही है। शरीर अपना बचाव आप करता है, वह अपने ढंग से अपना काम करता है।

तंत्र को पहले से इस बात का बोध था, सब से पहले तंत्र को ही शरीर के तल पर ऐसी गहरी संवेदनशीलता का पता चला था। और तंत्र कहता है कि अगर तुम सचेतन रूप से अपने शरीर का उपयोग कर सको तो शरीर ही आत्मा में प्रवेश का साधन बन जाता है। तंत्र कहता है कि शरीर का विरोध करना मूढ़ता है, बिलकुल मूढता है। शरीर का उपयोग करो, शरीर माध्यम है। और इसकी उर्जा का उपयोग इस भांति करो कि तुम इसका अतिक्रमण कर सको।

''अब कानों का दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करों। और ध्वनि में प्रवेश करो।''

तुम अपने गुदा को अनेक बार सिकोड़ते रहे हो, और कभी-कभी तो गुदा-मार्ग अनायास भी खुल जाता है। अगर तुम्हें अचानक कोई भय पकड़ जाये, तो तुम्हारा गुदा मार्ग खुल जाता है। भय के कारण अचानक मलमूत्र निकल जायेगा। क्या होता है? भय में क्या होता है? भय तो मानसिक चीज है, फिर भय में पेशाब क्यों निकल जाता है। नियंत्रण क्या जाता रहता है? जरूर ही कोई गहरा संबंध होना चाहिए?

भय सिर में, मन में घटित होता है। जब तुम निर्भय होते हो तो ऐसा कभी नहीं होता असल में बच्चे का अपने शरीर पर कोई मानसिक नियंत्रण नहीं होता। कोई पशु अपने मल मूत्र का नियंत्रण नहीं कर सकता है। जब भी मलमूत्र भर जाता है, वह अपने आप ही खाली हो जाता है। पशु उस पर नियंत्रण नहीं करता है। लेकिन मनुष्य को आवश्यकतावश उस पर नियंत्रण करना पड़ता है। हम बच्चे को सिखाते है कि कब उसे मल-मूत्र त्याग करना चाहिए। हम उसके लिए समय बाँध देते है। इस तरह मन एक ऐसे काम को अपने हाथ में ले लेता है। जो स्वैच्छिक नहीं है। और यही कारण है कि बच्चे को मलमूत्र विसर्जन का प्रशिक्षण देना इतना कठिन होता है।

अब मानस्विद कहते है कि अगर मलमूत्र विसर्जन का प्रशिक्षण बंद कर दिया जाए तो मनुष्य की हालत बहुत सुधर जाएगी। बच्चे का, उसकी स्वाभाविकता का, सहजता कास पहल दमन मलमूत्र-विसर्जन के प्रशिक्षण में होता है। लेकिन इन मनस्विदों की बात मानना कठिन मालूम पड़ता है। कठिन इसलिए मालूम पड़ता है। क्योंकि तब बच्चे बहुत सी समस्याएं खड़ी कर देंगे। केवल समृद्ध समाज, अत्यंत समृद्ध समाज ही इस प्रशिक्षण के बिना काम चला सकता है। गरीब समाज को इसकी चिंता लेनी ही पड़ेगी। बच्चे जहां चाहे पेशाब करें, यह हम कैसे बरदाश्त कर सकते है। तब तो यह सोफा पर ही पेशाब करेगा। और यह हमारे लिए बहुत खर्चीला पड़ेगा। तो प्रशिक्षण जरूरी हे। और यह प्रशिक्षण मानसिक है, शरीर में इसकी कोई अंतर्निहित व्यवस्था नहीं है। ऐसी कोई शरीर गत व्यवस्था नहीं है। जहां तक शरीर का संबंध है। मनुष्य पशु ही है। और शरीर को संस्कृति से, समाज से कुछ लेना देना नहीं है।

यही कारण है कि जब तुम्हें गहन भय पकड़ता है तो यह नियंत्रण जाता रहता है। जो शरीर पर लादी गई है, ढीली पड़ जाती है। तुम्हारे हाथ से नियंत्रण जाता रहता है। सिर्फ सामान्य हालातों में यह नियंत्रण संभव है। असामान्य हालातों में तुम नियंत्रण नहीं रख सकते हो। आपात स्थितियों के लिए तुम्हें प्रशिक्षित नहीं किया गया है। सामान्य दिन-चर्या के कामों के लिए ही

प्रशिक्षित किया गया है। आपात स्थिति में यह नियंत्रण विदा हो जाता है, तब तुम्हारा शरीर अपने पाशविक ढंग से काम करने लगता है।

लेकिन इसमें एक बात समझी जा सकती है कि निर्भीक व्यक्ति के साथ ऐसा कभी नहीं होता। यह तो कायरों का लक्षण है। अगर डर के कारण तुम्हारा मल-मूत्र निकल जाता है। तो उसका मतलब है कि तुम कायर हो। निडर आदमी के साथ ऐसा कभी नहीं हो सकता, कयोंकि निडर आदमी गहरी श्‍वास लेता है। उसके शरी और श्‍वास प्रश्‍वास के बीच एक तालमेल है, उनमें कोई अंतराल नहीं है। कायर व्यक्ति के शरीर और श्‍वास प्रश्‍वास के बीच एक अंतराल होता है। और इस अंतराल के कारण वह सदा मल-मूत्र से भरा होता है। इसलिए जब आपात स्थिति पैदा होती है तो उसका मल-मूत्र बाहर निकल जाता है।

और इसका एक प्राकृतिक करण यह भी है कि मल-मूत्र निकलने से कायर हल्का हो जाता है। और वह आसानी से भाग सकता है। बच सकता है। बोझिल पेट बाधा बन सकता है। इसलिए कायर के लिए मल-मूत्र का निकलना सहयोगी होता है।

मैं यह बात क्या कह रहा हूं, मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि तुम्हें अपने मन और पेट की प्रक्रियाओं से परिचित होना चाहिए। मन और पेट में गहरा अंतर् संबंध है। मानस्विद कहते है कि तुम्हारे पचास से नब्बे प्रतिशत सपने पेट की प्रक्रियाओं के कारण घटते है। अगर तुमने ठूस-ठूस कर खाया है, तो तुम दुख स्वप्‍न देखे बिना नहीं रह सकते। ये दुःख स्वप्‍न मन से नहीं, पेट से आते है।

बहुत से सपने बाहरी आयोजन के द्‌वारा पैदा किए जा सकते है। अगर तुम नींद में हो और तुम्हारे हाथों को मोड़कर सीने पर रख दिया जाए तो तुम तुरंत दुःख स्वप्‍न देखने लगोगे। अगर तुम्हारी छाती पर सिर्फ एक तकिया रख दिया जाए तो तुम सपना देखोगें कि कोई राक्षस तुम्हारी छाती पर बैठा है और तुम्हें मार डालने पर उतारू है।

यह विचारणीय है कि एक छोटे से तकिये का भार इतना ज्यादा क्यों हो जाता है। यदि तुम जागे हुए हो तो तकिया कोई भार नहीं है। तुम्हें एक भार नहीं महसूस होता है। लेकिन क्या बात है कि नींद में छाती पर रखा गया एक छोटा सा तकिया भी चट्टान की तरह भारी मालूम पड़ता है। इतना भार क्यों मालूम पड़ता है?

कारण यह है कि जब तुम जागे हुए हो तो तुम्हारे शरीर और मन के बीच तालमेल नहीं रहता है, उनमें एक अंतराल रहता है। तब तुम शरीर और उसकी संवेदनशीलता को महसूस नहीं कर सकते। नींद में नियंत्रण संस्कृति, संस्कार, सब विसर्जित हो जाते है और तुम फिर से बच्चे जैसे हो जाते हो और तुम्हारा शरीर संवेदनशील हो जाता है। उसी संवेदनशीलता के कारण एक छोटा सा तकिया भी चट्टान जैसा भारी मालूम पड़ता है। संवेदन शीलता के कारण भार अतिशय हो जाता है। अनंत गुना हो जाता है।

तो मन और शरीर की प्रक्रियाएं आपस में बहुत जुड़ी हुई है। और यदि तुम्हें इसकी जानकारी हो तो तुम इसका उपयोग कर सकते हो।

गुदा को बंद करने से, ऊपर खींचने से, सिकोड़ने से शरीर में ऐसी स्थिति बनती है। जिसमें ध्वनि सुनी जा सकती है। तुम्हें अपने शरी के बंद धेरे में, मौन में, ध्वनि का स्तंभ सा अनुभव होगा। कानों को बंद कर लो और गुदा को ऊपर की और सिकोड़ लो और फिर अपने भी जो हो रहा हो उसके साथ रहो। कान और गुदा को बंद करने से जो रिक्‍त स्थिति बनी है उसके साथ बस रहो। ध्वनि तुम्हारे कानों के मार्ग से या गुदा के मार्ग से बाहर जाती है। उसके बाहर जाने के ये ही दो मार्ग है। इसलिए अगर उनका बहार जाना न हो तो तुम उसे आसानी से महसूस कर सकते हो।

और इस आंतरिक ध्वनि को अनुभव करने से क्या होता है। इस आंतरिक ध्वनि को सुनने के साथ ही तुम्हारे विचार विलीन हो जाते है। दिन में किसी भी समय यह प्रयोग करो: गुदा को ऊपर खींचो और कानों को अंगुलि के बंद कर लो। कानों को बंद करो और गुदा को सिकोड़ लो, तब तुम्हें एहसास होगा कि मेरा मन ठहर गया है। उसने काम करना बंद कर दिया है और विचार भी ठहर गए है। मन में विचारों का जो सतत प्रवाह चलता है, वह विदा हो गया है। यह शुभ है।

और जब भी समय मिले इसका प्रयोग करते रहो। अगर दिन में पाँच-छह दफे इसका दिन भर सुन सकते हो। तब बाजार के शोरगुल में भी, सड़क के शोरगुल में भी—यदि तुमने उस ध्वनि को सुना है—वह तुम्हारे साथ रहेगी। और फिर तुम्हें कोई भी उपद्रव अशांत नहीं करेगा। अगर तुमने यह अंतर् ध्वनि सुन ली तो बाहर की कोई चीज तुम्हें विचलित नहीं कर सकती है। तब तुम शांत रहोगे। जो भी आस-पास घटेगा उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—31
तंत्र-सूत्र—विधि—47 (ओशो)
ध्वनि-संबंधी अंतिम विधि:

'अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, ओशो

''अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, और उस ध्वनि के द्वारा सभी ध्वनियों में।''
मंत्र की तरह नाम का उपयोग बहुत आसानी से किया जा सकता है। यह बहुत सहयोगी होगा, क्योंकि तुम्हारा नाम तुम्हारे अचेतन में बहुत गहरे उतर चुका है। दूसरी कोई भी चीज अचेतन की उस गहराई को नहीं छूती है। यहां हम इतने लोग बैठे है। यदि हम सभी सो जाएं और कोई बाहर से आकर राम को आवाज दे तो उस व्यक्ति के सिवाय जिसका नाम राम है, कोई भी उसे नहीं सुनेगा। राम उसे सुन लेगा। सिर्फ राम की नींद में उससे बाधा पहुँचेगी। दूसरे किसी को भी राम की आवाज सुनाई नहीं देगी।
लेकिन एक आदमी क्यों सुनता है? कारण यह है कि यह नाम उसके गहरे अचेतन में उतर गया है। अब यह चेतन नहीं है, अचेतन बन गया है। तुम्हारा नाम तुम्हारे बहुत भीतर तक प्रवेश कर गया है। तुम्हारे नाम के साथ एक बहुत सुंदर घटना घटती है। तुम कभी अपने को अपने नाम से नहीं पुकारते हो। सदा दूसरे तुम्हारा नाम पुकारते है। तुम अपना नाम कभी नहीं लेते, सदा दूसरे लेते है।

मैंने सूना है कि पहले महायुद्ध में अमेरिका में पहली बार राशन लागू किया गया। थॉमस एडीसन महान वैज्ञानिक था, लेकिन क्योंकि गरीब था इसलिए उसे भी अपने राशन कार्ड के लिए कतार में खड़ा होना पडा। और वह इतना बड़ा आदमी था कि कोई उसके सामने उसका नाम नहीं लेता था। और उसे खूद कभी अपना नाम लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। और दूसरे लोग उसे इतना आदर करते थे कि उसे सदा प्रोफेसर कहकर पुकारते थे। तो एडीसन को अपना नाम भूल गया।

वह क्यू में खड़ा था। और जब उसका नाम पुकारा गया तो वह ज्यों का त्यों चुप खड़ा रहा। क्यू में खड़े दूसरे व्यक्ति ने, जो एडीसन का पड़ोसी था, उसने कहा कि आप चुप क्यों खड़े है। आपका नाम पुकारा जा रहा है। तब एडीसन को होश आया। और उसने कहा कि मुझे तो कोई भी एडीसन कहकर नहीं पुकारता है, सब मुझे प्रोफेसर कहते है। फिर मैं कैसे सुनता। अपना नाम सुने हुए मुझे बहुत समय हो गया है।

तुम कभी आना नाम नहीं लेते हो। दूसरे तुम्हारा नाम लेते है। तुम उसे दूसरों के मुंह से सुनते हो। लेकिन अपना नाम अचेतन में गहरा उतर जाता है—बहुत गहरा। वह तीर की तरह अचेतन में छिद जाता है। इसलिए अगर तुम अपने ही नाम का उपयोग करो तो वह मंत्र बन जाएगा। और दो कारणों से अपना नाम सहयोगी होता है।

एक कि जब तुम अपना नाम लेते हो—मान लो कि तुम्हारा नाम राम है और तुम राम-राम कहे जाते हो—तो कभी तुम्हें अचानक महसूस होगा कि मैं किसी दूसरे का नाम ले रहा हूं। कि यह मेरा नाम नहीं है। और अगर तुम यह भी समझो कि यह मेरा नाम है तो भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि मेरे भीतर कोई दूसरा व्यक्ति है जो इस नाम का उपयोग कर रहा है। यह नाम शरीर का हो सकता है। मन का हो सकता है। लेकिन जो राम-राम कह रहा है वह साक्षी है।

तुमने दूसरों के नाम पुकारें है। इसलिए जब तुम अपना नाम लेते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है कि यह नाम किसी और का है। मेरा नहीं। और यह घटना बहुत कुछ बताती है। तुम अपने ही नाम के साक्षा हो सकते हो। और इस नाम के साथ तुम्हारा समस्त जीवन जुड़ा है। नाम से प्रथक होते ही तुम अपने पूरे जीवन में पृथक हो जाते हो। और यह नाम तुम्हारे गहरे अचेतन में चला जाता है। क्योंकि तुम्हारे जन्म से ही लोग तुम्हें इस नाम से पुकारते है। तुम सदा-सदा इसे सुनते रहे हो। तो इस नाम का उपयोग करो। इस नाम के साथ तुम उन गहराइयों को छू लोगे जहां तक यह नाम प्रवेश कर गया है।

पुराने दिनों में हम सबको परमात्मा के नाम दिया करते थे। कोई राम कहलाता था, कोई नारायण कहलाता था। कोई कृष्ण कहलाता था। कोई विष्णु कहलाता था। कहते है कि मुसलमानों के सभी नाम परमात्मा के नाम है। और पूरी धरती पर यही रिवाज था कि परमात्मा के नाम के आधार पर हम लोगों के नाम रखते थे। और इसके पीछे कारण थे।

एक कारण तो यही विधि था। अगर तुम अपने नाम को मंत्र की तरह उपयोग करते हो तो इसके दोहरे लाभ हो सकते है। एक तो यह तुम्हारा अपना नाम होगा, जिसको तुमने इतनी बार सुना है। जीवन भर सुना है और जो तुम्हारे अचेतन में प्रवेश कर गया है। फिर यही परमात्मा का नाम भी है। और जब तुम उसको दोहराओगे तो कभी अचानक तुम्हें बोध होगा, कि यह नाम मुझसे पृथक है। और फिर धीरे-धीर उस नाम की अलग पवित्रता निर्मित होगी। महिमा निर्मित होगी। किसी दिन तुम्हें स्मरण होगा कि यह तो परमात्मा का नाम है। तब तुम्हारा नाम मंत्र बन गया है। तो इसका उपयोग करो। यह बहुत ही अच्छा है।

तुम अपने नाम के साथ कई प्रयोग कर सकते हो। अगर तुम सुबह पाँच बजे जागना चाहते हो तो तुम्हारे नाम से बढ़कर कोई अलार्म नहीं है। वह ठीक तुम्हें पाँच बजे जगा देगा। बस अपने भीतर तीन बार कहो: राम, तुम्हें ठीक पाँच बजे जाग जाना है। तीन बार कहकर तुरंत सो जाओ। तुम पाँच बजे जाग जाओगे। क्योंकि तुम्हारा नाम राम तुम्हारे गहन अचेतन में बसा है। अपना ही नाम लेकर अपने को कहो कि पाँच बजे मुझे जगा देना। और कोई तुम्हें जगा देगा। अगर तुम इस अध्याय को जारी रख सकते हो तो तुम पाओगे की ठीक पाँच बजे तुम्हें कोई पूकार रहा है। राम, जागों। यह तुम्हारा अचेतन पूकार रहा है।

यह विधि कहती है: ''अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, और उस ध्वनि के द्वारा सभी ध्वनियों में।''

तुम्हारा नाम सभी नामों के लिए द्वार बन सकता है। लेकिन ध्वनि में प्रवेश करो। पहले तुम जब राम-राम जपते हो तो वह शब्द भर है। लेकिन अगर जब सतत जारी रहता है तो उसका अर्थ कुछ और हो जाता है।

तुमने बाल्मीकी की कथा सुनी होगी। उन्हें यही राम मंत्र दिया गया था। लेकिन बाल्मीकी अनपढ़ था। सीधे-साधे बच्चे जैसा निर्दोष था। उन्होंने राम-राम जपना शुरू किया। लेकिन इतना अधिक जप किया कि वे भूल गये और राम की जगह मरा-मरा कहने लगे। वे राम-राम को इतनी तेजी से जपते थे कि वह मरा-मरा बन गया। और मरा-मरा कहकर ही वे पहूंच गये।

तुम भी अगर अपने भीतर अपने नाम का जाप तेजी से करो तो वह शब्द न रहकर ध्वनि में बदल जाता है। जब वह एक अर्थहीन ध्वनि हो जाती है। और तब राम और मरा में कोई भेद नहीं रहता। अब शब्द नहीं रहे, वे बस ध्वनि है। और ध्वनि असली चीज है।

तो अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, उसके अर्थ को भूल जाओ। सिर्फ ध्वनि में प्रवेश करो। अर्थ मन की चीज है, ध्वनि शरीर की चीज है। अर्थ सिर में रहता है। ध्वनि सारे शरीर में फैल जाती है। अर्थ को भूल ही जाओ। उसे एक अर्थहीन ध्वनि की तरह जपो। और इस ध्वनि के जरिए तुम सभी ध्वनियों में प्रवेश पा जाओगे। यह ध्वनि सब ध्वनियों के लिए द्वार बन जाएगी। सब ध्वनियों का अर्थ है जो सब है—सारा अस्तित्व।

भारतीय अंतस—अनुसंधान का यह एक बुनियादी सूत्र है कि अस्तित्व की मूलभूत इकाई ध्वनि है। विद्युत नहीं है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि अस्तित्व की मूलभूत इकाई विद्युत है, ध्वनि नहीं है। लेकिन वे यह भी मानते है कि ध्वनि भी एक तरह की विद्युत है। भारतीय सदा कहते आए है कि विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है। तुमने सुना होगा कि किसी विशेष राम के द्वारा आग पैदा की जा सकती है। यह संभव है। क्योंकि भारतीय धारणा यह है कि समस्त विद्युत का आधार ध्वनि है। इसलिए अगर ध्वनि को एक विशेष ढंग से छेड़ा जाये, किसी खास राग में गया जाए तो विद्युत या आग पैदा हो सकती है।

लंबे पुलों पर फौज की टुकड़ियों को लयवद्ध शैली में चलने की मनाही है, क्योंकि कई बार ऐसा हुआ है कि उनकी लयवद्ध कदम पड़ने के कारण पुल टूट गए है। ऐसा उनके भार के कारण नहीं , ध्वनि के कारण होता है। अगर सिपाही लयवद्ध शैली में चलेंगे तो उनके लयवद्ध कदमों की विशेष ध्वनि के कारण पुल टूट जाएगा। वे सिपाही यदि सामान्य ढंग सक निकले तो पुल को कुछ नहीं होगा।

पुराने यहूदी इतिहास में उल्लेख है कि जेरीको शहर ऐसी विशाल दीवारों से सुरक्षित था कि उन्हें बंदूकों से तोड़ना संभव नही था। लेकिन वे ही दीवारें एक विशेष ध्वनि के द्वारा तोड़ डाली गई। उन दीवारों के टूटने का राज ध्वनि में छिपा है। दीवारों के सामने अगर उस ध्वनि को पैदा किया जाए तो दीवारें टूट जाएंगी। तुमने अली बाबा की कहानी सुनी होगी, उसमे भी एक खास ध्वनि बोल कर चट्टान हटाई जाती थी।

वे प्रतीक है। वह सच हो या नहीं , एक बात निश्चित है कि अगर तुम किसी ध्वनि का इस भांति सतत अभ्यास करते रहो कि उसका अर्थ मिट जाये, तुम्हारा मन विलीन हो जाए, तो तुम्हारे ह्रदय पर पड़ी चट्टान हट जायेगी।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र,

भाग—2, प्रवचन-31

तंत्र सूत्र–विधि -48

काम संबंधि पहला सूत्र–

''काम-आलिंगन में आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो
विज्ञान भैरव तंत्र, विधि-48–ओशो

''काम-आलिंगन में आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''
कई कारणों से काम कृत्य गहन परितृप्ति बन सकता है और वह तुम्हें तुम्हारी अखंडता पर, स्वभाविक और प्रामाणिक जीवन पर वापस पहुंचा सकता है। उन कारणों को समझना होगा।

एक कारण यह है कि काम कृत्य समग्र कृत्य है। इसमें तुम अपने मन से बिलकुल अलग हो जाते हो। छूट जाते हो। यही कारण है कि कामवासना से इतना डर लगता है। तुम्हारा तादात्म्य मन के साथ है और काम अ-मन का कृत्य है। उस कृत्य में उतरते ही तुम बुद्धि-विहीन हो जाते हो। उसमे बुद्धि काम नहीं करती। उसमे तर्क की जगह नहीं है। कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। और अगर मानसिक प्रक्रिया चलती है तो काम कृत्य सच्चा और प्रामाणिक नहीं हो सकता। तब आर्गाज्म संभव नहीं है। गहन परितृप्ति संभव नहीं है। तब काम-कृत्य उथला हो जाता है। मानसिक कृत्य हो जाता है। ऐसा ही हो गया है। सारी दुनिया में कामवासना की इतनी दौड़ है, काम की इतनी खोज है, उसका कारण यह नहीं है कि दुनिया ज्यादा कामुक हो गई है। उसका कारण इतना ही हे कि तुम काम-कृत्य को उसकी समग्रता में नहीं भोग पाते हो। इसीलिए कामवासना की इतनी दौड़ है। यह दौड़ बताती है कि सच्चा काम खो गया है। और उसकी जगह नकली काम हावी हो गया है। सारा आधुनिक चित कामुक हो गया है। क्योंकि काम कृत्य ही खो गया है। काम कृत्य भी मानसिक कृत्य बन गया है। काम मन में चलता रहता है और तुम उसके संबंध में सोचते रहते हो।

मेरे पास अनेक लोग आते है और कहते है कि हम काम के संबंध में सोच-विचार करते है, पढ़ते है, चित्र देखते है। अश्लील चित्र देखते है। वही उनका कामानंद है, सेक्स का शिखर अनुभव है। लेकिन जब काम का असली क्षण आता है तो उन्हें अचानक पता चलता है कि उसमे उनकी रूचि नहीं है। यहां तक कि वे उसमे अपने को नापुंसग अनुभव करते है। सोच-विचार के क्षण में ही उन्हें काम उर्जा का एहसास होता है। लेकिन जब वे कृत्य में उतरना चाहते है तो उन्हें पता चलता है कि उसके

लिए उनके पास ऊर्जा नहीं है। तब उन्हें कामवासना का भी पता नहीं चलता है। उन्हें लगता है कि उनका शरीर मुर्दा हो गया है।

उन्हें क्या हो गया है?यही हो रहा है कि उनका काम-कृत्य भी मानसिक हो गया है। वे इसके बारे में सिर्फ सोच विचार कर सकते है। वे कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि कृत्य में तो पूरे का पूरा जाना पड़ता है। और जब भी पूरे होकर कृत्य में संलग्न होने की बात उठती है। मन बेचैन हो जाता है। क्योंकि तब मन मालिक नहीं रह सकता, तब मन नियंत्रण नहीं कर सकता।

तंत्र काम-कृत्य को, संभोग को तुम्हें अखंड बनाने के लिए उपयोग में लाता है। लेकिन तब तुम्हें इसमे बहुत ध्यानपूर्वक उतरना होगा। तब तुम्हें काम के संबंध में वह सब भूल जाना होगा जो तुमने सुना है, पढ़ा है, जो समाज ने, संगठित धर्मों ने, धर्म गुरूओं ने तुम्हें सिखाया है। सब कुछ भूल जाओ। दिया है। और समग्रता से इसमे उतरो। भूल जाओ कि नियंत्रण करना है। नियंत्रण ही बाधा है। उचित है कि तुम उस पर नियंत्रण करने की बजाय अपने को उसके हाथों में छोड़ दो। तुम ही उसके बस में हो जाओ। संभोग में पागल की तरह जाओ। अ-मन की अवस्था पागलपन जैसी मालूम पड़ती है। शरीर ही बन जाओ। पशु ही बन जाओ। क्योंकि पशु पूर्ण है।

जैसा आधुनिक मनुष्य है। उसे पूर्ण बनाने की सबसे सरल संभावना केवल काम में है। सेक्स में है, क्योंकि काम तुम्हारे भीतर गहन जैविक केंद्र है। तुम उससे ही उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी प्रत्येक कोशिका काम-कोशिका है। तुम्हारा समस्त शरीर काम-उर्जा की घटना है।

यह पहला सूत्र कहता है: ''काम-आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''

इसी में सारा फर्क है, सारा भेद है। तुम्हारे काम-कृत्य, संभोग महज राहत का, अपने को तनाव-मुक्त करने का उपाय है। इसलिए जब तुम संभोग में उतरते हो तो तुम्हें बहुत जल्दी रहती है। तुम किसी तरह छुटकारा चाहते हो। छुटकारा यह कि जो ऊर्जा का अतिरेक तुम्हें पीडित किए है वि निकल जाए और तुम चैन अनुभव करो। लेकिन यह चैन एक तरह की दुर्बलता है। ऊर्जा की अधिकता तनाव पैदा करती है। उतैजना पैदा करती है। और तुम्हें लगता है कि उसे फेंकना जरूरी है। जब वह ऊर्जा बह जाती है तो तुम कमजोरी अनुभव करते हो। और तुम उसी कमजोरी को विश्राम मान लेते हो। क्योंकि ऊर्जा की बाढ़ समाप्त हो गई उतैजना जाती रही, इसलिए तुम्हें विश्राम मालूम पड़ता है।

लेकिन यह विश्राम नकारात्मक विश्राम है। अगर सिर्फ ऊर्जा को बाहर फेंककर तुम विश्राम प्राप्त करते हो तो यह विश्राम बहुत महंगा है। और तो भी यह सिर्फ शारीरिक विश्राम होगा। वह गहरा नहीं होगा। वह आध्यात्मिक नहीं होगा।

यह पहला सूत्र कहता है कि जल्द बाजी मत करो और अंत के लिए उतावले मत बनो, आरंभ में बने रहो। काम-कृत्य के दो भाग है: आरंभ और अंत। तुम आरंभ के साथ रहो। आरंभ का भाग ज्यादा विश्राम पूर्ण है। ज्यादा उष्ण है। लेकिन अंत पर पहुंचने की जल्दी मत करो। अंत को बिलकुल भूल जाओ।

तीन संभावनाएं है। दो प्रेमी प्रेम में तीन आकार, ज्यामितिक आकार निर्मित कर सकते है। शायद तुमने इसके बारे में पढ़ा भी होगा। या कोई पुरानी कीमिया, की तस्वीर भी देखो। जिसमें एक स्त्री और एक पुरूष तीन ज्यामितिक आकारों में नग्न खड़े है। एक आकार चतुर्भुज है, दूसरा त्रिभुज है, और तीसरा वर्तुल है। यक अल्केमी और तंत्र की भाषा में काम क्रोध का बहुत पुराना विश्लेषण है।

आमतौर से जब तुम संभोग में होते हो तो वहां दो नहीं, चार व्यक्ति होते है। वही है चतुर्भुज। उसमे चार कोने है, क्योंकि तुम दो हिस्सों में बंटे हो। तुम्हारा एक हिस्सा विचार करने वाला है और दूसरा हिस्सा भावुक हिस्सा है। वैसे ही तुम्हारा साथी भी दो हिस्सों में बंटा है। तुम चार व्यक्ति हो दो नहीं। चार व्यक्ति प्रेम कर रहे है। यह एक भीड़ है, और इसमें वस्तुत: प्रगाढ़ मिलन की संभावना नहीं है। इस मिलन के चार कोने है और मिलन झूठा है। वह मिलन जैसा मालूम होता है। लेकिन मिलन है नहीं। इसमें प्रगाढ़ मिलन की कोई संभावना नहीं है। क्योंकि तुम्हारा गहन भाग दबा पडा है। केवल दो सिर, दो विचार की प्रक्रियाएं मिल रही है। भाव की प्रक्रियाएं अनुपस्थित है। वे दबी छीपी है।

दूसरी कोटी काम मिलन त्रिभुज जैसा होगा। तुम दो हो, आधार के कोने और किसी क्षण अचानक तुम दोनों एक हो जाते हो—त्रिभुज के तीसरे कोने की तरह। किसी आकस्मिक क्षण में तुम्हारी दुई मिट जाती है। और तुम एक हो जाते है। यह मिलन चतुर्भुजी मिलन से बेहतर है। क्योंकि कम से कम एक क्षण के लिए ही सही , एकता सध जाती है। वह एकता तुम्हें स्वास्थ्य देती है। शक्ति देती है। तुम फिर युवा और जीवंत अनुभव करते हो।

लेकिन तीसरा मिलन सर्वश्रेष्ठ है। और यह तांत्रिक मिलन है। इसमें तुम एक वर्तुल हो जाते हो, इसमें कोने नहीं रहते। और यह मिलन क्षण भर के लिए नहीं है, वस्तुत: यह मिलन समयातित है। उसमें समय नहीं रहता। और यह मिलन तभी संभव है जब तुम स्खलन नहीं खोजते हो। अगर स्खलन खोजते हो तो फिर यह त्रिभुजीय मिलन हो जाएगा। क्योंकि स्खलन होते ही संपर्क का बिंदु मिलन का बिंदू खो जाता है।

आरंभ के साथ रहो, अंत की फिक्र मत करो। इस आरंभ में कैसे रहा जाए? इस संबंध में बहुत सी बातें ख्याल में लेने जैसी है। पहली बात कि काम कृत्य को कहीं जाने का, पहुंचने का माध्यम मत बनाओ। संभोग को साधन की तरह मत लो, वह आपने आप में साध्य है। उसका कहीं लक्ष्य नहीं है, वह साधन नहीं है। और दूसरी बात कि भविष्य की चिंता मत लो, वर्तमान में रहो। अगर तुम संभोग के आरंभिक भाग में वर्तमान में नहीं रह सकते, तब तुम कभी वर्तमान में नहीं रह सकते। क्योंकि काम कृत्य की प्रकृति ही ऐसी है। कि तुम वर्तमान में फेंक दिए जाते हो।

तो वर्तमान में रहो। दो शरीरों के मिलन का सुखा लो, दो आत्माओं के मिलने का आनंद लो। और एक दूसरे में खो जाओ। एक हो जाओ। भूल जाओ कि तुम्हें कहीं जाना है। वर्तमान क्षण में जीओं, जहां से कहीं जाना नहीं है। और एक दूसरे से मिलकर एक हो जाओ। उष्णता और प्रेम वह स्थिति बनाते है जिसमें दो व्यक्ति एक दूसरे में पिघलकर खो जाते है। यही कारण है कि यदि प्रेम न हो तो संभोग जल्दबाजी का काम हो जाता है। तब तुम दूसरे का उपयोग कर रहे हो। दूसरे में डूब नहीं रहे हो। प्रेम के साथ तुम दूसरे में डूब सकते हो।

आरंभ का यह एक दूसरे में डूब जाना अनेक अंतदृष्टियां प्रदान करता है। अगर तुम संभोग को समाप्त करने की जल्दी नहीं करते हो तो काम-कृत्य धीरे-धीरे कामुक कम और आध्यात्मिक ज्यादा हो जाता है। जननेंद्रियों भी एक दूसरे में विलीन हो जाती है। तब दो शरीर ऊर्जाओं के बीच एक गहन मौन मिलन घटित होता है। और तब तुम घंटों साथ रह सकते हो। यह सहवास समय के साथ-साथ गहराता जाता है। लेकिन सोच-विचार मत करो, वर्तमान क्षण में प्रगाढ़ रूप से विलीन होकर रहो। वही समाधि बन जाती है। और अगर तुम इसे जान सके इसे अनुभव कर सके, इसे उपलब्ध कर सके तो तुम्हारा कामुक चित अकामुक हो जाएगा। एक गहन ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो सकता है। काम से ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो सकता है।

यह वक्तव्य विरोधाभासी मालूम होता है। काम से ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि हम सदा से सोचते आए है कि अगर किसी को ब्रह्मचारी रहना है। तो उसे विपरीत यौन के सदस्य को नहीं देखना चाहिए। उससे नहीं मिलना चाहिए। उससे सर्वथा बचना चाहिए, दूर रहना चाहिए। लेकिन उस हालत में एक गलत किस्म का ब्रह्मचर्य घटित होता है। जब चित विपरीत यौन के संबंध में सोचने में संबंध में सोचने में संलग्न हो जाता है। जितना ही तुम दूसरे से बचोगे उतना ही ज्यादा उसके संबंध में सोचने को विवश हो जाओगे। क्योंकि काम मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है, गहरी आवश्यकता है।

तंत्र कहता है कि बचने की, भागने की चेष्टा मत करो, बचना संभव नहीं है। अच्छा है कि प्रकृति को ही उसके अतिक्रमण का साधन बना लो। लड़ों मत प्रकृति के अतिक्रमण के लिए प्रकृति को स्वीकार करो।

अगर तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारी प्रेमी के साथ इस मिलन को अंत की फिक्र किए बिना लंबाया जा सके तो तुम आरंभ में ही बने रहे सकते हो। उतैजना ऊर्जा है और शिखर पर जाकर तुम उसे खो सकते हो। ऊर्जा के खोन से गिरावट आती है। कमजोरी पैदा होती है। तुम उसे विश्राम समझ सकते हो। लेकिन वह उर्जा का अभाव है।

तंत्र तुम्हें उच्चतर विश्राम का आयाम प्रदान करता है। प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे में विलीन होकर एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते है। तब वे एक वर्तुल बन जाते है। और उनकी ऊर्जा वर्तुल में घूमने लगती है। वह दोनों एक दूसरे को जीवन ऊर्जा दे रहे है। नव जीवन दे रहे है। इसमे ऊर्जा का ह्रास नहीं होता है। वरन उसकी वृद्धि होती है। क्योंकि विपरीत यौन के साथ संपर्क के द्वारा तुम्हारा प्रत्येक कोश ऊर्जा से भर जाता है। उसे चुनौती मिलती हे।

यदि स्खलन न हो, यदि ऊर्जा को फेंका न जाए तो संभोग ध्यान बन जाता है। और तुम पूर्ण हो जाते हो। इसके द्वारा तुम्हारा विभाजित व्यक्तितत्व अविभाजित हो जाता है। अखंड हो जाता है। चित की सब रूग्णता इस विभाजन से पैदा होती है। और जब तुम जुड़ते हो, अखंड होते हो तो तुम फिर बच्चे हो जाते हो। निर्दोष हो जाते हो।

और एक बार अगर तुम इस निर्दोषता का उपलब्ध हो गए तो फिर तुम अपने समाज में उसकी जरूरत के अनुसार जैसा चाहो वैसा व्यवहार कर सकते हो। लेकिन तब तुम्हारा यह व्यवहार महज अभिनय होगा, तुम उससे ग्रस्त नहीं होगे। तब यह एक जरूरत है जिसे तुम पूरा कर रहे हो। तब तुम उसमे नहीं हो। तुम मात्र एक अभिनय कर रहे हो। तुम्हें झूठा चेहरा लगाना होगा। क्योंकि तुम एक झूठे संसार में रहते हो। अन्यथा संसार तुम्हें कुचल देगा, मार डालेगा।

हमने अनेक सच्चे चेहरों को मारा है। हमने जीसस को सूली पर चढ़ा दिया, क्योंकि वे सच्चे मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगे थे। झूठा समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता है। हमने सुकरात को जहर दे दिया। क्योंकि वह भी सच्चे मनुष्य की तरह पेश आने लगे थे। समाज जैसा चाहे वैसा करो, अपने लिए और दूसरों के लिए व्यर्थ की झंझट मत पैदा करो। लेकिन जब तुमने अपने सच्चे स्वरूप को जान लिया, उसकी अखंडता को पहचान लिया तो यह झूठा समाज तुम्हें फिर रूग्ण नहीं कर सकता, विक्षिप्त नहीं कर सकता।

''काम-आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''

अगर स्खलन होता है तो ऊर्जा नष्ट होती है। और तब अग्नि नहीं बचती। तुम कुछ प्राप्त किए बिना ऊर्जा खो देते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र—विधि -49 (ओशो)

काम संबंधि दूसरा सूत्र—

''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगें

''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगें उस कंपन में प्रवेश करो।''
जब प्रेमिका या प्रेमी के साथ ऐसे आलिंगन में, ऐसे प्रगाढ़ मिलन में तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की तरह कांपने लगें, उस कंपन में प्रवेश कर जाओ।

तुम भयभीत हो गए हो, संभोग में भी तुम अपने शरीर को अधिक हलचल नहीं करने देते हो। क्योंकि अगर शरीर को भरपूर गति करने दिया जाए तो पूरा शरीर इसमें संलग्न हो जाता है तुम उसे तभी नियंत्रण में रख सकते हो जब वह काम-केंद्र तक ही सीमित रहता है। तब उस पर मन नियंत्रण कर सकता है। लेकिन जब वह पूरे शरीर में फैल जाता है तब तुम उसे नियंत्रण में नहीं रख सकते हो। तुम कांपने लगोगे। चीखने चिल्लाने लगोगे। और जब शरीर मालिक हो जाता है तो फिर तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता।
हम शारीरिक गति का दमन करते है। विशेषकर हम स्त्रियों को दुनियाभर में शारीरिक हलन-चलन करने से रोकते है। वे संभोग में लाश की तरह पड़ी रहती है। तुम उनके साथ जरूर कुछ कर रहे हो, लेकिन वे तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं करती, वे निष्क्रिय सहभागी बनी रहती है। ऐसा क्यों होता है। क्यों सारी दुनिया में पुरूष स्त्रियों को इस तरह दबाते है।

कारण भय है। क्योंकि एक बार अगर स्त्री का शरीर पूरी तरह कामाविष्ट हो जाए तो पुरूष के लिए उसे संतुष्ट करना बहुत कठिन है। क्योंकि स्त्री एक शृंखला में, एक के बाद एक अनेक बार आर्गाज्म के शिखर को उपलब्ध हो सकती है। पुरूष वैसा नहीं कर सकता। पुरूष एक बार ही आर्गाज्म के शिखर अनुभव को छू सकता है। स्त्री अनेक बार छू सकती है। स्त्रियों के ऐसे अनुभव के अनेक विवरण मिले है। कोई भी स्त्री एक शृंखला में तीन-तीन बार शिखर-अनुभव को प्राप्त हो सकती है। लेकिन पुरूष एक बार ही हो सकता है। सच तो यह है कि पुरूष के शिखर अनुभव से स्त्री और-और शिखर अनुभव को उत्तेजित होती है। तैयार होती है। तब बात कठिन हो जाती है। फिर क्या किया जाए?

स्त्री को तुरंत दूसरे पुरूष की जरूरत पड़ जाती है। और सामूहिक कामाचार निषिद्ध है। सारी दुनियां में हमने एक विवाह वाले समाज बना रखे है। हमें लगता है कि स्त्री का दमन करना बेहतर है। फलत: अस्सी से नब्बे प्रतिशत स्त्रियां शिखर अनुभव से वंचित रह जाती है। वे बच्चों को जन्म दे सकती है। यह और बात है। वे पुरूष को तृप्त कर सकती है। यह भी और बात है।

लेकिन वे स्वयं कभी तृप्त नहीं हो पाती। अगर सारी दुनिया की स्त्रियां इतनी कड़वाहट से भरी है, दुःखी है, चिड़चिड़ी है, हताश अनुभव करती है। तो यह स्वाभाविक है। उनकी बुनियादी जरूरत पूरी नहीं होती।

कांपना अद्भुत है। क्योंकि जब संभोग करते हुए तुम कांपते हो तो तुम्हारी ऊर्जा पूरे शरीर में प्रवाहित होने लगती है। सारे शरीर में तरंगायित होने लगती है। तब तुम्हारे शरीर का अणु-अणु संभोग में संलग्न हो जाता है। प्रत्येक अणु जीवंत हो उठता है। क्योंकि तुम्हारा प्रत्येक अणु काम अणु है।

तुम्हारे जन्म में दो कास-अणु आपस में मिले और तुम्हारा जीवन निर्मित हुआ, तुम्हारा शरीर बना। वे दो काम अणु तुम्हारे शरीर में सर्वत्र छाए है। यद्यपि उनकी संख्या अनंत गुनी हो गई है। लेकिन तुम्हारी बुनियादी इकाई काम-अणु ही है। जब तुम्हारा समूचा शरीर कांपता है तो प्रेमी प्रेमिका के मिलन के साथ-साथ तुम्हारे शरीर के भीतर प्रत्येक पुरूष-अणु स्त्री अणु से मिलता है। वह कंपन यही बताता है। यह पशुवत मालूम पड़ेगा। लेकिन मनुष्य पशु है और पशु होने में कुछ गलती नहीं है।

यह दूसरा सूत्र कहता है: **''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगे।''**
मानो तूफान चल रहा है और वृक्ष कांप रहा है। उनकी जड़ें तक हिलने लगती है। पत्ता-पत्ता कांपने लगता है। यही हालत संभोग में होती है। कामवासना भारी तूफान है। तुम्हारे आर-पार एक भारी ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। कंपो। तरंगायित होओ। अपने शरीर के अणु-अणु को नाचने दो। और इस नृत्य में दोनों के शरीरों को भाग लेना चाहिए। प्रेमिका को भी नृत्य में सम्मिलित करो। अणु-अणु को नाचने दो। तभी तुम दोनों का सच्चा मिलन होगा। और वह मिलन मानसिक नहीं होगा। वह जैविक ऊर्जा का मिलन होगा।

''उस कंपन में प्रवेश करो।''
और कांपते हुए उससे अलग-थलग मत रहो, मन का स्वभाव दर्शक बने रहने का है। इसलिए अलग मत रहो। कंपन ही बन जाओ। सब कुछ भूल जाओ और कंपन ही कंपन हो रहो। ऐसा नहीं कि तुम्हारा शरीर ही कांपता है। तुम पूरे के पूरे कांपते हो, तुम्हारा पूरा अस्तित्व कांपता है। तुम खुद कंपन ही बन जाते हो। तब दो शरीर और दो मन नहीं रह जाएंगे। आरंभ में दो कंपित ऊर्जाऐं है, और अंत में मात्र एक वर्तुल है। दो नहीं रहे।

इस वर्तुल में क्या घटित होगा। पहली बात तो उस समय तुम अस्तित्वगत सत्ता के अंश हो जाओगे। तुम एक सामाजिक चित नहीं रहोगे। अस्तित्वगत ऊर्जा बन जाओगे। तुम पूरी सृष्टि के अंग हो जाओगे। उस कंपन में तुम पूरे ब्रह्मांड के भाग बन जाओगे। वह क्षण महान सृजन का क्षण है। ठोस शरीरों की तरह तुम विलीन हो गए हो, तुम तरल होकर एक दूसरे में प्रवाहित हो गए हो। मन खो गया, विभाजन मिट गया, तुम एकता को प्राप्त हो गए।

यही अद्वैत है। और अगर तुम इस अद्वैत को अनुभव नहीं करते हो अद्वैत का सारा दर्शन शास्त्र व्यर्थ है। वह बस शब्द ही शब्द है। जब तुम इस अद्वैत अस्तित्वगत क्षण को जानोंगे तो ही तुम्हें उपनिषद समझ में आएँगे। और तभी तूम संतों को समझ पाओगे। कि जब वे जागतिक एकता की अखंडता की बात करते है तो उनका क्या मतलब है। तब तुम जगत से भिन्न नहीं होगे। उससे अजनबी नहीं होगे। तब पूरा अस्तित्व तुम्हारा घर बन जाता है। और इस भाव के साथ कि पूरा अस्तित्व मेरा घर है। सारी चिंताएं समाप्त हो जाती है। फिर कोई द्वंद्व न रहा, संघर्ष न रहा, संताप न रहा।

उसका ही लाओत्से ताओ कहते है, शंकर अद्वैत कहते है। तब तुम उसके लिए कोई अपना शब्द भी दे सकते हो। लेकिन प्रगाढ़ प्रेम आलिंगन में ही उसे सरलता से अनुभव किया जाता है। लेकिन जीवंत बनो, कांपो, कंपन ही बन जाओ।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -50 (ओशो)

काम संबंधि तीसरा सूत्र–

''काम-आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''

''काम-आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''

एक बार तुम इसे जान गए तो प्रेम पात्र की, साथी की जरूरत नहीं है। तब तुम कृत्य का
स्मरण उसमे प्रवेश कर सकते हो। लेकिन पहले भाव का होना जरूरी है। अगर भाव से परिचित
हो तो साथ के बिना भी तुम कृत्य में प्रवेश कर सकते हो।

यह थोड़ा कठिन है, लेकिन यह होता है। और जब तक यह नहीं होता, तुम पराधीन रहते हो। एक पराधीनता निर्मित हो जाती है। और यह प्रवेश अनेक कारणों से घटित होता है। अगर तुमने उसका अनुभव किया हो, अगर तुमने उस क्षण को जाना हो जब तुम नहीं थे, सिर्फ तरंगायित ऊर्जा एक होकर साथी के साथ वर्तुल बना रही थी। तो उस क्षण साथी भी नहीं रहता है, केवल तुम होते हो। वैसे ही उस क्षण तुम्हारे साथी के लिए तुम नहीं होते, वही होता है। वह एकता तुममें होती है। साथी नहीं रह जाता है। और यह भाव स्त्रियों के लिए सरल है। क्योंकि स्त्रियों आँख बंद करके ही संभोग में उतरती है।

इस विधि का प्रयोग करते समय आँख बंद रखना अच्छा है। तो ही वर्तुल का आंतरिक भाव एकता का आंतरिक भाव निर्मित हो सकता है। और फिर उसका स्मरण करो। आँख बंद कर लो और ऐसे लेट जाओ मानो तुम अपने साथी के साथ लेटे हो, स्मरण करो और भाव करो लो और ऐसे तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा। तरंगायित होने लगेगा। उसे होने दो। यह बिलकुल भूल जाओ कि दूसरा नहीं है। ऐसे गति करो जैसे कि दूसरा उपस्थित है। शुरू में कल्पना से ही काम लेना होना। एक बार जाना गए कि यह कल्पना नहीं, यथार्थ है; तब दूसरा मौजूद है।

ऐसे गति करो जैसे कि तुम वस्तुत: संभोग में उतर रहे हो। वह सब कुछ करो जो तुम अपने प्रेम-पात्र के साथ करते; चीखो, डोलो, कांपो। शीध्र वर्तुल निर्मित हो जाएगा। और यह वर्तुल अद्भुत है। शीध्र ही तुम्हें अनुभव हो जायेगा। लेकिन यह वर्तुल पुरूष स्त्री से नहीं बना है। अगर तुम पुरूष हो तो सारा ब्रह्मांड स्त्री बन गया है। और अगर तुम स्त्री होता सारा ब्रह्मांड पुरूष

बन गया है। अब तुम खुद अस्तित्व के साथ प्रगाढ़ मिलन में हो और उसके लिए दूसरा द्वार की तरह अब नहीं है।
दूसरा मात्र द्वार है। किसी स्त्री के साथ संभोग करते हुए तुम दरअसल अस्तित्व के साथ संभोग में होते हो। सत्री मात्र द्वार है। पुरूष मात्र द्वार है। दूसरा संपूर्ण के लिए द्वार भर है। लेकिन तुम इतनी जल्दी में हो कि तुम्हें इसका एहसास नहीं होता। अगर तुम प्रगाढ़ मिलन में, सघन आलिंगन में घंटो रह सको तो दूसरा विस्मृत हो जाएगा। दूसरा समष्टि का विस्तार भर रह जाएगा।
अगर एक बार इस विधि को तुमने जान लिया तो अकेले भी तुम इसका प्रयोग कर सकते हो। और जब अकेले रहकर प्रयोग करोगे। तो वह तुम्हें एक नयी स्वतंत्रता प्रदान करेगा। वह तुम्हें दूसरे से स्वतंत्र कर देगा। वह वस्तुत: समूचा अस्तित्व दूसरा हो जाता है। तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारा प्रेमी हो जाता है। और फिर तो इस विधि का प्रयोग निरंतर किया जा सकता है। और तुम सतत अस्तित्व के साथ आलिंगन में संवाद में रह सकते हो।
और तब तुम इस विधि का प्रयोग दूसरे आयामों में भी कर सकते हो सुबह टहलते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तब तुम हवा के साथ, उगते सूरज के साथ, चाँद-तारों के साथ, पेड़-पौधों के साथ। तुम लयबद्ध होने का अनुभव कर सकते हो। रात में तारों को देखते हुए इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। चाँद को देखते हुए कर सकते हो। तुम पूरी सृष्टि के साथ काम-भोग में उतर सकते हो। अगर तुम्हें इसके घटित होने का राज पता चल जाए। निर्मित हो जाये, लेकिन मनुष्य के साथ प्रयोग आरंभ करना अच्छा है। कारण यह है कि मनुष्य तुम्हारे सबसे निकट है। वे तुम्हारे लिए जगत के निकटतम अंश है। लेकिन फिर उन्हें छोड़ा जा सकता है। उनके बिना भी चलेगा। तुम छलांग ले सकते हो और द्वार को बिलकुल भूल सकते हो।
''ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''
और तुम रूपांतरित हो जाओगे। तुम नए हो जाओगे।
तंत्र काम का उपयोग वाहन के रूप में करता है। वह ऊर्जा है, उसे वाहन या माध्यम बनाया जा सकता है। काम तुम्हें रूपांतरित कर सकता है। वह तुम्हें अतिक्रमण की अवस्था को , समाधि को उपलब्ध करा सकता है। लेकिन हम गलत ढंग से काम का उपयोग करते है। और गलत ढंग स्वाभाविक ढंग नहीं है। इस मामले में पशु भी हमसे बेहतर है। वे स्वभाविक ढंग से काम का उपयोग करते है। हमारे ढंग बड़े विकृत है। काम पाप है। यह बात निरंतर प्रचार से मनुष्य के मन में इतनी गहरी बैठ गई है कि अवरोध बन गई है। उसके चलते तुम कभी अपने को काम म उतरने की पूरी छूटी नहीं देते, तुम कभी उससे उन्मुक्त भाव से नहीं प्रवेश करते। तुम्हारा एक अंश सदा अलग खड़े होकर उसकी निंदा करता है।
और यह बात नयी पीढ़ी के लिए भी सच है। वे भला कहते हो कि हमारे लिए काम कोई समस्या नहीं है। और हम उसके दमित से ग्रस्त नहीं है। कि वह हमारे लिए टैबू नहीं रहा। लेकिन बात इतनी आसान नहीं है। तुम अपने अचेतन को इतनी आसानी से नहीं पोंछ सकते, वह सदियों में निर्मित हुआ है। मनुष्य का पूरा अतीत तुम्हारे साथ है। हो सकता है। कि तुम चेतना में काम की निंदा न करते होओ। तुम उसे पाप न भी कहते हो। लेकिन तुम्हारा अचेतन सतत उसकी निंदा में लगा है। तुम कभी समग्रता से काम कृत्य में नहीं होते। सदा ही कुछ अंश बाहर रह जाता है। और वही बाहर रह गया अंश विभाजन पैदा करता है, टूट पैदा करता है।
तंत्र कहता है, काम में समग्रता से प्रवेश करो। अपनी सभ्यता को, अपने धर्म को, संस्कृति और आदर्श को भूल जाओ। काम कृत्य में उतरो, पूर्णता से, समग्रता से उतरो। अपने किसी भी अंश को बाहर मत छोड़ो। सर्वथा निर्विचार हो जाओ। तभी यह बोध होता है। कि तुम किसी को साथ एक हो गए हो। और तब एक होने के इस भाव को साथी से पृथक किया जा सकता है। और उसे पूरे ब्रह्मांड के साथ जोड़ा जा सकता है। तब तुम वृक्ष के साथ, चाँद तारों के साथ, किसी भी चीज के साथ काम-क्रीड़ा में उतर सकते हो। एक बार तुम्हें वर्तुल बनाना आ जाए तो किसी भी चीज के साथ यह वर्तुल निर्मित किया जा सकता है।
तुम अपने भीतर भी एक वर्तुल का निर्माण कर सकते हो। क्योंकि मनुष्य दोनों है, पुरूष और स्त्री दोनों है। पुरूष के भीतर स्त्री है और स्त्री के भीतर पुरूष है। तुम दोनों हो, क्योंकि दोनों ने मिलकर तुम्हें निर्मित किया है। तुम्हारा निर्माण स्त्री और पुरूष दोनों के द्वारा हुआ है। इसलिए तुम्हारा आधा अंश सदा दूसरा है। तुम बाहरी सब कुछ को पूरी तरह भूल जाओ। और वह वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित हो जाएगा।
इस वर्तुल के बनते ही तुम्हारा पुरूष तुम्हारी स्त्री के आलिंगन में होता है। और तुम्हारे भीतर की स्त्री भीतर के पुरूष के आलिंगन में होती है। और तब तुम अपने साथ ही आंतरिक काम-आलिंगन में होते हो। और इस वर्तुल के बनने पर ही सच्चा

ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। अन्यथा सब ब्रह्मचर्य विकृति है और उससे समस्याएं ही समस्याएं जनम लेती है। और जब यह वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित होता है तो तुम मुक्त हो जाते हो।
तंत्र यही कहता है: कामवासना गहनत्म बंधन है, लेकिन उसका उपयोग परम मुक्ति के लिए किया जा सकता है। उसे एक वाहन बनाया जा सकता है। जहर को औषधि बनाया जा सकता है। लेकिन उसके लिए विवेक जरूरी है।
तो किसी चीज की निंदा मत करो। वरन उसका उपयोग करो। किसी चीज के विरोध में मत होओ। उपाय निकालों कि उसका उपयोग किया जाए। उसको रूपांतरित किया जाए। तंत्र जीवन का गहन स्वीकार है, समग्र स्वीकार है। तंत्र अपने ढंग की सर्वथा अनूठी साधना है। अकेली साधना है। सभी देश और काल में तंत्र का यह अनूठापन अक्षुण्ण रहा है। और तंत्र कहता है, किसी चीज को भी मत फेंको, किसी चीज के भी विरोध में मत जाओ। किसी चीज के साथ संघर्ष मत करो, क्योंकि द्वंद्व में, संघर्ष में मनुष्य अपने प्रति ही विध्वंसात्मक हो जाता है।
सभी धर्म कामवासना के विरोध में है। वे उससे डरते है। क्योंकि कामवासना महान ऊर्जा है। उससे उतरते ही तुम नहीं बचते हो। उसका प्रवाह तुम्हें कहीं से कहीं बहा ले जाता है। यही भय का कारण है। इससे ही लोग अपने और इस प्रवाह के बीच एक दीवार, एक अवरोध खड़ा कर लेते है। ताकि दोनों बंट जाएं, ताकि यह प्रबल शक्ति तुम्हें अभिभूत न करे। ताकि तुम उसके मालिक बन रहो।
लेकिन तंत्र का कहना है—और केवल तंत्र का कहना है—कि यह मालिकीयत झूठी है। रूग्ण है। क्योंकि तुम सच में इस प्रवाह से पृथक नहीं हो सकते हो। वह प्रवाह तुम हो। सभी विभाजन झूठे होंगे। सभी विभाजन थोपे हुए होंगे। बुनियादी बात यह है कि विभाजन संभव ही नहीं है। क्योंकि तुम्हीं वह प्रवाह हो, तुम उसके अंग हो, उसकी एक लहर हो। संभव है कि तुम बर्फ की तरह जम गए हो। और इस तरह तुमने अपने को प्रवाह से अलग कर लिया है। लेकिन वह जमना, वह अलग होना मृतवत हो गई है। कोई भी आदमी वास्तव में जीवन नहीं है। तुम नदी में बहते हुए मुर्दों जैसे हो। पिघलो।
तंत्र कहता है: पिघलने चेष्टा करो। हिमखंड की तरह मत जीओं। पिघलो और नदी के साथ एक हो जाओ। नदी के साथ एक होकर, नदी में विलीन होकर बोधपूर्ण होओ और तब रूपांतरण घटित होता है। तब रूपांतरण है। संघर्ष से नहीं, बोध से रूपांतरण घटित होता है।
ये तीन विधियां बहुत वैज्ञानिक विधियां है। लेकिन तब काम या सेक्स वही नहीं रहता है जो तुम उसे समझते हो, तब वह कुछ और ही चीज है। तब सेक्स कोई क्षणिक राहत नहीं है, तब वह ऊर्जा को बाहर फेंकना नहीं है। तब इसका अंत नहीं आता, तब वह ध्यानपूर्ण वर्तुल बन जाता है।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3
प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -51 (ओशो)

काम संबंधि चौथा सूत्र–

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है…..

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।''
उस हर्ष में प्रवेश करो और उसके साथ एक हो जाओ। किसी भी हर्ष से काम चलेगा। यह एक उदाहरण है।

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है।''

तुम्हें अचानक कोई मित्र मिल जाता है जिसे देखे हुए बहुत दिन, बहुत वर्ष हो गए है। और तुम अचानक हर्ष से, आह्लाद से भर जाते हो। लेकिन अगर तुम्हारा ध्यान मित्र पर है, हर्ष पर नहीं तो तुम चूक रहे हो। और यह हर्ष क्षणिक होगा। तुम्हारा सारा ध्यान मित्र पर केंद्रित होगा, तुम उससे बातचीत करने में मशगूल रहोगे। तुम पुरानी स्मृतियों को ताजा करने में लगे रहोगे। तब तुम इस हर्ष को चूक जाओगे। और हर्ष भी विदा हो जाएगा। इसलिए जब किसी मित्र से मिलना हो और अचानक तुम्हारे ह्रदय में हर्ष उठे तो उस हर्ष पर अपने को एकाग्र करो। उस हर्ष को महसूस करो। उसके साथ एक हो जाओ। और तब हर्ष से भरे हुए और बोधपूर्ण रहते हुए अपने मित्र को मिलो। मित्र को बस परिधि पर रहने दो और तुम अपने सुख के भाव के में केंद्रित हो जाओ।
अन्य अनेक स्थितियों में भी यह किया जा सकता है। सूरज उग रहा है और तुम अचानक अपने भीतर भी कुछ उगता हुआ अनुभव करते हो। तब सूरज को भूल जाओ, उसे परिधि पर ही रहने दो और तुम उठती हुई उर्जा के अपने भाव में केंद्रित हो जाओ। जब तुम उस पर ध्यान दोगे, वह भाव फैलने लगेगा। और वह भाव तुम्हारे सारे शरीर पर, तुम्हारे पूरे अस्तित्व पर फैल जाएगा। और बस दर्शन ही मत बने रहो। उसमे विलीन हो जाओ।

ऐसे क्षण बहुत थोड़े होते है, जब तुम हर्ष या आह्लाद अनुभव करते हो, सुख और आनंद से भरते हो। और तुम उन्हें भी चूक जाते हो। क्योंकि तुम विषय केंद्रित होते हो। जब भी प्रसन्नता आती है। सुख आता है, तुम समझते हो कि यह बाहर से आ रहा है।

किसी मित्र से मिलने हो, स्वभावत: लगता है कि सुख मित्र से आ रहा है। मित्र के मिलने से आ रहा है। लेकिन यह हकीकत नहीं है। सुख सदा तुम्हारे भीतर है। मित्र तो सिर्फ परिस्थिति निर्मित करता है। मित्र ने सुख को बाहर आने का अवसर दिया। और उसने तुम्हें उस सुख को देखने में हाथ बंटाया।

यह नियम सुख के लिए ही नहीं। सब चीजों के लिए है; क्रोध, शोक, संताप, सुख, सब पर लागू होता है। ऐसा ही है। दूसरे केवल परिस्थिति बनाते है जिसमे जो तुम्हारे भीतर छिपा है वह प्रकट हो जाता है। वे कारण नहीं है। वे तुम्हारे भीतर कुछ पैदा नहीं करते है। जो भी घटित हो रहा है वह तुम्हें घटित हो रहा है। वह सदा है। मित्र का मिलन सिर्फ अवसर बना, जिसमे अव्यक्त व्यक्त हो रहा है। अप्रकट हो गया।

जब भी यह सुख घटित हो, उसके आंतरिक भाव में स्थित रहो और तब जीवन में सभी चीजों के प्रति तुम्हारी द्दष्टि भिन्न हो जाएगी। नकारात्मक भावों के साथ भी यह प्रयोग किया जा सकता है। जब क्रोध आए तो उस व्यक्ति की फिक्र मत करो जिसने क्रोध करवाया, उसे परिधि पर छोड़ दो और तुम क्रोध ही हो जाओ। क्रोध को उसकी समग्रता में अनुभव करो, उसे अपने भीतर पूरी तरह घटित होने दो।

उसे तर्क-संगत बनाने की चेष्टा मत करो। यह मत कहो कि इस व्यक्ति ने क्रोध करवाया। उस व्यक्ति की निंदा मत करो। वह तो निर्मित मात्र है। उसका उपकार मानों कि उसने तुम्हारे भीतर दमित भावों को प्रकट होने का मौका दिया। उसने तुम पर कहीं चोट की। और वहां से घाव छिपा पडा था। अब तुम्हें उस घाव का पता चल गया है। अब तुम वह घाव ही बन जाओ।

विधायक या नकारात्मक, किसी भी भाव के साथ प्रयोग करो और तुम में भारी परिवर्तन घटित होगा। अगर भाव नकारात्मक है तो उसके प्रति सजग होकर तुम उससे मुक्त हो जाओगे। और अगर भाव विधायक है तो तुम भाव ही बन

जाओगे। अगर यह सुख है तो तुम सुख बन जाओगे। लेकिन यह क्रोध विसर्जित हो जाएगा। और नकारात्मक और विधायक भावों का भेद भी यही है। अगर तुम किसी भाव के प्रति सजग होते हो और उससे वह भाव विसर्जित हो जाता है तो समझना कि वह नकारात्मक भाव है। और यदि किसी भाव के प्रति सजग होने से तुम वह भाव ही बन जाते हो और वह भाव फैलकर तुम्हारे तन-प्राण पर छा जाता है तो समझना कि वह विधायक भाव है। दोनों मामलों में बोध अलग-अलग ढंग से काम करता है। अगर कोई जहरीला भाव है तो बोध के द्वारा तुम उससे मुक्त हो सकते हो। और अगर भाव शुभ है, आनंदपूर्ण है, सुंदर है तो तुम उससे एक हो जाते हो। बोध उसे प्रगाढ़ कर देता है।

मेरे लिए यही कसौटी है। अगर कोई वृति बोध से सघन होती है तो वह शुभ है और अगर बोध से विसर्जित हो जाती है तो उसे अशुभ मानना चाहिए। जो चीज होश के साथ न जी सके वह पाप है और जो होश के साथ वृद्धि को प्राप्त हो वह पुण्य है। पुण्य और पाप सामाजिक धारणाएं नहीं है। वे आंतरिक उपलब्धियां है।

अपने बोध को जगाओं, उसका उपयोग करो। यह ऐसा ही है जैसे कि अंधकार है और तुम दीया जलाये हो। दीए के जलते ही अंधकार विदा हो जाएगा। प्रकाश के आने से अँधेरा नहीं हो जाता है। क्योंकि वस्तुत: अँधेरा नहीं था। अंधकार प्रकाश का आभाव है। वह प्रकाश की अनुपस्थिति था। लेकिन प्रकाश के आने से वहां मौजूद अनेक चीजें प्रकाशित भी हो जाएंगी। प्रकट हो जायेगी। प्रकाश के आने से ये अलमारियां, किताबें, दीवारें विलीन नहीं हो जाएंगी। अंधकार में वे छिपी थी, तुम उन्हें नहीं देख सकते थे। प्रकाश के आने से अंधकार विदा हो गया लेकिन उसके साथ ही जो यथार्थ था वह प्रकट हो गया। बोध के द्वारा जो भी अंधकार की तरह नकारात्मक है—धृणा, क्रोध, दुःख, हिंसा—वह विसर्जित हो जाएगा और उसके साथ ही प्रेम, हर्ष, आनंद जैसी विधायक चीजें पहली बार तुम पर प्रकट हो जाएंगी।

इसलिए ''बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -52

पांचवी तंत्र विधि–
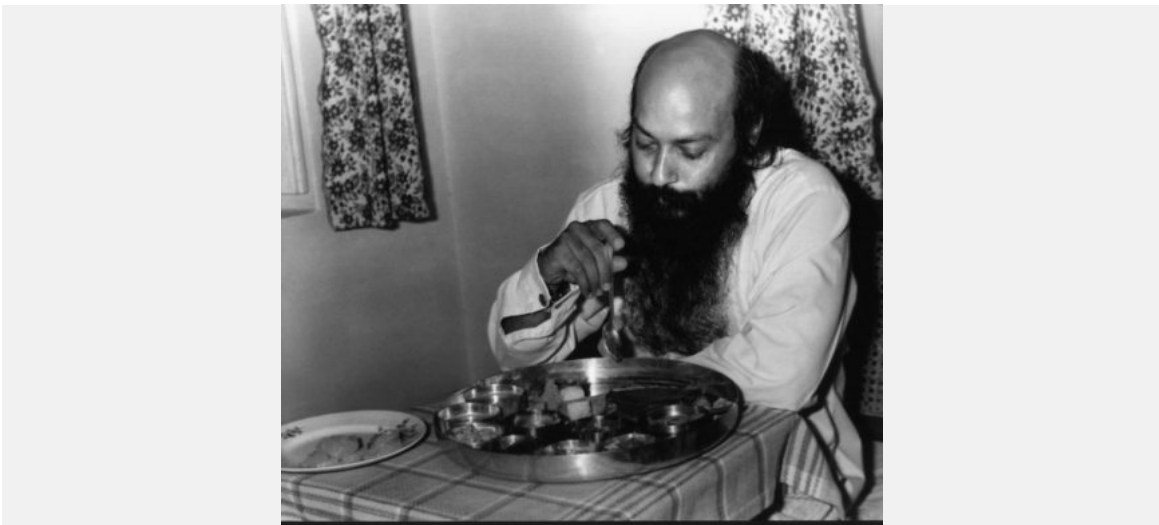
''भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पानी का स्वाद ही बन जाओ, और उससे भर जाओ।''
हम खाते रहते है, हम खाए बगैर नहीं रह सकते। लेकिन हम बहुत बेहोशी में भोजन करते है—यंत्रवत। और अगर स्वाद न लिया जाए तो तुम सिर्फ पेट को भर रहे हो।

तो धीरे-धीरे भोजन करो, स्वाद लेकिर करो और स्वाद के प्रति सजग रहो। और स्वाद के प्रति सजग होने के लिए धीरे-धीरे भोजन करना बहुत जरूरी है। तुम भोजन को बस निगलने मत जाओ। आहिस्ता-आहिस्ता उसका स्वाद लो और स्वाद ही बन जाओ। जब तुम मिठास अनुभव करो तो मिठास ही बन जाओ। और तब वह मिठास सिर्फ मुंह में नहीं, सिर्फ जीभ में नहीं, पूरे शरीर में अनुभव की जा सकती है। वह सचमुच पूरे शरीर में फैल जायेगी। तुम्हें लगेगा कि मिठास—या कोई भी चीज—लहर की तरह फैलती जा रही है। इसलिए तुम जो कुछ खाओ, उसे स्वाद लेकर खाओ और स्वाद ही बन जाओ।
यहीं तंत्र दूसरी परंपराओं से सर्वथा भिन्न है। विपरीत मालूम पड़ता है। जैन अस्वाद की बात करते है। महात्मा गांधी ने तो अपने आश्रम में अस्वाद को एक नियम बना लिया था। नियम था कि खाओ स्वाद के लिए मत खाओ। स्वाद मत लो, स्वाद को भूल जाओ। वे कहते थे कि भोजन आवश्यक है, लेकिन यंत्रवत भोजन करो। स्वाद वासना है, स्वाद मत लो।

तत्र कहता है कि जितना स्वाद ले सको उतना स्वाद लो। ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनो, जीवंत बनो। इतना ही नहीं कि संवेदनशील बनो, स्वाद ही बन जाओ। अस्वाद से तुम्हारी इंद्रियाँ मर जाएंगी। उनकी संवेदनशीलता जाती रहेगी। और संवेदनशीलता के मिटने से तुम अपने शरीर को, अपने भावों को अनुभव करने में असमर्थ हो जाओगे। और तब फिर तुम अपने सिर के केंद्रित होकर रह जाओगे। और सिर में केंद्रित होना विभाजित होना है।

तंत्र कहता है: अपने भीतर विभाजन मत पैदा करो। स्वाद लेना सुंदर है, संवेदनशील होना सुंदर है। और तुम जितने संवेदनशील होगे, उतने ही जीवंत होगे। और जितने तुम जीवंत होगे, उतना ही अधिक जीवन तुम्हारे अंतस में प्रविष्ट होगा। तुम अधिक खुलोगें। उन्मुक्त अनुभव करोगे।

तुम स्वाद लिए बिना कोई चीज खा सकते हो। यह कठिन नहीं है। तुम किसी को छुए बिना छू सकते हो। यह भी कठिन नहीं है। हम वही तो करते है, तुम किसी के साथ हाथ मिलाते हो और उसे स्पर्श नहीं करते। स्पर्श करने के लिए तुम्हें हाथ तक आना पड़ेगा। हाथ में उतरना पड़ेगा। स्पर्श करने के लिए तुम्हें तुम्हारी हथेली, तुम्हारी अगुलियां बन जाता पड़ेगा—मानो तुम, तुम्हारी आत्मा तुम्हारे हाथ में उतर आयी है। तभी तुम स्पर्श कर सकते हो, वैसे तुम किसी का हाथ में हाथ लेकिर भी उससे अलग रह सकते हो। तब तुम्हारा मुर्दा हाथ किसी के हाथ में होगा। वह छूता हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन वह छूता नहीं है।

हम स्पर्श करना भूल गए है। हम किसी को स्पर्श करने से डरते है। क्योंकि स्पर्श करना कामुकता का प्रतीक बन गया है। तुम किसी भीड़ में, बस या रेल में अनेक लोगों को छूते हुए खड़े हो सकते हो, लेकिन वास्तव में न तुम उन्हें छूते हो और न वे तुम्हें छूते है। सिर्फ शरीर एक दूसरे को स्पर्श कर रहा है। लेकिन तुम दूर-दूर हो। और तुम इस फर्क को समझ सकते हो। अगर तुम भीड़ में किसी को वास्तव में स्पर्श करो तो वह बुरा मान जाएगा। तुम्हारा शरीर बेशक छू सकता है। लेकिन तुम्हें उस शरीर में नहीं होना चाहिए। तुम्हें शरीर से अलग रहना चाहिए, मानो तुम शरीर में नहीं हो, मानो कोई मुर्दा शरीर स्पर्श कर रहा है।

यह संवेदनहीनता बुरी है। यह बुरी है, क्योंकि तुम अपने को जीवन से बचा रहे हो। तुम मृत्यु से इतने भयभीत हो और तुम मरे हुए हो। सच तो यह है कि तुम्हें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि कोई भी मरने वाला नहीं है। तुम तो पहले से

ही मरे हुए हो। और तुम्हारे भयभीत होने का कारण भी यही है कि तुम कभी जीए ही नहीं। तुम जीवन से चूकते रहे और मृत्यु करीब आ रही है।

जो व्यक्ति जीवित है वह मृत्यु से नहीं डरेगा। क्योंकि वह जीवित है। जब तुम वास्तव में जीते हो तो मृत्यु का भय नहीं रहता। तब तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। जब मृत्यु आएगी तो तुम इतने संवेदनशील होगे कि मृत्यु का भी आनंद लोगे मृत्यु एक महान अनुभव बनने वाली है। अगर तुम सचमुच जिंदा हो तो तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। और तब मृत्यु-मृत्यु नहीं रहेगी। अगर तुम मृत्यु को भी जी सको। जब तुम अपने केंद्र को लौट रहे हो, जब तुम विलीन हो रहे हो, उस क्षण यदि तुम अपने मरते हुए शरीर के प्रति भी सजग रह सको, अगर तुम इसको भी जी सको—तो तुम अमृत हो गए।

''भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पाना का स्वाद ही बन जाओ। और उससे भर जाओ।''

पानी पीते हुए पानी का ठंडापन अनुभव करो। आंखे बंद कर लो, धीरे-धीरे पीनी पीओ और उसका स्वाद लो। पानी की शीतलता को महसूस करो और महसूस करे कि तुम शीतलता ही बन गए हो। जब तुम पानी पीते हो तो पानी की शीतलता तुममें प्रवेश करती है। तुम्हारे अंग बन जाती है। तुम्हारा मुंह शीतलता को छूता है। तुम्हारी जीभ उसे छूती है। और ऐसे वह तुम में प्रवेश हो जाती है। उसे तुम्हारे पूरे शरीर में प्रविष्ट होने दो। उसकी लहरों को फैलने दो और तुम अपने पूरे शरीर में वह शीतलता महसूस करोगे। इस भांति तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी। विकसित होगी। और तुम ज्यादा जीवंत, ज्यादा भरे पूरे हो जाओगे।

हम हताश, रिक्त और खाली अनुभव करते है। और हम कहते है कि जीवन रिक्त है। लेकिन जीवन के रिक्त होने का कारण हम स्वयं है। हम जीवन को भरते ही नहीं है। हम उसे भरने नहीं देते है। हमने अपने चारों और एक कवच लगा रखा है—सुरक्षा कवच। हम वलनरेबल होने से, खुले रहने से डरते है। हम अपने को हर चीज से बचाकर रखते है। और तब हम कब्र बन जाते है। मृत लाशों।

तंत्र कहता है: जीवंत बनो, क्योंकि जीवन ही परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है। तुम जितने जीवंत होगे उतने ही परमात्मा होगे। और जब समग्रता जीवंत होगे तो तुम्हारे लिए कोई मृत्यु नहीं है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—33

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—53 (ओशो)

आत्म-स्मरण की पहली विधि–
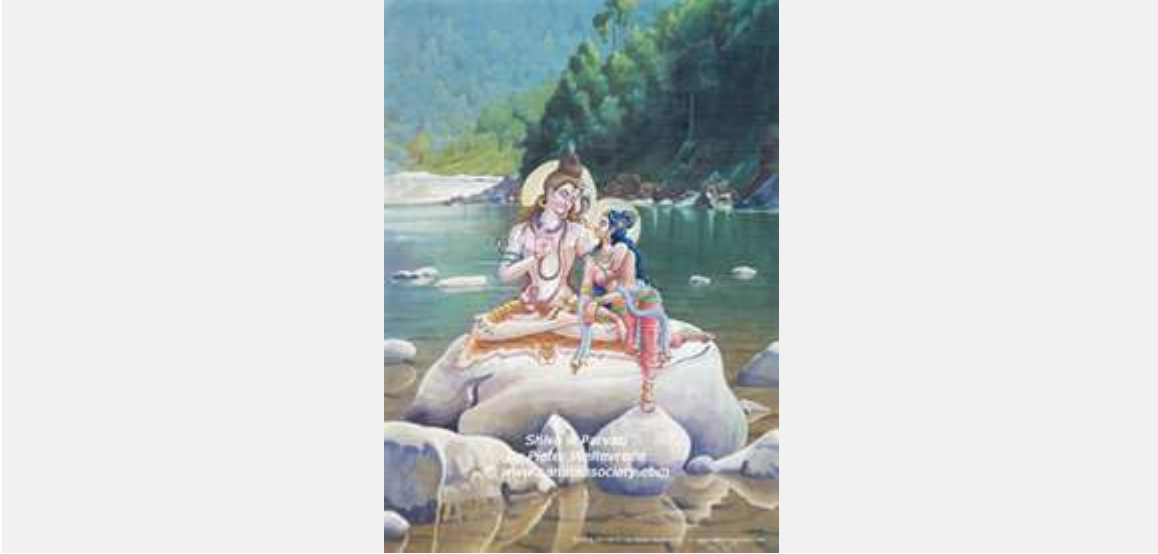
''हे कमलाक्षी, हे, सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए.....शिव

''हे कमलाक्षी, हे, सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आविर्भूत होता है।''
हम है, लेकिन हमें बोध नहीं है कि हम है। हमें आत्म-स्मरण नहीं है। तुम खा रहे हो, या तुम स्नान कर रहे हो, या टहल रहे हो। लेकिन टहलते हुए तुम्हें इका बोध नहीं है कि मैं हूं। सजग नहीं हो कि मैं हूं सब कुछ है, केवल तुम नहीं हो। झाड़ है, मकान है, चलते रास्ते है, सब कुछ है; तुम अपने चारों और की चीजों के प्रति सजग हो, लेकिन सिर्फ अपने होने के प्रति कि मैं हूं, सजग नहीं हो। लेकिन अगर तुम सारे संसार के प्रति भी सजग हो और अपने प्रति सजग नहीं हो तो सब सजगता झूठी है। क्यों? क्योंकि तुम्हारा मन सबको प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन वह तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। और अगर तुम्हें अपना बोध है तो तुम मन के पार चले गए।
तुम्हारा आत्म-स्मरण तुम्हारे मन के प्रतिबिंबित नहीं हो सकता, क्योंकि तुम मन के पीछे हो। मन उन्हीं चीजों को प्रतिबिंबित करता है जो उसके सामने होती है। तुम केवल दूसरों को देख सकते हो। तुम अपने को नहीं देख सकेत। तुम्हारी आंखें सबको देख सकती है। लेकिन अपने को नहीं देख सकती। अगर तुम अपने को देखना चाहो तो तुम्हें दर्पण की जरूरत होगी। दर्पण में ही तुम अपने आप को देख सकते हो। लेकिन उसके लिए तुम्हें दर्पण के सामने खड़ा होना होगा। तुम्हारा मन दर्पण है तो वह सारे संसार को प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। क्योंकि तुम अपने सामने नहीं खड़े हो सकते। तुम सदा पीछे हो, दर्पण के पीछे हो।

यह विधि कहती है कि कुछ भी करते हुए—गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए—यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत को आविर्भूत कर लो। आपने भीतर उसे आविष्कृत कर लो जो सतत प्रवाह है, उर्जा है, जीवन है, शाश्वत है।

लेकिन हमें अपना बोध नहीं है। पश्चिम में गुरजिएफ ने आत्म-स्मरण का प्रयोग एक बुनियादी विधि के रूप में किया। वह आत्म-स्मरण इसी सूत्र से लिया गया है। और गुरजिएफ की सारी साधना इसी एक सूत्र पर आधारित है। सूत्र है कि तुम कुछ भी करते हुए अपने को स्मरण रखो।

यह बहुत कठिन होगा। यह सरल मालूम होता है। लेकिन तुम भूल-भूल जाओगे। तीन या चार सेकेंड के लिए भी तुम अपना स्मरण नहीं रख सकते। तुम्हें लगेगा कि मैं अपना स्मरण कर रहा हूं और अचानक तुम किसी दूसरे विचार में चले गए। अगर यह विचार भी उठा कि ठीक, मैं तो अपना स्मरण कर रहा हूं तो तुम चूक गये। क्योंकि यह विचार आत्म-स्मरण नहीं है। आत्म-स्मरण में कोई विचार नहीं होगा। तुम बिलकुल रिक्त और खाली होगे। और आत्म-स्मरण कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम कहते रहो कि हां, मैं हूं। यह कहते ही कि हां, मैं हूं, तुम चूक गये। मैं हूं, यह सोचना एक

मानसिक कृत्य है। यह अनुभव करो कि में हूं। इन शब्दों को नहीं अनुभव करना है। उसे शब्द मत दो, बस अनुभव करो कि मैं हूं, इन शब्दों को नहीं अनुभव करना है। और शब्द मत दो, बस अनुभव करो कि मैं हूं। सोचो मत, अनुभव करो।

प्रयोग करो। कठिन है, लेकिन अगर तुम प्रयोग में लगन से लगे रहे तो यह घटित होता है। टहलते हुए स्मरण रखो कि मैं हूं। अपने होने को महसूस करो। ऐसा किसी विचार या धारणा को नह लाना है। बस महसूस करना है। मैं तुम्हारा हाथ छूता हूं, या तुम्हारे सिर पर अपना हाथ रखता हूं, तो उसे शब्द मत दो। सिर्फ स्पर्श को अनुभव करो। और इस अनुभव में स्पर्श को ही नहीं, स्पर्शित को भी अनुभव करो। तब तुम्हारी चेतना के तीर में दो फलक होंगे।

तुम वृक्षों की छाया में टहल रहे हो; वृक्ष है, हवा है, उगता सूरज है, यह है तुम्हारे चारो और का संसार और तुम उसके प्रति सजग हो। घूमते हुए क्षण भर के लिए ठिठक जाओ और अचानक स्मरण करो कि मैं हूं, यह शब्द हिन अनुभूति, क्षण मात्र के लिए ही सही। तुम्हें सत्य की एक झलक दे जायेगी। क्षण भर के लिए तुम अपने आस्तित्व के केंद्र पर फेंक दिये जाते हो। तुम दर्पण के पीछे हो, तुम प्रतिबिंबों के जगत के पार चले गए हो। जब तुम अस्तित्वगत हो।

और यह प्रयोग तुम किसी भी समय कर सकते हो। इसके लिए न किसी खास जगह की जरूरत है और न किसी समय की। तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे पास समय नहीं है। तुम भोजन करते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तुम स्नान करते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। चलते हुए या बैठे हुए। किसी समय भी यह प्रयोग कर सकते हो। कोई भी काम करते हुए अचानक अपना स्मरण करो और फिर अपने होने की उस झलक को जारी रखने की चेष्टा करो।

यह कठिन होगा। एक क्षण लगेगा कि यह रहा और दूसरे क्षण यह विदा हो जाएगा। कोई विचार प्रवेश कर जायेगा। कोई प्रतिबिंब, कोई चित्र मन में तैर जायेगा। और तुम उसमें उलझ जाओगे। उससे दुःखी मत होना, निराश मत होना। ऐसा होता है, क्योंकि हम जन्मों-जन्मों से प्रतिबिंबों में उलझे रहे है। यह यंत्रवत प्रक्रिया बन गई है। अविलंब आप ही आप हम प्रतिबिंबों में उलझ जाते हो।

लेकिन अगर एक क्षण के लिए भी तुम्हें झलक मिल गई तो वह प्रारंभ के लिए काफी है। और वह क्यों काफी है?

क्योंकि तुम्हें कभी दो क्षण एक साथ नहीं मिलेंगे। सदा एक क्षण ही तुम्हारे हाथ में होता है। और अगर तुम्हें एक क्षण के लिए भी झलक मिल जाए तो तुम उसमें ज्यादा बने रह सकते हो। सिर्फ चेष्टा की जरूरत है। सतत चेष्टा की। तुम्हें एक क्षण ही तो दिया जाता है। दो क्षण तो कभी एक साथ नहीं आते। दो क्षणों की फिक्र मत करो। तुम्हें सदा एक क्षण ही मिलेगा। और अगर तुम्हें एक क्षण के लिए बोध हो सके तो जीवन भर के लिए बोध बना रह सकता है। अब सिर्फ प्रयत्न चाहिए। और यह प्रयोग सारा दिन चल सकता है। जब भी स्मरण आए, अपने को स्मरण करो।

''हे कमलाक्षी, हे सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए, यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत अविभूत होता है।

जब सूत्र कहता है कि ''बोध बना रहे कि मैं हूं'', तो तुम क्या करोगे? क्या तुम याद करोगे कि मेरा नाम रमा है, या जीसस है, या और कुछ है? क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं फलां परिवार का हूं, फलां धर्म का हूं, फलां परंपरा का हूं। क्या तुम याद करोगे कि मैं अमुक देश का हूं? अमुक जाती का हूं, अमुक मत का हूं, क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं कम्युनिस्ट हूं, या हिंदू हूं, ईसाई हूं? तुम क्या स्मरण करोगे?

यह सूत्र कहता है कि ''बोध बना रहे कि मैं हूं'' इतना ही कहता है कि मैं हूं। किसी नाम की जरूरत नहीं है। किसी देश कि जरूरत नहीं है। सिर्फ होने की जरूरत है। कि तुम हो। तो अपने से मत कहो कि तुम कौन हो। यह मत कहो कि मैं यह हूं, वह हूं। तुम हो, इस अस्तित्व को स्मरण करो।

लेकिन यह कठिन हो जाता है। क्योंकि हम कभी मात्र अस्तित्व को स्मरण नहीं करते हम सदा उसे स्मरण करते है जो एक लेबल है, पदवी है, नाम है, वह अस्तित्व नहीं है। जब भी तुम अपने बारे में सोचते हो, तुम अपने नाम, धर्म देश, इत्यादि की सोचते हो, तुम कभी इस मात्र आस्तित्व की नहीं सोचते हो कि मैं हूं।

तुम इसकी साधना कर सकते हो। अपनी कुर्सी में या किसी पेड़ के नीचे विश्राम पूर्वक बैठ जाओ, सब कुछ भूल जाओ और इस अपने होने पन को अनुभव करो। न ईसाई हो, न हिंदू हो, ने बौद्ध हो, न जैन हो, न अंग्रेज न, न जर्मन, बस तुम हो। इसकी प्रतीति भर हो, भव भर हो। और तब तुम्हें यह याद रखना आसान होगा कि मैं हूं, जो यह सूत्र कहता है।

''बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आविर्भूत होता है।''

जिस क्षण तुम्हें बोध होता है कि मैं कौन हूं, उसी क्षण तुम्हें शाश्वत की धारा में फेंक दिया जाता है। जो असत्य है, उसकी मृत्यु निश्चित है। केवल सत्य शेष रह जाता है।

यही कारण है कि हम मृत्यु से इतना डरते है। क्योंकि झूठ को मिटना ही है। असत्य सदा नहीं रह सकता। और हम असत्य से बंधे है। असत्य से तादात्म्य किए बैठे है। तुममें जो हिंदू है। वह तो मरेगा—जो-जो नाम रूप है वह मरेगा।

लेकिन तुम्हारे भीतर जो सत्य है। जो अस्तित्वगत है। जो आधारभूत है, वह अमृत है। जब नाम रूप भूल जाते है और तुम्हारी दृष्टि भीतर क अनाम और अरूप पर पड़ती है, तब तुम शाश्वत में प्रवेश कर गए।

''बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आर्विर्भूत होता है।''
यह विधि अत्यंत कारगर विधियों में से एक है। और हजारों साल से सदगुरूओं ने इका प्रयोग किया है। बुद्ध इसे उपयोग में लाए, महावीर लाए, जीसस लाए। और आधुनिक जमाने में गुरूजिएफ ने इसका उपयोग किया। सभी विधियों में इस विधि की क्षमता सर्वाधिक है। इसका प्रयोग करो। यह समय लेगा, महीनों लग सकते है।

जब ओस्पेंस्की गुरूजिएफ के पास साधना कर रहा था तो उसे तीन म4हीने तक इस बात के लिए बहुत श्रम करना पडा कि आत्मा-स्मरण की एक झलक मिले। निरंतर तीन महीने तक ओस्पेंस्की एक एकांत घर में रहकर एक ही प्रयोग करता रहा—आत्म स्मरण का प्रयोग। तीस व्यक्तियों ने उस प्रयोग में हिस्सा लिया। और पहले ही सप्ताह के खत्म होते-होते सत्ताईस व्यक्ति भाग खड़े हुए। सिर्फ तीन बचे। सारा दिन वे और कोई काम नहीं करते थे। सिर्फ स्मरण करते थे कि मैं हूं। सत्ताईस लोगों को ऐसा लगा कि इस प्रयोग से हम पागल हो जाएंगे। हमारे विक्षिप्त होने के सिवाय कोई चारा नहीं है। और वे गायब हो गये। वे फिर कभी नहीं वापस आये। वे गुरूजिएफ से फिर कभी नहीं मिले।

हम जैसे है, असल में हम विक्षिप्त है। पागल ही है। जो नहीं जानते है कि हम क्या है, हम कौन है, वे पागल ही है। लेकिन हम इस विक्षिप्तता को ही स्वास्थ्य माने बैठे है। जब तुम पीछे लौटने की कोशिश करोगे। जब तुम सत्य से संपर्क साधोगे तो वह विक्षिप्तता जैसा पागलपन जैसा ही मालूम पड़ेगा। हम जैसे है, जो है उसकी पृष्टभूमि से सत्य ठीक विपरीत है। और अगर तुम जैसे हो उसको ही स्वास्थ्य मानते हो तो सत्य जरूर पागलपन मालूम पड़ेगा।

लेकिन तीन व्यक्ति प्रयोग में लगे रहे। उन तीन में पी. डी. ओस्पेंस्की भी एक था। वे तीन महीने तक प्रयोग में जुटे रहे। पहले महीने के बाद उन्हें मात्र होने की—कि मैं हूं, झलक मिलने लगी। दूसरे महीने के बाद मैं भी गिर गया और उन्हें मान होने पन की हूं—पन की झलक मिलने लगी। इस झलक में मात्र होना था। मैं भी नहीं था, क्योंकि मैं भी एक संज्ञा है। शुद्ध अस्तित्व न मैं है न तू, वह बस है। और तीसरे महीने के बाद हूं, पन का भाव भी विसर्जित हो गया। क्योंकि हूं-पन का भाव भी एक शब्द है। यह शब्द भी विलीन हो जाता है। तब तुम बस हो और तब तुम जानते हो कि तुम कौन हो।

इस घड़ी के आने के पूर्व तुम नहीं पूछ सकते कि मैं कौन हूं। या तुम सतत पूछते रह सकते हो कि मैं कौन हूं। और मन जो भी उत्तर देगा वह गलत होगा। अप्रासंगिक होगा। तुम पूछते जाओ कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, एक क्षण आएगा जब तुम यह प्रश्न नहीं पूछ सकते। पहले सब उत्तर गिर जाते है और फिर खुद प्रश्न भी गिर जाता है। और खो जाता है। सब कुछ कि मैं कौन हूं। गिर जाता है, तुम जानते हो कि तुम कौन हो।

गुरजिएफ ने एक सिरे से इस विधि का प्रयोग किया: सिर्फ यह स्मरण रखना है कि मैं हूं। रमण महर्षि ने इसका प्रयोग दूसरे सिरे से किया। उन्होंने इस खोज को कि ''मैं कौन हूं।'' पूरा ध्यान बन दिया। उन्होंने इस खोज को कि ''मैं कौन हूं।'' और इसके उत्तर में मन जो भी कहे उस पर विश्वास मत करो। मन कहेगा कि क्या व्यर्थ का सवाल उठ रहे हो। मन कहेगा कि तुम यह हो, तुम वह हो, कि तुम मर्द हो। तुम औरत हो। तुम शिक्षित हो, अशिक्षित हो, कि गरीब हो, अमीर हो, मन उत्तर दिए जाता है। लेकिन तुम प्रश्न पूछते चले जाना। कोई भी उत्तर मत स्वीकार करना। क्योंकि मन के लिए दिए गये सभी उत्तर गलत होगे। वे उत्तर तुम्हारे झूठे हिस्से से आते है। वे शब्दों से आते है। वे शास्त्रों से आते है। वे तुम्हारे संस्कारों से आते है, वे समाज से आते है। सच तो यह है कि वे सब के सब दूसरों से आते है। तुम्हारे नहीं है। तुम पूछे ही चले जाओ। इस मैं कौन हूं, के तीन को गहरे से गहरे में उतरने दो।

एक क्षण आएगा जब कोई उत्तर नहीं आएगा। वह सम्यक क्षण होगा। अब तुम उत्तर के करीब हो। जब कोई उत्तर नहीं आता है, तुम उत्तर के करीब होते हो। क्योंकि अब मन मौन हो रहा है। अब तुम मन से बहुत दूर निकल गए हो। जब कोई उत्तर नहीं होगा और जब तुम्हारे चारो और एक शून्य निर्मित हो जाएगा तो तुम्हारा प्रश्न पूछना व्यर्थ मालूम होगा।

अचानक तुम्हारा प्रश्न भी गिर जायेगा। और प्रश्न के गिरते ही मन का आखिरी हिस्सा भी गिर गया। खो गया क्योंकि यह प्रश्न भी मन का ही था। वे उत्तर भी मन के थे और यह प्रश्न भी मन का था। दोनों विलीन हो गए। अब तुम बस हो।

इसे प्रयोग करो। अगर तुम लगन से लगे रहे तो पूरी संभावना है कि यह विधि तुम्हें सत्य की झलक दे जाए। और सत्य शाश्वत है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—54 (ओशो)

आत्म-स्मरण की दूसरी विधि–

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''– शिव

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''
तुम्हें प्यास लगी है, तुम पानी पीते हो, उससे एक सूक्ष्म संतोष प्राप्त होता है। पानी को भूल जाओ। प्यास को भी भूल जाओ और जो सूक्ष्म संतोष अनुभव हो रहा है उसके साथ रहो। उस संतोष से भर जाओ, बस संतुष्ट अनुभव करो।

लेकिन मनुष्य का मन बहुत उपद्रवी है। वह केवल असंतोष और अतृप्ति अनुभव करता है। वह कभी संतोष को अनुभव नहीं करता। अगर तुम असंतुष्ट हो तो तुम उसे अनुभव करोगे और अंसतोष से भर जाओगे। जब तुम प्यासे हो तो तुम्हें प्यास अनुभव होती है। तुम्हारा गला सूखता है। और अगर प्यास और बढ़ती है तो वह पूरे शरीर में महसूस होने लगती है। और एक क्षण ऐसा भी आता है जब तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि मैं प्यासा हूं, तुम्हें लगता है कि मैं प्यास ही हो गया। अगर तुम किसी मरुस्थल में हो और पानी मिलने की कोई भी आशा नहीं हो तो तुम्हें ऐसा नहीं लगेगा कि मैं प्यासा हूं, तुम्हें लगेगा की मैं प्यास ही हो गया हूं।
असंतोष अनुभव में आता है, दुःख और संताप अनुभव में आते है। जब तुम दुःख में होते हो तो तुम दुःख ही बन जाते हो। यही कारण है कि पूरा जीवन नरक हो जाता है। तुमने कभी विधायक को नहीं अनुभव किया। तुमने सदा नकारात्मक को अनुभव किया है। जीवन वैसा दुःख नहीं है जैसा हमने उसे बना रखा है। दुःख हमारी महज व्याख्या है।

बुद्ध यहीं और अभी सुख में है। इसी जीवन में सुखी है। कृष्ण नाच रहे है और बांसुरी बजा रहे है। इसी जीवन में यही और अभी , जहां हम दुःख में है, वही कृष्ण नाच सकते है। जीवन न दुःख है और न जीवन आनंद है, दुःख और आनंद हमारी व्याख्याएं है। हमारी दृष्टियां है, हमारे रुझान है, हमारे देखने के ढंग है। यह तुम्हारे मन पर निर्भर है कि वह जीवन को किस तरह लेता है।

अपने ही जीवन को स्मरण करो। और विश्लेषण करो। क्या तुमने कभी संतोष के, परितृप्ति के, सुख के, आनंद के क्षणों का हिसाब रखा है? तुमने उसका कोई हिसाब नहीं रखा है। लेकिन तुमने अपने दुःख, पीड़ा और संताप का खूब हिसाब रख है। और तुम्हारे पास इसका बड़ा संग्रह है। तुम एक संग्रहीत नरक हो और यह तुम्हारा चुनाव है। कोई दूसरा तुम्हें इस नरक में नहीं ढकेल रहा है। यह तुम्हारा ही चुनाव है। मन नरक को पकड़ता है, उसका संग्रह करता है और फिर खुद नकार बन जाता है। और फिर वह दुस्चक्र हो जाता है। तुम्हारे चित में जितना नकार इकट्ठा होता है। तुम उतने ही नकारात्मक हो जाते हो।

और फिर नकार का संग्रह बढ़ता जाता है। समान-समान को आकर्षित करता है। और यह सिलसिला जन्मों-जन्मों से चल रहा है। तुम अपनी नकारात्मक दृष्टि के कारण सब कुछ चूक रहे हो।

यह विधि तुम्हें विधायक दृष्टि देती है। सामान्य मन और उसकी प्रक्रिया के बिलकुल विपरीत है यह विधि। जब भी संतोष मिलता हो, जिस किसी कृत्य में भी संतोष मिलता हो। उसे वास्तविक करो। उसे अनुभव करो, उसके साथ हो जाओ। यह संतोष किसी बड़े विधायक अस्तित्व की झलक बन सकता है।

यहां हर चीज महज एक खिड़की है। अगर तुम किसी दुःख के साथ तादात्म्य करते हो तो तुम दुःख की खिड़की से झांक रहे हो। और दुःख और संताप की खिड़की नरक की तरह ही खुलती है। और अगर तुम किसी संतोष के क्षण के साथ आनंद और समाधि के क्षण के साथ एकात्म होते हो तो तुम दूसरी खिड़की खोल रहे हो। अस्तित्व तो वही है, लेकिन तुम्हारी खिड़कियाँ अलग-अलग है।

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''

बेशर्त, जहां कही भी संतोष मिले, उसे जीओं। तुम किसी मित्र से मिलते हो और तुम्हें प्रसन्नता अनुभव होती है। तुम्हें अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी से मिलकर सुख अनुभव होता है। इस अनुभव को वास्तविक बनाओ, उस क्षण सुख ही हो जाओ और उस सुख को द्वार बना लो। तब तुम्हारा मन बदलने लगेगा। और तब तुम सुख इकट्ठा करने लगोगे। तब तुम्हारा मन विधायक होने लगेगा। और वही जगह भिन्न दिखने लगेगी।

झेन संत बोकोजू ने कहा है कि जगत वही है, लेकिन कुछ भी वही नहीं है, क्योंकि मन वही नहीं है। सब कुछ वही रहता है, लेकिन कुछ भी वहीं नहीं रहता है, क्योंकि मैं बदल जाता हूं।

तुम संसार को बदलने की कोशिश करते हो, लेकिन तुम कछ भी करो। जगत वही का वही रहता है। क्योंकि तुम वही के वही रहते हो। तुम एक बड़ा घर बना लेते हो, तुम्हें एक बड़ी कार मिल जाती है। तुम्हें सुंदर पत्नी मिल जाती है। लेकिन उससे कुछ भी नहीं बदलेगा। बड़ा घर बड़ा नहीं होगा। सुंदर पत्नी सुंदर नहीं होगी। बड़ी कार भी छोटी ही रहेगी। क्योंकि तुम वहीं के वहीं हो। तुम्हारा मन, तुम्हारा रुझान, सब कुछ वहीं के वही है। तुम चीजें तो बदल लेते हो लेकिन अपने को नहीं बदलते। एक दुःखी आदमी झोपड़ी को छोड़कर महल में रहने लगता है, लेकिन अपने को नहीं बदलता, तो पहले वह झोंपड़े में दुःखी था, अब वह महल में दुःखी है। उसका दुःख महल का दुःख होगा, लेकिन वह दुःखी होगा।

तुम अपने साथ अपने दुःख लिए चल रहे हो और तुम जहां भी जाओगे अपने साथ रहोगे। इसलिए बुनियादी तौर पर बाहरी बदलाहट नहीं है। वह बदलाहट का आभास है। तुम्हें लगता है कि बदलाहट हुई, लेकिन दरअसल बदलाहट नहीं होती है। केवल एक बदलाहट, केवल एक क्रांति, केवल एक आमूल रूपांतरण संभव है और वह यह कि तुम्हारा चित नकारात्मक से विधायक हो जाए। अगर तुम्हारी दृष्टि दुःख से बंधी है तो तुम नरक में हो और अगर तुम्हारी दृष्टि सुख से जुड़ी है तो वही नरक स्वर्ग हो जाता है। इसे प्रयोग करो, यह तुम्हारे जीवन की गुणवता को रूपांतरित कर देगा।

लेकिन तुम तो गुणवता में नहीं, परिमाण में उत्सुक हो कि कैसे ज्यादा धन हो जाए। तुम धन का की गुणवता में नहीं, उसके परिणाम में, मात्रा में उत्सुक हो और एक अमीर आदमी दरिद्र हो सकता है। सच्चाई यही है, क्योंकि जो व्यक्ति जीजों और जीजों के परिमाण में उत्सुक है वह इस बात में सर्वथा अपरिचित है कि उसके भीतर एक और आयाम है, यह गुणवत्ता का आयाम है। और यह आयाम बदलता है जब तुम्हारा मन विधायक होता है।

तो कल सुबह से दिन भर यह स्मरण रहे: जब भी कुछ सुंदर और संतोषजनक हो, जब भी कुछ आनंददायक अनुभव आए, उसके प्रति बोधपूर्ण होओ। चौबीस घंटों में ऐसे अनेक क्षण आते है—सौंदर्य, संतोष और आनंद के क्षण—ऐसे अनेक क्षण आते है जब स्वर्ग तुम्हारे बिलकुल करीब होता है। लेकिन तुम नरक से इतने आसक्त हो, इतने बंधे हो कि उन क्षणों को चूकते चले जाते हो। सूरज उगता है, फूल खिलते है, पक्षी चहचहाते है, पेड़ों से होकर हवा गुजरती है। वैसे क्षण घटित हो रहे है। एक बच्चा निर्दोष आंखों से तुम्हें निहारता है। और तुम्हारे भी एक सूक्ष्म सुख का भाव उदित हो जाता है। या किसी की मुस्कुराहट तुम्हें आह्लाद से भर देती है।

अपने चारों ओ देखो ओ उसे खोजों जो आनंददायक है और उससे पूरित हो जाओ, भर जाओ। उसका स्वाद लो, उससे भर जाओ और उसे अपने पूरे प्राणों पर छा जाने दो, उसके साथ एक हो जाओ। उसकी सुगंध तुम्हारे साथ रहेगी। वह अनुभूति पूरे दिन तुम्हारे भीतर गूँजती रहेगी। और वह अनुगूँज तुम्हें ज्यादा विधायक होने में सहयोगी होगी।

यह प्रक्रिया भी और-और बढ़ती जाती है। यदि सुबह शुरू करो तो शाम तक तुम सितारों के प्रति, चाँद के प्रति, रात के प्रति, अंधेर के प्रति, ज्यादा खुले होगे। इसे एक चौबीस घंटे प्रयोग की तरह करो और देखो कि कैसा लगता है। और एक बार तुमने जान लिया कि विधायकता तुम्हें दूसरे ही जगत में ले जाती है। तो तुम उससे कभी अलग नहीं होगे। तब तुम्हारा पूरा दृष्टिकोण नकार से विधायक में बदल जाएगा। तब तुम संसार को एक भिन्न दृष्टि से, एक नयी दृष्टि से देखोगें।

मुझे एक कहानी याद आती है। बुद्ध का एक शिष्य अपने गुरु से विदा ले रहा है। शिष्य का नाम था पूर्ण काश्यप। उसने बुद्ध से पूछा कि मैं आपका संदेश लेकिर कहां जाऊं? बुद्ध ने कहा कि तुम खुद ही चुन लो। पूर्ण काश्यप ने कहा कि मैं बिहार के एक सुदूर हिस्से की तरफ जाऊँगा—उसका नाम सूखा था—उसका नाम सूख था—मैं सूखा प्रांत की तरफ जाऊँगा।

बुद्ध ने कहा कि अच्छा हो कि तुम अपना निर्णय बदल लो, तुम किसी और जगह जाओ क्योंकि सूखा प्रांत के लोग बड़े क्रूर, हिंसक, और दुष्ट है। और अब तक कोई व्यक्ति वहां उन्हें अहिंसा, प्रेम और करूणा का उपदेश सुनाने नहीं गया है। इसलिए अपना चुनाव बदल डालों। पर पूर्ण काश्यप ने कहा: मुझे जाने की आज्ञा दें, क्योंकि वहां कोई नहीं गया है और किसी को तो जाना ही चाहिए।

बुद्ध ने कहा की इससे पहले मैं तुम्हें वहां जाने की आज्ञा दूँ। मैं तुमसे तीन प्रश्न पूछना चाहता हूं। अगर उस प्रांत के लोग तुम्हारा अपमान करें तो तुम्हें कैसा लगेगा? पूर्ण काश्यप ने कहा: मैं समझूंगा कि वे बड़े अच्छे लोग है। जो केवल मेरा अपमान कर रहे है, वे मुझे मार भी सकते थे। बुद्ध ने कहा अब दूसरा प्रश्न, अगर वे लोग तुम्हें मारें-पीटें भी तो तुम्हें कैसा लगेगा? पूर्ण काश्यप ने कहा: मैं समझूंगा कि वे बड़े अच्छे लोग है। वे मेरी हत्या भी कर सकते थे। लेकिन वे सिर्फ मुझे पीट रहे है। बुद्ध ने कहा: अब तीसरा प्रश्न, अगर वे लोग तुम्हारी हत्या कर दें तो मरने के क्षण में तुम कैसा अनुभव करोगे। पूर्ण काश्यप ने कहा: '' मैं आपको और उन लोगों को धन्यवाद दूँगा। अगर वे मेरी हत्या कर देंगे तो वे मुझे उस जीवन से मुक्त कर देंगे जिसमें न जाने कितनी गलतियां हो सकती थी। वे मुझे मुक्त कर देंगे इसलिए मैं अनुगृहीत अनुभव करूंगा।

तो बुद्ध ने कहा: '' अब तुम कहीं भी जा सकते हो, सारा संसार तुम्हारे लिए स्वर्ग है। अब कोई समस्या नहीं है। सारा जगत तुम्हारे लिए स्वर्ग है। तुम कहीं भी जा सकते हो।

ऐसे चित के साथ जगत में कहीं भी कुछ भी गलत नहीं हो सकता। और तुम्हें चित के साथ कुछ भी सम्यक नहीं हो सकता। ठीक नहीं हो सकता। सकारात्मक चित के साथ सब कुछ गलत हो जाता है। इसलिए नहीं क्योंकि कुछ गलत है, बल्कि इसलिए क्योंकि नकारात्मक चित को गलत ही दिखाई देता है।

''जहां-जहां जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''

यह एक बहुत ही नाजुक प्रक्रिया है, लेकिन बहुत मीठी भी है। और तुम इसमें जितनी गति करोगे, उतनी मीठी होती जाएगी। तुम एक नयी मिठास और सुगंध से भर जाओगे। बस सुंदर को खोजों, कुरूप भी सुंदर हो जाता है। खुशी क्षण की खोज करो, और तब एक क्षण आता है जब कोई दुःख नहीं रह जाता। आनंद की फ्रिक करो, और देर-अबेर दुःख तिरोहित हो जाता है। विधायक चित के लिए सब कुछ सुंदर है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—55 (ओशो)

आत्म-स्मरण की तीसरी विधि—
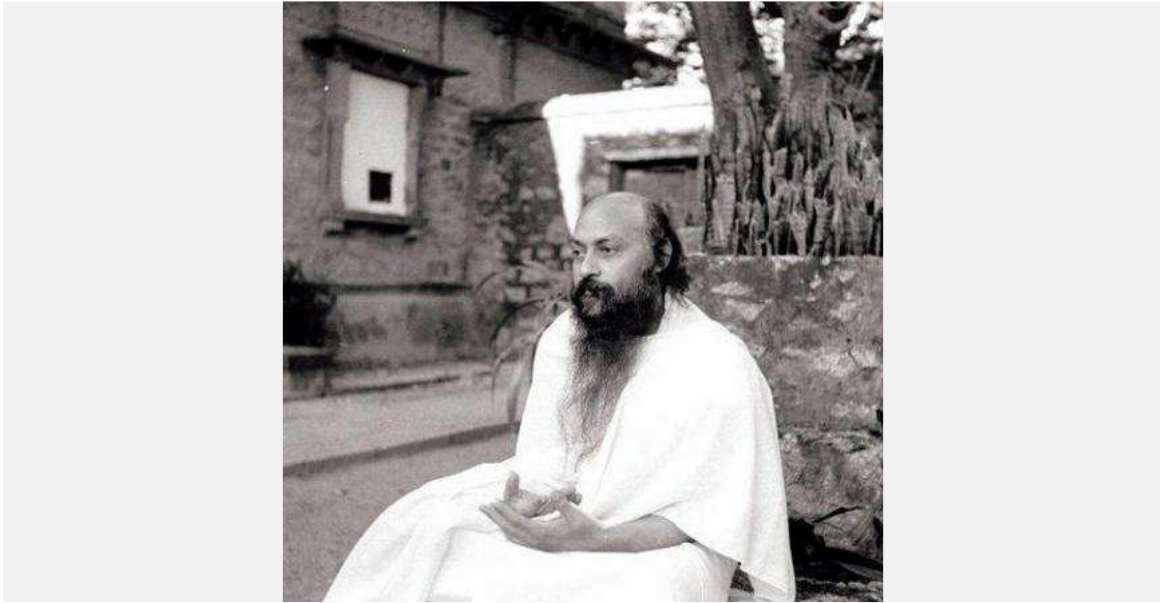
'जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो............शिव

''जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदू पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।''

तुम्हारी चेतना में कई मोड़ आते है, मोड़ के बिंदु आते है। इन बिंदुओं पर तुम अन्य समयों की तुलना में अपने केंद्र के ज्यादा करीब होते हो। तुम कार चलाते समय गियर बदलते हो और गियर बदलते हुए तुम न्यूट्रल से गुजरते हो। यह न्यूट्रल गियर निकटतम है।

सुबह जब नींद विदा हो रही होती है और तुम जागने लगते हो। लेकिन अभी जागे नहीं हो, ठीक उस मध्य बिंदु पर तुम न्यूट्रल गियर में होते हो। यह एक बिंदु है जहां तुम न सोए हो और न जागे हो, ठीक मध्य में हो; तब तुम न्यूट्रल गियर में हो। नींद से जागरण में आते समय तुम्हारी चेतना की पूरी व्यवस्था बदल जाती है। वह एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में छलांग लेती है। और इन दोनों के बीच में कोई व्यवस्था नहीं होती, एक अंतराल होता है। इस अंतराल में तुम्हें अपनी आत्मा की एक झलक मिल सकती है।

वही बात फिर रात में घटित होती है जब तुम अपनी जाग्रत व्यवस्था से नींद की व्यवस्था में, चेतन से अचेतन में छलांग लेते हो। तब फिर एक क्षण के लिए कोई व्यवस्था नहीं होती है। तुम पर किसी व्यवस्था की पकड़ नहीं होती है। क्योंकि तब तुम एक से दूसरी व्यवस्था में छलांग लेते हो। इन दोनों के मध्य में अगर तुम सजग रह सकें, बोधपूर्ण रह सके, इन दोनों के मध्य में अगर तुम अपना स्मरण रख सके, तो तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप की झलक मिल जाएगी।

तो इसके लिए क्या करें? नींद में उतरने के पहले विश्राम पूर्ण होओ और आंखे बंद कर लो। कमरे में अँधेरा कर लो। आंखे बंद कर लो। और बस प्रतीक्षा करो। नींद आ रही है। बस प्रतीक्ष करो। कुछ मत करो, बस प्रतीक्षा करो। तुम्हारा शरीर शिथिल हो रहा है। तुम्हारा शरीर भारी हो रहा है। बस शिथिलता को, भारीपन को महसूस करो। नींद की अपनी ही व्यवस्था है, वह काम करने लगती है। तुम्हारी जाग्रत चेतना विलीन हो रही है। इसे स्मरण रखो, क्योंकि वह क्षण बहुत सूक्ष्म है। वह क्षण परमाणु सा छोटा होता है। इस चूक गये तो चूक गये। वह कोई बड़ा अंतराल नहीं है। बहुत छोटा है। यह क्षण भर का अंतराल है, जिसमें तुम जागरण से नींद में प्रवेश कर जाते हो। तो बस पूरी सजगता से प्रतीक्षा करो। प्रतीक्षा किए जाओ।

इसमे थोड़ा समय लगेगा। कम से कम तीन महीने लगते है। तब एक दिन तुम्हें उस क्षण की झलक मिलेगी। जो ठीक बीच में है। तो जल्दी मत करो। यह अभी ही नहीं होगा, यह आज रात ही नहीं होगा। लेकिन तुम्हें शुरू करना है और महीनों प्रतीक्षा करनी है। साधारण: तीन महीने में किसी दिन यह घटित होगा। यह रोज ही घटित हो रहा है। लेकिन तुम्हारी सजगता और अंतराल का मिलन आयोजित नहीं किसा जा सकता। वह घटित हो ही रहा है। तुम प्रतीक्षा किए जाओ और किसी दिन वह घटित होगा। किसी दिन तुम्हें अचानक यह बोध होगा कि मैं न जागा हूं और न सोया हूं।

यह एक बहुत विचित्र अनुभव है, तुम उससे भयभीत भी हो सकते हो। अब तक तुमने दो ही अवस्थाएं जानी है। तुम्हें जागने का पता है, तुम्हें अपनी नींद का पता है। लेकिन तुम्हें यह नी पता है कि तुम्हारे भीतर एक तीसरा बिंदू भी है। जब तुम न जागे हो और सोये हो। इस बिंदू के प्रथम दर्शन पर तुम भयभीत भी हो सकते हो। आंतरिक भी हो सकते हो। भयभीत मत होओ। आतंरिक मत होओ। जो भी चीज इतनी नयी होगी। अनजानी होगी। वह जरूर भयभीत करेगी। क्योंकि यह क्षण जब तुम्हें इसका बार-बार अनुभव होगा। तुम्हें एक और एहसास देगा कि तुम न जीवित हो और नक मृत, कि तुम न यह हो और न वह। यह अतल खाई जैसा है।

नींद और जागरण की व्यवस्थाएं दो पहाड़ियों की भांति है, तुम एक से दूसरे पर छलांग लगाते हो। लेकिन यदि तुम उसके मध्य में ठहर जाओ तो तुम अतल खाई में गिर जाओगे। और इस खाई का कहीं अंत नहीं है। तुम गिरते जाओगे। गिरते ही जाओगे।

सूफियों ने इस विधि का उपयोग किया है। लेकिन जब वे किसी साधक को यक विधि देते है तो सुरक्षा के लिए वे साथ ही एक और विधि भी देते है। सूफी साधना में इस विधि के दिये जाने से पहले दूसरी विधि यह दि जाती है। कि तुम बंद आंखों से कल्पना करो, कि तुम अतल कुएं में गिर रहे हो। और गिरते ही जाओ। गिरते ही जाओ। सतत गिरते ही जाओ। यह कुआं अतल है, तुम कहीं रूक नहीं सकते। यह गिरना कही रूकने वाला नहीं है। तुम रूक सकते हो, आंखें खोलकर कह सकते हो। कि अब और नहीं। लेकिन यह गिरना अपने आप में कही रूकने वाला नहीं है। अगर तुम गिरते रहे तो कुआं अतल है। और वह और-और अंधकारपूर्ण होता जाएगा।

सूफी साधना में यह अभ्यास, अतल कुएं में गिरने का अभ्यास पहले कराया जाता है। और यह अच्छा है। उपयोगी है। अगर तुमने इसका अभया किया और अगर तुमने इसके सौंदर्य को समझा, इसकी शांति को जाना, अनुभव किया, तो तुम जितना चाहे गहरे कुएं में उतर सकते हो। ज्यादा शांत हो सकते हो। संसार बहुत पीछे छूट जायेगा। और तुम्हें लगेगा कि मैं बहुत दूर, बहुत दूर, निकल आया हूं। अंधकार के साथ शांति बढ़ती है। और क्योंकि नीचे गहरे में कहीं कोई तल नहीं है। इसलिए भय पकड़ सकता है। लेकिन तुम्हें मालूम है कि यह सिर्फ कल्पना है, इसलिए तुम इसे जारी रख सकते हो।

इस अभ्यास के द्वारा तुम इस विधि के लिए तैयार होते हो। और फिर जब तुम जागरण और नींद के अंतराल के कुएं में गिरते हो तो यह कल्पना नहीं है, यह यथार्थ है। और यह कुआं भी अतल है। अनंत है। इसीलिए बुद्ध ने इसे शून्य कहां है, उसका अंत नहीं है। और तुम एक बार इसे जान गए तो तुम भी अनंत हो गये।

''जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदु पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।''

तब तुम जानते हो कि मैं कौन हूं, मेरा सच्चा स्वभाव क्या है, मेरा प्रमाणिक अस्तित्व क्या है। जागते हुए झूठे हो। और यह तुम भली भांति जानते हो। जब तुम जागे हुए हो, तुम झूठे बने रहते हो। तुम उस समय मुस्कराते हो, जब कि आंसू बहाना ज्यादा सच होता है। तुम्हारे आंसू भी भरोसे योग्य नहीं है। वे भी दिखाऊ हो सकते है। नकली हो सकते है। होने चाहिए इसलिए हो सकते है। तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी है। जो लोग चेहरे पढ़ना जानते है वे कह सकते है कि यह मुस्कुराहट रंग-रोगन से ज्यादा नहीं है। भीतर उसकी कोई जड़ें नहीं है। यह मुस्कुराहट बस तुम्हारे चेहरे पर है, होठो पर है। ऊपरी है। यह तुम्हारे प्राणों से नहीं उठी है। उपर से ओढ़ी गई है। यह थोपी गई है।

तुम जो कहते हो, जो भी करते हो, सब नकली है। यह जरूरी नहीं है कि तुम यह नकली व्यापार जान बूझकर करते हो। यह जरूरी नहीं है उसके प्रति तुम सर्वथा अंजान भी हो सकते हो। तुम अंजान हो। अन्यथा इस नकली मूढ़ता को सतत जारी रखना बहुत कठिन है। यह व्यापार स्वचालित है। यह झूठ चलता रहता है जब तुम जागे हुए हो और यह झूठ तब भी चलता रहा है जब तुम सोए हुए हो—लेकिन तब और ढंग से चलता है। तुम्हारे सपने प्रतीकात्मक है, सच नहीं। हैरानी की बात है कि तुम अपने सपनों मे भी सच्चे नहीं हो, तुम अपने सपनों में भी भयभीत हो। और तुम प्रतीक निर्मित करते हो।

अब मनोविश्लेषक तुम्हारे सपनों का विश्लेषण करता रहता है। यही उसका धंधा है। और यह एक भारी धंधा बन गया है। क्योंकि तुम खुद अपने सपनों का विश्लेषण नहीं कर सकते हो। सपने प्रतीकात्मक वे सच नहीं है। वे सिर्फ प्रतीकों के द्वारा कुछ कहते है। अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहते हो, उसके छुटकारा चाहते हो। तो तुम सपने में उसकी हत्या नहीं करोगे। तुम उसकी जगह किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या कर दोगे, जो देखने में तुम्हारी मां जैसा होगा। तुम अपनी चाचा या किसी और की हत्या कर दोगे। तुम अपने सपने में भी प्रमाणिक नहीं हो सकते। यह कारण है कि मनोविश्लेषण की जरूरत पड़ती हे। एक पेशेवर व्यक्ति की जरूरत पड़ती है। जो तुम्हारे सपनों की व्याख्या कर सके। लेकिन तुम सपने को भी एक ढंग से रख सकते हो कि मनोविश्लेषण भी धोखा खा जाए।

तुम्हारे सपने भी सर्वथा झूठे है। लेकिन अगर तुम जागते हुए सच्चे रह सको तो तुम्हारे सपने सच हो सकते है, तब वे प्रतीकात्मक नहीं होंगे। तब अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहोगे तो सपने में तुम अपनी मां की ही हत्या करोगे। किसी और स्त्री की नहीं। और फिर व्याख्या करने वालों की जरूरत नहीं होगी। तुम्हें खुद पता होगा की तुम्हारे सपनों का अर्थ क्या है। लेकिन हम इतने झूठे है, धोखेबाज है, कि सपने के एकांत में भी संसार से, समाज से डरते है।

लेकिन यह सिखावन क्यों? गहरे में यह संभावना है कि प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्यतः: अपनी मां का विरोध में चला जाए, क्योंकि मां ने तुम्हें सिर्फ जन्म ही नहीं दिया, उसने तुम्हें झूठ और नकली बनने के लिए मजबूर किया है। तुम जो भी हो, अपनी मां के बनाए हुए हो। अगर तुम एक नरक हो तो इसमें तुम्हारी मां का बड़ा हाथ है। सबसे बड़ा हाथ है। अगर तुम दुःख में हो तो उस दुःख में कहीं न कहीं तुम्हारी मां मौजूद है, क्योंकि मां ने तुम्हें जन्म दिया, उसने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। या कहें कि उसने तुम्हें पाल-पोसकर नकली बनाया। उसने तुम्हें तुम्हारी प्रामाणिकता से हटा दिया। तुम्हारा पहला झूठ तुम्हारे और तुम्हारी मां के बीच घटित हुआ है।

जब बच्चे ने बोलना भी नहीं सीखा है, उसके पास भाषा भी नहीं है। तब भी वह झूठ बोल सकता है। देर अबेर वह जान जाता है कि उसके अनेक भाव मां को पसंद नहीं है। मां का चेहरा, उसकी आंखें, उसका व्यवहार, उसकी मुद्रा, सब बात देते है कि उसकी कुछ चीजें पसंद नहीं है। स्वीकृत नहीं है। और तब बच्चा दमन करने लगता है; उसे लगता है कि कुछ गलत है। अभी उसके पास भाषा नहीं है, उसका मन सक्रिय नहीं है। लेकिन उकसा सारा शरीर दमन करने लग जाता है। और फिर उसे पता चलता है कि कभी-कभी कोई बात उसकी मां के द्वारा सराही जाती है। और यह बच्चा मां पर निर्भर है, उसका जीवन ही मां पर निर्भर है। अगर मां उसे छोड़ दे तो वह नहीं जी सकता। उसका पूरा जीवन मां पर केंद्रित है।

इसलिए मां का सब कुछ—उसका व्यवहार, उसकी बात, उसका इशारा—बच्चे के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। अगर बच्चा मुस्कराता है और तब मां उसे प्रेम देती हे। लाड़-दुलार करती है। दूध पिलाती है। छाती से लगती है। तो समझो की बच्चा राजनीति सीखने लगा। वह तब भी मुस्कुराएगा जब उसके भी मुस्कुराहट नहीं होगी। क्योंकि अब वह जानता है कि ऐसा करके वह मां को खुश कर सकता है। अब वह झूठी मुस्कुराहट मुस्कुराएगा। अब एक झूठा व्यक्ति पैदा हो गया। अब एक राजनीतिज्ञ अस्तित्व में आया। अब वह जानता है कि कैसे झूठ हुआ जाए।

और यह सब वह अपनी मां के सत्संग से सीखता है। संसार में वह उसका पहला संबंध है। इसलिए जब उसे अपने दुखों का पता चलता है। अपने नरक का बोध होता है, उलझनें घेरेंगी, तब उसे यह भी पता चलेगा कि इस सब में कही न कहीं उसकी मां छिपी है। और पूरी संभावना यह है कि तुम अपनी मां के प्रति शत्रुता अनुभव करते हो। यही कारण है कि सभी संस्कृतियों में जोर दिया जाता है कि मां ही हत्या जघन्य पाप है। विचार में भी, सपने में भी, तुम मां की हत्या न कर सको।

ये दो तुम्हारे झूठे चेहरे है। एक चेहरा तुम्हारे जागरण में प्रकट होता है। और दूसरा तुम्हारी नींद में। इन दो झूठे चेहरों के बीच एक छोटा सा द्वार है, एक छोटा सा अंतराल है। इस अंतराल में तुम्हें अपने मौलिक चेहरे की झलक मिल सकती है—उस मौलिक चेहरे की जो तब था जब तुम मां से नहीं संबंधित हुए थे। और मां के जरिए समाज से नहीं जुड़े थे। जब तुम अपने साथ अकेले थे जब तुम थे—तुम यह वह नहीं थे। जब कोई विभाजन नहीं था। केवल सत्य था; कुछ असत्य नहीं था। इन दो व्यवस्थाओं के बीच तुम्हें अपनी उस सच्चे चेहरे की झलक मिल सकती है।

साधारणत: हम अपने सपनों की चिंता नहीं लेते है, हम सिर्फ जागते समय की चिंता लेते है। लेकिन मनोविश्लेषण तुम्हारे सपनों की ज्यादा चिंता लेते है। वह तुम्हारे जागरण की चिंता नहीं लेता है। क्योंकि वह समझता है कि जागे हुए तुम ज्यादा झूठे होते हो। तुम्हारे सपनों सक कुछ पकड़ा जा सकता है। जब तुम सोए होते हो तो कम सजग होते हो। तब तुम कुछ आरोपित नहीं करते, तब तुम तोड़ते-मरोड़ते नहीं। उस अवस्था में कुछ सत्य पकड़ा जा सकता है।

तुम जागते हुए ब्रह्मचारी हो सकते हो, साधु हो सकते हो। लेकिन तुमने अपनी कामवासना को दबा रखा है। वह दबी हुई कामवासना तुम्हारे स्वप्नों में अभिव्यक्त होगी; तुम्हारे सपने कामुक होंगे। ऐसा साधु खोजना कठिन है जो कामुक सपने ने देखता हो। यह असंभव है। तुम्हें कामुक सपनों के बिना अपराधी तो मिल जायेंगे। लेकिन ऐसा धार्मिक आदमी खोजना मुशिकल होगा। जो कामुक सपने न देखता हो। एक व्यभिचारी कामुक सपनों के बिना हो सकता है। क्योंकि तुम जागते हुए जिसे दबाओगें वह तुम्हारे सपनों में उभरकर आएगा। वह तुम्हारे सपनों को प्रभावित करेगा।

मनोचिकित्सक तुम्हारे जागरण की फिक्र नहीं करते है, क्योंकि वे जानते है कि वह बिलकुल झूठ है। अगर कुछ सच्चा, कुछ यथार्थ देखना हो तो वह केवल सपनों में देखा जा सकता है।

लेकिन तंत्र कहता है कि सपने भी उतने सच नहीं है। हालांकि जागरण की तुलना में वे ज्यादा सच है—यह पहेली सी मालूम पड़ती है। क्योंकि हम सपनों को असत्य मानते है—वे जागरण की घड़ियों की बजाय ज्यादा सच है। क्योंकि सपनों में तुम

अपने पहरे पर कम होते हो। नींद में सेंसर सोया रहता है। और दमित चीजें ऊपर आ सकती है। अपने को अभिव्यक्त कर सकती है। हां यह अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक होगी; पर प्रतीकों को समझा जा सकता है।

सारी दुनियां में मनुष्य के प्रतीक समान है। जागते हुए तुम भिन्न भाषा बोल सकते हो। लेकिन सपने में तुम वही भाषा बोलते हो जो सारे लोग बोलते है। सारी दुनिया की स्वप्न भाषा एक है। अगर कामवासना दबाई गई है तो दुनियाभर में एक ही तरह का प्रतीक उसे अभिव्यक्त करेंगे। अगर भोजन की इच्छा को दबाया गया है, भूख को दमित किया गया है तो उसे भी सपने में सर्वत्र एक ही तरह के प्रतीक अभिव्यक्त करेंगे। स्वप्न—भाषा है।

लेकिन प्रतीकों के कारण ही स्वप्नों के साथ एक दूसरी कठिनाई है। फ्रायड उसका अर्थ एक ढंग से कर सकता है। जुंग उनका अर्थ दूसरे ढंग से कर सकता है। और एडलर उनका अर्थ और भी भिन्न ढंग से कर सकता है। अगर सौ मनोविश्लेषक तुम्हारा विश्लेषण करें तो वे सौ व्याख्याएं करेंगे। और तुम पहले से ज्यादा उलझन में पड़ जाओगे। एक ही चीज की सौ व्याख्याएं तुम्हें और भी भ्रांत कर देंगी।

तंत्र कहता है, तुम न जागते हुए सच हो और न सोते हुए सच हो, तुम इन दो अवस्थाओं के बीच में कहीं सच हो। इसलिए न जागरण की फिक्र तरो और नींद की और न स्वप्न की। सिर्फ अंतराल की फिक्र करो। उस अंतराल के प्रति जागों। एक से दूसरी अवस्था में गुजरते हुए इस अंतराल का दर्शन करो। और एक बार तुम जान जाते हो कि यह अंतराल कब आता है। तुम उसके मालिक हो जाते हो। तब तुम्हें कुंजी मिल गई, तुम किसी भी वक्त उस अंतराल को खोलकर उसमे प्रवेश कर सकते हो। तब होने का एक भिन्न आयाम, एक नया आयाम खुलता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र part 3

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—56 (ओशो)

आत्म-स्मरण की चौथी विधि—

''भ्रांतियां छलती है, रंग सीमित करते है, विभाज्य भी अविभाज्य है।''–तंत्र सुत्र

''भ्रांतियां छलती है, रंग सीमित करते है, विभाज्य भी अविभाज्य है।''

यह एक दुर्लभ विधि है। जिसका प्रयोग बहुत कम हुआ है। लेकिन भारत के एक महानतम शिक्षक शंकराचार्य ने इस विधि का प्रयोग किया है। शंकर ने तो अपना पूरा दर्शन ही इस विधि के आधार पर खड़ा किया है। तुम उनके माया के दर्शन को जानते हो। शंकर कहते है कि सब कुछ माया है। तुम जो भी देखते, सुनते या अनुभव करते हो, सब माया है। वह सत्य नहीं है। क्योंकि सत्य को इंद्रियों से नहीं जाना जा सकता।

तुम मुझे सुन रहे हो और मैं देखता हूं कि तुम मुझे सुन रहे हो, हो सकता है कि यह सब स्वप्न हो। यह स्वप्न है या नहीं, यह तय करने का कोई उपाय नहीं है। हो सकता है कि मैं स्वप्न देख रहा हूं। कि तुम मुझे सुन रहे हो। यह मैं कैसे जान सकता हूं कि यह स्वप्न नहीं, सत्य है। कोई उपाय नहीं है।

च्वांगत्सु के बारे में कहा जाता है कि एक रात उसने स्वप्न देखा कि वह तितली हो गया है। सुबह जागने पर वह बहुत दुःखी था—और वह दुःखी होने वाला व्यक्ति नहीं था। लोगों ने कभी उसे दुःखी नहीं देखा था। उसके शिष्य इकट्ठे हुए और उन्होंने पूछा: गुरूदेव आप इतने दुःखी क्यों है?

च्वांगत्सु ने बताया कि रात के सपने के कारण वह दुःखी है। उसके शिष्यों ने कहा कि हैरानी की बात है कि आप सपने के कारण दुःखी है। आपने तो हमें यही सिखाया कि यदि सारा संसार भी दुःख देने आए तो दुःखी मत होना। और एक सपने के कारण आप दुःखी है? आप क्या कहते है? च्वांगत्सु ने कहा कि यह सपना ही ऐसा है कि इसमे मैं बहुत उलझन में पड़ गया हूं और इसलिए दुःखी हूं। मैंने सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं।

शिष्यों ने पूछा कि इसमें हैरानी की बात क्या है?

च्वांगत्सु ने कहा कि दिक्कत यह है कह अगर च्वांत्सु सपना देख सकता है कि मैं तितली हो गया हूं। तो इससे उलटा भी हो सकता है। तितली सपना देख सकती है कि मैं च्वांगत्सु हो गयी हूं। यही कारण है कि मैं परेशान हूं कि क्या ठीक है और क्या गलत है? क्या च्वांगत्सु ने सपना देखा था कि वह तितली हो गया है या कि तितली सोने चली गई और उसने सपना देखा कि वह च्वांगत्सु हो गई है। अगर एक बात हो सकती है तो दूसरी भी हो सकती है।

और कहा जाता है कि च्वांगत्सु को जीवनभर एक पहेली का हल न मिला, यह सदा उसके साथ रही।

यह कैसे तय हो कि में जो अभी तुमसे बात कर रहा हूं, वह सपने में नहीं कर रहा हूं? यह कैसे तय हो कि तुम सपना नहीं देख रहे हो कि मैं बोल रहा हूं? इंद्रियों से कोई निर्णय संभव नहीं है, क्योंकि सपना देखते हुए सपना यथार्थ मालूम पड़ता है—उतना ही यथार्थ जितना कुछ भी दूसरा यथार्थ मालूम पड़ता है। जब तुम सपना देखते हो तो तुम्हें वह सदा सच्चा मालूम पड़ता है। और जब सपने को सच की तरह देखा जा सकता है तो क्यों सच को सपने की तरह नहीं देखा जा सकता है।

शंकर कहते है कि इंद्रियों से यह जानना संभव नहीं है कि जो चीज तुम्हारे सामने है वह सच है या स्वप्न। और जब जानने का उपाय ही नहीं है कि वह सच है या झूठ तो शंकर उसे माया कहते है।

माया का अर्थ झूठ नहीं है, माया का अर्थ है कि यह निर्णय करना असंभव है कि वह सच है या झूठ। इस बात को स्मरण रखो। पश्चिम की भाषाओं में माया का गलत अनुवाद हुआ है। पश्चिम की भाषाओं में माया शब्द अयथार्थ या झूठ का अर्थ रखता है। यह अर्थ सही नहीं है। माया का इतना ही अर्थ है कि यह निश्चित नहीं हो सकता है कि कोई चीज यथार्थ है कि अयथार्थ। यह उलझन माया है।

यह सारा जगत माया है। तुम उसके संबंध में निशचित नहीं हो सकते। कुछ भी निर्णय पूर्वक नहीं कह सकते। यह जगत निरंतर तुमसे छूट-छूट जाता है, निरंतर बदल जाता है। कुछ से कुछ हो जाता है। यह इंद्रजाल सा लगता है। स्वप्नवत लगता है। और यह विधि इसी दृष्टि से संबधित है।

''भ्रांतियां छलती है।''

या जो चीज छले वह भ्रांति है।

''रंग सीमित करते है, विभाज्य भी अविभाज्य है।''

इस माया के जगत में कुछ भी निश्चित नहीं है। सारा जगत इंद्रधनुष के समान है, वह भासता है, लेकिन है नहीं। जब तुम उससे बहुत दूर होते हो तो वह है, जब करीब जाते हो तो वह खोता जाता है। जितना करीब जाओगे उतना ही वह खोता जाएगा। और अगर तुम उस बिंदू पर पहुंच जाओ जहां इंद्रधनुष दिखाई पड़ता था तो वह बिलकुल खो जायेगा।

सारा जगत इंद्रधनुष के रंगों जैसा है। और सच्चाई यही है। जब तुम दूर होते हो, सब कुछ आशा पूर्ण दिखाई देता है; जब तुम करीब आते हो, आशा खो जाती है। और जब तुम मंजिल पर पहुंच जाते हो, तब तो राख ही राख बचती है। मृत इंद्रधनुष बचता है जिसके सब रंग उड़ जाते है। कुछ भी वैसा नहीं है जैसा दिखता था। जैसा तुमने चाहा था वैसा कुछ भी नहीं है।

''विभाज्य भी अविभाज्य है।''

तुम्हारा सब गणित, तुम्हारा सब हिसाब-किताब, तुम्हारी सब धारणाएं, तुम्हारे सब सिद्धांत—सब कुछ व्यर्थ हो जाते है। अगर तुम इस माया को समझने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारी चेष्टा ही तुम्हें और भ्रांत कर देगी। वहां कुछ भी निश्चित नहीं है। सब कुछ अनिश्चित है। जगत एक प्रवाह है, परिवर्तनों का प्रवाह है, और तुम्हारे लिए यह तय करने का कोई उपाय नहीं है कि क्या सच है और क्या नहीं है।

इस हालत में क्या होगा? अगर तुम्हारी ऐसी दृष्टि हो तो क्या होगा? अगर यह दृष्टि तुममें गहरी उतर जाए कि जिस चीज के संबंध में निश्चित नहीं हो सके वह माया है तो तुम अपने ही आप, सहजता से अपनी तरफ मुड़ जाओगे। तब तुम्हें अपना केंद्र सिर्फ अपने भीतर खोजना होगा। वही एकमात्र सुनिश्चितता है।

इसे इस तरह समझने की कोशिश करो। रात में मैं स्वप्न देख सकता हूं कि मैं तितली बन गया हूं। और मैं स्वप्न मैं स्वप्न में तय नहीं कर सकता कि यह सच है या झूठ है। और अगली सुबह मैं च्वांगत्सु की तरह उलझन में पड़ सकता हूं कि अब कहीं तितली ही यह सपना तो नहीं देख रही कि वह च्वांगत्सु हो गई है।

अब ये दो सपने है और तुलना का कोई उपाय नहीं है। कि इनमें कौन सच है और कौन झूठ। लेकिन च्वांगत्सु एक चीज चूक रहा है—वह है स्वप्न देखने वाला। वह केवल सपनों की सोच रहा है, उसकी तुलना कर रहा , और स्वप्न देखने वाले को चूक रहा है। वह उसे चूक रहा है जो स्वप्न देख रहा है। कि च्वांगत्सु तितली बन गया है। और वह उसे चूक रहा है जो विचार करता है कि बात बिलकुल उलटी भी हो सकती है—कि तितली सपना देख रही हो कि सह च्वांगत्सु हो गई है। यह देखने वाला कौन है? द्रष्टा कौन है। कौन है वह जो साया हुआ था और अब जागा हुआ है?

तुम मेरे लिए असत्य हो सकते हो। तुम मेरे लिए स्वप्न हो सकते हो। लेकिन मैं अपने लिए स्वप्न नहीं हो सकता। क्योंकि स्वप्न के होने के लिए भी एक सच्चे स्वप्न देखने वाले की जरूरत है। झूठे स्वप्न के लिए भी सच्चे स्वप्नदर्शी की जरूरत है। स्वप्न भी सच्चे स्वप्नदर्शी के बिना नहीं हो सकता। तो स्वप्न को छोड़ो।

यह विधि कहती है: स्वप्न को भूल जाओ। सारा जगत माया है, तुम माया नहीं हो। तुम जगत के पीछे मत भागों। क्योंकि वहां सुनिश्चित होने की कोई संभावना नहीं है। कि क्या सत्य है और असत्य। और अब तो वैज्ञानिक शोध से भी यह बात सिद्ध हो चुकी है।

पिछले तीन सौ वर्षों तक विज्ञान सुनिश्चित था और शंकर एक दार्शनिक, एक कवि मालूम पड़ता था। तीन सदियों तक विज्ञान असंदिग्ध था, सुनिश्चित था, लेकिन पिछले दो दशकों से विज्ञान का निश्चय अनिश्चय में बदल गया है। अब बड़े से बड़ा वैज्ञानिक कहते है कि कुछ भी निश्चित नहीं है। और पदार्थ के साथ हम कभी निश्चित नहीं हो सकते। सब कुछ पुन: संदिग्ध हो गया है। सब कुछ प्रवाहमान, बदलता हुआ मालूम पड़ता है। बाहरी रूप-रंग ही निश्चित मालूम पड़ता है। लेकिन जैसे-जैसे तुम उसमे गहरे जाते हो सब अनिश्चित होता जाता है। सब धुंधला-धुंधला होता जाता है।

शंकर कहते है—और तंत्र ने सदा कहा है—कि जगत माया है। शंकर के जन्म के पहले भी तंत्र इस विधि का उपयोग करता था जगत माया है। उसे स्वप्नवत समझो। और अगर तुमने इसे माया समझा—और यदि तुमने जरा ध्यान दिया तो तुम जानोंगे ही कि यह माया है। तो तुम्हारी चेतना का पूरा तीन भीतर की और मुड़ जाएगा। क्योंकि सत्य को जानने की अभीप्सा प्रगाढ़ है।

अगर सारा जगत अयथार्थ है, असत्य है, तो उससे कोई आश्रय नहीं मिल सकता है। तब तुम छायाओं के पीछे भाग रहे हो। अपने समय, शक्ति और जीवन का अपव्यय कर रह हो। अब भी तर की तरफ चलो। क्योंकि एक बात तो निश्चित है कि मैं हूं। यदि सारा जगत भी माया है तो भी एक चीज निश्चित है कि कोई है जो जानता है कि यह माया है। ज्ञान भ्रांत हो सकता है, ज्ञेय भ्रांत हो सकता है, लेकिन ज्ञाता भ्रांत नहीं हो सकता। वही एक मात्र निश्चय है, एकमात्र चट्टान है, जिस पर तुम खड़े हो सकते हो।

यह विधि कहती है: ''संसार को देखो; यह स्वप्नवत है, माया है, वैसा बिलकुल नहीं है जैसा भासता है। यह बस इंद्रधनुष जैसा है। इस भाव की गहराई में उतरो और तुम अपने पर फेंक दिए जाओगे। और अपने अंतस पर आने के साथ-साथ तुम निश्चय को, सत्य को, असंदिग्ध को, परम को उपलब्ध हो जाते हो।

विज्ञान कभी परम तक नहीं पहुंच सकता, वह सदा सापेक्ष रहेगा। सिर्फ धर्म परम को उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि धर्म स्वप्न को नहीं, स्वप्नदर्शी को खोजता है। धर्म दृश्य को नहीं, द्रष्टा को खोजता है। धर्म उसे खोजता है जो चिन्मय है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—57 (ओशो)

साक्षित्व की पहली विधि–

''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''

''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''
जब तुम्हें कामना घेरती है, चाहे पकड़ती है, तो तुम उत्तेजित हो जाते हो, उद्विग्न हो जाते हो। यह स्वाभाविक है। जब चाह पकड़ती है तो मन डोलने लगता है। उसकी सतह पर लहरें उठने लगती है। कामना तुम्हें खींचकर कहीं भविष्य में ले जाती है; अतीत तुम्हें कहीं भविष्य में धकाता है। तुम उद्विग्न हो जाते हो, बेचैन हो जाते हो। अब तुम चैन में न रहे। चाह बेचैनी है, रूग्णता है।

यह सूत्र कहता है: ''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''

लेकिन अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? कामना का अर्थ ही उद्वेग है। अशांति है; फिर अनुद्विग्न कैसे रहा जाए? शांत कैसे रहा जाए? और वह भी कामना के तीव्रतम क्षणों में।

तुम्हें कुछ प्रयोगों से गुजरना होगा। तो ही तुम इस विधि का अभिप्राय समझ सकते हो। तुम क्रोध में हो; क्रोध ने तुम्हें पकड़ लिया है। तुम अस्थायी रूप से पागल हो, आविष्ट हो, अवश हो। तुम होश में नहीं हो। इस अवस्था में अचानक स्मरण करो कि अनुद्विग्न रहना है—मानों तुम कपड़े उतार रहे हो। नग्न हो रहे हो। भीतर नग्न हो जाओ, क्रोध से निर्वस्त्र हो जाओ। क्रोध तो रहेगा, लेकिन अब तुम्हारे भीतर एक बिंदु है जो अनुद्विग्न है, शांत है। तुम्हें पता होगा कि क्रोध परिधि पर है; बुखार की तरह वह वहां है। परिधि कांप रही है। परिधि अशांत है। लेकिन तुम उसके दृष्टा हो। और यदि तुम उसके द्रष्टा हो सके तो तुम अनुद्विग्न रहोगे। तुम उसके साक्षी हो जाओ, और तुम शांत हो जाओगे। वहाँ शांत बिंदु ही तुम्हारा मूलभूत मन है मूलभूत मन अशांत नहीं हो सकता। वह कभी अशांत नहीं होता है। लेकिन तुमने उसे कभी देखा नहीं है। जब क्रोध होता है तो तुम्हारा उससे तादात्म्य हो जाता है। तुम भूल जाते हो कि क्रोध तुमसे भिन्न है, पृथक है। तुम उससे एक हो जाते हो; और तुम उसके द्वारा सक्रिय हो जाते हो, कुछ करने लगते हो। और तब दो चीजें संभव है।

तुम क्रोध में किसी के प्रति, क्रोध के विषय के प्रति हिंसात्मक हो सकते हो; लेकिन तब तुम दूसरे की और गति कर गए। क्रोध ने तुम्हारे और दूसरे के बीच जगह ले ली। यहां मैं हूं जिसे क्रोध हुआ है, फिर क्रोध है ओ वहां तुम हो, मेरे क्रोध का विषय। क्रोध से मैं दो आयामों में यात्रा कर सकता हूं। या तो मैं तुम्हारी तरफ जा सकता हूं, अपने क्रोध के विषय की तरफ। तब तुम जिसने मेरा अपमान किया, मेरी चेतना के केंद्र बन गए; तब मेरा मन तुम पर केंद्रित हो गया। यह ढंग है क्रोध से यात्रा करने का।

दूसरा ढंग है कि तुम अपनी और स्वयं की और यात्रा करो। तुम उस व्यक्ति की और नहीं गति करते जिसने तुम्हें क्रोध करवाया। बल्कि उस व्यक्ति की तरफ जाते हो जो क्रोध अनुभव करता है। तुम विषय की और न जाकर विषयी की और गति करते हो।

साधारणत: हम विषय की और ही बढ़ते है। और विषय की और बढ़ने से मन का धूल-भरा हिस्सा उत्तेजित और अशांत हो जाता है। और तुम्हें अनुभव होता है की मैं अशांत हूं। अगर तुम भीतर की और मुड़ो अपने केंद्र की और मुड़ो, तो तुम धूल वाले हिस्से के साक्षी हो जाओगे। तब तुम देख सकोगे। कि धूल वाला हिस्सा तो अशांत है, लेकिन मैं अशांत नहीं हूं। और तुम किसी भी इच्छा के साथ किसी भी अशांति के साथ यह लेकर प्रयोग कर सकते हो।

तुम्हारे मन में कामवासना उठती है; तुम्हारा सारा शरीर उससे अभिभूत हो जाता है। अब तुम काम विषय की और अपनी वासना के विषय की और जा सकते हो। चाहे वह वास्तव में वहां हो या न हो। तुम कल्पना में भी उसकी तरफ यात्रा कर सकते हो। लेकिन तब तुम और ज्यादा अशांत होते जाओगे। तुम अपने केंद्र से जितनी दूर निकल जाओगे उतने ही अधिक अशांत होते जाओगे। सच तो यह है कि दूरी और अशांति होगे और केंद्र के जितनी करीब होगे उतने कम अशांत होगे। ओर अगर तुम ठीक केंद्र पर हो तो कोई अशांति नहीं है।

हर तूफान के बीचो बीच एक केंद्र होता है। जो बिलकुल शांत रहता है; वैसे की क्रोध के तूफान के केंद्र पर, काम के तूफान के केंद्र पर, किसी भी वासना के तूफान के केंद्र—ठीक केंद्र पर कोई तूफान नहीं होता। और कोई भी तूफान शांत केंद्र के बिना नहीं हो सकता; वैसे ही क्रोध भी तुम्हारे उस अंतरस्थ के बिना नहीं हो सकता जो क्रोध के पार है।

यह स्मरण रहे, कोई भी चीज अपने विपरीत तत्व के बिना नहीं हो सकती। विपरीत जरूरी है; उसके बिना किसी भी चीज होने की संभावना नहीं है। यदि तुम्हारे भीतर कोई स्थिर केंद्र न हो तो गति असंभव है। यदि तुम्हारे भीतर शांत केंद्र न हो तो अशांति असंभव है।

इस बात का विश्लेषण करो, इसका निरीक्षण करो। अगर तुम्हारे भीतर परम शांति का कोई केंद्र न होता तो तुम कैसे जानते कि मैं अशांत हूं? तुम्हें तुलना करनी चाहिए, तुलना के लिए दो बिंदू चाहिए।

मान लो कि कोई व्यक्ति बीमार है। वह व्यक्ति बीमारी अनुभव करता है; क्योंकि उसके भीतर कहीं कोई बिंदू है, जहां परम स्वास्थ विराजमान है। इससे ही वह तुलना कर सकता है। तुम कहते हो कि मुझे सिरदर्द है; लेकिन तुम कैसे जानते हो कि यह दर्द है, सिरदर्द है? अगर तुम ही सिरदर्द होते तो तुम इसे कैसे जान सकते थे। अवश्य ही तुम कुछ और हो। कोई और हो। तुम द्रष्टा हो। साक्षी हो। जो कहता है कि मुझे सिरदर्द है। इस दर्द को वही अनुभव कर सकता है जो खुद दर्द नहीं है। अगर तुम बीमार हो, ज्वर ग्रस्त हो तो तुम उसे अनुभव कर सकते हो। क्योंकि तुम ज्वर नहीं हो। खुद ज्वर को नहीं अनुभव कर सकता है; कोई चाहिए जो उसके पार हो। विपरीत जरूरी है।

जब तुम क्रोध में हो और अगर तुम महसूस करते हो कि मैं क्रोध में हूं तो उसका अर्थ है कि तुम्हारे भीतर कोई बिंदू है जो अब भी शांत है और जो साक्षी हो सकता है। यह बात दूसरी है कि तुम इस बिंदू को नहीं देखते हो। तुम इस बिंदू पर अपने को कभी नहीं देखते हो। यह एक अलग बात है। लेकिन वह सदा अपनी मौलिक शुद्धता में वहां मौजूद है।

यह सूत्र कहता है: ''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न रहो।''

तुम क्या करते हो? यह विधि दमन के पक्ष में नहीं है। यह विधि यह नहीं कहती है कि जब क्रोध आए तो उसे दबा दो और शांत हो जाओ। नहीं, अगर दमन करोगे तो तुम ज्यादा अशांति निर्मित करोगे। अगर क्रोध हो और उसे दबाने का प्रयत्न भी साथ-साथ हो तो उससे अशांति दुगुनी हो जाएगी। नहीं; जब क्रोध आए तो द्वार दरवाजे बंद कर लो और क्रोध पर ध्यान करो। क्रोध को होने दो; तुम अनुद्विग्न रहो और क्रोध का दमन मत करो।

दमन करना आसान है; प्रकट करना भी आसान है। और हम दोनों करते है। अगर स्थिति अनुकूल हो तो हम क्रोध को प्रकट कर देते है। अगर उसकी सुविधा हो, अगर तुम्हें खुद कोई खतरा नहीं हो तो तुम क्रोध को अभिव्यक्त कर दोगे। अगर तुम दूसरे को चोट पहुंचा सकते हो और दूसरा बदले में तुम पर चोट कर सकता है। तो तुम अपने क्रोध को खुली छूट दे दोगे। और अगर क्रोध को प्रकट करना खतरनाक हो, अगर दूसरा तुम्हें ज्यादा चोट कर सकने में समर्थ हो, अगर वह तुम्हारा मालिक हो या तुमसे ज्यादा बलवान हो, तो तुम क्रोध को दबा दोगे।

अभिव्यक्ति और दमन सरल है; साक्षी कठिन है। साक्षी न अभिव्यक्ति है और न दमन; वह दोनों में कोई नहीं है। वह अभिव्यक्ति नहीं है। क्योंकि तुम उसे दूसरे पर नहीं प्रकट कर रहे हो। तुम उसका दमन भी नहीं करते। तुम उसे शून्य में विसर्जित कर रहे हो। तुम उस पर ध्यान कर रहे हो।

किसी आईने के सामने खड़े हो जाओ और अपने क्रोध को प्रकट करो—और उसके साक्षी बने रहो। तुम अकेले हो, इसलिए तुम उस पर ध्यान कर सकते हो। तुम जो भी करना चाहो करो, लेकिन शून्य में करो। अगर तुम किसी को मारना पीटना चाहते हो तो खाली आकाश के साथ मार-पीट करो। अगर क्रोध करना चाहते हो तो क्रोध करो; अगर चीखना चाहते हो तो चीखो। लेकिन सब अकेले में करो। और अपने को उस केंद्र बिंदू की भांति स्मरण रखे जो यह सब नाटक देख रहा है। तब यह एक साइको ड्रामा बन जाएगा। और तुम उस पर हंस सकते हो। वह तुम्हारे लिए गहरा रेचन बन जाएगा। और न केवल तुम्हारा क्रोध विसर्जित हो जाएगा, बल्कि तुम उससे कुछ फायदा उठा लोगे। तुम्हें एक प्रौढ़ता प्राप्त होगी; तुम एक विकास को उपलब्ध होओगे। और अब तुम्हें पता होगा कि जब तुम क्रोध में भी थे तो कोई था जो शांत था। अब इस केंद्र को अधिकाधिक उघाड़ते जाओ। और वासना की अवस्थ में इस केंद्र को उघाड़ना आसान है।

इसीलिए तंत्र वासना के विरोध में नहीं है। वह कहता है: वासना में उतरो, लेकिन उस केंद्र को स्मरण रखो जो शांत है। तंत्र कहता है कि इस प्रयोग के लिए कामवासना का भी उपयोग किया जा सकता है। काम-कृत्य में उतरो लेकिन अनुद्विग्न रहो, शांत रहो। और साक्षी रहो। गहरे में दृष्टा बने रहो। जो भी हो रहा है वह परिधि पर हो रहा है और तुम केवल देखने वाले हो, दर्शक हो।

वह विधि बहुत उपयोगी हो सकती है, और इससे तुम्हें बहुत लाभ हो सकता है। लेकिन यह कठिन होगा। क्योंकि जब तुम अशांत होते हो तो तुम सब कुछ भूल जाते हो। तुम यह भूल जाते हो कि मुझे ध्यान करना है। तो फिर इसे इस भांति प्रयोग करो। उस क्षण के लिए मत रुको जब तुम्हें क्रोध होता है। उस क्षण के लिए मत रुको। अपना कमरा बंद करो और क्रोध के किसी अतीत अनुभव को स्मरण करो जिसमें तुम पागल ही हो गए थे। उसे स्मरण करो और फिर से उसका अभिनय करो।

यह तुम्हारे लिए सरल होगा। उस अनुभव को फिर से अभिनीत करो, उसे फिर से जाओ। शायद तुम्हें पता न हो कि मन टेप-रिकार्डिंग यंत्र जैसा है। अब तो वैज्ञानिक कहते है, अब तो यह वैज्ञानिक तथ्य है कि अगर तुम्हारे स्मृति केंद्रों को इलेक्ट्रोड्स से छुआ जाए तो वे केंद्र फिर से संग्रहीत अनुभवों को दोहराने लगते है। उदाहरण के लिए तुमने कभी क्रोध किया और वह घटना तुम्हारे मन में टेप-रिकार्डर पर रिकार्ड है; ठीक उसी अनुक्रम में वह रिकार्ड है जिस अनुक्रम में वह घटित हुई थी। अगर उसे इलेक्ट्रोड्स से छूओगे तो वह घटना पुन: जीवंत होकर दोहराने लगेगी। तुम्हें वही-वहीं भाव फिर से होंगे जो क्रोध करते समय हुए थे। तुम्हारी आंखे लाल हाँ जाएगी। तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा। ज्वरग्रस्त हो जाएगा। पूरी कहानी फिर दोहरेगी। और ज्यों ही इलेक्ट्रोड को वहां से हटाओगे, नाटक बंद हो जायेगा। पूरी कहानी फिर दोहरेगी। यदि तुम उसे फिर ऊर्जा देते हो, वह फिर बिलकुल शुरू से चालू हो जाता है।

अब वे कहते है कि मन एक रिकार्डिंग मशीन है और तुम किसी भी अनुभव को दोहरा सकते हो।

लेकिन स्मरण ही मत करो, उसे फिर से जीओं। अनुभव को फिर जीना शुरू करो और मन उसे पकड़ लेगा। वह घटना वापस लौट आयेगी। और तुम उसे फिर जीओगे। और इसे पुन: जीते हुए अनुद्विग्न रहो, शांत रहो। अतीत से शुरू करो। और यह सरल है। क्योंकि अब यह नाटक है। यह यथार्थ स्थिति नहीं है। और अगर तुम यह करने में समर्थ हो गए तो जब सच ही क्रोध की स्थित पैदा होगी। तुम उसे भी कर सकोगे। और यह प्रत्येक कामना के साथ किया जा सकता है। प्रत्येक कामना के साथ किया जाना चाहिए।

अतीत के अनुभवों को फिर से जीना बड़े काम का है। हम सब के मन में घाव है; ऐसे घाव है जो अभी भी हरे है। अगर तुम उन्हें फिर से जी लोगे तो तुम निर्भार हो जाओगे। अगर तुम अपने अतीत में लोट सके और अधूरे अनुभवों को जी सके तो तुम अपने अतीत के बोझ से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारा मन ताजा हो जाएगा। धूल झड़ जायेगी।

अपने अतीत में से कोई अनुभव स्मरण करो जो तुम्हारे देखे अधूरा पडा है। तुम किसी की हत्या करना चाहते थे। तुम किसी को प्रेम करना चाहते थे। तुम यह या वह करना चाहते थे। लेकिन वे सारे काम अपूर्ण रह गए अधूरे रह गये। ओ वह अधूरी चीज तुम्हारे मन के आकाश में बादल की भांति मँडराती रहती है। वह तुम्हें और तुम्हारे कृत्यों को सदा प्रभावित करती रहती है। उस बादल को विसर्जित करना होगा। तो उसके काल पथ को पकड़कर मन में पीछे लोटों और उन कामनाओं को फिर से जीओं जो अधूरी रह गई है। उन घावों को फिर से जीओं जो अभी भी हरे है। वे घाव भर जाएंगे। तुम स्वस्थ हो जाओगे। और इस प्रयोग के द्वारा तुम्हें एक झलक मिलेगी। कि कैसे किसी अशांत स्थिति में शांत रहा जाए।

''तीव्र कामना की मनोदशा में अनुद्विग्न करो।''

गुरजिएफ ने इस विधि का खूब प्रयोग किया है। वह इसके लिए परिस्थितियां निर्मित करता था। लेकिन परिस्थितियां निर्मित करने के लिए समूह जरूरी है। आश्रम जरूरी है। तुम अकेले यह नहीं कर सकते। फाउंटेन ब्लू में गुरजिएफ ने एक आश्रम बनाया था और वह बड़ा कुशल गुरु था जो जानता था कि स्थिति कैसे निर्मित की जाती है।

तुम किसी कमरे में प्रवेश करते हो जहां एक समूह पहले से बैठा है। तुम कमरे में प्रवेश करते हो और तभी कुछ किया जाता है। जिससे तुम क्रोधित हो जाते हो। और वह चीज इस स्वाभाविक ढंग से की जाती है कि तुम्हें कभी कल्पना भी नहीं होती कि

यह परिस्थिति तुम्हारे लिए निर्मित की जा रही है। यह एक उपाय था। कोई व्यक्ति कुछ कहकर तुम्हें अपमानित कर देता है। और तुम अशांत हो जाते हो। और फिर हर कोई उस अशांति को बढ़ावा देता है। और तुम पागल हो जाते हो। और जब तुम ठीक विस्फोट के बिंदू पर पहुंचते हो तो गुरूजिएफ चिल्लाकर कहता है: स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो।

ऐसी परिस्थिति निर्मित की जा सकती है। लेकिन केवल वहीं जहां अनेक लोग अपने ऊपर काम कर रहे हो। और जब गुरूजिएफ चिल्लाकर कहता कि स्मरण करो और अनुद्विग्न रहो; तो तुम जान जाते हो कि यह परिस्थिति पहले से तैयार कि गई थी। लेकि अब तुम्हारा उद्विग्न, तुम्हारी अशांति इतनी शीध्रता से, इतनी जल्दी मिटने नहीं वाली है। इस अशांति की जड़ें तुम्हारे शरीर में है। तुम्हारी ग्रंथियों ने तुम्हारे रक्त में जहर छोड़ दिया है। तुम्हारा शरीर उससे प्रभावित है। क्रोध इतनी शीध्रता से नहीं जाने वाला है। अब जबकि तुम्हें पता हो गया है कि मुझे धोखा दिया गया है। कि किसी ने सच ही मुझे अपमानित नहीं किया है। तो भी तुम कुछ नहीं कर सकते। क्रोध जहां का तहां है; तुम्हारे शरीर क्रोध की स्थिति में है।

लेकिन एक बात होती है। कि अचानक तुम्हारा ज्वर भीतर शांत होने लगता है। क्रोध अब सिर्फ शरीर पर परिधि पर है। केंद्र पर तुम अचानक शीतल होने लगते हो। और अब तुम जानते हो कि मेरे भीतर एक बिंदू है जो अनुद्विग्न है, शांत है। और तुम हंसने लगते हो। अभी भी तुम्हारी आंखें क्रोध से लाल है, तुम्हारा चेहरा पशुवत हिंसक बना हुआ है। लेकिन तुम हंसने लगते हो। अब तुम्हें दो चीजें पता है; एक अनुद्विग्न केंद्र और दूसरी उद्विग्न परिधि।

तुम एक दूसरे के लिए सहयोगी हो सकते हो। तुम्हारा परिवार ही आश्रम बन सकता है; तुम एक दूसरे की मदद कर सकते हो। मित्र अपने परिवार से बात करके तय कर सकते हो कि पिता के लिए या मां के लिए एक परिस्थिति पैदा की जाए; और पूरा परिवार उस परिस्थिति के पैदा करने में हाथ बँटाता है। जब मां या पिता पूरी तरह विक्षिप्त हो जाते है तब सब हंसने लगते है। और कहते है: बिलकुल अनुद्विग्न रहो।

तुम परस्पर एक दूसरे की मदद कर सकते हो।

और यह अनुभव बहुत अद्भुत है। जब तुम्हें किसी उतेजित परिस्थिति के भीतर एक शीतल केंद्र का पता चल जाए तो तुम उसे भूल नहीं सकते। और तब तुम किसी भी तरह की अशांत परिस्थिति में उसे स्मरण कर सकते हो, उसे पुन: उपलब्ध कर सकते हो।

पशिचम में अब एक विधि का, चिकित्सा विधि का प्रयोग हो रहा है। जिसे वे साइकोड्रामा कहते है। वह सहयोगी है और इसी तरह की विधियों पर आधारित है। इस साइकोड्रामा में तुम एक अभिनय करते हो, एक खेल खेलते हो। शुरू में तो वह खेल ही है; लेकिन देर अबेर तुम उसके वशीभूत हो जाते हो। और जब तुम वशीभूत होते हो, आविष्ट होते हो तो तुम्हारा मन सक्रिय हो जाता है। क्योंकि तुम्हारे शरीर और मन स्वचलित ढंग से काम करते है। वे स्वचलित व्यवहार करते है।

तो साइकोड्रामा में व्यक्ति क्रोध की स्थिति में सचमुच क्रोधित हो जाता है। तुम सोच सकते हो कि वह अभिनय कर रहा है। लेकिन ऐसी बात नहीं है। संभव है कि वह सच में ही क्रोधित हो गया हो; केवल अभिनय ही न कर रहा हो। वह कामना के वश में है, उद्वेग के वश में है, भाव के वश में है। और जब वह सच में उनके आविष्ट होता है तभी उसका अभिनय यर्थाथ मालूम पड़ता है।

तुम्हारे शरीर को नहीं पता हो सकता कि तुम अभिनय कर रहे हो या सच में कर रहे हो। तुमने अपने जीवन में कभी देखा होगा कि तुम क्रोध का केवल अभिनय कर रहे थे और तुम्हारे अनजाने ही क्रोध सच बन गया। या कि तुम उतेजित नहीं थे, सिर्फ पत्नी या प्रेमिका के साथ खेल कर रहे थे। कि अचानक और अनजाने सारा खेल सच हो गया। शरीर उसे पकड़ लेता है।

और शरीर को धोखा दिया जा सकता है। शरीर नहीं जान सकता, विशेषकर कामवासना के प्रसंग में कि वह सच है या अभिनय। तुम कल्पना भी करते हो तो शरीर सोचता है कि वह सच है।

काम केंद्र शरीर का सबसे अधिक कल्पनात्मक केंद्र है। सिर्फ कल्पना से तुम काम के शिखर अनुभव को आर्गाज्म को उपलब्ध हो सकते हो। शरीर नहीं जान सकता कि क्या सच है और क्या झूठ। जब तुम कुछ करने लगते हो तो शरीर सोचता है कि यह सच ओर वह वैसा व्यवहार करने लगता है। साइकोड्रामा ऐसी विधियों पर आधारित है। तुम क्रोधित नहीं हो, सिर्फ क्रोध का अभिनय कर रहे हो। और फिर उससे आविष्ट हो जाते हो।

लेकिन साइकोड्रामा सुंदर है। क्योंकि तुम जानते हो कि मैं महज अभिनय कर रहा हूं। और तब परिधि पर क्रोध यथार्थ हो जाता है और ठीक उसके पीछे तुम छिपकर उसका निरीक्षण कर रहे होते हो। तुम जानते हो कि मैं उद्विग्न नहीं हूं। लेकिन क्रोध है, उद्वेग है, अशांति है। यह दो ऊर्जाओं का युगपत काम करने का अनुभव तुम्हें उनके अतिक्रमण में ले जाता है। और फिर असली क्रोध में भी तुम उसे अनुभव कर सकते हो। जब तुमने जान लिया कि उसे कैसे अनुभव किया जाए तुम वास्तविक स्थितियों में भी अनुभव कर सकते हो।

इस विधि का प्रयोग करो; यह तुम्हारे समग्र जीवन को बदल देगी। और जब तुमने अनुद्विग्न रहना सीख लिया तो संसार तुम्हारे लिए दुःख न रहा। तब कुछ भी तुम्हें भ्रांत नहीं कर सकता है। तब कुछ भी तुम्हें सच में पीड़ित नहीं कर सकता। अब तुम्हारे लिए कोई दुःख न रहा।

और तब तुम एक और काम कर सकत हो। गुरजिएफ यह करता था। वह किसी भी क्षण अपना चेहरा, अपनी मुख मुद्रा बदल सकता था। वह हंस रहा है, मुस्कुरा रहा है। तुम्हारे साथ बैठकर प्रसन्न है। और अचानक वह बिना किसी कारण के ही क्रोधित हो जाएगा। और कहते है कि हव इस कला में इतना निष्णात हो गया था कि वह एक साथ अपने आधे चेहरे से क्रोध और दूसरे आधे चेहरे से मुस्कुराहट प्रकट कर सकता था। अगर उनके दोनों चेहरे के आस पास व्यक्ति बैठे हो तो वह उसे अलग-अलग ही रूप में देखेंगे। एक व्यक्ति कहेगा कि गुरजिएफ कितना सुंदर आदमी है। और दूसरा व्यक्ति कहेगा कि वह बहुत खराब है। वह एक साथ एक को हंसकर देखता था और दूसरे को गुस्से से।

एक बार तुम अपने केंद्र को परिधि से पूरी तरह पृथक करने की विधि का अनुभव कर लो। दोनों अतियां वहां है—विपरीत अतियां। एक बार तुम्हें इन अतियों को बोध हो जाए तो पहली दफा तुम अपने मालिक हुए। अन्यथा दूसरे मालिक है। तुम खुद गुलाम हो। तुम्हारी पत्नी जानती है तुम्हारा बाप जानता है। तुम्हारे बेटे जानते है। तुम्हारे दोस्त जानते है। कि तुम्हें कब हिलाया जा सकता है। तुम्हें कैसे अंशत किया जा सकता है, तुम्हें कैसे खुश किया जा सकता है।

और जब दूसरा तुम्हें सुखी और दुःखी कर सकता है तो तुम मालिक नहीं हो सकते। तुम गुलाम ही हो। कुंजी दूसरे के हाथ में है; बस उसकी एक भाव भंगिमा तुम्हें दुःखी बना सकती है; उसकी एक मुस्कुराहट तुम्हें सुख से भर सकती है। तो तुम दूसरे की मर्जी पर हो; दूसरा तुम्हारे साथ कुछ भी कर सकता है।

और अगर यही स्थिति है तो तुम्हारी सब प्रतिक्रियाएँ बसा प्रतिक्रियाएँ है। उन्हें क्रियाएं नहीं कहा जा सकता है। तुम सिर्फ प्रतिक्रियाँ करते हो, क्रिया नहीं। कोई तुम्हारा अपमान करता है और तुम क्रोधित हो जाते हो। कोई तुम्हारी प्रशंसा करता है और तुम मुस्कुराने लगते हो। फूकर कुप्पा हो जाते हो। तो यह प्रतिक्रिया है, क्रिया नहीं।

बुद्ध एक गांव से गुजर रहे थे। कुछ लोग उनके पास इकट्ठे हो गए; वे सब उनके विरोध में थे। उन्होंने बुद्ध का अपमान किया, उन्हें गालियां दीं। बुद्ध ने सब सुना। और फिर कहा; मुझे समय पर दूसरे गांव पहुंचना है। तो क्या मैं अब आगे जा सकता हूं।

अगर तुमने वह सब कह लिया जा कहने वाले थे। अगर बात खत्म हो गई तो में जाऊं। और यदि कुछ कहने को शेष रह गया हो तो मैं लोटते हुए यहां रूकुंगा, तब तुम आ जाना और कह देना।

वे लोग तो चकित रह गए। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया1 वे तो उनका अपमान कर रहे थे। उन्हें गालियां दे रहे थे। तो उन्होंने कहा कि हमें कुछ कहना नहीं है। हम तो बस आपका अपमान कर रहे है। आपको गालियां दे रहे है।

बुद्ध ने कहा: तुम वह कर सकते हो। लेकिन यदि तुम्हें मेरी प्रतिक्रिया की अपेक्षा है तो तुम देरी करके आए। दस वर्ष पूर्व तुम अगर ये शब्द लेकर आए होते तो मैं प्रतिक्रिया करता। लेकिन अब में क्रिया करना सीख गया हूं। मैं अब अपना मालिक हो गया हूं। अब तुम मुझे कुछ करने को मजबूर नहीं कर सकते हो। तुम लौट जाओ। तुम अब मुझे विचलित नहीं कर सकते हो। मुझे अब कुछ भी अशांत नहीं कर सकता है। मैनें अपने केंद्र को जान लिया है।

केंद्र का यह ज्ञान या केंद्र में प्रतिष्ठित होना तुम्हें अपना मालिक बना देता है। अन्यथा तुम गुलाम हो। एक ही मालिक के नहीं, अनेक मालिकों के गुलाम। तब हर कोई तुम्हारा मालिक है, और तुम सारे जगत के गुलाम हो। निश्चित ही तुम पीड़ा में, दुःख में रहोगे। इतने मालिक और वे इतनी दिशाओं में तुम्हें खिंचेंगी। कि तुम अखंड न रह सकोगे। एक न रह सकोगे। और इतने आयामों में खींचे जाने के कारण तुम संताप में रहोगे। वही व्यक्ति संताप का अतिक्रमण कर सकता है जो अपना स्वामी है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—58 (ओशो)

साक्षित्व की दूसरी विधि–

''यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है।..........शिव

''यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।''
यह सारा संसार ठीक एक नाटक के समान है, इसलिए इसे गंभीरता से मत लो। गंभीरता तुम्हें उपद्रव में डाल देगी। तुम मुसीबत में पड़ोगे। इसे गंभीरता से मत लो। कुछ गंभीर नहीं है। सारा संसार एक नाटक मात्र है।

अगर तुम सारे जगत को नाटक की तरह देख सको तो तुम अपनी मौलिक चेतना को पा लोगे। उस पर धूल जमा हो जाती है। क्योंकि तुम अति गंभीर हो। यह गंभीरता ही समस्या पैदा करती है। और हम इतने गंभीर है कि नाटक देखते हुए भी हम धूल जमा करते रहते है। किसी सिनेमाघर में जाओ और दर्शकों को देखो। फिल्म को मत देखो, फिल्म को भूल जाओ पर्दे की तरफ मत देखो, हाल में जो दर्शक है उन्हें देखो। कोई रो रहा होगा। कोई हंस रहा होगा। किसी की कामवासना उत्तेजित हो रही होगी। सिर्फ लोगो को देखो। वे क्या कर रहे है। उन्हें क्या हो रहा है। पर्दे पर छाया-चित्रों के सिवाय कुछ भी नहीं है—धूप छांव का खेल है। पर्दा खाली है। लेकिन वे उत्तेजित क्यों हो रहे है?
वे हंस रहे है, वे रो रहे है। चित्र मात्र चित्र नहीं है; फिल्म मात्र फिल्म नहीं है। वे भूल गये है कि यह एक कहानी है। उन्होंने इसको गंभीरता से ले लिया है। चित्र जीवित हो उठा है, यर्थाथ हो गया है।

और यही चीज सर्वत्र घट रही है। यह सिनेमाघरों तक ही सीमित नहीं है। अपने चारों और के जीवन को तो देखो; क्या है? इस धरती पर असंख्य लोग रह चूके है। जहां तुम बैठे हो वहां कम सक कम दस लाशों की कब्र है। और वे लोग भी तुम्हारे जैसे ही गंभीर थे। वे अब कहां है? उनका जीवन कहां चला गया? उनकी समस्याएं कहा गई? वे लड़ते थे, एक-एक इंच जमीन के लिए, वह जमीन पड़ी रह गई और वे लोग कही नहीं है।

और मैं यह नहीं कह रहा हूं कि उनकी समस्याएं-समस्याएं नहीं थी। वे थीं; जैसे तुम्हारी समस्याएं-समस्याएं है। लेकिन कहां गई वह समस्याएं? और अगर किसी दिन पूरी मनुष्यता खो जाए तो भी धरती रहेगी। वृक्ष रहेगें । नदिया रहेगी। और सूरज इसी तरह से उगेगा। और पृथ्वी को मनुष्य की गैर-मौजूदगी पर न कोई खेद होगा। न आश्चर्य।

जरा इस विस्तार पर अपनी निगाह को दौडाओं। पीछे देखो, आगे देखो; सभी आयामों को देखा और देखो कि तुम क्या हो। तुम्हारा जीवन क्या है? सब कुछ एक बड़ा स्वप्न जैसा मालूम पड़ेगा। और हर चीज जिसे तुम इस क्षण इतनी गंभीरता से ले रहे हो, अगले क्षण ही व्यर्थ हो जाती है। तुम्हें उसकी याद भी नहीं रहती।

अपने प्रथम प्रेम को स्मरण करो। कितनी गंभीर बात थी वह, जैसे कि जीवन ही उस पर निर्भर करता है। और अब वह तुम्हें स्मरण भी नहीं है। बिलकुल भूल गया है। वैसे ही वे चीजें भी भूल जाएंगी जिन पर तुम आज अपने जीवन को निर्भर समझते हो।

जीवन एक प्रवाह है, वहां कुछ भी नहीं टिकता है। जीवन भागती फिल्म की भांति है। जिसमें हर चीज दूसरी चीज में बदल रहा है। लेकिन इस क्षण वह तुम्हें बहुत गंभीर बहुत महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है। और तुम उद्‌विग्न हो जाते हो।

वह विधि कहती है: ''यह तथा कथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।''

भारत में हम इस जगत को परमात्मा की सृष्टि नहीं कहते, हम उसे लीला कहते है। यह लीला की धारणा बहुत सुंदर है। सृष्टि की धारणा गंभीर मालूम पड़ती है। ईसाई और यहूदी ईश्वर बहुत गंभीर है। एक अवज्ञा के लिए आदम को अदन के बग़ीचे से निकाल दिया गया। वह हमारा पिता था; और हम सब उसके कारण दुःख में पड़े है। ईश्वर बहुत गंभीर मालूम पड़ता है। उसकी अवज्ञा नहीं होनी चाहिए। और अगर अवज्ञा होगी तो वह बदला लेगा। और उसका प्रतिशोध अभी तक चला आ रहा है। प्रतिशोध के मुकाबले में पाप इतना बड़ा नहीं लगता है।

सच तो यह है कि आदम ने परमात्मा की बेवकूफी के चलते यह पाप किया। परम पिता परमात्मा ने आदम से कहा कि ज्ञान के वृक्ष के पास मत जाना और उसका फल मत खाना। यह निषध ही निमंत्रण बन गया। वह मनोवैज्ञानिक है। उसे बड़े बग़ीचे में केवल ज्ञान का वृक्ष आकर्षण हो गया। क्योंकि वह निषिद्ध था। कोई भी मनोवैज्ञानिक कहेगा कि भूल परमात्मा की थी। अगर उस वृक्ष के फल को नहीं खाने देना था तो उसकी चर्चा ही नहीं करना थी। तब आदम उस वृक्ष तक कभी नहीं जाता और मनुष्यता अभी भी उसी बग़ीचे में रहती होती। लेकिन इस वचन ने, इस आज्ञा ने कि 'मत खाना' सारा उपद्रव खड़ा कर दिया। इस निषेध ने उपद्रव पैदा किया। क्योंकि आदम ने अवज्ञा की, वह स्वर्ग से निकाल बहार किया गया। और प्रतिशोध कितना बड़ा है।

ईसाई कहते है कि जीसस हमें हमारे पाप से उद्धार दिलाने के लिए, हमें आदम के किए पाप से मुक्त करने लिए सूली पर चढ़ गये। तो ईसाइयों की इतिहास की पूरी धारणा दो व्यक्तियों पर निर्भर है। आदम और जीसस पर। आदम को क्षमा दिलाने के लिए सब यंत्रणा झेली। लेकिन ऐसा नहीं लगता कि ईश्वर ने अब भी क्षमादान दिया हो। जीसस को तो सूली लग गई। लेकिन मनुष्यता अब भी उसी भांति दुःख में है।

पिता के रूप में ईश्वर की धारणा ही गंभीर है, कुरूप है। ईश्वर की भारतीय धारण स्त्रष्टा की नहीं, लीलाधर की है। वह गंभीर नहीं है। वह खेल-खेल रहा है। नियम नहीं है। लेकिन वह खेल के नियम है। उनके संबंध में गंभीर होने की जरूरत नहीं है। कुछ पाप नहीं है। भूल भर है। और तुम भूल के कारण कष्ट में पड़ते हो। परमात्मा तुम्हें दंडित नहीं कर रहा है। लीला की पूरी धारणा जीवन को एक नाटकीय रंग दे देती है। जीवन एक लंबा नाटक हो जाता है। और यह विधि इसी लीला की धारणा पर आधारित है।

''यह तथाकथित जगत जादूगरी जैसा या चित्र-कृति जैसा भासता है। सुखी होने के लिए उसे वैसा ही देखो।''

अगर तुम दुःखी हो तो इसलिए कि तुमने जगत को बहुत गंभीरता से लिया है। और सुखी होने का कोई उपाय मत खोजों, सिर्फ अपनी दृष्टि को बदलों। गंभीर चित से तुम सुखी नहीं हो सकते। उत्सव मनाने वाला चित ही सुखी हो सकता है। इस पूरे जीवन को एक नाटक, एक कहानी की तरह लो ऐसा ही है। और अगर तुम उसे इस भांति ले सके तो तुम दुःखी नहीं होगे। दुःख अति गंभीरता का परिणाम है।

सात दिन के लिए यह प्रयोग करो। सात दिन तक एक ही चीज स्मरण रखो। कि सारा जगत नाटक है। और तुम वही नहीं रहोगे। जो अभी हो। सिर्फ सात दिन के लिए प्रयोग करो। तुम्हारा कुछ खो नहीं जाएगा। क्योंकि तुम्हारे पास खोने के लिए भी तो कुछ चाहिए। तुम प्रयोग कर सकते हो। सात दिन के लिए सब कुछ नाटक समझो। तमाशा समझो।

इन सात दिनों में तुम्हें तुम्हारे बुद्ध स्वभाव की, तुम्हारी आंतरिक पवित्रता की अनेक झलकें मिलेंगी। और इस झलक के मिलने के बाद तुम फिर वही नहीं रहोगे। जो हो। तब तुम सुखी रहोगे। और तुम सोच भी नहीं सकते कि यह सुख किस तरह का होगा। क्योंकि तुमने कोई सुख नहीं जाना। तुमने सिर्फ दुःख की कम-अधिक मात्राएं जानी है। कभी तुम ज्यादा दुःखी थे, और कभी कम। तुम नहीं जानते हो कि सुख क्या है। तुम उसे नहीं जान सकते हो। जब तुम्हारी जगत की धारणा ऐसी है कि तुम उसे बहुत गंभीरता से लेते हो तो तुम नहीं जान सकते कि सुख क्या हे। सुख भी तभी घटित होता है। जब तुम्हारी यह धारणा दृढ़ होती है। कि यह जगत केवल एक लीला है।

इस विधि को प्रयोग में लाओ। और हर चीज को उत्सव की तरह लो, हर चीज को उत्सव मनाने के भाव से करो। ऐसा समझो कि यह नाटक है। कोई असली चीज नहीं है। अगर अपने संबंधों को खेल बना लो बेशक खेल के नियम है; खेल के लिए नियम जरूरी है। विवाह नियम है। तलाक नियम है। उनके बारे में गंभीर मत होओ। वे नियम है और एक नियम को जन्म देता है। लेकिन उन्हें गंभीरता से मत लो फिर देखो कि कैसे तत्काल तुम्हारे जीवन का गुणधर्म बदल जाता है।

आज रात अपने घर जाओ और अपनी पत्नी या पति या बच्चों के साथ ऐसे व्यवहार करो जैसे कि तुम किसी नाटक में भूमिका निभा रहे हो। और फिर उसका सौंदर्य देखो अगर। तुम भूमिका निभा रहे हो तो तुम उसमे कुशल होने की कोशिश करोगे। लेकिन उद्विग्न नहीं होगे। उसी कोई जरूरत नहीं है। तुम अपनी भूमिका निभा कर सोने चले जाओगे। लेकिन स्मरण रहे कि यह अभिनय है। और सात दिन तक इसका सतत ख्याल रखे। तब तुम्हें सुख उपलब्ध होगा। और जब तुम जान लोगे कि क्या सुख है तो फिर दुःख में गिरने की जरूरत नहीं रही। क्योंकि यह तुम्हारा ही चुनाव है।

तुम दुःखी हो, क्योंकि तुमने जीवन के प्रति गलत दृष्टि चूनी है। तुम सुखी हो सकते हो। अगर दृष्टि सम्यक हो जाए। बुद्ध सम्यक दृष्टि को बहुत महत्व देते है। वे सम्यक दृष्टि को ही आधार बनाते है। बुनियाद बनाते है। सम्यक दृष्टि क्या है? उसकी कसौटी क्या है ?

मेरे देखे कसौटी यह है: ''जो दृष्टि सुखी करे वह सम्यक दृष्टि है। और जो दृष्टि तुम्हें दुखी पीडित बनाए वह असम्यक दृष्टि है। और कसौटी बाह्य नहीं है। आंतरिक है। और कसौटी तुम्हारा सुख है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—59 (ओशो)

साक्षित्व की तीसरी विधि–

'प्रिय, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थित करो।''

''प्रिय, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थित करो।''
प्रत्येक चीज ध्रुवीय है। अपने विपरीत के साथ है। और मन एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर डोलता रहता है। कभी मध्य में नहीं ठहरता।

क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न सुखी हो और न दुखी? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न स्वास्थ थे न बीमार? क्या तुमने कोई ऐसा क्षण जाना है जब तुम न यह थे न वह। जब तुम ठीक माध्य में थे, ठीक बीच में थे?

मन अविलंब एक अति से दूसरी अति पर चला जाता है। अगर तुम सुखी हो तो देर-अबेर तुम दुःख की तरफ गति कर जाओगे। और शीध्र गति कर जाओगे। सुख विदा हो जाएगा। और तुम दुःख में हो जाओगे। अगर तुम्हें अभी अच्छा लग रहा है तो देर अबेर तुम्हें बुरा लगने लगेगा। और तुम बीच में कहीं नहीं रुकते, इस छोर से सीधे उस छोर पर चले जाते हो। घड़ी के पैंडुलम की तरह तुम बांए से दाएं और बाएं डोलते रहते हो। और पैंडुलम डोलता ही रहता है।

एक गुहम नियम है। जब पैंडुलम बायी और जाता है तो लगता तो है कि बायी और जा रहा है। लेकिन सच में तब वह दायी और जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। और वैसे ही जब वह दायी और जा रहा है तो बायी और जाने के लिए शक्ति जुटा रहा है। तो जैसा दिखाई पड़ता है वैसा ही नहीं है। जब तुम सुखी हो रहे हो तो तुम दुःखी होने के लिए शक्ति जुटा रहे हो। और जब तुम्हें हंसते देखता हूं तो जानता हूं कि रोने का क्षण दूर नहीं है।

भारत के गांवों में माताएं यह जानती है। जब कोई बच्चा बहुत हंसने लगता है तो वे कहती है कि उसका हंसना बंद करो, अन्यथा वह रोएगा। वह होने ही वाला है। अगर कोई बच्चा बेहद खुश हो तो उसका अगला कदम दुःख में पड़ने ही वाला है। इसलिए माताएं उसे रोकती है, अन्यथा वह दुःखी होगा।

लेकिन यही नियम विपरीत ढंग से भी लागू होता है। और लोग यह नहीं जानते है। कोई बच्चा रोता हे तो तुम उसे रोने से रोकते हो तो तुम उसका रोना ही नहीं रोकते हो, तुम उसका लगता कदम भी रोक रहे हो। अब वह सुखी भी नहीं हो पाएगा। बच्चा जब रोता है तो उसे रोने दो। बच्चा जब रोता है तो उसे मदद दो कि और रोंए। जब तक उसका रोना समाप्त होगा। वह शक्ति जुटा लेगा। वह सुखी हो सकेगा।

अब मनोवैज्ञानिक कहते है कि जब बच्चा रोता-चीखता हो तो उसे रोको मत, उसे मनाओ मत, उसे बहलाओ मत। उसके ध्यान को रोने से हटाकर कहीं अन्यत्र ले जाने की कोशिश मत करो, उसे रोना बंद करने के लिए रिश्वत मत दो। कुछ मत करो; बस उसके पास मौन बैठे रहो और उसे रोने दो। चिल्लाने दो। तब वह आसानी से सुख की और गति कर पाएगा। अन्यथा न वह रो सकेगा। और न सुखी हो सकेगा।

हमारी यह स्थिति है। हम कुछ नहीं कर पाते है। हम हंसते है तो आधे दिल से और रोते है तो आधे दिल से। लेकिन यही मन का प्राकृतिक नियम है; वह एक छोर से दूसरे छोर पर गति करता रहता है। यह विधि इस प्राकृतिक नियम को बदलने के लिए है।

''प्रिये, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।''

किन्हीं भी ध्रुवों को, विपरीतताओं को चुनो और उनके मध्य में स्थित होने की चेष्टा करो। इस मध्य में होने के लिए तुम क्या करोगे। मध्य में कैसे होओगे?

एक बात कि जब दुख में होते हो तो क्या करते हो? जब दुःख आता है तो तुम उससे बचना चाहते हो। भागना चाहते हो। तुम दुःख नहीं चाहते। तुम उससे भागना चाहते हो। तुम्हारी चेष्टा रहती हे कि तुम उससे विपरीत को पा लो। सुख को पा लो। आनंद को पा लो। और जब सुख आता है तो तुम क्या करते हो? तुम चेष्टा करते हो कि सुख बना रहे। ताकि दुःख न आ जाए; तुम उससे चिपके रहना चाहते हो। तुम सुख को पकड़कर रखना चाहते हो और दुःख से बचना चाहते हो। यही स्वाभाविक दृष्टिकोण है, ढंग है।

अगर तुम इस प्राकृतिक नियम को बदलना चाहते हो, उसके पास जाना चाहते हो, तो जब दुःख आए तो उससे भागने की चेष्टा मत करो; उसके साथ रहो। उसको भोगो। ऐसा करके तुम उसकी पूरी प्राकृतिक व्यवस्था को अस्तव्यस्त कर दोगे।

तुम्हें सिरदर्द है; उसके साथ रहो। आंखें बंद कर लो और सरदर्द पर ध्यान करो, उसके साथ रहो। कुछ भी मत करो; बस साक्षी रहो। उससे भागने की चेष्टा मत करो। और जब सुख आए और तुम किसी क्षण विशेष रूप से आनंदित अनुभव करो तो उसे पकड़कर उससे चिपक मत जाओ। आंखें बंद कर लो और उसके साथ साक्षी हो जाओ।

सुख को पकड़ना और दुःख से भागना भूल भरे चित के स्वाभाविक गुण है। और अगर तुम साक्षी रह सको तो देर अबेर तुम मध्य को उपलब्ध हो जाओगे। प्राकृतिक नियम तो यही है कि एक से दूसरी अति पर आते-जाते रहो। अगर तुम साक्षी रह सके तो तुम मध्य में रह सकोगे।

बुद्ध ने इसी विधि के कारण अपने पूरे दर्शन को मज्झम निकाय—मध्य मार्ग कहा है। वे कहते है कि सदा मध्य में रहो; चाहे जो भी विपरीतताएं हों, तुम सदा मध्य में रहो। और साक्षी होने से मध्य में हुआ जा सकता है। जि क्षण तुम्हारा साक्षी खो जाता है तुम या तो आसक्त हो जाते हो या विरक्त। अगर तुम विरक्त हुए तो दूसरी अति पर चले जाओगे और आसक्त हुए तो इस अति पर बने रहने की चेष्टा करोगे। लेकिन तब तुम कभी मध्य में नहीं होगे। सिर्फ साक्षी बनो; न आकर्षित होओ और न विकर्षित ही।

सिरदर्द है तो उसे स्वीकार करो। वह तथ्य है। जैसे वृक्ष है, मकान है, रात है, वैसे ही सिरदर्द है। आँख बंद करो और उसे स्वीकार करो। उससे बचने की चेष्टा मत करो। वैसे ही तुम सुखी हो तो सुख के तथ्य को स्वीकार करो। उससे चिपके रहने की चेष्टा मत करो। और दुःखी होने का प्रयत्न भी मत करो; कोई भी प्रयेत्न मत करो। सुख आता है तो आने दो; दुःख आता है तो आने दो। तुम शिखर पर खड़े दृष्टा बने रहो। जो सिर्फ चीजों को देखता है। सुबह आती है। शाम आती है। फिर सूरज उगता है। और डूबता है। तारे है और अँधेरा है, फिर सूर्योदय—और तुम शिखर पर खड़े दृष्टा हो।

तुम कुछ कर नहीं सकते; तुम सिर्फ देखते रहते हो। सुबह आती है, इस तथ्य को तुम भलीभाँति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अब सांझ जाएगी। क्योंकि सांझ सुबह के पीछे-पीछे आती है। वैसे ही जब सांझ आती है। तो तुम उसे भी भलीभाँति देख लेते हो और तुम जानते हो कि अगर सुबह आएगी, क्योंकि सुबह सांझ के पीछे-पीछे आती है। जब दुःख है तो तुम उसके भी साक्षी हो। तुम जानते हो कि दुःख आया है, देर अबेर वह चला जाएगा। और उसका विपरीत ध्रुव आ जाएगा और जब सुख आता है। तो तुम जानते हो कि वह सदा नहीं रहेगा। दुःख कहीं पास ही छिपा होगा। आता ही होगा। तुम खुद द्रष्टा ही बने रहते हो।

अगर तुम आकर्षण और विकर्षण के बिना, लगाव और दुराव के बिना देखते रहे तो तुम मध्य में आ जाओगे। और जब पैंडुलम बीच में ठहर जाएगा। तो तुम पहली दफा देख सकोगे कि संसार क्या है। जब तक तुम दौड़ रहे हो, तुम नहीं जान सकते कि संसार क्या है। तुम्हारी दौड़ सब कुछ को भ्रांत कर देती है। धूमिल कर देती है। और जब दौड़ बंद होगी तो तुम संसार को देख सकोगे। तब तुम्हें पहली बार सत्य के दर्शन होंगे। अकंप मन ही जानता है कि सत्य क्या है। कंपित मन सत्य को नहीं जान सकता।

तुम्हारा मन ठीक कैमरे की भांति है। अगर तुम चलते हुए फोटो लेते हो तो जो भी चित्र बनेगा वह धुंधला-धुंधला ही होगा। असपष्ट होगा। विकृत होगा। कैमरे को हिलना नहीं चाहिए। कैमरा हिलेगा तो चित्र बिगड़ेगा ही।

तुम्हारी चेतना एक ध्रुव से दूसरे ध्रुव पर गति करती रहती है। और इस भांति तुम जो सत्य जानते हो वह भ्रांति है, दुख स्वप्न है। तुम नहीं जानते हो कि क्या-क्या है। सब भ्रम है, सब धुआं-धुंआ है। सत्य से तुम वंचित रह जाते हो। सत्य को तुम तब जानते हो जब तुम मध्य में ठहर जाता है। और तुम्हारी चेतना वर्तमान के क्षण में होती है। केंद्रित होती है। अचल और अकंप चित ही सत्य को जानता है।

''प्रिये, न सुख में और न दुःख में, बल्कि दोनों के मध्य में अवधान को स्थिर करो।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—60 (ओशो)

साक्षित्व की चौथी विधि–

''विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है

''विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।''
यह विधि बहुत सहयोगी हो सकती है। जब तुम क्रोधित होते हो तो तुम सदा अपने क्रोध को उचित मानते हो। लेकिन जब कोई दूसरा क्रोधित होता है तो तुम उसकी सदा आलोचना करते हो। तुम्हारा पागलपन स्वाभाविक है; दूसरे का पागलपन विकृति है। तुम जो भी कहते हो वह शुभ है—शुभ नहीं तो कम से कम उसे करना जरूरी था। तुम अपने कृत्य के लिए सदा कुछ औचित्य खोज लेते हो, उसे तर्कसम्मत बना लेते हो। और जब वहीं काम दूसरा करता है तो वही औचित्य, वहीं तर्क लागू नहीं होता है।
तुम क्रोध करते हो तो कहते हो कि दूसरे के हित के लिए यह जरूरी था; अगर मैं क्रोध न करता तो दूसरा बर्बाद ही हो जाता। वह किसी बुरी आदत का शिकार हो जाता है, इसलिए उसे दंड देना जरूरी था; यह उसके भले के लिए था। लेकिन जब दूसरा तुम पर क्रोध करता है तो वही तर्क सारणी उस पर नहीं लागू की जाती है। दूसरा पागल है, दूसरा दुष्ट है।

हमारे मापदंड सदा दोहरे है; अपने लिए एक मापदंड है और शेष सबके लिए दूसरे मापदंड है। यह दोहरे मापदंड वाला मन सदा दुःख में रहेगा। यह मन ईमानदार नहीं है। सम्यक नहीं है। और जब तक तुम्हारा मन, ईमानदार नहीं होता, तुम्हें सत्य की झलक नहीं मिल सकती है। और एक ईमानदार मन ही दोहरे मापदंड से मुक्त हो सकता है।

जीसस कहते है: दूसरों के साथ वह व्यवहार मर करो। जो व्यवहार तुम न चाहोगे कि तुम्हारे साथ किया जाए।

यह विधि एक मापदंड की धारणा पर आधारित है।

तुम अपवाद नहीं हो; यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति सोचता है कि मैं अपवाद हूं। अगर तुम सोचते हो कि मैं अपवाद हूं तो भलीभाँति जान लो कि ऐसे ही हर सामान्य मन सोचता है। यह जानना कि मैं सामान्य हूं जगत में सबसे असामान्य घटना है।

किसी न सुजुकी से पूछा कि तुम्हारे गुरु में असामान्य क्या था? सुजुकी स्वयं झेन गुरु था। सुजुकी ने कहा कि उनके संबंध में मैं एक चीज कभी न भूलूंगा कि मैंने कभी ऐसा व्यक्ति नहीं देखा जो अपने को इतना सामान्य समझता हो। वे बिलकुल सामान्य थे और वही उनकी सबसे बड़ी असामान्यता थी। अन्यथा साधारण व्यक्ति भी सोचता है कि मैं असामान्य हूं, अपवाद हूं।

लेकिन कोई व्यक्ति असामान्य नहीं है। और तुम अगर यह जान लो तो तुम असामान्य हो जाते हो। हर आदमी दूसरे आदमी जैसा है। जो वासनाएं तुम्हारे भीतर चक्कर लगा रही है वे ही दूसरों के भीतर घूम रही है। लेकिन तुम अपनी कामवासना को प्रेम कहते हो और दूसरों के प्रेम को कामवासना कहते हो। तुम खुद जो भी करते हो, उसका बचाव करते हो तुम कहते हो कि वह शुभ काम है। इसलिए कहता हूं। और वही काम जब दूसरे करते है तो वह वही नहीं रहते, वह शुभ नहीं रहते।

और यह बसत व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है। जाति और राष्ट्र भी यही करते है। अगर भारत अपनी सेना बढ़ाता है तो वह सुरक्षा का प्रयत्न है और जब चीन अपनी सेना को मजबूत करता है तो वह आक्रमण की तैयारी हे। दुनिया की हर सरकार अपने सैन्य संस्थान को सुरक्षा संस्थान कहती है। तो फिर आक्रमण कौन करता है? जब सभी सुरक्षा में लगे है तो आक्रामक कौन है? अगर तुम इतिहास देखोगें तो तुम्हें कोई आक्रामक नहीं मिलेगा। हां, जो हार जाते है वह आक्रामक करार दे दिए जाते है। पराजित लोग सदा आक्रामक माने गए है। क्योंकि वे इतिहास नहीं लिख सकते है। इतिहास तो विजेता लिखते है।

अगर हिटलर विजयी हुआ होता तो इतिहास दूसरा होता। तब वह आक्रामक नहीं, संसार का रक्षक माना जाता। तब चर्चिल, रूजवेल्ट और उनके मित्र गण आक्रामक माने जाते। और कहा जाता कि उन्हें मिटा डालना अच्छा हुआ। लेकिन क्योंकि हिटलर हार गया। वह आक्रामक हो गया। तो न सिर्फ व्यक्ति, बल्कि जाति और राष्ट्र भी वही तर्क पेश करते है; अपने को औरों से भिन्न बताते है।

कोई भी भिन्न नहीं है। धार्मिक चित वह है जो जानता है कि प्रत्येक व्यक्ति समान है। इसलिए तुम जो तर्क अपने लिए खोज लेते हो वही दूसरों के लिए भी उपयोग करो। और अगर तुम दूसरों की आलोचना करते हो तो उसी आलोचना को अपने पर भी लागू करो। दोहरे मापदंड मत गढ़ो। एक मापदंड रखने से तुम पूरी तरह रूपांतरित हो जाओगे। एक मापदंड तुम्हें ईमानदार बनाएगा। और पहली दफा तुम सत्य को सीधा देखोगें जैसा वह है।

''विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।''

तुम उन्हें स्वीकार कर लो और वे रूपांतरित हो जाएंगी। लेकिन हम क्या कर रहे है? हम स्वीकार करते है कि विषय-वासना दूसरों में है। जो-जो गलत है वह दूसरों में है और जो-जो सही है वह तुम में है। तब तुम रूपांतरित कैसे होगे? तुम तो रूपांतरित हो ही। तुम सोचते हो कि मैं तो अच्छा ही हूं। दूसरे सब लोग बुरे है। रूपांतरण की जरूरत संसार को है। तुम्हें नहीं।

इसी दृष्टिकोण के कारण नेता, क्रांतियां और पैगंबर पैदा होते है। वे घर के मुँडेरों पर चढ़कर चिल्लाते है। कि दुनियां को बदलना है। कि इंकलाब लाना है। हम क्रांति पर क्रांति किए जाते है। और कुछ भी नहीं बदलता है। मनुष्य वही का वहीं है। दुनियां पुराने दुखों से ही ग्रस्त रहती है। चेहरे और नाम बदल जाते है; पर दूःख बना रहता है।

दुनिया को बदलने की बात नहीं है। तुम गलत हो। प्रश्न है कि तुम कैसे बदलों धार्मिक प्रश्न यह है कि मैं कैसे बदलूं? दूसरों को बदलने की बात राजनीति है। राजनीतिज्ञ सोचता है कि मैं तो बिलकुल ठीक हूं, कि मैं तो आदर्श हूं, जैसा कि सारी दुनियां को होना चाहिए। वह अपने को आदर्श मानता है। वह आदर्श पुरूष है। और उसका काम दुनिया को बदलना है।

धार्मिक व्यक्ति जो कु छ भी दूसरों से देखता है उसे अपने भीतर भी देखता है। अगर हिंसा है तो वह सोचता है कि यह हिंसा मुझमें है या नहीं। अगर लोभ है, अगर उसे कहीं लोभ दिखाई पड़ता है तो उसका पहला ख्याल यह होता है कि यह लोभ मुझमें है या नहीं। और जितना ही खोजता है वह पाता है कि मैं ही सब बुराई का स्त्रोत हूं। तब फिर प्रश्न उठता ही नहीं। कि संसार कैसे बदले। तब फिर प्रश्न यह है कि अपने को कैसे बदला जाए। और बदलाहट उसी क्षण लगती है। जब तुम एक मापदंड अपनाते हो। उसे अपनाते ही तुम बदलने लगते हो।

दूसरों की निंदा मत करो। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि अपनी निंदा करो। नहीं, बस दूसरों की निंदा मत करो। और अगर तुम दूसरों की निंदा करते हो तो तुम्हें उनके प्रति गहन करूणा का भा होगा। क्योंकि सब की समस्याएं समान है। अगर कोई पाप करता है—समाज की नजर में जो पाप है—तो तुम उसकी निंदा करने लगते हो। तुम यह नहीं सोचते हो कि तुम्हारे भीतर भी उस पाप के बीज पड़े है। अगर कोई हत्या करता है तो तुम उसकी निंदा करते हो।

लेकिन क्या तुमने कभी किसी की हत्या करने का विचार नहीं किया है? क्या उसका बीज, उसकी संभावना तुम्हारे भीतर भी नहीं छिपी है। जि आदमी ने हत्या की है वह एक क्षण पूर्व हत्यारा नहीं था। लेकिन उसका बीज उसमें था। वह बीज तुममें भी है। एक क्षण बाद कौन जानता है कि तुम भी हत्यारे हो सकते हो। उसकी निंदा मत करो। बल्कि स्वीकार करो। तब तुम्हें उसके प्रति गहन करूणा होगी। क्योंकि उसने जो कुछ किया है वह कोई भी कर सकता है। तुम भी कर सकते हो।

निंदा से मुक्त चित में करूणा होती है। निंदा रहित चित में गहन स्वीकार होता है। वह जानता है कि मनुष्यता ऐसी है, कि मैं भी ऐसा ही हूं, तब सारा जगत तुम्हारा प्रतिबिंब बन जाएगा; वह तुम्हारे लिए दर्पण का काम देगा। तब प्रत्येक चेहरा तुम्हारे लिए आईना होगा; तुम प्रत्येक चेहरे में अपने को ही देखोगें।

‘’विषय और वासना जैसे दूसरों में है वैसे ही मुझमें है। इस भांति स्वीकार करके उन्हें रूपांतरित होने दो।‘’

स्वीकार ही रूपांतरण बन जाता है। यह समझना कठिन है। क्योंकि हम सदा इनकार करते है और उसके बावजूद हम बिलकुल नहीं बदल पाते है। तुममें लोभ है, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को लोभी मानने को राज़ी नहीं है। तुम कामुक हो, लेकिन तुम उसे अस्वीकार करते हो। कोई भी अपने को कामुक मानने को राज़ी नहीं है। तुम क्रोधी हो, लेकिन तुम उसे इनकार कर देते हो। तुम एक मुखौटा ओढ़ लेते हो। और उसे उचित बताने की चेष्टा करते हो। तुम कभी नहीं सोचते कि मैं क्रोधी हूं।

लेकिन अस्वीकार से कभी कोई रूपांतरण नहीं होता। उससे चीजें दमित हो जाती है। लेकिन जो चीज दमित होती है वह और भी शक्तिशाली हो जाती है। वह तुम्हारी जड़ों तक पहुंच जाती है। तुम्हारे अचेतन में गहराई तक उतर जाती है। वहां से काम करने लगती है। और अचेतन के उस अंधेरे में वह वृति और भी शक्ति शाली हो जाती है। और अब तुम उसे और भी नहीं स्वीकार कर सकते, क्योंकि तुम्हें उसका बोध भी नहीं है।

स्वीकृति सबको ऊपर ले आती है। दमन करने की जरूरत नहीं है। तुम जानते हो कि मैं लोभी हूं। तुम जानते हो कि मैं क्रोधी हूं, तुम जानते हो कि मैं कामुक हूं। तुम उन वृतियां को बिना किसी निंदा के स्वाभाविक तथ्य की तरह स्वीकार कर लेते हो। उन्हें दमित करने की जरूरत नहीं है। वे वृतियां मन की सतह पर आ जाती है। और वहां से उन्हें बहुत आसानी से विसर्जित किया जा सकता है। गहरे अचेतन में उनका विसर्जन संभव नहीं है। और जब वे सतह पर होती है तो तुम उनके प्रति होश पूर्ण

होते हो; जब वे अचेतन में होती है तो तुम उनके प्रति बेहोश बने रहते हो। और उस रोग से ही मुक्ति संभव है जिसके प्रति तुम होश पूर्ण हो; जिसके प्रति तुम बेहोश हो उस रोग से मुक्त नहीं हो सकती।

प्रत्येक चीज को सतह पर ले आओ। अपनी मनुष्यता को स्वीकार करो; अपनी पशुता को स्वीकार करो। जो भी है उसे बिना किसी निंदा के स्वीकार करो। लोभ है; उसे अलोभ में बदलने की चेष्टा मत करो। तुम उसे नहीं बदल सकते हो। और अगर तुम उसे अलोभ बनाने की चेष्टा करोगे तो तुम उसका दमन करोगे। तुम्हारा अलोभ और कुछ नहीं, केवल दूसरे ढंग का लोभ है। अगर तुम लोभ को बदलने की कोशिश करोगे तो क्या करोगे? लोभी मन अलोभ के आदर्श के प्रति तभी आकर्षित होता है जब उसका कोई और लोभ उससे साधने वाला हो।

अगर कोई तुम्हें कहता है कि यदि तुम अपने सारे धन का त्याग कर दो तो तुम्हें परमात्मा के राज्य में प्रवेश मिल जाएगा। तो तुम सदा त्याग करने को भी तैयार हो जाओगे। अब एक नया लोभ संभव हो गया। यह सौदा है। तो लोभ को अलोभ नहीं बनाना है। लोभ का अतिक्रमण करना है। तुम उसे बदल नहीं सकते। तो लोभ को अलोभ मत बनाओ। तुम एक चीज को दूसरी चीज में बदल नहीं सकते हो। केवल सिर्फ सजग हो सकते हो। तुम सिर्फ स्वीकार कर सकते हो। लोभ को लोभ की तरह स्वीकार करो।

स्वीकार का यह अर्थ नहीं है कि उसे रूपांतरित करने की जरूरत नहीं है। स्वीकार का इतना ही अर्थ है कि तुम तथ्य को, स्वाभाविक तथ्य को स्वीकार करते हो; जैसा वह है वैसा ही स्वीकार करते हो। तब जीवन में यक जानकर गति करो कि लोभ है। तुम जो भी करो यह स्मरण रखकर करो कि लोभ है। यह बोध तुम्हें रूपांतरित कर देगा। यह रूपांतरित करता है। क्योंकि बोधपूर्वक तुम लोभी नहीं हो सकते हो। बोधपूर्वक तुम क्रोधी नहीं हो सकते। क्रोध के लिए, लोभ के लिए, हिंसा के लिए, मूर्च्छा बुनियादी शर्त है।

यह वैसा ही है जैसे तुम जान-बूझकर जहर नहीं खा सकते। जान बूझकर तुम अपना हाथ आग में नहीं डाल सकते हो। अनजाने ही ऐसा कर सकते हो। अगर तुम्हें नहीं पता है कि आग क्या है। तो ही तुम उसके हाथ डाल सकते हो। यदि जानते हो। अगर तुम्हें नहीं पता है कि आग क्या है तो ही तुम उसके हाथ डाल सकते हो। यदि जानते हो कि आग जलाती है। तो तुम उसमें हाथ नहीं डाल सकते।

जैसे-जैसे तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारा बोध, वैसे-वैसे लोभ तुम्हारे लिए आग बन जाएगा। क्रोध जहर बन जायेगा। तब वे बस असंभव हो जाते है। और दमन न हो तो वे सदा के लिए विसर्जित हो जाते है। और जब लोभ अलोभ के आदर्श के बिना विसर्जित होता है। तो उसका अपना ही सौंदर्य है। जब हिंसा अहिंसा के आदर्श के बिना विसर्जित होती है तो उसका अपना ही सौंदर्य है।

अन्यथा जो व्यक्ति आदर्श के अनुसार अहिंसक बनता है वह गहरे में हिंसक, अति हिंसक बना रहता है। वह हिंसा उसमें छिपी रहती है। और तुम्हें उसकी झलक उसकी अहिंसा में भी मिल सकती है। वह अपनी अहिंसा को अपने पर और दूसरों पर बहुत हिंसक ढंग से थोपेगा। उसकी हिंसा सूक्ष्म ढंग ले लेगी।

यह सूत्र कहता है कि स्वीकार रूपांतरण है, क्योंकि स्वीकार से बोध संभव होता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-37

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—61 (ओशो)

''जैसे जल से लहरें उठती है और अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।''

जैसे जल से लहरें उठती है और अग्नि से लपटें,……..शिव

पहले तो यह समझने की कोशिश करो लहर क्या है, और तब तुम समझ सकते हो कि कैसे यह चेतना की लहर तुम्हें ध्यान में ले जाने में सहयोगी हो सकती है।

तुम सागर में उठती लहरों को देखते हो। वे प्रकट होती है; एक अर्थ में वे है, और फिर भी किसी गहरे अर्थ में वे नहीं है। लहर के संबंध में समझने की यह पहली बात है। गहरे अर्थ में प्रकट होती है; एक अर्थ में लहर है। लेकिन किसी गहरे अर्थ में लहर नहीं है। गहरे अर्थ में सिर्फ सागर है। सागर के बिना लहर नहीं हो सकती। और जब लहर है भी तो भी यह सागर ही है। लहर रूप भर है। सत्य नहीं है। सागर सत्य है। लहर केवल रूप है।
भाषा के कारण अनेक समस्याएं उठ खड़ी होती है। क्योंकि हम कहते है लहर, इससे लगता है कि लहर कुछ है। बेहतर हो कि हम लहर न कहकर लहराना कहें। लहर नहीं, लहराना ही है। वह कोई वस्तु नहीं है, एक क्रिया है। वह एक गति है, प्रक्रिया है; वह कोई पदार्थ नहीं है। वह कोई तत्व सत्य नहीं है। पदार्थ या तत्व तो सागर है; लहर एक रूप भर है।

सागर शांत हो सकता है। तब लहरें विलीन हो जाएंगी। लेकिन सागर तो रहेगा। सागर शांत हो सकता है। या बहुत सक्रिय और क्षुब्ध हो सकता है; या सागर निष्क्रिय हो सकता है। लेकिन तुम्हें कोई शांत लहर देखने को नहीं मिलेगी। लहर सक्रियता है, सत्य नहीं। जब सक्रियता है तो लहर है; यह लहराना है, गति है, हलन चलन है—एक साधारण सी हलचल। लेकिन जब शांति आती है। जब निष्क्रियता आती है तो लहर नहीं रहती। लेकिन सागर रहता है। दोनों अवस्थाओं में सागर सत्य है। लहर उसका एक खेल है। लहर उठती है। खो जाती है। लेकिन सागर रहता है।

दूसरी बात लहरें अलग-अलग दिखती है। प्रत्येक लहर का अपना व्यक्तितत्व है। अनूठा औरों से भिन्न। कोई दो लहरें समान नहीं होती। कोई लहर बड़ी होती है। कोई छोटी उनके अपने-अपने विशिष्ट लक्षण होते है। प्रत्येक लहर का निजी ढंग होता है। और निश्चित ही प्रत्येक लहर दूसरे से भिन्न होती है। एक लहर उठ रही होती है, दूसरी मिट रही होती है। जब एक उठती है

तो दूसरी गिरती है। दोनों एक नहीं हो सकती। क्योंकि एक जन्म ले रही होती है और दूसरी मिट रही होती है। फिर भी दोनों लहरों के पीछे जो सत्य है वह एक ही है।

लेकिन संभव है कि उठती हुई लहर मिटने वाली लहर से ऊर्ज ग्रहण कर रही हो। मिटने वाली लहर अपनी मृत्यु के द्वारा उसे उठने में मदद कर रही हो। बिखरने वाली लहर उस लहर के लिए कारण बन सकती है जो उठ रही है। बहुत गहरे में वि एक ही सागर से जुड़ी है। वे भिन्न नहीं है। वे पृथक नहीं है। उनका व्यक्तित्व झूठ है, भ्रामक है। वे जुड़ी है। उनका द्वैत भासता है। लेकिन है नहीं। उनका अद्वैत सत्य है।

अब सूत्र को फिर से पढ़ता हूं: ''जैसे जल से लहरें उठती है, और अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।''

हम जागतिक सागर में लहर मात्र है। इस पर ध्यान करो; इस भाव को अपने भीतर खूब गहरे उतरने दो। अपनी श्वास को उठती हुई लहर की तरह महसूस करना शुरू करो। तुम श्वास लेते हो; तुम श्वास छोड़ते हो। जो श्वास अभी तुम्हारे अंदर जा रही है वह एक क्षण पहले किसी दूसरे की श्वास थी। और जो श्वास अभी तुम्हारे से बहार जा रही है। वही श्वास अगले क्षण किसी दूसरी की श्वास हो जायेगी। श्वास लेना जीवन के सागर में लहरों के उठनें-गिरने जैसा ही है। तुम पृथक नहीं हो, बस लहर हो। गहराई में तुम एक हो। हम सब इकट्ठे है, संयुक्त है। वैयक्तिकता झूठी है। भ्रामक है। इसलिए अहंकार एकमात्र बाधा है। वैयक्तिकता झूठी है। वह भासती है। लेकिन सत्य नहीं है। सत्य तो अखंड है, सागर है, अद्वैत है।

यही कारण है कि प्रत्येक धर्म अहंकार के विरोध में है। जो व्यक्ति कहता है कि ईश्वर नहीं है वह अधार्मिक न भी हो, लेकिन जो कहता है कि मैं हूं वह अवश्य अधार्मिक है।

गौतम बुद्ध नास्तिक थे; वे किसी ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे। महावीर वर्धमान नास्तिक थे। उन्हें भी किसी ईश्वर में विश्वास नहीं था। लेकिन वे पहुंच गए, उन्होंने पाया; वे समग्रता को, पूर्ण को उपलब्ध हुए। अगर तुम्हें किसी परमात्मा में विश्वास नहीं है तो तुम अधार्मिक नहीं हो। क्योंकि धर्म के लिए ईश्वर बुनियादी नहीं है। धर्म के लिए निरहंकार बुनियादी है। और अगर तुम ईश्वर में विश्वास भी करते हो, लेकिन अहंकार भरे मन सक विश्वास करते हो तो तुम अधार्मिक हो। अहंकार रहित मन के लिए ईश्वर में विश्वास की भी जरूरत नहीं है। निरहंकारी व्यक्ति अपने आप ही, सहज ही परमात्मा में लीन हो जाता है। निरहंकारी होकर तुम लहर से नहीं चिपके रह सकते हो; तुम्हें सागर में गिरना ही होगा। अहंकार लहर से चिपका रहता है। जीवन को सागर की भांति देखो और अपने को लहर मात्र समझो; और इस भाव को अपने भीतर उतरने दो।

इस विधि को तुम कई ढंग से उपयोग में ला सकते हो। श्वास लेते हो तो भाव करो कि सागर ही तुम्हारे भीतर श्वास ले रहा है; सागर ही तुम्हारे भीतर आता है। और बाहर जाता है। प्रत्येक श्वास के साथ महसूस करो। जब लहर मिट रही है, उन दोनों के बीच तुम कौन हो। बस एक शुन्य एक खाली पन।

उस शून्यता के भाव के साथ तुम रूपांतरित हो जाओगे। उस खालीपन के भाव के साथ तुम्हारे सब दुःख विलीन हो जायेगें। क्योंकि दुःख को होने के लिए किसी केंद्र की जरूरत होती है। वह भी झूठे केंद्र की। शुन्य ही तुम्हारा असली केंद्र है। उस शून्य में दुःख नहीं है। उस शून्य में तुम गहन विश्राम में होते हो। जब तुम ही नहीं हो तो तनावग्रस्त कौन होगा। तुम तब आनंद से भर जाते हो। ऐसा नहीं है कि तुम आनंदपूर्ण होते हो; सिर्फ आनंद होता है। तुम्हारे बिना क्या तुम दुःख निर्मित कर सकते हो।

यही कारण है कि बुद्ध कभी नहीं कहते है कि उस अवस्था में, परम अवस्था में आनंद होगा। वे ऐसा नहीं कहते; वे यही कहते है कि दुःख नहीं होगा। बस। आनंद की बात करने से तुम भटक सकते हो, इसलिए बुद्ध आनंद की बात नहीं करते। वे कहते है कि आनंद की बात ही मत करो। सिर्फ जानो कि दुःख से कैसे मुक्त हुआ जाए; उसका मतलब है कि अपने बिना खुद के बिना कैसे हुआ जाए।

हमारी समस्या क्या है? समस्या यह है कि लहर अपने को सागर से पृथक मानती है। तब समस्याएं उठ खड़ी होती है। अगर लहर को सागर से पृथक मानती है तो उसे तुरंत मृत्यु का भय पकड़ता है। लहर तो मिटेगी। लहर अपने चारों और अन्य लहरों को मिटते हुए देख सकती है। लहर जानती है कि उसके उठने में ही कहीं मृत्यु छिपी है। क्योंकि दूसरी लहरें भी तो क्षण भर पहले उठ रही थी और अब वे गिर रही है। बिखर रही है। मिट रही है। तुम्हें भी मिटना होगा।

अगर लहर अपने को सागर से पृथक मानती है तो देर-अबेर मृत्यु का भय उसे अवश्य घेरेगा। लेकिन अगर लहर जान ले कि मैं नहीं हूं, सागर है। तो मृत्यु का कोई भय नहीं है। लहर ही मरती है; सागर नहीं मरता। मैं मर सकता हूं; लेकिन जीवन नहीं मरता। तुम मर सकते हो, तुम मरोगे। लेकिन जीवन नहीं मरेगा। अस्तित्व नहीं मरेगा। अस्तित्व तो लहराता ही जाता है। वह तुममें लहराया है; वह दूसरों में लहराएगा। और जब तुम्हारी लहर बिखर रही होगी; तो संभव है कि तुम्हारे बिखराव में से ही दूसरी लहरें उठे। सागर जारी रहता है।

जब तुम अपने को लहर के रूप में पृथक देख लेते हो तो सागर के साथ, अरूप के साथ एक जान लेते हो। एकात्म अनुभव करते हो। प्रत्येक संताप में, प्रत्येक चिंता में मृत्यु का भय मूलभूत है। तुम भयभीत हो, कांप रहे हो। चाहे तुम्हें इसका बोध न हो, लेकिन अगर तुम अपने अंतस में प्रवेश करोगे। तो पाओगे। कि प्रत्येक क्षण तुम कांप रहे हो, क्योंकि तुम मरने वाले हो। तुम अनेक सुरक्षा के उपाय कर सकते हो, तुम अपने चारों और क़िलाबंदी कर सकते हो; लेकिन कुछ भी काम न देगा। कुछ भी काम नहीं देगा। धूल-धूल में जा मिलती है। तुम धूल में मिलने ही वाले हो।

क्या तुमने कभी इस बात पर गौर किया है, इस तथ्य पर ध्यान किया है। कि अभी तुम रास्ते पर चल रहे हो तो जो धूल तुम्हारे जूते पर जमा हो रही है, हो सकता है वह धूल किसी नेपोलियन, किसी सिकंदर के शरीर की धूल हो। सिकंदर इस समय कही न कही धूल बना पडा है। और हो सकता है। कि तुम्हारे जूते से चिपकी धूल सिकंदर के शरीर की ही धूल हो। यही तुम्हारी भी हाल होने वाला है। इस क्षण तुम हो और अगले क्षण तुम नहीं होगे। यही तुम्हारा भी हाल होने वाला है। देर-अबेर धूल-धूल में मिल जाएगी। लहर विदा हो जायेगी।

भय पकड़ता है। जरा कल्पना करो कि तुम किसी के जूते से चिपकी हुई धूल हो या कोई तुम्हारे शरीर से, तुम्हारी प्रेमिका के शरीर से चाक पर बर्तन गढ़ रहा हो। या कल्पना करो कि तुम किसी कीड़े के शरीर में या वृक्ष के शरीर में प्रवेश कर रहे हो। लेकिन यही हो रहा है। प्रत्येक चीज रूप है और रूप को मिटना है। केवल अरूप शाश्वत है। अगर तुम रूप से बंधे हो, अगर रूप ही तुम्हारा तादात्म्य है। अगर तुम अपने को लहर मानते हो, तो तुम अपने ही हाथों उपद्रव में पड़ने वाले हो।

तुम सागर हो, लहर नहीं। यह ध्यान सहयोगी हो सकता है। यह तुम्हारा रूपांतरण बन सकता है। लेकिन इसे अपने पूरे जीवन पर फैलने दो। श्वास लेते हुए सोचो, भोजन करते हुए सोचो, चलते हुए सोचो। दो चीजें सोचो कि रूप सदा लहर है। और अरूप सागर है। कि रूप मृण्मय है। और अरूप अमृत है।

और ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे; तुम प्रतिदिन मर रहे हो। बचपन मरता है। और यौवन जन्म लेता है। फिर यौवन मरता है और बुढ़ापा जन्म लेता है। और फिर बुढ़ापा मरता है और रूप विदा हो जाता है। प्रत्येक क्षण तुम मर रहे हो; प्रत्येक क्षण तुम जन्म रहे हो। तुम्हारे जनम का पहला दिन तुम्हारे जीवन का पहला दिन नहीं है। वह तो आने वाले अनेक-अनेक जन्मों में से एक है। वैसे ही तुम्हारे इस जीवन की मृत्यु पहली मृत्यु नहीं है। वह तो सिर्फ इस जीवन की मृत्यु है। वैसे ही तुम पहले भी मरते रहे हो। प्रतिक्षण कुछ मर रहा हे। और कुछ जन्म ले रहा है। तुम्हारा एक अंश मरता है, दूसरा अंश जन्मता है।

शरीर शास्त्री कहते है कि सात वर्षों में तुम्हारे शरीर का कुछ भी पुराना नहीं बचता है। एक-एक चीज, एक-एक कोष्ठ बदल जाता है। अगर तुम सत्तर वर्ष जीने वाले हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदलेगा। पूरे का पूरा बदलेगा। हर सात वर्षों में तुम्हें नया शरीर मिलता है। लेकिन यह परिवर्तन अचानक नहीं होता। प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ बदल रहा होता है।

तुम एक लहर हो और वह भी बहुत ठोस नहीं। प्रत्येक क्षण बदल रही हो। और लहर थिर नहीं हो सकती। गतिहीन नहीं हो सकती। लहर को सतत बदलते रहना है, सतत गतिमान रहना है। थिर रहना है। थिर लहर जैसी कोई चीज नहीं होती। कैसे हो सकती है? थिर लहर का कोई अर्थ नहीं है। वह गति है, प्रक्रिया है। तुम गति हो, प्रक्रिया हो। अगर तुम इस गति से तादात्म्य कर बैठे हो और अपने को जन्म और मृत्यु के बीच सीमित मानने लगते हो। तुम पीड़ा में, दुःख में पड़ोगे। तब तुम आभास को सत्य मान रहे हो। इसको ही शंकर माया कहते थे।

सागर ब्रह्म है; सागर सत्य है। अपने को लहर मानो, या उठती गिरती लहरों का एक सातत्य मानो। और उसके साक्षी होओ। तुम कुछ कर नहीं सकते हो। ये लहरें विलीन होंगी। जो प्रकट हुआ है, वह विलीन होगा, उसके संबंध में कुछ नहीं किया जा सकता है। सब प्रयत्न बिलकुल व्यर्थ है। सिर्फ एक चीज की जा सकती है। वह है इस लहर रूप का साक्षी होना। और एक बार तुम साक्षी हो गए तो तुम्हें अचानक उसका बोध हो जाएगा जा लहर के पार है। जो लहर के पीछे है, जो लहर में भी है। और लहर के बहार भी है। जिससे लहर बनती है। और जो फिर भी लहर के पार है; जो सागर है।

''जैसे-जल से लहरें उठती है। अग्नि से लपटें, वैसे ही सर्वव्यापक हम से लहराता है।''

सर्वव्यापक हमसे लहराता है। तुम नहीं हो; सर्वव्यापक है। वह तुम्हारे द्वारा लहरा रहा है। इसे महसूस करो, इसका मनन करो, इस पर ध्यान करो। और बहुत-बहुत ढंगों से इसे अपने पर घटित होने दो।

मैंने तुम्हें श्वास के संबंध में कहा। तुममें कामवासना उठती हे। उसे महसूस करो, ऐसे नहीं जैसे वह तुम्हारी कामवासना है, बल्कि ऐसे कि सागर तुममें लहरा रहा है, जीवन तुममें धड़क रहा है। जीवन तुममें लहर ले रहा है। तुम संभोग में मिलते हो ; ऐसा मत सोचो कि दो लहरें मिल रही है। ऐसा मत सोचो कि दो व्यक्ति मिल रहे है। बल्कि ऐसा सोचो कि दो व्यक्ति एक दूसरे में विलीन हो रहे है। दो व्यक्ति अब नहीं बचे; लहरें विलीन हो गई है, केवल सागर बचा है। तब संभोग ध्यान बन जाता है।

जो भी तुम्हें घटित हो रहा है। ऐसा भाव करो कि वह ब्रह्मांड को घटित हो रहा है। कि मैं उसका अंश हूं, कि मैं सतह पर एक लहर मात्र हूं, सब कुछ अस्तित्व पर छोड़ दो।

झेन सदगुरू डोजेन कहा करता था—जब उसे भूख लगती है, तो वह कहता था—कि ऐसा लगता है कि अस्तित्व को मेरे द्वारा भूख लगी है। जब उसे प्यास लगती है तो वह कहता था कि मेरे भीतर अस्तित्व प्यासा है।

यह ध्यान तुम्हें उसी स्थिति में पहुंचा देगा। तब तुम्हारा अहंकार बिखर जाता है। मिट जाता है और सब कुछ ब्रह्मांड का हिस्सा हो जाता है। तब जो भी होता है। अस्तित्व को होता है। तुम अब यहां नहीं हो। और तब कोई पाप नहीं है; तब कोई जिम्मेदारी नहीं है।

अब तो केवल तुम हो; इसलिए किसके प्रति जिम्मेदार होगे?

अब अगर तुम किसी को मरते देखोगें तो तुम्हें लगेगा कि उसके साथ, उसके भीतर मैं ही मर रहा हूं। तब तुम्हें लगेगा कि पूरा जगत मर रहा है और मैं उस जगत का अंश हूं। और अगर किसी फूल को खिलते देखोगें तो तुम उसके साथ-साथ खोलोगे। अब सारा ब्रह्मांड तुममय है। और ऐसी घनिष्ठता में, ऐसा लयबद्धता में होना समाधि में होना है। ध्यान मार्ग है। और यह एकता का भाव, सब के साथ जुड़े होने का भाव मंजिल हे।

इसे प्रयोग करो। सागर को स्मरण रखो। और लहर को भूल जाओ। और ध्यान रहे, जब भी तुम लहर को स्मरण करोगे। और लहर की भांति व्यवहार करोगे। तो तुम भूल करोगे और उसके कारण दुःख में पड़ोगे। कहीं कोई ईश्वर नहीं है। जो तुम्हें दंड दे रहा है। जब भी तुम किसी भ्रांति के शिकार होते हो, तुम अपने को दंड देते हो। जगत में एक नियम है। धर्म है, ताओ है। अगर तुम इसके साथ लयबद्ध चलते हो तो तुम आनंद में हो। यदि तुम उसके विपरीत चलोगे, तुम अपने को दुःख में पाओगे। वहां आकाश में कोई नहीं बैठा है तुम्हें दंडित करने को। वहां तुम्हारे पापों को कोई बही-खाता नहीं है। न उसकी कोई जरूरत है।

यह ठीक गुरूत्वाकर्षण जैसा है। अगर तुम सही ढंग से चलते हो तो गुरूत्वाकर्षण सहयोगी होता है, गुरूत्वाकर्षण के बिना तुम चल नहीं सकते। लेकिन अगर तुम गलत ढंग से चलोगे तो गिरोगे; अपनी हड्डी भी तोड़ सकते हो। लेकिन कोई तुम्हें दंड नहीं दे रहा है। सिर्फ नियम है। गुरुत्वाकर्षण का। निरपेक्ष नियम है। अगर तुम गलत चलोगे और गिरोगे तो तुम्हारी हड्डी टूट जायेगी। और ठीक से चलोगे तो उसका मतलब है कि तुम गुरूत्वाकर्षण का सही उपयोग कर रहे हो। ऊर्जा का सही और गलत दोनों तरह से उपयोग हो सकता है।

जब तुम अपने को लहर मानते हो तो तुम जागतिक नियम के विरोध में हो, तुम सत्य के विरोध में हो। तब तुम अपने लिए दुःख निर्मित करोगे। कर्म के सिद्धांत का यही मतलब है। कोई कानून बनाने वाला नहीं है। परमात्मा कोई जज नहीं है। जज होना कुरूप बात है। और अगर ईश्वर कोई जज होता तो बिलकुल ऊब जाता। या पागल हो जाता। जगत में अपने नियम है। और बुनियादी नियम यह है कि सच्चा होना आनंद में होना है। और झूठा होना दुःख में होना है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—62 (ओशो)

''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।''

''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है,

मन एक द्वार है—यही मन जहां कही भी भटकता है, जो कुछ भी सोचता है। मनन करता है। सपने देखता है। यही मन और यही क्षण द्वार है।

यही एक अति क्रांतिकारी विधि है, क्योंकि हम कभी नहीं सोचते कि साधारण मन द्वार है। हम सोचते है कि कोई महान मन, कोई बुद्ध या जीसस का मन प्रवेश कर सकता है। हम सोचते है कि बुद्ध या जीसस के पास कोई असाधारण मन है। और यह सूत्र कहता है कि तुम्हारा साधारण मन ही द्वार है। यही मन जो सपने देखता है। कल्पनाएं करता है। ऊलजलूल सोच-विचार करता है। यही मन द्वार है जो कुरूप कामनाओं और वासनाओं से क्रोध और लोभ से खचाखच भरा है। जिसमें यह सब है जो निंदित है। जो तुम्हारे बस के बाहर है। जो तुम्हें यहां सक वहां भटकाता रहता है। जो सतत एक पागलखाना है। यही मन द्वार है।

''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है.....।''
इस जहां कहीं को स्मरण रखो। भटकने का विषय महत्वपूर्ण नहीं है।

जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है। भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।''

बहुत सी बातें समझने जैसी है। एक कि साधारण मन उतना साधारण नहीं है जितना हम समझते है। साधारण मन जागतिक मन से असंबद्ध नहीं है। वह उसका ही अंश है। उसकी जड़ें अस्तित्व के केंद्र तक चली गई है। अन्यथा तुम अस्तित्व में नहीं हो सकते हो। एक पापी भी परमात्मा में आधारित है; अन्यथा यह अस्तित्व में नहीं हो सकता था। वह जो शैतान है ह भी परमात्मा के सहारे के बिना नहीं हो सकता है। अस्तित्व ही इसलिए संभव है। क्योंकि वह परमात्मा में प्रतिष्ठित है।

तुम्हारा मन स्वप्न देखता है। कल्पना करता है, भटकता है; वह तनावग्रस्त है, दुःखी है। संताप में है। वह जैसे भी गति करता है, जहां भी जाता है, वह समग्र से जुड़ा रहता है। अन्यथा संभव नहीं है। तुम अस्तित्व से भाग नहीं सकते। वह असंभव है। इसी क्षण तुम्हारे जड़ें अस्तित्व में गड़ी है। तब क्या किया जाएं?

अगर इसी क्षण हमारी जड़ें अस्तित्व में गड़ी है तो अहंकारी मन को लगेगा कि फिर तो कुछ कना नहीं है। हम तो परमात्मा में ही है। फिर इतनी आपा धापी की क्या जरूरत है। तुम्हारी जड़ें तो परमात्मा में है। लेकिन तुम इस तथ्य के प्रति मूर्छित हो। जब मन भटकता है तो दो चीजें होती है: मन और भटकाव;मन के विषय और मन; आकाश में तैरते बादल और आकाश। वहां दो चीजें है: बादल और आकाश। कभी ऐसा भी हो सकता है। कि बादल इतने हो जाते है कि आकाश छिप जाता है। तुम उसे देख नहीं सकते हो।

लेकिन जब तुम नहीं देख पाते हो तब भी आकाश विलीन नहीं होता है। वह विलीन नहीं हो सकता है। आकाश के विलीन होने का कोई उपाय नहीं है। वह है; आच्छादित या प्रकट, दृश्य आ अदृश्य है। अगर तुम बादलों पर ही ध्यान देते हो तो आकाश भूल जाता है। और अगर तुम आकाश पर ध्यान देते हो तो बादल गौण हो जाते है। वे आते और जाते है, तुम्हें बादलों की बहुत चिंता लेने की जरूरत नहीं लेनी चाहिए। वे आते जाते रहते है। तुम्हें पता होना चाहिए की इन बादलों ने रति भर भी आकाश को नष्ट नहीं किया है। उन्होंने आकाश को गंदा भी नहीं किया है। उन्होंने उसका स्पर्श भी नहीं किया है। आकाश तो सदा कुंआरा है।

जब तुम्हारा मन भटकता है तो दो चीजें होती है। एक तो बादल है, विचार है, विषय है, बिंब है। और दूसरी चेतना है, खुद मन है। जब तुम बादलों पर विचारों पर, बिंबों पर बहुत ध्यान देते हो तो तुम आकाश को भूल जाते हो। तब तुम मेजबान को भूल गए और मेहमान में ही बुरी तरह से उलझ गये। वे विचार, वे बिंब, जो भटक रहे है। केवल मेहमान है। अगर तुम मेहमानों पर सब ध्यान लगा देते हो तो तुम अपनी आत्मा ही भूल बैठे।

अपने ध्यान को मेहमानों से हटाकर मेजबान पर लगाओ; बादलों से हटाकर आकाश पर केंद्रित करो। और इसे व्यावहारिक ढंग से करो। कामवासना उठती है। वह बादल है। या बड़ा घर पाने को लोभ पैदा होता है। यह भी बादल है। तुम इससे इतने

ग्रस्त हो जा सकते हो कि तुम भूल ही जाओ कि यह किस में उठ रहा है। यह किसी को घटित हो रहा है। कौन इसके पीछे है। किस आकाश में यह बादल उठ रहे है। उस आकाश को स्मरण करो; और अचानक बादल विदा हो जाएगा। सिर्फ बदलने की जरूरत है। परिप्रेक्ष्य बदलने की जरूरत है। दृष्टि को विषय से विषयी पर, बाहर से भीतर पर, बादल से आकाश पर, अतिथि से आतिथेय पर ले जाने की जरूरत है। सिर्फ दृष्टि को बदलना है। फोकस को बदलना है।

एक झेन सदगुरू लिंची प्रवचन कर रहा था। भीड़ में से किसी ने कहा: मेरे एक प्रश्न का उत्तर दें, मैं कौन हूं? लिंची ने बोलना बंद कर दिया। सब लोग चौकन्ने हो गए। लिंची क्या उत्तर देने जा रहा है। सब यही सोच रहे थे। लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुर्सी से नीचे उतरा, आगे बढ़ा और उस आदमी के पास पहुंचा। पूरी भीड़ चकित और सजग हो उठी। लोगों की श्वासें तक रूक गई। लिंची क्या करने जा रहा है। उसे कुर्सी पर बैठे-बैठे ही जवाब देना था; कुर्सी से उठने की क्या जरूरत थी? और प्रश्नकर्ता तो बहुत भयभीत हो गया। लिंची अपनी बेधक दृष्टि उस व्यक्ति पर जमाए पास आया। उसने उस आदमी का गला पकड़ लिया, उसे झकझोरा और कहा; आंखे बंद करो और उसका स्मरण करो जो यह प्रश्न पूछ रहा है।

उस आदमी ने आंखें बंद की—हांलाकि डरते-डरते। वह अपने भीतर खोजने गया कि किसने यह प्रश्न पूछा था। और वह वापस नहीं आया। भीड़ प्रतीक्षा करती रही। प्रतीक्षा करती रही,उस आदमी का चेहरा मौन और शांत हो गया। तब लिंची ने उसे फिर झकझोरा: ''अब बहार आओ, और सब को बताओ कि तुम कौन हो। वह आदमी हंसने लगा और कहा: जवाब देने का आपका खूब अद्भुत ढंग है। लेकिन यदि कोई व्यक्ति अभी मुझसे यही पूछे तो मैं भी वह भी वहीं करूंगा। ''मैं उत्तर नहीं दे सकता।''

यह दृष्टि की, परिप्रेक्ष्य की बदलाहट थी। तुम पूछते हो कि मैं कौन हूं। और तुम्हारा मन प्रश्न पर केंद्रित है, जब कि उत्तर प्रश्न के ठीक पीछे प्रश्न कर्ता में छिपा है। दृष्टि को बदलों; अपने पर लौट आओ।

यह सूत्र कहता है: ''जहां-जहां तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर यह।''

तुम सोचते हो कि बादल मेरी संपदा है। तुम सोचते हो कि जितनी ज्यादा बादल होंगे, मैं उतना ही बेहतर, उतना ही ज्यादा समृद्ध हो जाऊँगा। और तुम्हारा सारा आकाश सारा आंतरिक आकाश उनसे आच्छादित है, ढंका है। एक अर्थ में, बादलों में आकाश खो गया है। और बादल ही तुम्हारा जीवन है। और बादलों का जीवन ही संसार है।

यह बात एक क्षण में घट सकती है। यह दृष्टि सदा अचानक ही घटती है। में यह नहीं कह रहा हूं कि तुम कुछ भी मत करो और अचानक घटेगी। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। लेकिन यह क्रमिक ढंग से नहीं घटता। तुम्हें बहुत कुछ करना होगा। तब करते-करते एक दिन वह क्षण आता है जब तुम भाप बनने के सही तापमान पर पहुंच जाते हो। अचानक पानी-पानी नहीं रहता है; वह भाप बन गया। अचानक तुम विषय से बाहर हो गए। तुम्हारी आंखें अब बादलों पर नहीं अटकती है। अब अचानक तुम आंतरिक आकाश की तरफ भीतर मुड़ जाते हो।

ऐस कभी क्रमिक रूप से नहीं होता। तुम्हारी आँख का एक अंश भी तर की और मुड़ जाता है और उसका दूसरा अंश बाहर बादलों पर लगा रहता है। नहीं, यह अंशों में नहीं घटित होता। कि तुम अस दस प्रतिशत भीतर हो और नब्बे प्रतिशत बाहर, कि बीस प्रतिशत भीतर हो और अस्सी प्रतिशत बाहर। नहीं जब यह घटित होता है तो शत प्रतिशत होता है। क्योंकि तुम अपनी दृष्टि को खंड-खंड नहीं कर सकते हो। या तो तुम विषयों को देखते हो या अपने को; या तो संसार को या ब्रह्म को।

फिर तुम संसार में वापस आ सकते हो। तुम फिर अपनी दृष्टि बदल सकते हो। अब तुम मालिक हो। सच तो यह है कि तुम तभी मालिक होते हो जब स्वेच्छा से अपनी दृष्टि बदल सकते हो।

मुझे एक तिब्बती संत मारपा का स्मरण आता है। जब वह ज्ञान को उपलब्ध हुआ—(जब वह बुद्ध हुआ, जब वह अंतस की और मुड़ गया, जब उसने अंतराकाश का, अनंत का साक्षात्कार किया—तो किसी ने उससे पूछा: मारपा अब कैसे हो? तो मारपा ने अत्तर दिया वह अपूर्व है, अप्रत्याशित है। अब तक किसी बुद्ध ने वैसा उत्तर नहीं दिया था। मारपा ने कहा: पहले जैसा ही दुःखी।

वह आदमी तो भौचक्का रह गया; उसने पूछा: पहले जैसा ही दुखी? लेकिन मारपा हंसा, उसने कहा: हां, लेकिन एक फर्क के साथ। और फर्क यह है कि अब मेरा दुःख स्वैच्छिक है। अब मैं कभी-कभी बस संसार का स्वाद लेने के लिए अपने से बहार लौट सकता हूं। लेकिन मैं मालिक हूं। मैं किसी भी क्षण भीतर लौट सकता हूं। और दोनों ध्रुवों के बीच गति कर सकता हूं। तभी कोई जीवित रह सकता है। कभी में दुखों में लौट सकता हूं, लेकिन अब दुख मुझे नहीं घटित होते है, मैं ही उन्हें घटित होता हूं। और मैं उनसे अछूता रह सकता हूं।

निश्चित ही, जब तुम स्वेच्छा से गति करते हो एक बार तुमने जान लिया कि दृष्टि को अंतर्मुखी कैसे किया जाए,तुम संसार में वापस आ सकते हो। सभी बुद्ध पुरूष संसार में वापस आए है। वे दृष्टि को फिर संसार में ले जाते है। लेकिन अब आंतरिक मनुष्य की गुणवता भिन्न है। वह जानता है कि यह उसकी स्वतंत्र दृष्टि है; वह बादलों को भी गति करने की इजाजत दे सकता है। अब बादल मालिक न रहे। वे तुम पर हावी नहीं हो सकते है। वे अब तुम्हारी मर्जी से घूमते है।

और यह सुंदर है। कभी-कभी बादलों से भरा आकाश सुंदर होता है। बादलों की हलचल सुंदर होती है। अगर आकाश-आकाश बना रहे तो बादलों को तैरने दिया जा सकता है। समस्या तो तब खड़ी होती है। जब आकाश अपने को भूल जाता है। और वहां बादल ही बादल रह जाते है। तब सब कुछ कुरूप हो जाता है। क्योंकि स्वतंत्रता खो गई।

यह सूत्र सुंदर है: ''जहां कहीं तुम्हारा मन भटकता है, भीतर या बाहर, उसी स्थान पर, यह।''

झेन परंपरा में इस सूत्र का गहरा उपयोग हुआ है। झेन कहते है कि साधारण मन ही बुद्ध-मन है। भोजन करते हुए तुम बुद्ध हो; सोते हुए तुम बुद्ध हो। कुएं से पानी ले जाते हुए तुम बुद्ध हो। तुम हो, कुएं से पानी ले जाते हुए। भोजन करते हुए। विस्तर पर लेटे हुए तुम बुद्ध हो। यह पहेली जैसा लगता है। लेकिन यह सच है। अगर पानी ढोते हुए तुम सिर्फ पानी ढोते हो। तुम उसे समस्या नहीं बनाते और सिर्फ पानी ढोते हो। अगर तुम्हारा मन बादलों से मुक्त है। और आकाश खाली है। अगर तुम केवल पानी ढोते हो, तो तुम बुद्ध हो। तब भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करते हो और कुछ नहीं करते।

लेकिन हम जब भोजन करते है तो उसके साथ हजारों चीजें करते-रहते है। हो सकता है तुम्हारा मन भोजन में बिलकुल न हो; तुम्हारा शरीर यंत्र की भाती भोजन कर रहा हो। तुम्हारा मन कहीं और हो सकता है।

किसी विश्वविद्यालय का एक छात्र कुछ दिन पहले आया था। उसकी परीक्षा करीब थी। इसलिए वह कुछ पूछने आया था। उसने कहा: में बहुत उलझन में हूं। समस्या यह है कि मैं एक लड़की के प्रेम में पड़ गया हूं। तो परीक्षा की सोचता रहता हूं और जब पढ़ता रहता हूं तो लड़की के विषय में सोचता रहता हूं। पढ़ते समय मैं वहां नहीं होता। मैं कल्पना में अपनी प्रेमिका के साथ होता हूं। और जब प्रेमिका के साथ होता हूं तो कभी उसके साथ नहीं होता हूं। मैं अपनी समस्याओं के बारे में, नजदीक आती परीक्षा के बारे में चिंता करता रहता हूं। नतीजा यह है किसब कुछ गुड-मुड़ हो गया है।

यह लड़का ही नहीं ऐसे ही हर कोई गुड़-मुड़ है। जब तुम दफ्तर जाते हो तो तुम्हारा मन घर में होता है। तुम जब घर में होते हो तो तुम्हारा मन दफ्तर में होता है। और तुम ऐसा जादुई करिश्मा कर नहीं सकते;घर में होकर तुम घर में ही हो सकते हो, दफ्तर में नहीं हो सकते। और अगर तुम दफ्तर में हो तो तुम्हारा दिमाग ठीक नहीं है, तुम पागल हो। तब हर चीज दूसरी चीज में उलझ जाती है। गुत्थमगुत्था हो जाती है। तब कुछ भी स्पष्ट नहीं है। और यही मन समस्या है।

कुएं से पानी खींचते हुए, कुएं से पानी ढोते हुए तुम अगर मात्र यही काम कर रहे हो तो तुम बुद्ध हो। अगर तुम झेन सदगुरूओं के पास जाओ और उसने पूछो कि आप क्या करते है? आपकी साधना क्या है? ध्यान क्या है? तो वे कहेंगे: जब नींद आती है तो हम सो जाते है। जब भूख लगती है तो हम भोजन करते है। बस यही हमारी साधना है और कोई साधना नहीं है।

लेकिन यह बहुत कठिन है। हालांकि आसान मालूम होती है। अगर भोजन करते हुए तुम सिर्फ भोजन करो,अगर बैठे हुए तुम सिर्फ बैठो और कुछ न करो। कोई विचार न हो, अगर तुम वर्तमान क्षण के साथ रह सको,उससे हटो नहीं,अगर तुम वर्तमान क्षण में डूब सको,न कोई अतीत हो, न कोई भविष्य हो, अगर वर्तमान क्षण ही एकमात्र अस्तित्व हो, तो तुम बुद्ध हो। तब यही मन बुद्ध मन बन जाता है।

तो जब तुम्हारा मन भटकता है तो उसे रोकने की चेष्टा मत करो, बल्कि आकाश को स्मरण करो। जब मन भटकता है तो उसे रोको मत। उसे किसी बिंदु पर लाने की, एकाग्र करने की चेष्टा मत करो। नहीं, उसे भटकने दो। लेकिन भटकाव पर बहुत अवधान मत दो—न पक्ष में,ने विपक्ष में, क्योंकि तुम चाहे उसके पक्ष में रहो या विपक्ष में, तुम उससे बंधे रहते हो। आकाश को स्मरण करो। भटकन को चलने दो। और इतना ही कहो; ठीक है, पर चलती हुई राह है; अनेक लोग इधर-उधर चले जा रहे है। मन एक चलती हुई राह है। मैं आकाश हूं बादल नहीं ।

इसी स्मरण को याद रखो। इस भाव में उतरो ; इसमें ही स्थिर रहो। देर अबेर तुम देखोगें कि बादलों की गति बंद पड़ गई है। बादलों के बीच में अंतराल आने लगा है। वे अब उतने घने नहीं रहे है। उनकी गति मंद पड़ गई है। उनके पीछे का आकाश दिखाई पड़ने लगा है। अपने को आकाश की भांति अनुभव करते रहो; बादलों की भांति नहीं। देर-अबेर किसी दिन, किसी सम्यक क्षण में,जब तुम्हारी दृष्टि सचमुच भीतर लौट गई है। बादल विलीन हो जाएंगे। और तब तुम शुद्ध आकाश हो, सदा से शुद्ध,सदा से अस्पर्शित आकाश हो।

और एक बार तुमने इस कुंआरी पन को जान लिया तो फिर बादलों में, बादलों के संसार में वापस आ सकते हो। तब संसार का अपना ही सौदर्य है, तब तुम इसमे रह सकते हो। लेकिन अब तुम मालिक हो।

संसार बुरा नहीं है। मालिक की तरह संसार समस्या नहीं है। जब तुम ही मालिक हो तो तुम उसमें रह सकते हो। तब संसार का अपना ही सौदर्य है; वह सुंदर है। प्यारा है। लेकिन तुम उसे सौंदर्य को, उस माधुर्य को अपने भीतर मलिक होकर ही जान सकते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—63 (ओशो)

''जब किसी इंद्रिय-विषय के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्थित होओ।''

जब किसी इंद्रिय-विषय के द्वारा स्पष्ट बोध हो,……

तुम अपनी आँख के द्वारा देखते हो। ध्यान रहे, तुम अपनी आँख के द्वारा देखते हो। आंखे नहीं देख सकती। उनके द्वारा तुम देखते हो। द्रष्टा पीछे छिपा है। भीतर छिपा है; आंखें बस द्वार है। झरोखे है। लेकिन हम सदा सोचते है कि हम आँख से देखते है। हम सोचते है कि हम कान से सुनते है। कभी किसी ने कान से नहीं सुना है। तुम कान के द्वारा सुनते हो। कान से नहीं। सुननेवाला पीछे है। कान तो रिसीवर है।
मैं तुम्हें छूता हूं, मैं बहुत प्रेमपूर्वक तुम्हारा हाथ अपने हाथ में लेता हूं। यह हाथ नहीं है। जो तुम्हें छूता है। यह मैं हूं, जो हाथ के द्वारा तुम्हें छू रहा है। हाथ यंत्र है। और स्पर्श से बचना भी दो भांति का है। एक, जब मैं सच ही तुम्हें स्पर्श करता हूं। और दूसरा, जब मैं स्पर्श से बचना चाहता हूं। मैं तुम्हें छूकर भी स्पर्श से बच सकता हूं। मैं अपने हाथ में न रहूँ। मैं हाथ से अपने को अलग कर सकता हूं।

इसे प्रयोग करके देखो, तुम्हें एक भिन्न अनुभव होगा। एक दूरी का अनुभव होगा1 किसी पर अपना हाथ रखो और अपने को अलग रखो; यहां सिर्फ मुर्दा हाथ होगा। तुम नहीं। और अगर दूसरा व्यक्ति संवेदनशील है तो उसे मुर्दा हाथ का एहसास हो जायेगा। वह अपने का अपमानित महसूस करेगा, आपके इस व्यवहार से। क्योंकि तुम उसे धोखा दे रहे हो। तुम छूने का दिखाव कर रहे हो।

स्त्रियां इस मामले में बहुत संवेदनशील है; तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। स्पर्श के प्रति, शारीरिक स्पर्श के प्रति वे ज्यादा सजग है; वे जान जाती है। हो सकता है पति मीठी-मीठी बातें कर रहा हो। वह फूल ले आया हो। और कह रहा हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। लेकिन उसका स्पर्श कह देगा कि वह वहां नहीं है। और स्त्रियों को सहज बोध हो जाता है। कि कब तुम उनके साथ हो और कब नहीं। अगर तुम अपने मालिक नहीं हो तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। अगर तुम्हें अपने ऊपर मलकियत नहीं है तो तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते। और जो अपना मालिक है वह पति होना नहीं चाहेगा। वह कठिनाई है। तुम जो भी कहोगे तुम्हारा स्पर्श उसे झुठला देगा।

यह सूत्र कहता है कि इंद्रियाँ द्वार भर है—एक माध्यम, एक यंत्र, एक रिसीविंग स्टेशन और तुम उनके पीछे हो।

''जब किसी इंद्रिय-विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो, उसी बोध में स्थित होओ।''

संगीत सुनते हुए अपने को कान में मत खो दो। मत भूला दो; उस चैतन्य को स्मरण करो। जो पीछे छिपा है। होश रखो। किसी को देखते हुए इस विधि को प्रयोग करो। तुम यह प्रयोग मुझे देखते हुए अभी और यही कर सकते हो। क्या हो रहा है?

तुम मुझे आँख से देख सकते हो। और जब मैं कहता हूं आँख से तो उसका मतलब है कि तुम्हें इसका बोध नहीं है कि तुम आँख के पीछे छिपे हो। तुम मुझे आँख के द्वारा देख सकते हो। आँख एक यंत्र है। तुम आँख के पीछे खड़े हो। आँख के द्वारा देख रहे हो। जैसे किसी खिड़की या ऐनक के द्वारा देखता है।

तुमने बैंक में किसी क्लर्क को अपने ऐनक के ऊपर से देखते हुए देखा होगा। ऐनक उसकी नाक पर उतर आयी है। और वह देख रहा है। उसी ढंग से मुझे देखो, मेरी तरफ देखो, ऐसे देखो जैसे आँख से ऊपर से देखते हो। मानो तुम्हारी आंखें सरककर नीचे नाक पर आ गई हों और तुम उनके पीछे से मुझे देख रहे हो। अचानक तुम्हें गुणवत्ता में फर्क मालूम पड़ेगा तुम्हारा परिप्रेक्ष्य बदलता है। आंखे महज द्वार बन जाती है। और यह ध्यान बन जाता है।

सुनते समय कानों के द्वारा मात्र सुनो और अपने आंतरिक केंद्र के प्रति जागे रहो। स्पर्श करते हुए हाथ के द्वारा मात्र छुओ और आंतरिक केंद्र को स्मरण रखो जो पीछे छिपा है। किसी भी इंद्रिय से तुम्हें आंतरिक केंद्र की अनुभूति हो सकती है। और प्रत्येक इंद्रिय आंतरिक केंद्र तक जाती है। उसे सूचना देती है।

यहीं कारण है कि जब तुम मुझे देख और सुन रहे हो—जब तुम आँख के द्वारा देख रहे हो और कान के द्वारा सुन रहे हो—तो तुम जानते हो कि तुम उसी व्यक्ति को देख रहे हो। जिसे सुन भी रहे हो। अगर मेरे शरीर में कोई गंध है। तो तुम्हारी नाक उसे भी ग्रहण करेगी। उस हालत में तीन-तीन इंद्रियाँ एक ही केंद्र को सूचना दे रही है। इसी से तुम संयोजक कर पाते हो। अन्यथा संयोजन कठिन होता।

अगर तुम्हारी आंखे ही देखती है और कान ही सुनते है तो यह जानना कठिन होता है कि तुम उसी व्यक्ति को सुन रहे हो जिसे देख रहे हो। या दो भिन्न व्यक्तियों को देख और सुन रहे हो; क्योंकि दोनों इंद्रियाँ भिन्न है। और वे आपस में नहीं मिलती है। तुम्हारी आंखों को तुम्हारे कान का पता नहीं है। और तुम्हारे कान को तुम्हारी आंखों का कुछ पता नहीं है। वे एक दूसरे को नहीं जानते है। वे आपस में कभी मिले नहीं है। उनका एक दूसरे से परिचय भी नहीं है। तो फिर सारा समन्वय, सारा संयोजन कैसे घटित होता है?

कान सुनते है, आंखें देखती है, हाथ छूते है, नाक सूँघती है। और अचानक तुम्हारे भीतर कहीं कोई जान जाता है कि यह वही आदमी है जिसे में सुन रहा हूं। देख रहा हूं। सभी इंद्रियाँ इस ज्ञाता को ही सूचना देती है। और इस ज्ञाता में, इस केंद्र में सब कुछ सम्मिलित होकर, संयोजित होकर एक हो जाता है। यह चमत्कार है।

मैं एक हूं; तुम्हारे बहार से मैं एक हूं। मेरी शरीर, मेरे शरीर की उपस्थिति, उसकी गंध मेरा बोलना,सब एक है। लेकिन तुम्हारी इंद्रियाँ मुझे विभाजित कर देंगी। तुम्हारे कान मेरे बोलने की खबर देंगे। तुम्हारी नाक मेरी गंध की खबर देगी। और तुम्हारी आंखें मेरी उपस्थिति की खबर देंगी। वे इंद्रियाँ मुझे टुकड़ों में बांट देंगी। लेकिन फिर तुम्हारे भीतर कहीं पर मैं एक हो जाऊँगा। जहां तुम्हारे भीतर में एक होता है, वह तुम्हारे होने का केंद्र है। वह तुम्हारा बोध है। चैतन्य है। तुम उसे बिलकुल भूल गए हो। यह विस्मरण ही अज्ञान है। और बोध का चैतन्य आत्मा ज्ञान को द्वार खोलता है। तुम और किसी उपाय से अपने को नहीं जान सकते हो।

''जब किसी इंद्रिय-विशेष के द्वारा स्पष्ट बोध हो। उसी होश में स्थित होओ।''

उसी बोध में रहो; उसी बोध में स्थित रहो। होश पूर्ण होओ।

आरंभ में यह कठिन है। हम बार-बार सो जाते है। और आँख के द्वारा देखना कठिन मालूम पड़ता है। आँख से देखना आसान है। आरंभ में थोड़ा तनाव अनुभव होगा और तुम आँख के द्वारा देखने की चेष्टा करोगे। और न केवल तुम तनाव अनुभव करोगे। वह व्यक्ति भी तनाव अनुभव करेगा जिसे तुम देखोगें।

अगर तुम किसी आँख के द्वारा देखोगें तो उसे लगेगा कि तुम अनुचित रूप से दखल दे रहे हो। कि तुम उसके साथ अभद्र व्यवहार कर रहे हो। तुम अगर आँख के द्वारा देखोगें तो दूसरे को अचानक अनुभव होगा कि तुम उसके साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहे हो। क्योंकि तुम्हारी दृष्टि बेधक बन जाएगी। तुम्हारी दृष्टि गहराई में उतर जाएगी। अगर यह दृष्टि तुम्हारी गहराई से आती है। वह उसकी गहराई में प्रवेश कर जाएगी।

यही कारण है कि समाज ने एक बिल्ट-इन सुरक्षा की व्यवस्था कर रखी है। समाज कहता है कि जब तक तुम किसी के प्रेम में नहीं हो, उसे बहुत घूरकर मत देखो। अगर तुम प्रेम में हो तो देख सकते हो। तब तुम उसके अंतर्तम तक प्रवेश कर सकते हो। क्योंकि वह तुमसे भयभीत नहीं है। तब दूसरा तुम्हारे प्रति नग्न हो सकता है। समग्रता: नग्न हो सकता है। वह तुम्हारे प्रति खुला हो सकता है। लेकिन साधारणत: अगर तुम प्रेम में नहीं हो। तो किसी को घूरने की, बेधक दृष्टि देखने की मनाही है।

भारत में हम ऐसे आदमी को, जो दूसरे को घूरता है, लुच्चा कहते है। लुच्चा का अर्थ है, देखने वाला। लुच्चा शब्द लोचन से आता है। लुच्चा का अर्थ हुआ कि जो आँख ही बन गया है। इसलिए इस विधि का प्रयोग किसी अपरिचित पर मत करना। वह तुम्हें लुच्चा समझेगा। पहले इस विधि का प्रयोग ऐसे विषयों के साथ करो। जैसे फूल है, पेड़ है, रात के तारे है। वे इसे अनुचित दखल नहीं मानेंगे। वे एतराज नहीं उठाएंगे। बल्कि वे इसे पंसद करेंगे। उन्हें बहुत अच्छा लगेगा। वे इसका स्वागत करेंगे।

तो पहले उनके साथ प्रयोग करो और फिर अपनी पत्नी, अपने बच्चे, अपने प्रियजनों के साथ। कभी अपने बच्चे को गोद में उठा लो और उसको आँख के द्वारा देखो। बच्चा इसे समझेगा, सराहेंगे। वह अन्य किसी से भी ज्यादा समझेगा। क्योंकि अभी समाज ने उसे पंगु नहीं बनाया है। विकृत नहीं किया है। वह अभी सहज है। तुम अगर उसे आँख के द्वारा देखोगें तो उसे प्रगाढ़ प्रेम की अनुभूति होगी। उसे तुम्हारी उपस्थिति का एहसास होगा।

अपने प्रेमी या प्रेमिका को ऐसे देखो। और फिर जैसे-जैसे तुम्हें इस बात की पकड़ आएगी। जैसे-जैसे तुम इसमें कुशल होगे वैसे-वैसे तुम धीरे-धीरे दूसरों को भी देखने में समर्थ हो जाओगे। क्योंकि तब किसी को पता नहीं चलेगा कि तुमने इस गहराई से उसे देखा । और जब अपनी इंद्रियों के पीछे सतत सजग होकर खड़े होगे की कला तुम्हारे हाथ आ जायेगी। तो इंद्रियाँ तुम्हें धोखा न दे पाएंगी। अन्यथा इंद्रियाँ धोखा देती है। ऐसे संसार में, जो सिर्फ भासता है। इंद्रियों ने तुम्हें उसे सच मानने का धोखा दिया है।

अगर तुम इंद्रियों के द्वारा देख सके। और सजग रह सके तो धीरे-धीरे संसार माया मालूम पड़ने लगेगा। स्वप्नवत मालूम पड़ने लगेगा। और तब तुम उसके तत्व में उसके मूल तत्व में प्रवेश कर सकोगे। यह मूल तत्व ही ब्रहम है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-39

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—64 (ओशो)

''छींक के आरंभ में, भय में, खाई-खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख के आरंभ में और भूख के अंत में, सतत बोध रखो।''

''छींक के आरंभ में, भय में, ...

यह विधि देखने में बहुत सरल मालूम पड़ती है। छींक के आरंभ में, भय में, चिंता में, भूख के पहले या भूख के अंत में सतत बोध रखो।

बहुत सी बातें समझने जैसी है। छींकने जैसे बहुत सरल कृत्य भी उपाय की तरह काम में लाए जा सकते है। क्योंकि वे कितने ही सरल दिखे, दरअसल वे बहुत कठिन और जटिल होते है। और जो आंतरिक व्यवस्था है, वह बहुत नाजुक चीज है।

जब भी तुम्हें लगे कि छींक आ रही है, सजग हो जाओ। संभव है कि सजग होने पर छींक न आए, चली जाए। कारण यह है कि छींक गैर-स्वैच्छिक चीज है। अचेतन,गैर-स्वैच्छिक। तुम स्वेच्छा से, चाह कर नहीं छींक सकते हो। तुम जबरदस्ती नहीं छींक सकते हो। चाह कर कैसे छींक सकते हो?
मनुष्य कितना असहाय है। तुम चाह कर एक छींक भी नहीं ला सकते हो। तुम कितनी ही चेष्टा करो। तुम छींक नहीं ला सकते हो। एक मामूली सी छींक भी तुम चाह कर नहीं पैदा कर सकते हो। यह गैर-स्वेच्छा से, चाह कर नहीं आती। यह तुम्हारे मन के कारण नहीं घटित होती। यह तुम्हारे समग्र संस्थान से, समग्र शरीर से घटित होती है।

और दूसरी बात कि जब तुम छींक के आने के पूर्व सजग हो जाते हो—तुम उसे ला नहीं रहे हो। लेकिन जब वह अपने आप ही आ रही हो। तो केवल तुम सजग हो जाते हो। तो संभव है कि वह न आए। क्योंकि तुम उसकी प्रक्रिया में कुछ नयी चीज जोड़ रहे हो। सजगता जोड़ रहे हो। वह खो जा सकती है। लेकिन जब छींक खो जाती है। और तुम सावचेत रहते हो, तो एक तीसरी बात घटित होती है।

पहली तो बात कि छींक गैर-स्वैच्छिक है। तुम उसमें एक नयी चीज जोड़ते हो, सजगता जोड़ते हो। और जब सजगता आती है तो संभव है कि छींक न आए। अगर तुम सचमुच सजग होगे। तो वह नहीं आएगी। शायद छींक एकदम खो जाए। तब तीसरी बात घटित होती है। जो ऊर्जा छींक की राह से निकलने वाली थी वह अब कहां जाएगी।

वह ऊर्जा तुम्हारी सजगता से जुड़ जाती है। अचानक बिजली सी कौंधती है, और तुम ज्यादा सावचेत हो जाते हो। जो ऊर्जा छींक बनकर बाहर निकलने जा रही थे वही ऊर्जा तुम्हारी सजगता में जुड़ जाती है। और तुम अचानक अधिक सावचेत हो जाते हो। बिजली की उस कौंध में बुद्धत्व भी संभव है।

यही कारण है कि मैं कहता हूं कि ये चीजें इतनी सरल है कि व्यर्थ मालूम पड़ती है। उनके द्वारा होने वाली उपलब्धियों की चर्चा असंभव सी लगती है। सिर्फ छींक के जरिए कोई बुद्ध कैसे हो सकता है? लेकिन छींक सिर्फ छींक ही नहीं है; तुम भी उसमें पूरी तरह सम्मिलित हो। तुम जो भी करते हो या तुम्हें जो भी होता है, उसमें तुम भी पूरी तरह मौजूद होते हो। इसे फिर से देखा,इसका निरीक्षण करो। जब भी छींक आती है तो उसमें तुम समग्रता: होते हो—पूरे शरीर से होते हो, पूरे मन से होते हो। छींक सिर्फ तुम्हारी नाक में ही घटित नहीं होती। तुम्हारे शरीर का रोआं-रोआं उसमे सम्मिलित रहता है। एक सूक्ष्म कंपन, एक सूक्ष्म सिहरन पूरे शरीर पर फैल जाती है। और उसके साथ पूरा शरीर एकाग्र हो जाता है। और जब छींक तो सारा शरीर एक राहत महसूस करता है। विश्राम अनुभव करता है।

लेकिन छींक के साथ सजगता रखनी कठिन है। और यदि तुम उसमें सजगता जोड़ दोगे तो छींक नहीं आएगी। और यदि छींक आए तो जानना कि तुम सजग नहीं हो।

तो तुम्हें सजग रहना पड़ेगा।

''छींक के आरंभ में....।''

क्योंकि छींक यदि आ ही गयी तो कुछ नहीं किया जा सकता है। तीन यदि चल चुका तो तुम अब उसे बदल नहीं सकते हो। यंत्र चालू हो गया। ऊर्जा अब बाहर जाने के रास्ते पर है; उसे अब रोका नहीं जा सकता है। क्या तुम छींक को बीच में रोक सकते हो। तुम उसे बीच में नहीं रोक सकते हो।

आरंभ में ही सजग हो जाओ। जि क्षण तुम्हें उतैजना अनुभव हो, लगे की छींक आने वाली है। तभी सावचेत हो जाओ। अपनी आंखे बंद कर लो और ध्यानस्थ हो जाओ। अपनी समग्र चेतना को उस बिंदू पर ले जाओ जहां छींक की उत्तेजना अनुभव होती हो। ठीक आरंभ में ही सजग हो जाओ। छींक गायब हो जायेगी। और चूंकि छींक में तुम्हारा सारा शरीर सम्मिलित है, पूरा संयंत्र सम्मिलित है—और तुम उसी क्षण से सजग हो—वहां मन नहीं होगा। विचार नही होगा। ध्यान नहीं होगा। छींक में विचार ठहर जाते है।

यही कारण है कि अनेक लोग सुँघनी पसंद करते है। यह उन्हें निर्भार कर देता है। उनका मन ज्यादा विश्राम पूर्ण हो जाता है। क्यों? क्योंकि क्षण भर के लिए विचार ठहर जाते है। सुँघनी उन्हें निर्विचार की एक झलक देती है। सुँघनी सूंघने से जो छींक आती है। उसमे वह मन नी रह जाते है। शरीर ही हो जाते है। एक क्षण के लिए सिर विदा हो जाता है। और उन्हें बहुत अच्छा लगता है।

अगर तुम सुँघनी के आदी हो जाओ तो उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। यह धूम्रपान से भी ज्यादा गहरा व्यसन है; धूम्रपान उसके सामने कुछ भी नहीं है। सुँघनी ज्यादा गहरे जाती है। क्योंकि धूम्रपान सचेतन है और छींक अचेतन हे। इसलिए धूम्रपान छोड़ने से भी ज्यादा कठिन सुँघनी छोड़ना है। और धूम्रपान को बदलकर कोई दूसरा व्यसन ग्रहण किया जा सकता है। धूम्रपान के पर्याय है, लेकिन सुँघनी के पर्याय नहीं है। कारण यह है कि छींक सच में शरीर है, धूम्रपान के पर्याय है। लेकिन सुँघनी के पर्याय नहीं है। कारण यह है कि छींक सच में शरीर की एक अनूठी घटना है। इसके जैसी दूसरी चीज केवल काम कृत्य है, संभोग है।

शरीर शास्त्र की भाषा में जो लो सोचते है वे कहते है, कि संभोग कर्मेंद्रिय द्वारा छींकने जैसा ही है। और दोनों में समानता है। यद्यपि यह शत-प्रतिशत सही नहीं है। क्योंकि संभोग में और भी बहुत सी बातें सम्मिलित है। लेकिर आरंभ में,सिर्फ आरंभ में समानता है। तुम कुछ चीज नाक से बाहर निकलते हो और राहत महसूस करते हो। वैसे ही कुछ चीज कर्मेंद्रिय से बाहर निकालते हो और राहत अनुभव करते हो। दोनों ही कृत्य गैर-स्वैच्छिक है।

तुम संभोग में संकल्प के द्वारा नहीं उतर सकते हो। अगर कोशिश करोगे तो निष्फलता हाथ आयेगी। विशेषकर पुरूष तो जरूर निष्फल होगे। क्योंकि उनकी कर्मेंद्रिय को कुछ करना पड़ता है। पुरूष की कर्मेंद्रिय सक्रिय है। लेकिन तुम चाह कर उसे सक्रिय नहीं कर सकते हो। तुम जितनी चेष्टा करोगे, उतना ही असंभव होता जायेगा। यह अपने आप होता है। इसे तुम सचेत होकर नहीं कर सकते हो।

यही कारण है कि पश्चिम में संभोग एक समस्या बन गया है। पिछली आधी सदी के दौरान पश्चिम में काम संबंधी ज्ञान बहुत विकसित हुआ है। और हर एक आदमी इसके संबंध में इतना सचेत है कि संभोग अधिकाधिक असंभव हो रहा है।

अगर तुम सचेत हो तो संभोग असंभव हो जाएगा। अगर कोई व्यक्ति संभोग के समय सचेत रहे, तो वह जितना सचेत होगा उतना ही उसके लिए संभोग कठिन होगा। उसकी जननेंद्रिय में उत्तेजना ही नहीं होगी। उसे प्रयास से नहीं किया जा सकता है। और तुम जितना अधिक प्रयास करोगे उतनी ही मुश्किल हो जाएगी।

इस विधि का उपयोग काम-संभोग में भी किया जा सकता है। आरंभ में हीं, जब तुम्हें उतैजना आती मालूम हो, लेकिन वह अभी आयी नहीं हो, सिर्फ उसकी तरंगें मालूम पड़ती हो। तभी तुम सावचेत हो जाओ। तरंगें खो जायेगी। और वही ऊर्जा सजगता में गति कर जाएगी।

तंत्र ने इसका उपयोग किया है। तंत्र ने इसका कई ढंग से उपयोग किया है। एक सुंदर नग्न स्त्री ध्यान के विषय में रूप में बैठी होगी। और साधक उन नग्न स्त्री के सामने बैठकर उसके शरीर उसके रूप और अंग-सौष्ठव पर ध्यान करेगा। और अपने काम-केंद्र पर उतैजना उठने की प्रतीक्षा करेगा। और ज्यों ही जरा सी उत्तेजना महसूस होगी। वह अपनी आंखें बद कर लेगा। और उस स्त्री को भूल जायेगा। वह साध आंखें बंद कर लेगा और उत्तेजना के प्रति सजग हो जायेगा। और तब काम उर्जा सजगता में रूपांतरित हो जाती है। उसे नग्न स्त्री पर तभी तक ध्यान करना है जहां उत्तेजना महसूस हो। उसके बाद उसे आँख बद कर अपनी उत्तेजना पर आ जाना है। और वहीं सजग रहना है। ठीक वैसे ही जैसे छींक के प्रति किया जा सकता है।

और यह कौंध सी क्यों घटित होती है? कारण यह है कि वहां मन नहीं है। बुनियादी बात यह है कि अगर मन नहीं है। और तुम सजग हो, तो सतोरी घटित होगी;तुम्हें समाधि की पहली झलक मिलेगी।

विचार ही बाधा है। किसी भी ढंग से यदि विचार विलीन हो जाए तो बात बन जाती है। लेकिन सजगता के लिए विचार का विदा होना जरूरी है। विचार नींद में भी विलीन हो जाते है। तुम्हारे मूर्छित हो जाने पर भी विचार ठहर जाते है। इन हालातों में भी विचार विदा हो जाता है। लेकिन तब विचार के पीछे जो तत्व छिपा है उसके प्रति सजगता नहीं रहती है। इसलिए मैं ध्यान को निर्विचार चेतना कहता हूं। तुम निर्विचार और मूर्च्छित एक साथ हो सकते हो। लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है। और तुम विचार के साथ सचेतन भी हो सकते हो; वह तुम हो ही। इन दो चीजों को, चेतना और निर्विचार को इकट्ठा करो; जब वे मिलते है तो ध्यान घटित होता है,ध्यान का जन्म होता है।

और तुम इसका प्रयोग छोटी-छोटी चीजों के साथ भी कर सकते हो। सच तो यह है कि कोई भी चीज छोटी नहीं है। एक छींक भी अस्तित्वगत घटना है। अस्तित्व में कुछ भी बड़ा नहीं है, कुछ भी छोटा नहीं है। एक नन्हा सा परमाणु भी पूरे जगत को मिटा सकता है। और वैसे ही छींक है। जो कि अत्यंत छोटी चीज है। तुम्हें रूपांतरित कर सकती है।

तो चीजों को छोटी बड़ी की तरह मत देखो। न कुछ बड़ा है और न कुछ छोटा। अगर तुम्हारे पास गहरे देखने की दृष्टि है तो बहुत छोटी चीजें भी महत्वपूर्ण हो सकती है। परमाणुओं के बीच में ब्रह्मांड छिपे है। और तुम नहीं कह सकते हो कि परमाणु और बह्मांड़ में कौन बड़ा है। और कौन छोटा है। एक अकेला परमाणु अपने आप में ब्रह्मांड है, और बड़े से बड़ा बह्मांड़ भी परमाणुओं के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

''छींक के आरंभ में, भय में......।''

जब तुम भयभीत अनुभव करते हो और भय प्रवेश करता है, जब तुम भय को प्रवेश करते देखो, ठीक उसी क्षण सजग हो जाओ। और भय विलीन हो जाएगा। बोध के साथ भय नहीं रह सकता है। जब तुम सावचेत हो तो भय भीत कैसे हो सकते? तुम तभी भयभीत होते हो जब होश खो देते हो। सच में कायर वह नह है जो डरा हुआ है; कायर वह है जो सोया हुआ है। और बहादुर वह है जो भय के क्षणों में बोध को जगा लेता है। और तब भय विदा हो जाता है।

जापान में वे योद्धा ओर को सजगता का प्रशिक्षण देते है। उनका बुनियादी प्रशिक्षण सजगता है। शेष सब चीजें गौण है। तलवार चलाना, तीर चलाना, सब गौण है।

झेन सदगुरू रिंझाई के संबंध में कहा जाता है कि वह कभी भी तीर चलाने में, तीन को ठीक निशाने पर मारने में सफल नहीं हुआ। उनका तीर सदा ही चूकता रहा। और वह महान धनुर्विद माने जाते थे।

तो पूछा जाता है कि रिंझाई सबसे महान धनुर्विद कैसे कहलाए। जब कि वे कभी लक्ष्य पर नहीं पहुंचे और सदा निशाना चूकते रहे। रिंझाई को मानने वाले कहते है: ''अंत नहीं आरंभ महत्वपूर्ण है। हम इसमे उत्सुक नहीं है कि तीर लक्ष्य पर पहुंच जाए। हम उसमें उत्सुक है जहां से तीन अपनी यात्रा शुरू करता है। हम रिंझाई में उत्सुक है। जब तीन धनुष से निकलता है तो वे सजग है; बस पर्याप्त है। परिणाम से कोई लेना-देना नहीं है।''

यह सूत्र कहता है: ''भय में चिंता में.....।''

जब तुम चिंता अनुभव करो, बहुत चिंताग्रस्त होओ। तब इस विधि का प्रयोग करो। इसके लिए क्या करना होगा? जब साधारणत: तुम्हें चिंता घेरती है। तब तुम क्या करते हो? सामान्यत: क्या करते हो? तुम उसका हल ढूंढते हो; तुम उसके उपाय ढूंढते हो। लेकिन ऐसा करके तुम और भी चिंताग्रस्त हो जाते हो, तुम उपद्रव को बढ़ा लेते हो। क्योंकि विचार से चिंता का समाधान नहीं हो सकता। विचार के द्वारा उसका विसर्जन नहीं हो सकता। कारण यह है कि विचार खुद एक तरह कि चिंता है। विचार करके दलदल और भी धँसते जाओगे। यह विधि कहती है। कि चिंता के साथ कुछ मत करो;सिर्फ सजग होओ। बस सावचेत रहो। मैं तुम्हें एक दूसरे झेन सदगुरू बोकोजू के संबंध मे एक पुरानी कहानी सुनाता हूं। वह एक गुफा में अकेला रहता था। बिलकुल अकेला लेकिन दिन में या कभी-कभी रात में भी, वह जोरों से कहता था, ''बोकोजू।'' यह उसका अपना नाम था और फिर वह खुद कहता, ''हां महोदय, मैं मौजूद हूं।'' और वहां कोई दूसरा नहीं होता था। उसके शिष्य उससे पूछते थे, ''क्यों आप अपना ही नाम पुकारते हो। और फिर खुद कहते हो, हां मौजूद हूं?

बोकोजू ने कहा, जब भी मैं विचार में डूबने लगता है। तो मुझे सजग होना पड़ता है। और इसीलिए मैं अपना नाम पुकारता है। बोकोजू। जिस क्षण मैं बोकोजू कहता हूं,और कहता हूं कि हां महाशय, मैं मौजूद हूं, उसी क्षण विचारण, चिंता विलीन हो जाती है।

फिर अपने अंतिम दिनों में, आखरी दो-तीन वर्षों में उसके कभी अपना नाम नहीं पुकारा, और न ही यह कहा कि हां, मैं मौजूद हूं। तो शिष्यों ने पूछा, गुरूदेव, अब आप ऐसा क्यों करते है। बोकोजू ने कहा: '' अब बोकोजू सदा मौजूद रहता है। वह सदा ही मौजूद है। इसलिए पुकारने की जरूरत रही। पहले मैं खो जाया करता था। और चिंता मुझे दबा लेती थी। आच्छादित कर लेती थी। बोकोजू वहां नहीं होता था। तो मुझे उसे स्मरण करना पड़ता था। और स्मरण करते ही चिंता विदा हो जाती है।

इसे प्रयोग करो। बहुत सुंदर विधि है। अपने नाम का ही प्रयोग करो। जब भी तुम्हें गहन चिंता पकड़े तो अपना ही नाम पुकारों—बोकोजू या और कुछ, लेकिन अपना ही नाम हो—और फिर खुद ही कहो कि हां महोदय, मैं मौजूद हूं। और तब देखो

कि क्या फर्क है। चिंता नही रहेगी। कम से कम एक क्षण के लिए तुम्हें बादलों के पार की एक झलक मिलेगी। और फिर वह झलक गहराई जा सकती है1 तुम एक बार जान गए कि सजग होने पर चिंता नहीं रहती। विलीन हो जाती है। तो तुम स्वयं के संबंध में, अपनी आंतरिक व्यवस्था के संबंध में गहन बोध को उपलब्ध हो गए।

''खाई-खड्ड के कगार पर, युद्ध से भागने पर, अत्यंत कुतूहल में, भूख के आरंभ में और भूख के अंत में। सतत बोध रखो।''

किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। भूख लगी है, सजग हो जाओ। जब तुम्हें भूख महसूस होती है। तो तुम क्या करते हो। तुम्हें क्या होता है? जब तुम्हें भूख लगती है तो तुम उसे कभी ऐसे नहीं देखते कि तुम्हें कुछ हो रहा है; तुम भूख ही हो जाते हो। तब तुम समझते हो कि मैं भूख हूं। ऐसा ही लगता है कि मैं भूख हूं। लेकिन तुम भूख नहीं हो। तुम्हें सिर्फ भूख का बोध होता है। भूख कहीं परिधि पर घटित होती है। और तुम केंद्र हो; तुम्हें भूख घटित हो रही है। तुम तब भी थे जब भूख नहीं थी। और तुम जब भी रहोगे जब भूख नहीं होगी। भूख एक घटना है; वह तुम्हें घटित हो रही है।

उसके प्रति सजग होओ। तब तुम भूख से तादात्म्य नहीं करोगे। अगर तुम्हें भूख लगी है तो उसके प्रति सजग होओ। भूख उतनी ही तुम्हें दूर मालूम पड़ेगी। और जितनी सजगता कम होगी भूख उतनी ही पास मालूम पड़ेगी। और अगर तुम बिलकुल सजग नहीं हो तो तुम ठीक केंद्र पर अनुभव करोगे कि मैं भूख हूं। सजग होते ही भूख तुम से दूर हट जाती है। भूख वहां है और तुम वहां हो। भूख विषय है; तुम साक्षी हो।

इसी विधि के लिए उपवास का प्रयोग किया जा सकता है। और जैन सिर्फ उपवास कर रहे है, इस विधि के बिना ही उपवास कर रहे है। तब यह मूढ़ता है। तब तुम सिर्फ भूखे मर रहे हो। और इससे कोई लाभ नहीं मिल सकता है। तुम महीनों भूखे रह सकते हो। और भूख से जुड़े रह सकते हो। कि मैं भूख हूं। तब वह व्यर्थ है, हानिकर है।

उपवास करने की कोई जरूरत नहीं है। तुम रोज ही भूख को अनुभव कर सकते हो। लेकिन कठिनाइयां है। और इसीलिए उपवास उपयोगी हो सकता है। सामान्यत: हम भूख लगने के पहले ही अपने को भोजन से भर लेते है। आधुनिक संसार मे भूख लगने की जरूरत ही नहीं पड़ती है। तुम्हारे भोजन के समय निश्चित है। और तुम भोजन कर लेते हो। तुम कभी नहीं पूछते कि शरीर को भूख लगी है। या नहीं; निश्चित समय पर तुम भोजन कर लेते हो। नहीं तुम कहोगे की जब एक बजता है तो मुझे भूख लग जाती है। वह झूठी भख हो सकती है। वह इसलिए लगती है क्योंकि यह तुम्हारे खाने का समय है, एक बजा है। किसी दिन एक खेल करो; अपनी पत्नी या अपने पति को कहो कि घड़ी का समय बदल दे। अभी बाहर बजा है और घड़ी एक का समय बता रही है। तुम्हें तुरंत भूख लग जाती है। तुम्हें घड़ी देख कर भूख लगती है। यह कृत्रिम भूख है। झूठी भूख है; यह भूख सच्ची नहीं है।

इसीलिए उपवास सहयोगी हो सकता है। अगर तुम उपवास करोगे तो दो तीन दिन तक झूठी भूख मालूम होगी। तीसरे या चौथे दिन के बाद ही सच्ची भूख का पता चलेगा। तब वह मांग तुम्हारे शरीर की होगी। मन की नहीं। जग मन मांग करता है। तो वह झूठी मांग है, शरीर की मांग ही सच्ची होती है। और जब तुम सच्ची भूख के प्रति सजग होते हो तो अपने शरीर से सर्वथा भिन्न हो जाते हो। भूख एक शारीरिक घटना है। और जब एक बार तुम जान लेते हो कि भूख मुझसे भिन्न है, मैं उसका साक्षी हूं, तो तुम शरीर के पार चले गए।

लेकिन तुम किसी भी चीज का उपयोग कर सकते हो। ये तो उदाहरण मात्र है। यह विधि अनेक ढंगों से प्रयोग में लाई जा सकती है। तुम अपना अलग ढंग भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन किसी एक ही चीज पर सतत प्रयोग करते रहो। अगर तुम भूख के साथ प्रयोग कर रह हो तो कम से कम तीन महीने तक भूख के साथ प्रयोग करो। तो ही तुम किसी दिन शरीर से तादात्म्य तोड़ सकेत हो। रोज-रोज विधि मत बदलो, क्योंकि विधि का गहरे जाना जरूरी है। तीन महीने के लिए किसी विधि को चुन लो और उससे लगन से लगे रहो। विधि का प्रयोग करो; और प्रयोग जारी रखो।

और सदा स्मरण रखो कि आरंभ में बोधपूर्ण होना है। बीच में बोधपूर्ण होना बहुत कठिन होगा। क्योंकि इस तादात्म्य के स्थापित होते ही कि मैं भूखा हूं। तुम उसे फिरा बदल नहीं सकोगे। मन के तल पर तुम बदलाहट कर सकत हो, तुम कह सकते हो कि नहीं , मैं भूख नहीं हूं, साक्षी हूं। लेकिन वह झूठ होगा। वह मन ही बोल रहा है। वह तुम्हारे प्राण नहीं बोल रहे हे। और यह भी स्मरण रहे कि तुम्हें यह कहना नहीं है कि मैं भूख नहीं हूं। यह भी मन का धोखा देने का ढंग है। तुम कह सकते हो: ''भूख है, लेकिन मैं भूखा नहीं हूं। मैं शरीर नहीं हूं। मैं ब्रह्म हूं।''

तुम्हें कुछ भी कहना नहीं है। तुम जो भी कहोगे गलत होगा। क्योंकि तुम गलत हो। यह दोहराना कि मैं शरीर हूं। किसी काम का नह है। तुम कहते रहो कि मैं शरीर हूं, क्योंकि तुम जानते हो कि मैं शरीर हूं। किसी काम का नहीं है। अगर तुम सच ही जानते हो कि मैं शरीर नहीं हूं, तो यह कहने की क्या जरूरत है। कोई जरूरत नहीं है, यह मूढ़ता मालूम होगी। बोधपूर्ण होओ,और तब उस बोध में यह भाव प्रगाढ़ होगा कि मैं शरीर नहीं हूं। यह विचार नहीं होगा, भाव होगा। यह तुम्हारे सिर की नहीं, तुम्हारे पूरे प्राणों की अनुभूति होगी। तुम दूरी महसूस करोगे। कि शरीर बहुत दूर है। और मैं उससे बिलकुल भिन्न हूं। और दोनों के मिश्रण की संभावना भी नहीं है। तुम दोनों को मिला नह सकते हो। शरीर-शरीर है, पदार्थ है; और तुम चैतन्य हो। वे दोनों साथ रह सकते है1 लेकिन एक दूसरे में घुल मिल नहीं सकते है। उनका मिश्रण नहीं हो सकता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-41

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—65 (ओशो)

''अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुतः किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानों।''
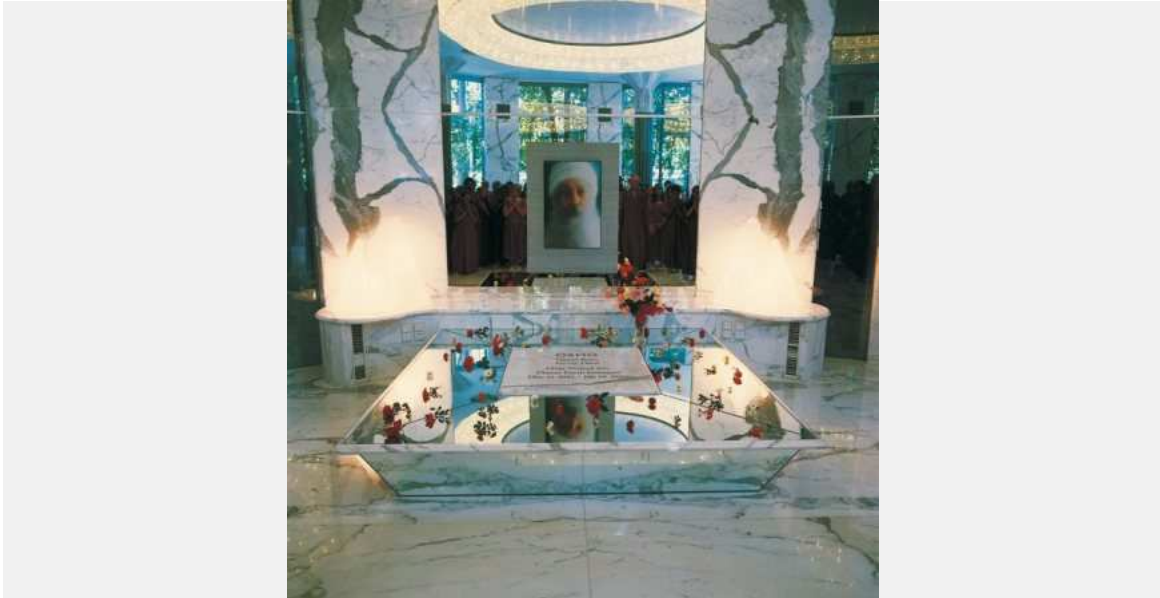
शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानों।''

यह तंत्र का एक बुनियादी संदेश है। तुम्हारे लिए यह बड़ी कठिन धारणा होगी; क्योंकि यह बिलकुल ही गैर-नैतिक धारणा है। मैं इसे अनैतिक नहीं कहूंगा। क्योंकि तंत्र को नीति-अनीति से कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र कहता है कि शुद्धि-अशुद्धि से कोई

मतलब नहीं है। इसकी देशना तुम्हें शुद्ध-अशुद्धि के उपर उठने में, दरअसल विभाजन के, द्वंद्व और द्वैत के पार जाने में सहयोग देने के लिए है।

तंत्र कहता है कि अस्तित्व अखंड है, अस्तित्व एक है। और जो द्वंद्व है वह सब-स्मरण रहे, सब के सब—मनुष्य के बनाए हुए है। द्वंद्व नैतिक-अनैतिक, पाप-पूण्य ये सारी धारणाएं मनुष्य ने निर्मित की है। ये मनुष्य की मान्यताएं है, ये यथार्थ नहीं है। क्या शुद्ध है और क्या अशुद्ध है। यह तुम्हारी व्याख्या पर निर्भर करता है।
नीत्से ने कहीं कहा है कि सब नैतिकता व्याख्या है।

तो कोई चीज इस देश में नैतिक हो सकती है और वही चीज पड़ोसी देश में अनैतिक कहो सकती है। एक ही चीज मुसलमान के लिए नैतिक हो सकती है और हिंदू के लिए अनैतिक हो सकती है। एक ही चीज ईसाई के लिए नैतिक और जैन के लिए अनैतिक हो सकती है। या जो चीज पुरानी पीढ़ी के लिए नैतिक था, नई पीढ़ी के लिए अनैतिक हो सकती है। यह दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। यह रुझान की बात है। बुनियादी रूप से ये एक मान्यता है। झूठ है। तथ्य बस तथ्य है। वह न नैतिक होता है, न अनैतिक होता है। न शुद्ध और न ही अशुद्ध।

अगर विभाजन संसार को ही नहीं बाँटता है, विभाजन करने वाले को भी बांट देता है। अगर तुम बांटते हो तो उसमें तुम खुद भी बंट जाते हो। और जब तक तुम बह्म विभाजनों को नहीं भूलते,तब तक तुम अपने आंतरिक विभाजनों को अतिक्रमण नहीं कर सकते हो। जो कुछ तुम संसार के साथ करते हो, तुम उसे अपने साथ पहले ही कर लेते हो।

सिद्ध योग के महान सदगुरू नरोपा ने कहा है: ‘’इंच भर विभाजन भी किया, तो स्वर्ग और नरक अलग-अलग हो जाते है। इंच भर का विभाजन। लेकिन हम बांटते है, नाम देते है, निंदा करते है। औचित्य सिद्ध करते है। आस्तित्व के शुद्ध तथ्य को देखो। और कोई नाम मत दो, कोई लेबल मत दो। केवल तभी तंत्र की देशना को समझ सकते हो। तथ्य को भला या बुरा मत कहो। तथ्य पर अपने चित को मत उतारों। ज्यों ही तुम तथ्य पर अपनी धारणा आरोपित करते हो, तुम झूठ का निर्माण कर लेते हो। अब यह तथ्य न रहा, सत्य न रहा; यह तुम्हारा प्रक्षेपण हो गया।

यह सूत्र कहता है: ‘’अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है। वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध की तरह मत जानो।

तंत्र कहता है कि जो चीज अन्य देशनाओं के लिए बहुत शुद्ध मानी जाती है, पुण्य मानी जाती है। वह हमारे लिए पाप है। क्योंकि उनकी शुद्धता की धारणा बाँटती है; उनके लिए कुछ शुद्ध है कुछ अशुद्ध।

अगर तुम किसी को संत कहते हो तो तुमने किसी को पापी बना दिया। अब तुम्हें कहीं ने कहीं किसी न किसी को निंदित करना होगा। क्योंकि संत पापी के बिना हो नहीं सकता। अब हमारे प्रयत्नों की व्यर्थता देखो। हम पापियों को मिटाने में लगे है। और हम एक ऐसी दुनियां की आशा करते है जहां पापी नहीं होगें। सिर्फ संत होगे। यह अर्थ हीन है। क्योंकि संत पापी के बिना नहीं हो सकता। वे एक ही सिक्के के दो पहलू है। तुम सिक्के के एक पहलू को नहीं मिटा सकते; दोनों साथ ही रहेगें। पापी और पुण्यात्मा भी संसार में विदा हो जायेंगे। लेकिन घबराओ मत; उन्हें विदा होने दो। वे किसी मूल्य के नहीं सिद्ध हुए है।

पापी और संत एक ही व्याख्या के, जगत के प्रति एक ही दृष्टिकोण के अंग है। यह दृष्टि कहता है कि यह शुभ है और वह अशुभ है। और तुम यह नहीं कह सकते कि यह अच्छा है। अगर तुम यह न कहो कि यह बुरा है। शुभ की परिभाषा के लिए अशुभ जरूरी है। शुभ अशुभ पर निर्भर करता है। पुण्य पाप पर निर्भर करता है। तुम्हारे महात्मा असंभव है, वे पापियों के बिना नहीं हो सकते। उन्हें तो पापियों का अहसान मानना चाहिए; वे उनके बिना जी नहीं सकते। वे चाहे पापियों की जितनी

भी निंदा क्यों न करे। वे और पापी एक ही घटना के अंग है। पापी संसार से तभी विदा होंगे जब महात्मा विदा होंगे। उनके पहल नहीं और पूण्य की धारण के बिना पाप नहीं टिक सकता है।

तंत्र कहता है कि तथ्य असली बात है; और व्याख्या झूठ है। व्याख्या मत करो।

वस्तुत: किसी को भी शुद्ध या अशुद्ध सत्य पर थोपी गई हमारी व्याख्याएं है। हमारे दृष्टिकोण है। इसे प्रयोग करो। यह विधि कठिन है, सरल नहीं है। कारण यह है कि हम द्वैत मूलक विचारण से इतने ग्रस्त है। उसमे इतने डूबे है कि हमें इसका भी पता नहीं रहता कि हम किसकी निंदा कर रहे है। और किसको उचित कह रहे है। अगर कोई व्यक्ति यहां धूम्रपान करने लगे तो तुम सचेतन रूप से कुछ जाने बिना ही उसे निंदित कर दोगे; तुम अपने अंतस में उसकी निंदा कर डालोगे। तुम्हारी दृष्टि में निंदा हो चाहे न हो। तुमने व्यक्ति पर नजर भी नहीं डाली हो, लेकिन तुमने निंदा कर दी।

यह विधि कठिन होगी। क्योंकि हमारी इतनी गहन आदत है। प्रगाढ़ है। तुम महज अपनी भाव-भंगिमा से, अपने बैठने-उठने से किसी को निंदित कर देते हो। किसी को सही बताते हो, और इसका होश भी नहीं रहता कि तुम क्या कर रहे हो। तुम जब किसी आदमी को देखकर मुस्कराते हो या नहीं मुस्कराते हो। जब तुम किसी को देखते हो या नहीं देखते हो, तुम उसकी उपेक्षा करते हो, तो तुम क्या कर रहे हो। तुम अपनी पंसद-नापसंद आरोपित कर रहे हो। जब तुम कहते हो कि कोई चीज सुंदर है तो तुम्हें किसी चीज को कुरूप कहना ही होगा। और यह बांटने वाली दृष्टि साथ ही साथ तुम्हें भी बांट रही है। तुम्हारे भीतर दो व्यक्ति हो जाएंगे।

अगर तुम कहते हो कि कोई व्यक्ति क्रोध मे है और क्रोध बुरा है तो तुम तब क्या करोगे। तुम कहोगे कि क्रोध बुरा है। तब समस्याएं खड़ी होंगी। क्योंकि तुम कहते हो कि यह बुरा है, मुझमें जो क्रोध है यह बुरा है। तब तुम अपने को दो व्यक्तियों में बांटने लगे। एक बुरा व्यक्ति होगा। पापी होगा। और दूसरा भला व्यक्ति होगा। महात्मा होगा। निश्चित ही, तुम अपने को भीतर का महात्मा मानोगे। और भीतर के पापी की निंदा करोगे। तुम दो में विभाजित हो गए। अब निरंतर लड़ाई चलेगी। संघर्ष होगा। अब तुम व्यक्ति न रहे, अब तुम भीड़ हो गये। तुम्हारे भीतर एक गृह युद्ध चलेगा। अब मौन गया, शांति गई। तुम तनाव और संताप से भर जाओगे। यही तुम्हारी हालत है। लेकिन तुम्हें पता नहीं है कि ऐसा क्यों है? विभाजित व्यक्ति शांत नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? तुम अपने शैतान को कहां रखोगे? तुम्हें उसे मिटाना होगा। लेकिन यह तुम ही हो; तुम उसे मिटा नहीं सकते। तुम दो नहीं हो; सच्चाई एक है, यथार्थ एक है। लेकिन अपनी बांटने वाल दृष्टि के कारण तुमने बाह्म यथार्थ को बांट दिया, और उसके अनुसार भीतरी यथार्थ भी बंट गया। इसलिए हर एक आदमी स्वयं से ही लड़ रहा है।

यह ऐसा ही है जैसे कि हम अपने ही दोनों को लड़ाएं। बायां हाथ दाएं हाथ से लड़े। दायां हाथ बाएं हाथ से लड़े। और ऊर्जा एक ही है। और बाएं दाएं हाथों मे एक ही ऊर्जा बह रही है। मैं ही दोनों हाथों में बह रहा हूं। और एक ही संघर्ष,एक झूठा संघर्ष खड़ा कर रहा हूं। कभी में अपने बाएं हाथ को धोखा दे सकता हूं, और मेरा दायां हाथ जीत सकता है। और कभी में दाएं हाथ को हरा सकता हूं। परंतु सच में दोनों मैं ही हूं।

तो तुम कितना ही सोचो कि मेरे भीतर का संत जीत गया और शैतान हार गया,स्मरण रहे कि तुम किसी भी क्षण जगहें बदल सकते हो, और तब संत नीचे होगा और शैतान ऊपर होगा। इससे ही भय पैदा होता है, असुरक्षा का भाव पैदा होता है; क्योंकि तुम जानते हो कि कुछ भी निश्चित नहीं है। तुम जाने हो कि इस समय मैं प्रेमपूर्ण हूं और अपनी घृणा को दबा दिया है। लेकिन तुम जानते हो कि घृणा क्षण भर में उपर आ जायेगी। और प्रेम नीचे दब जायेगा। क्योंकि भीतर तुम दो हो।

तंत्र कहता है कि खंड मत करो। और केवल तभी तुम जीत सकते हो।

अखंड कैसे हुआ जाए? निंदा मत करो; मत कहो कि यह अच्छा है और वह बुरा है। शुद्धता और अशुद्धता की सभी धारणाओं को विदा कर दो। संसार को देखो। लेकिन मत कहो कि यह क्या है। अज्ञानी रहो। बहुत बुद्धिमानी मत दिखाओं। कुछ धारणा मत बनाओ। चुप रहो; न निंदा करो और न प्रशंसा। अगर तुम संसार के संबंध में मौन रह सकते हो धीरे-धीरे यह मौन तुम्हारे भीतर भी प्रवेश कर जाएगा। और अगर बाहर का विभाजन समाप्त हो जाए तो भीतर का विभाजन भी समाप्ति हो जाएगा। क्योंकि दोनों साथ ही हो सकते है। लेकिन यह बात समाज के लिए खतरनाक है। यही कारण है कि तंत्र का दमन हुआ, उसे दबाया गया। समाज के लिए यह दृष्टि खतरनाक है। कुछ भी अनैतिक नहीं है। कुछ भी नैतिक नहीं है। कुछ शुद्ध नहीं है, कुछ भी अशुद्ध नहीं है। चीजें जैसी है वैसी है। एक सच्चा तांत्रिक यह नहीं कहेगा कि चोर बुरा है; वह इतना ही कहेगा कि वह चोर है; बस। और उसे चोर कहने में उसके मन में निंदा नहीं होगी। अगर कोई कहता है कि यह आदमी महान संत है तो तांत्रिक कहेगा; हां यह संत है। लेकिन उसे संत कहने में कोई मूल्यांकन नहीं है; वह यह नहीं कहेगा कि यह अच्छा है। यह कहेगा; ठीक है, यह संत है और वह चोर है। यह कहना ऐसा ही है जैसे यह कहना कि यह गुलाब है और वह गुलाब नहीं है। यह वृक्ष बड़ा है,वह छोटा है। कि रात काली है और दिन उजला है। इसमें कोई तुलना नहीं है।

लेकिन यह खतरनाक है। समाज एक की निंदा और दूसरे की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकता है। समाज नहीं रह सकता। क्योंकि समाज द्वैत पर खड़ा है। इसलिए तंत्र का दमन किया गया। उसे समाज विरोधी समझा गया। तंत्र समाज-विरोधी नहीं है। बिलकुल नहीं है। लेकिन अद्वैत कि दृष्टि सामाजिक धारणाओं का अतिक्रमण कर जाती है। वह समाज विरोधी नहीं है। वह समाज का अतिक्रमण है। समाज के पार उठ जाना है।

इसे प्रयोग करो। किसी मूल्यांकन के बिना, केवल स्वाभाविक तथ्यों के साथ, कि अमुक यह है और अमुक वह है। संसार में चलो। और धीरे-धीरे तुम्हें अपने भीतर एक अखंडता अनुभव होगी, तुम्हारे विपरीत शब्द, तुम्हारे विरोध, तुम्हारी अच्छाई-बुराई सब इकट्ठे हो जाएंगे। वे एक में मिल जाएंगे। और तुम एक इकाई बन जाओगे। तब न कुछ शुद्ध होगा और न कुछ अशुद्ध होगा। तुम यथार्थ को सीधे जानते हो।

''अन्य देशनाओं के लिए जो शुद्धता है वह हमारे लिए अशुद्धता ही है।''

तंत्र कहता है कि जो दूसरों के लिए बुनियादी बात है वह हमारे लिए जहर है। उदाहरण के लिए। अहिंसा पर आधारित देशनाएं है। जो कहती है कि हिंसा अशुभ है। और अहिंसा शुभ है। तंत्र कहता है कि हिंसा-हिंसा है। और अहिंसा-अहिंसा है। न कुछ बुरा है और न कुछ भला। कुछ देशनाएं ब्रह्मचर्य पर आधारित है। वे कहती है ब्रह्मचर्य शुभ है। लेकिन यह तथ्य मात्र है। इनका मूल्यों से कुछ लेना देना नहीं है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा कि ब्रह्मचारी अच्छा है। और जो कामवासना में डूबा है वह बुरा है। तंत्र यह कभी नहीं कहेगा। चीजें जैसी है तंत्र उन्हें वैसे ही स्वीकार करता है। और क्यों? सिर्फ तुम्हारे भीतर अखंडता निर्मित करने के लिए।

यह विधि तुम्हारे भीतर एक अखंडता निर्मित करने के लिए है। तुम्हारे भीतर एक समग्र,अखंड, द्वंद्व रहित ओर विरोध रहित सत्ता पैदा करने के लिए है। केवल तब ही मौन संभव है। जो व्यक्ति किसी वृति से भागता है वह कभी शांत नहीं हो सकता। कैसे हो सकता है? और जो अपने भीतर खंडित है, स्वयं से ही लड़ रहा है। वह जीत कैसे सकता है। यह असंभव है। तुम ही दोनों हो, फिर जीत किसकी होगी? किसी कि भी जीत नहीं होगी। तुम्हारी ही हार होगी। क्योंकि लड़ने में तुम्हारी ऊर्जा नष्ट होगी।

यह विधि तुम में एक अखंडता निर्मित करेगी। मूल्यों को जाने दो; निर्णय मत लो। जीसस ने कहीं कहा है: ''दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में भी निर्णय न लिया जाए।'' लेकिन यहूदियों के लिए इसे समझना असंभव हो गया। क्योंकि यहूदियों का सारा चिंतन नैतिकता पर निर्भर है। यह शुभ है और वह अशुभ है। जीसस इस उपदेश में—कोई

निर्णय मत लो। तंत्र की भाषा बोल रहे है। यदि उनकी हत्या कर दी गई, उन्हें सूली पर लटकाया गया, तो उसका कारण यह उपदेश था। उनकी दृष्टि तंत्र की दृष्टि थी: ''कोई निर्णय मत लो।''

तो मत कहो कि वेश्या बुरी है। कौन जानता है? और मत कहो कि महात्मा अच्छा है कौन जानता है? और अंतत: तो दोनों एक ही खेल के अंग है। वे एक दूसरे पर निर्भर है, परस्पर जुड़े है। इसलिए जीसस कहते है: कोई निर्णय मत लो। और यही शिक्षा इस सूत्र में है: 'दूसरे के संबंध में कोई निर्णय मत लो, ताकि तुम्हारे संबंध में निर्णय न लिया जा सके।'

अगर तुम कोई निर्णय नहीं लेते हो, कोई नैतिक दृष्टिकोण नहीं अपनाते हो तो, तथ्यों को वैसे ही देखते हो जैसे वे है। अपने हिसाब से उनकी व्याख्या नहीं करते हो, तो तुम्हारे संबंध में भी निर्णय नहीं लिया जाएगा।

तुम पूरी तरह रूपांतरित हो गए हो। अब कोई सत्ता तुम्हारे संबंध में निर्णय नहीं लेगी; उसकी जरूरत न रही। तुम स्वयं दिव्य हो गए; तुम स्वयं परमात्मा हो गए।

तो साक्षी बनो, न्यायाधीश नहीं।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-41

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—66 (ओशो)

'मित्र और अजनबी के प्रति, मान और अपमान में, असमता और समभाव रखो।'

'मित्र और अजनबी के प्रति, मान और अपमान में, असमता और समभाव रखो।'—osho

'असमता के बीच समभाव रखो।' यह आधार है। तुम्हारे भीतर क्या घटित हो रहा है। दो चीजें घटित हो रही है। तुम्हारे भीतर कोई चीज निरंतर वैसी ही रहती है; वह कभी नहीं बदलती। शायद तुमने इसका निरीक्षण न किया हो। शायद तुमने अभी इसका साक्षात्कार न किया हो। लेकिन अगर निरीक्षण करोगे तो जानोंगे कि तुम्हारे भीतर कुछ है जो निरंतर वही का वही रहता है। उसी के कारण तुम्हारा एक व्यक्तित्व होता है। उसी के कारण तुम अपने को केंद्रित अनुभव करते हो; अन्यथा तुम एक अराजकता हो जाओगे।

तुम कहते हो; 'मेरा बचपन।' अब इस बचपन का क्या बच रहा है? यह कौन है जो कहता है: 'मेरा बचपन' यह मेरा, मुझे, मैं कौन है। तुम्हारे बचपन का तो कुछ भी शेष नहीं बचा है। यदि तुम्हारे बचपन के चित्र तुम्हें पहली दफा दिखाए जाये तो तुम उन्हें पहचान भी नहीं सकोगे। सब कुछ इतना बदल गया है। तुम्हारा शरीर अब वही नहीं है। उसकी एक कोशिश भी वही नहीं है।
शरीर शास्त्री कहते है कि शरीर एक प्रवाह है—सरित-प्रवाह। प्रत्येक क्षण अनेक पुरानी कोशिकाएं मर रही है। और अनेक नई कोशिकाएं बन रही है। सात वर्षों के भीतर तुम्हारा शरीर बिलकुल बदल जाता है। अगर तुम सत्तर साल जीने वाल हो तो इस बीच तुम्हारा शरीर दस बार बदल जायेगा। पूरा का पूरा बदल जाता है। प्रत्येक क्षण तुम्हारा शरीर बदल रहा है।

और तुम्हारा मन बदल रहा है। जैसे तुम अपने बचपन के शरीर का चित्र नहीं पहचान सकते हो वैसे ही यदि तुम्हारे बचपन के मन का चित्र बनाना संभव हो तो तुम उसे भी नहीं पहचान पाओगे। तुम्हारा मन तो तुम्हारे शरीर से भी ज्यादा प्रवाहमान है। हर एक क्षण में बदल जाता है। एक क्षण के लिए भी कुछ स्थाई नहीं है। ठहरा हुआ नहीं है। मन के तल पर सुबह तुम कुछ थे; शाम तुम बिलकुल ही भिन्न व्यक्ति हो जाते हो।

जब भी कोई व्यक्ति बुद्ध से मिलने आता था तो उसे विदा होते समय बुद्ध उससे कहते थे: ''स्मरण रहे, जो व्यक्ति मुझ से मिलने आया था वही आदमी वापस नहीं जा रहा है। तुम अब बिलकुल भिन्न आदमी हो। तुम्हारा मन बदल गया है।

बुद्ध जैसे व्यक्ति से मिलकर तुम्हारा मन वही नहीं रह सकता, उसकी बदलाहट अनिवार्य है—वह बदलाहट चाहे भले के लिए हो या बुरे के लिए। तुम एक मन लेकिर वही गये थे; तुम भिन्न ही मन लेकिर वहां सक वापस आओगे। कुछ बदल गया है। कुछ नया उससे जुड़ गया है। कुछ पुराना उससे अलग हो गया है।

और अगर तुम किसी से नहीं भी मिलते हो, बस अपने साथ अकेले रहते हो, तो भी तुम वही नहीं रह सकते। पल-पल नदी वह रही है। हेराक्लाइटस ने कहा है कि तुम एक ही नदी में दो बार नहीं प्रवेश कर सकते। यही बात मनुष्य के संबंध में सही है। तुम एक ही मनुष्य से दो बार नहीं मिल सकते । असंभव है यह। और इसी तथ्य के कारण—और इसके प्रति हमारे अज्ञान के कारण—हमारा जीवन संताप बन जाता है। क्योंकि तुम्हारी अपेक्षा रहती है। कि दूसरा सदा वही रहेगा।

तुम अपने शरीर को देखो, वह बदल रहा है। तुम अपने मन को समझो, वह भी बदल रहा है। कुछ भी वही का वही नहीं रहता है। वहां तक की लगातार दो क्षणों के लिए भी कुछ तुमने अपने मित्र को अजनबी की भांति नहीं देखा है तो तुमने देखा ही नहीं है। अपनी पत्नी को देखा; क्या तुम सच ही उसको जानते हो? हो सकता है तुम उसके साथ बीस वर्षों से, या उसे भी ज्यादा समय से रह रहे हो। लेकिन वह अजनबी ही रहती है। तुम जितना ज्यादा उसके साथ रहते हो उतनी ही संभावना है अपरिचित ही रहो। तुम उससे कितना ही प्रेम करते हो उससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।

सच तो यह है कि तुम उसे जितना ज्यादा प्रेम करोगे वह उतनी ही रहस्यमय मालूम पड़ेगी। कारण यह है कि तुम उसे जितना ज्यादा प्रेम करोगे। तुम उतने ही अधिक गहरे उसमे प्रवेश करोगे। और तुम्हें मालूम पड़ेगा कि वह कितनी नदी जैसी प्रवाहमान है, परिवर्तनशील है, जीवंत है और प्रति पल नई और भिन्न है।

अगर तुम गहरे नहीं देखते हो, अगर तुम इसी तल से बंधे हो कि वह तुम्हारी पत्नी है, कि उसका यह नाम है, तो तुमने एक हिस्से को पकड़ लिया है, और उस हिस्से को तुम अपनी पत्नी की भांति देखते रहते हो। और तब

जब भी तुम्हारी पत्नी में कुछ बदलाहट होगी, वह उस बदलाहट को तुमसे छिपायेगी। जब वह प्रेमपूर्ण नहीं होगी तब भी तुमसे प्रेम का अभिनय करेगी, क्योंकि तुम्हें उससे प्रेम की अपेक्षा है। और तब उसके कुछ नकली और झूठ रूप तुम्हारे सामने होंगे। क्योंकि उसे बदलने कि इजाजत नहीं है। उसे स्वयं होने की इजाजत नहीं है। कुछ ऊपर से लादा जा रहा है और तब सारा संबंध मुर्दा हो जाता है।

तुम जितना ही प्रेम करोगे, उतना ही परिवर्तन का पहलू दिखाई देगा। तब तुम प्रत्येक क्षण अजनबी हो; जब तुम भविष्यवाणी नहीं कर सकते कि तुम्हारा पति कल सुबह कैसे भविष्यवाणी कर सकती है। भविष्यवाणी तो तभी हो सकती है। यदि तुम्हारा पति मुर्दा हो; तब तुम भविष्यवाणी कर सकती है। केवल वस्तुओं के संबंध में भविष्यवाणी हो सकती है। व्यक्तियों के संबंध में भविष्यवाणी नहीं हो सकती। अगर किसी व्यक्ति के संबंध में भविष्यवाणी की जा सके तो जान लो कि वह मुर्दा है, वह मर चुका है। उसका जीवित होना झूठ है। इसीलिए उसके बारे में भविष्यवाणी हो सकती है। व्यक्तियों के संबंध में कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती है। क्योंकि बदलाहट संभव है।

अपने मित्र को अजनबी की भांति देखो; वह अजनबी ही है। और डरों मत। हम अजनबी से डरते है; इसलिए हम भूल जाते है। कि मित्र भी अजनबी है। अगर तुम अपने मित्र में भी अजनबी को देख सको तो तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी। क्योंकि अजनबी से तुम अपेक्षा नहीं होती है। मित्र के संबंध में तुम सदा निश्चित होते है। तुम उससे जो कुछ चाहोगे। वह नहीं होता है। इससे ही अपेक्षा पैदा होती है। और निराशा हाथ लगती है। क्योंकि कोई व्यक्ति तुम्हारी अपेक्षाओं को नहीं पूरा कर सकता है। कोई यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। सब यहां अपने अपेक्षाएं पूरी करने के लिए है। कोई तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। लेकिन तुम्हें अपेक्षा है कि दूसरे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करें। और दूसरों को अपेक्षा है कि तुम उनकी अपेक्षाएं पूरी करो। और तब कलह है, संघर्ष है, हिंसा है

और दुःख है।

अपने मित्र को अजनबी की भांति देखो; वह अजनबी ही है। और डरों मत। हम अजनबी से डरते है; इसलिए हम भूल जाते है कि मित्र भी अजनबी है। अगर तुम अपने मित्र में भी अजनबी को देख सको तो तुम्हें कभी निराशा नहीं होगी। क्योंकि अजनबी से तुम्हें अपेक्षा नहीं होती है। मित्र के संबंध में तुम सदा निश्चित होते हो कि तुम उससे जो कुछ चाहोगे वह पूरा करेगा; इससे ही अपेक्षा पैदा होती है। और निराशा हाथ लगती है। क्योंकि कोई व्यक्ति तुम्हारी अपेक्षाओं को नहीं पूरा कर सकता है। कोई यहां तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करने के लिए नहीं है। सब यहां अपनी अपेक्षा है। कि दूसरे तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करें,और दूसरों को अपेक्षा है कि तुम उनकी अपेक्षाएं पूरी करो। और कब कलह है, संघर्ष हिंसा है और दूःख है।

अजनबी को सदा स्मरण रखो। मत भूलों कि तुम्हारा घनिष्ठ मित्र भी अजनबी है। दूर से भी दूर है। अगर यह भाव, यह ज्ञान घटित हो जाए, तो फिर तुम अजनबी में भी मित्र को देख सकते हो। यदि मित्र अजनबी हो सकता है तो अजनबी भी मित्र हो सकता है।

किसी अजनबी को देखो; उसे तुम्हारी भाषा नहीं आती है। वह तुम्हारे देश का नहीं है। तुम्हारे धर्म का नहीं है। तुम्हारे रंग का नहीं है। तुम गोरे हो और वह काला है। या तुम काले हो और वह गोरा है। भाषा के जरिए तुम्हारे और उसके बीच कोई संवाद संभव नहीं है। तुम्हारे और उसके पूजा स्थल भी एक नहीं है। राष्ट्र, धर्म, जाति, वर्ण, रंग—कहीं भी कोई समान भूमि नहीं है। वह बिलकुल अजनबी है। लेकिन उसकी आंखों में झांको, वहां एक ही मनुष्यता मिलेगी। वह समान भूमि है। उसके भीतर वहीं जीवन है जो तुममें है; वह समान भूमि है। और

अस्तित्व भी वहीं है; वह तुम दोनों के मित्र होने का आधार है। तुम उसकी भाषा भले हीन समझो, लेकिन उसको तो समझ सकते हो। मौन से भी संवाद घटित होता है। उसकी आँखो में गहरे, झांकने भर से प्रकट हो सकता है।

और अगर तुम गहरे देखना जान लो तो शत्रु भी तुम्हें धोखा नहीं दे सकता; तुम उसके भीतर मित्र को देख लोगे। वह यह नहीं सिद्ध कर सता कि वह तुम्हारा मित्र नहीं है। वह तुमसे कितना ही दूर हो, तुम्हारे पास ही है; क्योंकि तुम उसी अस्तित्व की धारा में हो, उसी नदी में हो, जिसमे वह है। तुम दोनों अस्तित्व के तल पर एक ही जमीन पर खड़े हो।

और अगर वह भाव प्रगाढ़ हो तो एक वृक्ष भी तुमसे बहुत दूर नहीं है। तब एक पत्थर भी बहुत अगल नहीं है। एक पत्थर कितना अजनबी है। उसके साथ तुम्हारा कोई तालमेल नहीं है; उसके साथ संवाद की कोई संभावना नहीं है। लेकिन वहां भी वही अस्तित्व है; पत्थर का भी अस्तित्व है, वह भी अस्तित्व का अंश है। वह भी होने के जगत में भागीदार है। वह है। उसमें भी जीवन है। वह भी स्थान घेरता है; वह भी समय में जीता है। सूरज उसके लिए भी उगता है। जैसे तुम्हारे लिए उगता है। एक दिन वह नहीं था। जैसे तुम नहीं थे। और एक दिन जैसे तुम मर जाओगे। वह भी मर जाएगा। पत्थर भी एक दिन विदा

हो जाएगा।

अस्तित्व में हम मिलते है; यह मिलन ही मित्रता है। व्यक्तित्व में हम भिन्न है, अभिव्यक्ति में हम भिन्न है; लेकिन तत्वत: हम एक ही है। अभिव्यक्ति में रूप में हम अजनबी है; उस तल पर हम एक दूसरे के कितने ही करीब आएं, लेकिन दूर ही रहेंगे। तुम पास-पास बैठ सकते हो, एक दूसरे को आलिंगन में ले सकत हो; लेकिन इससे ज्यादा निकट आने की संभावना नहीं है। जहां तक तुम्हारे बदलते व्यक्तित्व का संबंध है, तुम एक नहीं हो सकते हो। तुम कभी समान नहीं हो। तुम सदा भिन्न हो, अजनबी हो। उस तल पर तुम नहीं मिल सकते क्योंकि मिलने के पले ही तुम बदल जाते हो। मिलन की कोई संभावना नहीं है। जहां तक शरीर का संबंध है, मन का संबंध है, मिलन संभव नहीं है। क्योंकि इसके पहले कि तुम मिलो तुम वही नहीं रहते।

क्या तुमने कभी ख्याल किया है। तुम्हें किसी के प्रति प्रेम उमगता है। गहन प्रेम तुम उस प्रेम से भर जाते हो; लेकिन जैसे ही तुम जाते हो और कहते हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं, वह प्रेम विलीन हो जाता है। क्या तुमने निरीक्षण किया है कि वह प्रेम अब नहीं रहा, उसकी स्मृति भर शेष है। अभी वह था और अभी वह नहीं है। तुमने उसे अभिव्यक्त किया, उसे प्रकट किया; यही तथ्य उसे परिवर्तन के जगत में ले आया। जब उसकी प्रतीति हुई थी, हो सकता है वह प्रेम तुम्हारे प्राणों का हिस्सा रहा हो; लेकिन जब तुम उसे अभिव्यक्त करते हो तो तुम उसे समय और परिवर्तन के जगत में ले आते है; अब वह सरित प्रवाह में प्रविष्ट हो रहा है। जब तुम कहते हो कि मैं तुम्हें करता हूं, तब तक शायद वह बिलकुल ही गायब हो चुका हो। यह बहुत कठिन है; लेकिन अगर तुम निरीक्षण करोगे तो यह तथ्य बन जाएगा।

तब तुम देख सकते हो कि मित्र में अजनबी है और अजनबी ने मित्र है। और तब तुम 'असमानता के बीच समभाव' रख सकते हो। परिधि पर तुम बदलते रहते हो, लेकिन केंद्र पर, प्राणों में वही बन रहते हो।

'मान और अपमान में......।'

कौन सम्मानित होता है। और कौन अपमानित होता है? तुम? कभी नहीं। जो सतत बदल रहा है और जो तुम नहीं हो, सिर्फ वहीं मान अपमान अनुभव करता है। कोई तुम्हारा सम्मान करता है। और अगर तुमने समझा कि

यह व्यक्ति मेरा सम्मान कर रहा है। तो तुम कठिनाई में पड़ोगे। वह तुम्हें नहीं, तुम्हारी किसी खास अभिव्यक्ति को, किसी रूप विशेष को सम्मानित कर रहा है। वह तुम्हें कैसे जान सकता है? तुम स्वयं अपने को नहीं जानते हो। वह तुम्हारे सतत बदलते व्यक्तित्व के किसी रूप विशेष का सम्मान कर रहा हूं; वह तुम्हारी किसी अभिव्यक्ति का सम्मान कर रहा है। तुम दयावान हो, प्रेमपूर्ण हो; वह उसका सम्मान कर रहा है। लेकिन वह दया, वह प्रेम परिधि पर है। अगले क्षण तुम घृणा से भर सकते हो। हो सकता है फूल न रहें; कांटे ही कांटे हों। तुम इतने प्रसन्नन रहो; उदास और दुःखी होओ। तुम कठोर हो सकते हो, क्रोध में हो सकते हो। तब वह तुम्हारा अपमान करेगा। और हो सकता है। और दूसरे दिन साधु कर सकते है। आज वे तुम्हें महात्मा कह सकते है। और कल वे तुम्हारे खिलाफ हो सकते हो। तुम्हें पत्थर मार सकते है।

यह क्या है? वे तुम्हारी परिधि से परिचित होते है। वे कभी तुमसे परिचित नहीं होते। यह स्मरण रहे कि जो कुछ भी कह रहे है। वह तुम्हारे संबंध में नहीं है। तुम बाहर छूट जाते हो; तुम परे रह जाते हो। उसकी निंदा, उसकी प्रशंसा,वह जो भी करते है, उसका तुम्हारे साथ कोई भी संबंध नहीं है।

गांव में एक लड़की गर्भवती हो गई। उसने अपने मां बाप से कहा कि उसके गर्भ के लिए यह साधु ही जिम्मेदार है। और सारा गांव उसके खिलाफ उठ खड़ा हुआ। लोग आए और उन्होंने उसके झोंपड़े में आग लगा दी। सुबह का समय था। और बड़ी सर्द सुबह थी—जाड़े की सुबह। उन्होंने नवजात शिशु को उस भिक्षु के ऊपर फेंक दिया। और लड़की के पिता ने भिक्षु से कहा: 'यह तुम्हारा बच्चा है; इसे सम्हालो।' भिक्षु ने इतना ही कहा: 'ऐसा है क्या?' और तभी बच्चा रोने लगा। तो भिक्षु भीड़ को भूल कर,बच्चे को सम्हालने लगा।

भीड़ भिक्षु के झोंपड़े को जलाकर वापस लौट गई। इधर बच्चे को भूख लगी, लेकिन भिक्षु के पास दूध खरीदने के पैसे नही थे। तो वह नगर में बच्चे के लिए भीख मांगने गया। लेकिन अब उसे कौन भीख देता? वह जहां भी गया, लोगों ने अपने घरों के दरवाजे बंद कर लिए। सब जगह उसे निंदा और गालियां ही मिली।

आखिर में भिक्षु उसी घर के सामने पहुंचा जो उस बच्चे की मां का घर था। वह लड़की बहुत संताप में थी। तभी उसे बच्चे के रोने की आवाज सुनाई दी। वह द्वार पर खड़ा भिक्षु कह रहा था। 'मुझे मत दो, मैं पापी हूं, लेकिन यह बच्चा तो पापी नहीं है। इसके लिए थोड़ा दूध दे दरो।' तब उस लड़की से नहीं रहा गया। उसने कबूल कर लिया कि बच्चे के असली पिता को छिपाने के लिए उसने इस भिक्षु का नाम लिया था। वह बिलकुल बेकसूर है।

अब पूरा नगर फिर साधु के पास जमा हो गया। लोग उसके पैरों में गिरकर क्षमा मांगने लगे। और लड़की के पिता ने आकर भिक्षु से बच्चे को वापस ले लिया और आंसुओं से भरी आंखों से कहा: 'ऐसा है क्या? आपने सुबह ही इनकार क्यों नही किया? कि यह बच्चा आपका नहीं है। भिक्षु ने केवल इतना ही कहा कि ऐसा है क्या?'

अगर तुम अनासक्त रहने का प्रयत्न करते हो तो तुम परिधि पर ही हो; तुम्हें अभी केंद्र का कुछ पता नहीं है। केंद्र अनासक्त है। वह सदा अनासक्त है। वह पार है; वह सदा अस्पर्शित है। नीचे कुछ भी घटे, यह केंद्र सदा अनछुआ ही रहता है। सदा कुंवारा ही रहता है।

तो परस्पर विरोधी स्थितियों में इस विधि का प्रयोग करो; और अपने भीतर उसे अनुभव करते चलो जो सदा समान है। जब कोई तुम्हारा अपमान करे तो अपने ध्यान को उस बिंदू पर ले जाओ जहां तुम सिर्फ उस आदमी को सुन रहे हो, बिना किसी प्रतिक्रिया के बस सुन रहे हो। यह अपमान की स्थिति है। फिर कोई तुम्हारा सम्मान कर रहा है। उसे भी सुनो, सिर्फ सुनो। निंदा-प्रशंसा, मान-अपमान, सब में सिर्फ सुनो। तुम्हारी परिधि बेचैन होगी,

उसे भी देखो। केवल देख बदलने की कोशिश मत करो। उसे देखो, और स्वयं केंद्र से जुड़े रहो। तब तुम्हें वह अनासक्ति उपलब्ध होगी जो आरोपित नहीं है। जो सहज है, स्वाभाविक है।

और एक बार तुमने इस सहज अनासक्ति की प्रतीति हो जाए तो फिर कुछ भी तुम्हें बेचैन नहीं कर सकेगा। तुम शांत बने रहोगे। संसार में कुछ भी होगा तुम अकंप बने रहोगे। तब कोई तुम्हारी हत्या भी करेगा तो सिर्फ शरीर ही स्पर्श करेगा। तुम अस्पर्शित रहोगे। तुम सबके पार रहोगे। और यह पार रहना ही तुम्हें अस्तित्व में प्रवेश देगा। वह पार रहना ही तुम्हें आनंद से, शाश्वत से, सत्य में प्रतिष्ठित करेगा।

शंकर कहते है कि मैं उस व्यक्ति को संन्यासी कहता हूं, जो जानता है कि क्या अनित्य है और क्या नित्य है। क्या चलायमान है और क्या अचल है। भारतीय दर्शन इसे ही विवेक कहता है। परिवर्तन और सनातन की पहचान ही विवेक है, बोध है।

तुम जो कुछ भी कर रहे हो, उसमे इस सूत्र का प्रयोग बड़ी गहराई के साथ और बड़ी सरलता के साथ किया जा सकता है। तुम्हें भूख लगी है; इसमे दोनों स्थितियों को स्मरण रखो। भूख की प्रतीति परिधि को होती है। क्योंकि परिधि को ही भोजन की जरूरत है। ईंधन की जरूरत है। तुम्हें भोजन की कोई जरूरत नहीं है; तुम्हें ईंधन की कोई जरूरत नहीं है। यह शरीर की जरूरत है।

स्मरण रहे, जब भी भूख लगती है। शरीर को लगती है। तुम बस उसके जानने वाल हो। अगर तुम नहीं होते तो भूख नहीं जानी जा सकती है। और अगर शरीर नहीं होता तो भूख नहीं होती। शरीर को भूख तो लग सकती है, लेकिन उसे उसका ज्ञान नहीं हो सकता है। और तुम जानते तो हो, लेकिन तुम्हें भूख नहीं लगती।

तो कभी मत कहो कि मुझे भूख लगी है। सदा यही कहो,और महसूस करने का प्रयास करो की किसे भूख लगी है। उपवास की विधि ध्यानी के यही स्थिति उत्पन्न करता है। की मेरा शरीर भूखा है। अपने जानने पर जोर दो। यह विवेक है। तुम बूढ़े हो, कभी मत कहो कि मैं बूढ़ा हूं, इतना ही कहो कि यह शरीर बूढा हो गया है। और तब मृत्यु के क्षण में तुम जान सकोगे की मैं नहीं मर रहा। यह शरीर मर रहा है। मैं केवल शरीर बदल रहा हूं। घर बदल रहा हूं। और अगर यह विवेक प्रगाढ़ हो तो किसी दिन अचानक बुद्धत्व घटित हो जाएगा।
ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-41

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—67 (ओशो)

'यह जगत परिवर्तन का है, परिवर्तन ही परिवर्तन का। परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।'

परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो–शिव

पहली बात तो यह समझने की है कि तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है, तुम्हारे अतिरिक्त जानने वाले के अतिरिक्त सब कुछ परिवर्तन है। क्या तुमने कोई ऐसी चीज देखी है। जो परिवर्तन न हो। जो परिवर्तन के अधीन न हो। यह सारा संसार परिवर्तन की घटना है।

हिमालय भी बदल रहा है। हिमालय का अध्यन करने वाले वैज्ञानिक कहते है कि हिमालय बढ़ रहा है। बड़ा हो रहा है। हिमालय संसार का सबसे कम उम्र का पर्वत है। वह अभी बच्चा है और बढ़ रहा है। वह अभी प्रौढ़ नहीं हुआ है। वह अभी उस अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है। जहां पहूंच कर ह्रास या गिरावट शुरू होती है। हिमालय बच्चे जैसा है। विंध्याचल संसार के सबसे पुराने पर्वतों में हैं। कुछ तो उसे दुनियां का सबसे पुराना पर्वत मानते है। सदियों से वह अपने बुढ़ापे के कारण क्षीण हो रहा है। मर रहा है।
तो इतना स्थिर और अडिग और दृढ़ मालूम पड़ने वाला हिमालय भी बदल रहा है। वह बस पत्थरों कीं नदी जैसा नहीं है। पत्थर होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। पत्थर भी प्रवाहमान है, बह रहा है। तुलनात्मक दृष्टि से सब कुछ बदल रहा है। लेकिन ऐसा सापेक्षत: है।

कोई भी चीज, जिसे तुम जान सकते हो बदलाहट के बिना नहीं है। मेरी बात खयाल में रहे। जिसे तुम जानते हो वह वस्तु नित्य बदल रही है। जाननेवाले के अतिरिक्त कुछ भी नित्य नहीं है। शाश्वत नही है। लेकिन जानने वाला सदा पीछे है। वह सदा जानता है; वह कभी जाना नहीं जाता। वह कभी आब्जेक्ट्स नहीं बन सकता; वह सदा सब्जैक्ट ही रहता है। तुम जो कुछ भी करते हो या जानते हो, जाननेवाला सदा उससे पीछे है। तुम उसे नहीं जान सकते हो।

और जब मैं कहता हूं कि तुम जाननेवाले को नहीं जान सकते, तो इससे परेशान मत होओ। जब मैं कहता हूं कि तुम उसे नहीं जान सकते हो तो उसका मतलब है कि तुम उसे विषय की तरह नहीं जान सकते हो। मैं तुम्हें देखता हूं , लेकिन मैं उसी तरह अपने को कैसे देख सकता हूं। यह असंभव है। क्योंकि ज्ञान के लिए दो चीजें जरूरी है। ज्ञाता और ज्ञेय। तो जब मैं तुम्हें देखता हूं तो तुम ज्ञेय हो और मैं ज्ञाता हूं। और दोनों के बीच ज्ञान सेतु की तरह है। लेकिन ज्ञान का यह सेतु कहां बनेगा। जब मैं अपने को ही देखता हूं। जब मैं अपने को ही जानने की कोशिश करता हूं। वहां तो केवल मैं ही हूं, पूरी तरह अकेला मैं हूं। दूसरा किनारा बिलकुल अनुपस्थित है। फिर सेतु कहां निर्मित किया जाए? स्वयं को जाना कैसे जाएं?

तो आत्मज्ञान एक नेति-नेति प्रक्रिया है। तुम अपने को सीधे-सीधे नहीं जान सकते; तुम सिर्फ ज्ञान के विषयों को हटाते जा सकते हो। ज्ञान के विषयों को एक-एक करके छोड़ते चले जाओ। और जब ज्ञान का कोई विषय न रह

जाए, जब जानने को कुछ भी न रह जाए। सिर्फ एक शून्य, एक खाली पन रह जाए—और यही ध्यान है। ज्ञान के विषयों को छोड़ते जाना—तब एक क्षण आता है जब चेतना तो है लेकिन जानने के लिए कुछ नहीं है। जानना तो है, लेकिन जानने को कुछ नहीं बचता है। तब जानने की सहज-शुद्ध ऊर्जा रहती है। लेकिन जानने को कुछ नहीं बचता है। कोई विषय नहीं रहता है। उस अवस्था में जब जानने को कुछ नहीं रहता, तुम एक अर्थों में स्वयं को जानते हो। अपने को जानते हो।

लेकिन यह ज्ञान अन्य सब ज्ञान से सर्वथा भिन्न है। दोनो के लिए एक ही शब्द का उपयोग करना भ्रामक है। इसीलिए अनेक रहस्यवादियों ने कहा है कि आत्मज्ञान शब्द विरोधाभासी है। ज्ञान सदा दूसरे को होता है। अंत: आत्म ज्ञान संभव नहीं है। जब दूसरा नहीं होता है तो कुछ होता है, तुम उसे आत्म ज्ञान कह सकते हो। लेकिन यह शब्द भ्रामक है।

तो तुम जो भी जानते हो वह परिवर्तन है। ये जो दीवारें है, ये भी निरंतर बदल रही है। और भौतिक शास्त्र भी इसका समर्थन करता है। जो दीवार है, ये स्थाई मालूम पड़ती है। ठहरी हुई लगती है। वह भी प्रति पल बदल रही है। एक-एक परमाणु बह रहा है। प्रत्येक चीज बह रही है। लेकिन उसकी गति इतनी तीव्र है कि उसका पता नहीं चलता है। दोपहर भी वह ऐसे लगती थी श्याम भी ऐसे लगती है।

यह सूत्र कहता है कि सभी चीजें बदल रही है। 'यह जगत परिवर्तन का है.....।'

इस सूत्र पर ही बुद्ध का समस्त दर्शन खड़ा है। बुद्ध कहते है कि प्रत्येक चीज बहाव है, बदल रही है। क्षणभंगुर है। और यह बात प्रत्येक व्यक्ति को जान लेना चाहिए। बुद्ध का सारा जोर इसी एक बात पर है; उनकी पूरी दृष्टि इसी बात पर आधारित है।

तुम्हें एक चेहरा दिखाई देता है, बहुत सुंदर है। और जब तुम सुंदर रूप को देखते हो तो भाव होता है कि यह रूप सदा ही ऐसा रहेगा। इस बात को ठीक से समझ लो ऐसी अपेक्षा कभी मत करो। और अगर तुम जानते हो कि यह रूप तेजी से बदल रहा है, कि यह इस क्षण सुंदर है और अगले क्षण कुरूप हो जायेगा। तो फिर आसक्ति कैसे पैदा होगी? असंभव है। एक शरीर को देखो,वह जीवित है; अगले क्षण वह मृत हो सकता है। अगर तुम परिवर्तन को समझो तो सब व्यर्थ है।

बुद्ध ने अपना महल छोड़ दिया, परिवार छोड़ दिया। सुंदर पत्नी छोड़ दी, प्यारा पुत्र छोड़ दिया। और जब किसी ने पूछा कि क्यों छोड़ रहे हो, तो उन्होंने कहां: 'जहां कुछ भी स्थाई नहीं है,वहां रहने का क्या प्रयोजन? बच्चा एक न एक दिन मर जायेगा।' और बच्चे का जन्म उसी रात हुआ था। उसके जन्म के कुछ घंटे बाद ही उन्होंने उसे अंतिम बार देखा। अपनी पत्नी के कमरे में गये। पत्नी की पीठ दरवाजे की और थी और वह बच्चे को अपनी बांहों में लिए सो रही थी। बुद्ध ने अलविदा कहना चाहा। लेकिन वे झिझके। उन्होंने कहा: 'एक क्षण उनके मन में यह विचार कौंधा कि बच्चे के जन्म के कुछ घंटे ही हुए है। मैं उसे अंतिम बार देख हूं। तब उनके मन ने कहां, क्या प्रयोजन है, सब तो बदल रहा है। आज बच्चा पैदा हुआ है। कल मर जायेगा। एक दिन पहले यह नहीं था, अभी वह है। और एक दिन फिर नहीं रहेगा। तो क्या प्रयोजन है सब बदल रहा है।' वे मुड़े और विदा हो गये।

जब किसी ने पूछा कि आपने क्यों सब कुछ छोड़ दिया? मैं अपनी खोज में हूं। जो कभी नहीं बदलता,जो शाश्वत है। यदि मैं परिवर्तनशील के साथ अटका रहूंगा। तो निराशा ही हाथ आयेगी। क्षण भंगुर से आसक्त होना मूढ़ता

है। वह कभी ठहरने वाला नहीं है। मैं मूढ़ नहीं हूं। मैं तो उसकी खोज कर रहा हूं जो कभी नहीं बदलता, जो नित्य है। अगर कुछ शाश्वत है तो ही जीवन में अर्थ है, जीवन में मूल्य है। अन्यथा सब व्यर्थ है।

यह सूत्र सुंदर है। यह सूत्र कहता है। 'परिवर्तन के द्वारा परिवर्तन को विसर्जित करो।''

बुद्ध कभी दूसरा हिस्सा नहीं कहते। यह दूसरा हिस्सा बुनियादी रूप से तंत्र से आया है। बुद्ध इतना ही कहेंगे। कि सब कुछ परिवर्तनशील है। इसे अनुभव करो। और तुम्हें आसक्ति नहीं होगी। और जब आसक्ति नहीं होगी तो धीरे-धीरे अनित्य को छोड़ते-छोड़ते तुम अपने केंद्र पर पहुंच जाओगे। जो नित्य है। शाश्वत है। परिवर्तन को छोड़ते जाओ और तुम अपरिवर्तन पर केंद्र पर, चक्र के केंद्र पर पहुंच जाओगे।

इस लिए बुद्ध ने चक्र को अपने धर्म का प्रतीक बनाया है। क्योंकि चक्र चलता रहता है। लेकिन उसकी धुरी, जिसके सहारे चक्र चलता है, ठहरी रहती है। स्थाई है। तो संसार चक्र की भांति चलता रहता है। तुम्हारा व्यक्तित्व चक्र की भांति बदलता रहता है। धुरी अचल रहती है।

तंत्र कहता है कि जो परिवर्तनशील है उसे छोड़ो मत, उसमे उतरो, उसमें जाओ। उससे आसक्त मत होओ। लेकिन उसमें जीओं। उससे डरना क्या है? उसे घटित होने दो। और तुम उसमें गति कर जाओ। उसे उसके द्वारा ही विसर्जित करो। डरों मत; भागों मत। भागकर कहां जाओगे। इससे बचोगे कैसे? सब जगह तो परिवर्तन है। तंत्र कहता है,बदलाहट ही मिलेगी। सब भागना व्यर्थ है। भागने की कोशिश ही मत करो। तब करना क्या है?

आसक्ति मत निर्मित करो। तुम परिवर्तन हो जाओ। उसके साथ कोई संघर्ष मत खड़ा करो। उसके साथ बहो। नदी बह रही हे। उसके साथ बहो। तेरो भी मत। नदी को ही तुम्हें ले जाने दो। उसके साथ लड़ों मत; उससे लड़ने से तुम्हारी शक्ति बरबाद होगी। और जो होता है, उसे होने दो। नदी के साथ बहो।

इससे क्या होगा? अगर तुम नदी के साथ बिना संघर्ष किए बह सके; बिना किसी शर्त के बह सके, अगर नदी की दिशा ही तुम्हारी दिशा हो जाए, तो तुम्हें अचानक यह बोध होगा कि मैं नदी नहीं हूं, तुम्हें यह बोध होगा कि मैं नदी नहीं हूं, इसे अनुभव करो; किसी दिन नदी में उतर कर इसका प्रयोग करो। नदी में उतरो, विश्राम पूर्ण रहो और अपने को नदी के हाथों में छोड़ दो। उसे तुम्हें बहा ले जाने दो। लड़ों मत, नदी के साथ एक हो जाओ। तब अचानक तुम्हें अनुभव होगा कि चारों तरफ नदी है, लेकिन मै नदी नहीं हूं।

यदि नदी में लड़ोगे तो तुम यह बात भूल जा सकते हो। इसीलिए तंत्र कहता है: 'परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।' लड़ो मत, लड़ने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि परिवर्तन तुममें नहीं प्रवेश कर सकता है। डरो नहीं; संसार में रहो। डरो मत;क्योंकि संसार तुममें प्रवेश नहीं कर सकता है। उसे जीओं। कोई चुनाव मत करो।

दो तरह के लोग है। एक वे जो परिवर्तन के जगत से चिपके रहते है। और एक वे है जो उससे भाग जाते है। लेकिन तंत्र कहता है कि जगत परिवर्तन है, इसलिए उससे चिपकना नहीं है। दोनों व्यर्थ है। इससे भागने को। वह बदल ही रहा है। तुम नहीं थे तब यह बदल रहा था। तुम नहीं रहोगे तब भी यह बदलता रहेगा। फिर इसके लिए इतना शोर गूल क्यो?

'परिवर्तन को परिवर्तन से विसर्जित करो।'

यह एक बहुत गहन संदेश है। क्रोध को क्रोध से विसर्जित करो; काम को काम से विसर्जित करो; लोभ को लोभ से विसर्जित करो, संसार को संसार से विसर्जित करो। उससे संघर्ष मत करो, विश्रामपूर्ण रहो। क्योंकि संघर्ष से तनाव पैदा होता है; तनाव से चिंता और संताप पैदा होता है। विश्रामपूर्ण रहो। तुम नाहक उपद्रव में पड़ोगे। संसार जैसा है उसे वैसा ही रहने दो।

दो तरह के लोग है जो संसार को वैसा ही नहीं रहने देना चाहते जैसा वह है। वे क्रांतिकारी कहलाते है। वे उसे बदलेंगे ही; वे उसे बदलने के लिए जद्दोजहद करेंगे। वे उसे बदलने में अपना सारा जीवन लगा देंगे। और यह जगत अपने आप बदल रहा है। उनकी कोई जरूरत नहीं है। वे अपने को नष्ट करेंगे। दुनिया को बदलने में वे खुद खत्म होंगे। और संसार बदल ही रहा है; इसके लिए किसी क्रांति की जरूरत नहीं है। संसार स्वयं एक क्रांति है; वह बदल ही रहा है।

तुम्हें आश्चर्य होगा। की भारत में महान क्रांतिकारी क्यों नहीं पैदा हुए। यह इसी अंतदृष्टि का परिणाम है कि सब अपने आप ही बदल रहा है। उसके लिए क्रांति की कोई जरूरत नहीं है। तुम उसे बदलने के लिए क्यों परेशान होते हो। तुम न उसे बदल सकते हो और न बदलाहट को रोक सकते हो।

एक तरह का व्यक्तित्व सदा संसार को बदलने की चेष्टा करता है। धर्म की दृष्टि में वह मानसिक तल पर रूग्ण है। सच तो यह है अपने साथ रहने में उसे भय लगता है। इसलिए वह भागता फिरता है। और संसार में उलझा रहता है। राज्य को बदलना है, सरकार को बदलना है; समाज , व्यवस्था, अर्थनीति, सब कुछ को बदलना है। और इसी सब में वि मर जाएगा। और उसे आनंद का, उस समाधि का एक कण भी नहीं उपलब्ध होगा। जिसमें वह जान सकता था कि मैं कौन हूं। और संसार चलता रहेगा। संसार चक्र घूमता रहेगा। संसार चक्र ने अनेक क्रांतिकारी देखे है। और वह घूमता ही जाता है। तुम न तो इसे रोक सकते हो, और न तुम उसकी बदलाहट को तेज ही कर सकते हो।

रहस्यवादियों की, बुद्धों की यह दृष्टि है। वे कहते है कि संसार को बदलने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन बुद्धों की भी दो कोटियां है। कोई कह सता है कि संसार को बदलने की जरूरत नहीं है, लेकिन अपने को बदलने की जरूरत तो है। वह भी परिवर्तन में विश्वास करता है। वह जगत को बदलने में नहीं, लेकिन अपने में बदलने में विश्वास करता है।

लेकिन तंत्र कहता है। कि किसी को भी बदलने की जरूरत नहीं है—न संसार को और न अपने को। रहस्य का, अध्यात्म का यह गहनत्म तल है। यह उसका अंतरतम केंद्र है। तुम्हें किसी को भी बदलने की जरूरत नहीं है—न संसार को और न अपने को। तुम्हें इतना ही जानना है कि सब कुछ बदल रहा है, और तुम्हें उस बदलाहट के साथ बहाना है, उसे स्वीकार करना है।

और जब बदलने को कोई परिवर्तन नहीं है, तो तुम समग्ररतः: विश्रामपूर्ण हो सकते हो। जब तक प्रयत्न है। तुम विश्रामपूर्ण नहीं हो सकते। तब तक तनाव बना रहेगा। क्योंकि तुम्हें अपेक्षा है कि भविष्य में कुछ होने वाला है, जगत बदलने वाला है। संसार में साम्यवाद आने वाला है। या पृथ्वी पर स्वर्ग उतरने वाला है। या भविष्य में कोई ऊटोपिया आने वाला है। या तुम प्रभु के राज्य में प्रवेश करने वाले हो। स्वर्ग में देवदूत तुम्हारा स्वागत करने के लिए तैयार खड़े है—जो भी हो; तुम भविष्य में कही अटके हो। इस अपेक्षा के साथ तुम तनावपूर्ण रहोगे।

तंत्र कहता है, इन बातों को भूल जाओ। संसार बदल ही रहा है। और तुम भी निरंतर बदल रहे हो। बदलाहट ही अस्तित्व है। इसलिए बदलाहट की चिंता मत करो। तुम्हारे बिना ही बदलाहट हो रही है। तुम्हारी जरूरत नहीं है। तुम भविष्य की कोई चिंता किए बिना उसमे बहो; और तब अचानक तुम्हें अपने भीतर के उस केंद्र का बोध हो गा जो कभी नहीं बदलता है, जो सदा वही का वही रहता है।

ऐसा क्यों होता है? क्योंकि जब तुम विश्रामपूर्ण होते हो तो बदलाहट की पृष्ठभूमि में विपरीत दिखाई पड़ता है। परिवर्तन की पृष्ठभूमि में तुम्हें सनातन का, शाश्वत का बोध होता है। अगर तुम संसार को या अपने को बदलने का प्रयत्न में लगे हो तो तुम अपने भीतर छोटे से अकंप, स्थिर ठहरे हुए केंद्र को नहीं देख पाओगे। तुम बदलाहट में इतने घिरे हो कि तुम उसे नहीं देख पाते हो जो है।

सब तरफ परिवर्तन है। यह परिवर्तन पृष्ठभूमि बन जाता है। कंट्रास्ट बन जाता है। और तुम शिथिल होते हो। विश्राम में होते हो, इसलिए तुम्हारे मन में भविष्य नहीं होता। भविष्य के विचार नहीं होते। तुम यहां और अभी होते हो। यह क्षण ही सब कुछ होता है। सब कुछ बदल रहा है—और अचानक तुम्हें अपने भीतर उस बिंदू का बोध है जो कभी नहीं बदला है।

'परिवर्तन से परिवर्तन को विसर्जित करो।'

इसका अर्थ यही है। लड़ो मत। मृत्यु के द्वारा अमृत को जान लो; मृत्यु के द्वारा मृत्यु को मर जाने दो। उससे लड़ाई मत करो।

तंत्र की दृष्टि को समझना कठिन है। कारण है कि हमारा मन कुछ करना चाहता है। और तंत्र है कुछ न करना। तंत्र कर्म नहीं, पूर्ण विश्राम है। लेकिन यह एक सर्वाधिक गुह्म रहस्य है। और अगर तुम इसे समझ सको। अगर तुम्हें अगर तुम्हें इसकी प्रतीति हो जाए,तो तुम्हें किसी अन्य चीज की चिंता लेने की जरूरत नहीं है। ये अकेली विधि तुम्हें सब कुछ दे सकती है।

तब तुम्हें कुछ करने की जरूरत नही है। क्योंकि तुमने इस रहस्य को जान लिया है जो परिवर्तन से परिवर्तन का अतिक्रमण कर रहा हे। मृत्यु से मृत्यु का अतिक्रमण हो सकता है। काम से काम का अतिक्रमण हो सकता है। क्रोध से क्रोध का अतिक्रमण हो सकता है। अब तुम्हें यह कुंजी मिल गई है कि जहर से जहर का अतिक्रमण हो सकता है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-43

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—68 (ओशो)

जैसे मुर्गी अपने बच्चों का पालन-पोषण करती है, वैसे ही यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।

विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।—शिव

इस विधि में मूलभूत बात है: 'यथार्थ में।' तुम भी बहुत चीजों का पालन पोषण करते हो; लेकिन सपने में, सत्य में नहीं। तुम भी बहुत कुछ करते हो; लेकिन सपने में सत्य में नहीं। सपनों को पोषण देना छोड़ दो। सपनों को बढ़ने में सहयोग मत दो। सपनों को अपनी ऊर्जा मत दो। सभी सपनों से अपने को पृथक कर लो।

यह कठिन होगा, क्योंकि सपनों में तुम्हारे न्यस्त स्वार्थ है। अगर तुम अपने को अचानक सपनों से बिलकुल अलग कर लोगे तो तुम्हें लगेगा कि मैं डूब रहा हूं, मैं मर रहा हूं। क्योंकि तुम हमेशा स्थगित सपनों में रहते आए हो। तुम कभी यहां और अभी नहीं रहे; तुम सदा कहीं और रहते आए हो। तुम आशा करते रहे हो।
क्या तुमने पंडोरा का डब्बा यूनानी कहानी सुनी है। किसी आदमी ने बदला लेने के लिए पंडोरा के पास एक डब्बा भेजा। इस डब्बे में से सब रोग बंद थे जो अभी मनुष्य जाति के बीच फैले है। वे रोग उसके पहले नहीं थे; जब वह डब्बा खुला तो सभी रोग बाहर निकल आए। पंडोरा रोगों को देखकर डर गई ओर उसने डब्बा बंद कर दिया। केवल एक रोग रह गया। ओर वह थी आशा। अन्यथा आदमी समाप्त हो गया होता; ये सारे रोग उसे मार डालते, लेकिन आशा के कारण वह जीवित रहा।

तुम क्यों जी रहे हो? क्या तुमने कभी यह प्रश्न पूछा है? यहां और अभी जीने के लिए कुछ भी नहीं है। सिर्फ आशा है। तुम भी पंडोरा का डब्बा ढो रहे हो। ठीक अभी तुम क्यों जीवित हो? हरेक सुबह तुम क्यों बिस्तर से उठ रहे हो। क्यों तुम रोज-रोज फिर वही करते हो जो कल किया था? यह पुनरूक्ति क्यों? कारण क्या है?

मनुष्य आशा में जीता है। लेकिन यह जीवन नहीं है। अपने को ढोए चला जाता है। जब तक तुम यहां और अभी नहीं जीते हो, तुम जीवन नहीं हो। तुम एक मृत बोझ हो। और वह कल तो कभी आने वाला नहीं है। जब तुम्हारी सब आशाएं पूरी हो जाएंगी। और जब मृत्यु आएगी तो तुम्हें पता चलेगा कि अब कोई कल नहीं है, और अब स्थगित करने का भी उपाय नहीं है। तब तुम्हारा भ्रम टूटेगा; तब तुम्हें लगेगा कि यह धोखा था। लेकिन किसी दूसरे ने तुम्हें धोखा नहीं दिया। अपनी दुर्गति के लिए तुम स्वयं जिम्मेदार हो।

इस क्षण में, वर्तमान में जीने की चेष्टा करो और आशाएं मत पालो—चाहे वे किसी भी ढंग की हों। वे लौकिक हो सकती है, पारलौकिक हो सकती है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता है। वे धार्मिक हो सकती है। किसी भविष्य

में,किसी दूसरे लोक में, स्वर्ग में, मृत्यु के बाद, निर्वाण में; लेकिन इससे कोई फर्क नही पड़ता। तुम कोई आशा मत करो। यदि तुम्हें थोड़ी निराशा भी अनुभव हो, तो भी यही रहो। यहां और इसी क्षण से मत हटो। हटो ही मत। दुःख सह लो, लेकिन आशा को मत प्रवेश करने दो। आशा के द्वारा स्वप्न प्रवेश करते है। निराशा रहो। अगर जीवन में निराशा है तो निराशा रहो। निराशा को स्वीकार करो। लेकिन भविष्य में होनेवाली किसी घटना का सहारा मत लो।

और तब अचानक बदलाहट होगी। जब तुम वर्तमान में ठहर जाते हो तो सपने भी ठहर जाते है। तब वे नहीं उठ सकते, क्योंकि उनका स्त्रोत ही बद हो जाता है। सपने उठते है। क्योंकि तुम उन्हें सहयोग देते हो। तुम उन्हें पोषण देते हो। सहयोग मत दो; पोषण मत दो।

यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन-पोषण करो।'

विशेष ज्ञान क्या है? तुम भी पोषण देते हो; लेकिन तुम विशेष सिद्धांतों को पोषण देते हो। ज्ञान को नहीं। तुम विशेष शास्त्रों को पोषण देते हो, ज्ञान को नहीं। तुम विशेष मतवादों को, दर्शन शास्त्रों को, विचार-पद्धतियों को पोषण देते हो। लेकिन विशेष ज्ञान को कभी पोषण नहीं देते। यह सूत्र कहता है कि उन्हें हटाओं, दूर करो, शास्त्र और सिद्धांत किसी काम के नहीं है। अपना अनुभवप्राप्त करो जो प्रामाणिक हो; अपना ही ज्ञान हासिल करो, और उसे पोषण दो। कितना भी छोटा हो, प्रामाणिक अनुभव असली बात है। तुम उस पर अपने जीवन को आधार रख सकते हो। वे जैसे भी हो, जो भी हो। सदा प्रामाणिक अनुभवों की चिंता लो जो तुमने स्वयं जाने है। क्या तुमने स्वयं कुछ जाना है?

तुम बहुत कुछ जानते हो; लेकिन तुम्हारा सब जानना उधार है। किसी से तुमने सुना है; किसी ने तुम्हें दिया है। शिक्षकों ने, मां-बाप ने, समाज ने, तुम्हें संस्कारित किया है। तुम ईश्वर के बारे में जानते हो, तुम प्रेम के बारे में जानते हो, तुम प्रेम के संबंध में जानते है, तुम ध्यान को जानते हो। लेकिन तुम यथार्थत: कुछ भी नहीं जानते। तुमने इनमें से किसी का स्वाद नहीं लिया है। यह सब उधार है। किसी दूसरे ने स्वाद लिया है; स्वाद तुम्हारा निजी नहीं है। किसी दूसरे ने देखा है; तुम्हारी भी आंखें है। लेकिन तुमने उनका उपयोग नहीं किया है। किसी ने अनुभव किसा—किसी बुद्ध ने, किसी जीसस ने—और तुम उनका ज्ञान उधार लिए बैठे हो।

उधार ज्ञान झूठा है। और वह तुम्हारे काम का नहीं है। उधार ज्ञान अज्ञान से भी खतरनाक है। क्योंकि अज्ञान तुम्हारा है, और ज्ञान उधार है। इससे तो अज्ञानी रहना बेहतर है। कम से कम तुम्हारा तो है। प्रामाणिक तो है, सच्चा है, ईमानदार है। उधार ज्ञान मत ढ़ोओ; अन्यथा तुम भूल जाओगे कि तुम अज्ञानी हो; और तुम अज्ञानी के अज्ञानी बने रहोगे। यह सूत्र कहता है: 'विशेष ज्ञान का पालन-पोषण करो।'

सदा ही जानने की कोशिश इस ढंग से करो कि वह सीधा हो, सच हो, प्रत्यक्ष हो। कोई विश्वास मत पकड़ो;विश्वास तुम्हें भटका देगा। अपने पर भरोसा करो। श्रद्धा करो। और अगर तुम अपने पर ही श्रद्धा नहीं कर सकते तो किसी दूसरे पर कैसे श्रद्धा कर सकते हो?

सारिपुत्र बुद्ध के पास आया और उसने कहा: 'मैं आपमें विश्वास करने के लिए आया हूं;मैं आ गया हूं। मुझे आप में श्रद्धा हो, इसमें मेरी सहायता करें।' बुद्ध ने कहा: 'अगर तुम्हें स्वयं में श्रद्धा नहीं है तो मुझमें श्रद्धा कैसे करोगे? मुझे भूल जाओ। पहले स्वयं में श्रद्धा करो; तो ही तुम्हें किसी दूसरे में श्रद्धा होगी।'

यह स्मरण रहे, अगर तुम्हें स्वयं में ही श्रद्धा नहीं है। तो किसी में भी श्रद्धा नहीं हो सकती। पहली श्रद्धा सदा अपने में होती है। तो ही वह प्रवाहित हो सकती है। बह सकती है। तो ही वह दूसरों तक पहुंच सकती है। लेकिन अगर तुम कुछ जानते ही नहीं हो तो अपने में श्रद्धा कैसे करोगे? अगर तुम्हें कोई अनुभव ही नहीं है तो स्वयं में श्रद्धा कैसे होगी? अपने में श्रद्धा करो। और मत सोचो कि हम परमात्मा को ही दूसरों की आंखों से देखते है; साधारण अनुभवों में भी यही होता है। कोशिश करो कि साधारण अनुभव भी तुम्हारे अपने अनुभव हों। वे तुम्हारे विकास में सहयोगी होंगे। वे तुम्हें प्रौढ़ बनाएँगे। वे तुम्हें परिपक्वता देंगे।

बडी अजीब बात है कि तुम दूसरों की आँख से देखते हो तुम दूसरों की जिंदगी से जीते हो। तुम गुलाब को सुंदर कहते हो। क्या यह सच में ही तुम्हारा भाव है। या तुमने दूसरों से सुन रखा है। कि गुलाब सुंदर होता है। क्या यह तुम्हारा जानना है? क्या तुमने जाना है? तुम कहते हो कि चाँदनी अच्छी है, सुंदर है। क्या यह तुम्हारा जानना है? यह कवि इसके गीत गाते रहे है और तुम बस उन्हें दुहरा रहे हो?

अगर तुम तोते जैसे दुहरा रहे हो तो तुम अपना जीवन प्रामाणिक रूप से नहीं जी सकते हो। जब भी तुम कुछ कहो, जब भी तुम कुछ करो, तो पहल अपने भीतर जांच कर लो कि क्या यह मेरा अपना जानना है? मेरा अपना अनुभव है। उस सबको बाहर फेंक दो जो तुम्हारा नहीं है; वह कचरा है। और सिर्फ उसको ही मूल्य दो, पोषण दो, जो तुम्हारा है। उसके द्वारा ही तुम्हारा विकास होगा।

'यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।'

यहां यर्थाथ में, को सदा स्मरण रखो। कुछ करो। क्या कभी तुमने स्वयं कुछ किया है। या तुम केवल दूसरों के हुक्म बजाते रहे हो? केवल दूसरों का अनुसरण करते रहे हो, कहते है: 'अपनी पत्नी को प्रेम करो।' क्या तुमने यथार्थत: अपनी पत्नी को प्रेम किया है? या तुम सिर्फ कर्तव्य निभा रहे हो; क्योंकि तुम्हें कहा गया है, सिखाया गया है कि पत्नी को प्रेम करो, या मां को प्रेम करो। या पिता को प्रेम करो। तुम्हारा प्रेम भी अनुकरण मात्र है। क्या तुमने कभी ऐसा महसूस किया है तुम और प्रेम साथ थे। बिना किसी विचार के या संस्कार के। क्या तुम्हारे प्रेम में ऐसा कभी हुआ है कि तुम्हारे प्रेम मे किसी की सिखावन न काम कर रही हो? क्या कभी ऐसा हुआ है कि तुम किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। क्या तुमने कभी प्रामाणिक रूप से प्रेम किया है।

तुम अपने को धोखा दे रहे हो। तुम कह सकते हो कि हां किया है। लेकिन कुछ कहने के पहले ठीक से निरीक्षण कर लो। अगर तुमने सचमुच प्रेम किया होता तो तुम रूपांतरित हो जाते; प्रेम का यह विशेष कृत्य ही तुम्हें बदल डालता। लेकिन उसने तुम्हें नहीं बदला। क्योंकि तुम्हारा प्रेम झूठा है। और तुम्हारा पूरा जीवन ही झूठ हो गया है। तुम ऐसे काम किए जाते हो जो तुम्हारे अपने नहीं है। कुछ करो जो तुम्हारा अपना हो; और उसका पोषण करो।

बुद्ध बहुत अच्छे है; लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते। जीसस बहुत, महावीर बहुत अच्छे है, लेकिन तुम उनका अनुसरण नहीं कर सकते हो। और अगर तुम अनुसरण करोगे तो तुम कुरूप हो जाओगे। तुम कार्बन कापी हो जाओगे। तब तुम झूठे हो जाओगे। और अस्तित्व तुम्हें स्वीकार नहीं करेगा। वहां कुछ भी झूठ स्वीकार नहीं है।

बुद्ध को प्रेम करो, जीसस को प्रेम करो; लेकिन उनकी कार्बन कापी मत बनो। नकल मत करो। सदा अपनी निजता को अपने ढंग से खिलनें दो। तुम किसी दिन बुद्ध जैसे हो जाओगे; लेकिन मार्ग बुनियादी तौर पर तुम्हारा अपना होगा। किसी दिन तुम जीसस जैसे हो सकते हो। लेकिन तुम्हारा यात्रा-पथ भिन्न होगा। तुम्हारे अनुभव

भिन्न होगे। एक बात पक्की है। जो भी मार्ग हो, जो भी अनुभव हो, वह प्रामाणिक होना चाहिए। असली होना चाहिए। तुम्हारा होना चाहिए। तब तुम किसी ने किसी दिन पहुंच जाओगे।

असत्य से तुम सत्य तक नहीं पहूंच सकते। असत्य तुम्हें और असत्य में ले जाएगा। जब कुछ करो तो भली भांति स्मरण करो कि यह तुम्हारा अपना कृत्य हो, तुम खुद कर रहे हो। किसी का अनुकरण नहीं कर रहे हो। तो एक छोटा सा कृत्य भी, एक मुस्कुराहट भी सतोरी का, समाधि का स्त्रोत बन सकती है।

तुम अपने घर लौटते हो और बच्चों को देखकर मुस्कराते हो। यह मुस्कुराहट झूठी है। तुम अभिनय कर रहे हो। तुम इसलिए मुस्कराते हो क्योंकि मुस्कराना चाहिए। यह ऊपर से चिपकायी गई मुस्कुराहट है। यह मुस्कुराहट कृत्रिम है, यांत्रिक है। और तुम इसके इतने अभ्यस्त हो चुके हो कि तुम बिलकुल भूल ही गये हो सच्ची मुस्कुराहट क्या है। तुम हंस सकते हो। लेकिन संभव है वह हंसी तुम्हारे केंद्र से न आ रही हो।

सदा ध्यान रखो कि तुम जो कर रहे हो उसमें तुम्हारा केंद्र सम्मिलित है या नहीं। अगर तुम्हारा केंद्र उस कृत्य मे सम्मिलित नहीं है तो बेहतर है कि उस कृत्य को न करो। उसे बिलकुल भूल जाओ। कोई तुम्हें कुछ करने के लिए मजबूर नहीं कर रहा है। बिलकुल मत करो। अपनी उर्जा को उस घड़ी के लिए बचा कर रखो जब कोई सच्चा भाव तुम्हारे भीतर उठे। और तब तुम उस में डूब कर उसे करो। यो ही मत मुस्कुराओ; उर्जा को बचाकर रखो। मुस्कुराहट आएगी, जो तुम्हें पूरा का पूरा बदल देगी। वह समग्र मुस्कुराहट होगी। तब तुम्हारे शरीर की एक-एक कोशिका मुस्कुराएगी। तब वह विस्फोट होगा, अभिनय नहीं होगा।

और बच्चे जानते है, तुम उन्हें धोखा नहीं दे सकते हो। और जब तुम उन्हें धोखा दे सको, समझ लेना वे बच्चे नहीं रहे। वे जानते है कि कब तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी होती है। वे झट ताड़ लेते है। वे जानते है कि कब तुम्हारे आंसू झूठे है। तुम्हारी हंसी झूठी है। ये छोटे-छोटे कृत्य है, लेकिन तुम छोटे-छोटे कृत्यों से ही बने हो। किसी बड़े कृत्य की मत सोचो; मत सोचो कि किसी बड़े कृत्य में सच्चाई बरतूंगा। अगर तुम छोटी-छोटी चीजों में झूठे हो तो तुम सदा झूठे ही रहोगे। बड़ी चीजों में झूठ होना तो और भी सरल है।

पर यह सब झूठा है। थोड़ी कल्पना करो। कि अगर समाज की दृष्टि बदल जाए तो क्या होगा। ऐसी ही बदलाहट जब सोवियत रूस में या चीन में हुई तो तुरंत साधु-महात्मा वहां से विदा हो गये। अस वहां उनके लिए कोई आदर नहीं है।

मुझे याद आता है कि मेरे एक मित्र, जो बौद्ध भिक्षु है, स्टैलिन के दिनों में सोवियत रूप गये थे। उन्होंने लौटकर मुझे बताया कि वहां जब भी कोई व्यक्ति उससे हाथ मिलाता था तो तुरंत झिझक कर पीछे हट जाता था। और कहता था कि तुम्हारे हाथ बुर्जआ है। शोषण के हाथ है।

उनके हाथ सचमुच सुंदर थे; भिक्षु होकर उन्हें काम नहीं करना पड़ता था। वे फकीर थे, शाही फकीर,उनका श्रम से वास्ता नहीं पडा था। उनके हाथ बहुत कोमल थे। सुंदर कोमल और स्त्रैण थे। भारत में जब कोई उनके हाथ छूता तो कहता कि कितने सुंदर हाथ है। लेकिन सोवियत रूस में जब कोई उनके हाथ अपने हाथ में लेता तो तुरंत सिकुड़कर पीछे हट जाता। उसकी आंखों में निंदा भर जाती। और वह उन्हें कहता कि तुम्हारे हाथ बुर्जआ है। शोषक के हाथ है। वे वापस आकर मुझसे बोले कि मैंने इतना निंदित महसूस किया कि मेरा मत होता है कि मजदूर हो जाउं।

रूस में साधु-महात्मा विदा हो गए; क्योंकि आदर न रहा। सब साधुता दिखावटी थी। प्रदर्शन की चीज थी। आज रूस में केवल सच्चा संत ही संत हो सकता हे। झूठे नकली संतों के लिए वहां कोई गुंजाइश नही है। आज तो वहां संत होने के लिए भारी संघर्ष करना पड़ेगा। क्योंकि सारा समाज विरोध में होगा। भारत में तो जीने का सबसे सुगम ढंग साधु-महात्मा होना है। सब लोग आदर देते है। यहां तुम झूठे हो सकते हो। क्योंकि उसमे लाभ ही लाभ है।

तो इसे स्मरण रखो। सुबह से ही, जैसे ही तुम आँख खोलते हो,सिर्फ सच्चे और प्रामाणिक होने की चेष्टा करो। ऐसा कुछ मत करो जो झूठ और नकली हो। सिर्फ सात दिन के लिए यह स्मरण बना रहे कि कुछ भी झूठ और नकली हो। कुछ भी अप्रमाणिक नहीं करना है। जो भी गंवाना पड़े जो भी खोना पड़े खो जाएं। जो भी होना हो, हो जाए;लेकिन सच्चे बने रहो। और सात दिन के भीतर नए जीवन का उन्मेष अनुभव होने लगेगा। तुम्हारी मृत पर्तें टूटने लगेंगी। और नयी जीवंत धारा प्रवाहित होने लगेगी। तुम पहली बार पुनर्जीवन अनुभव करोगे। फिर से जीवित हो उठोगे।

कृत्य का पोषण करो, ज्ञान का पोषण करो—यथार्थ में, स्वप्न में नहीं। जो भी करना चाहो करो। लेकिन ध्यान रखो कि यह काम सच में मैं कर रहा हूं। या मेरे द्वारा मेरे मां बाप कर रहे है? क्योंकि कब के जा चुके मरे हुए लोग, मृत माता-पिता, समाज, पुरानी पीढ़ियाँ, सब तुम्हारे भीतर अभी सक्रिय है। उन्होंने तुम्हारे भीतर ऐसे संस्कार भर दिए है कि तुम अब भी उनको ही पूरा करने में लगे हो। तुम्हारे मां-बाप अपने मृत मां-बाप को पूरा करते रहे और तुम अपने मृत मां बाप को पूरा करने मे लगे हो। और आश्चर्य कि कोई भी पूरा नहीं हो रहा है। तुम उसे कैसे पूरा कर सकते हो जो मर चूका है। लेकिन मुर्दे ये सब मुर्दे तुम्हारे बीच जी रहे है।

जब भी तुम कुछ करो तो सदा निरीक्षण करो कि यह मेरे माध्यम से मेरे पिता कर

रहे है। या मैं कर रहा हूं। जब तुम्हें क्रोध आए तो ध्यान दो कि यह मेरा क्रोध है या इसी ढंग से मेरे पिता क्रोध किया करते थे जिसे-जिसे में दोहरा भर रहा हूं।

मैंने देखा है कि पीढ़ी दर पीढ़ी वही सिलसिला चलता रहता है। पुराने ढंग ढांचे दोहराते रहते है। अगर तुम विवाह करते हो तो वह विवाह करीब-करीब वैसा ही होगा जैसा तुम्हारे मां-बाप ने किया था। तुम अपने पिता की भांति व्यवहार करोगे। तुम्हारी पत्नी अपनी मां की भांति व्यवहार करेगी। और दोनों मिलकर वही सब उपद्रव करोगे जो उन्होने किया था।

जब क्रोध आए तो गौर से देखो कि मैं क्रोध कर रहा हूं या कि कोई दूसरा व्यक्ति क्रोध कर रहा है रहे है। या मैं कर रहा हूं। जब तुम प्रेम करो तो याद रखो; तुम ही प्रेम कर रहे हो या कोई और, जब तुम कुछ बोलों तो देखो कि मैं बोल रहा हूं या मेरा शिक्षक बोल रहा है। जब तुम कोई भाव-भंगिमा बनाओ तो देखो कि यह तुम्हारी भंगिमा है या कोई दूसरा ही वहां है।

यह कठिन होगा; लेकिन यही साधना है, यही आध्यात्मिक साधना है। और सारे झूठों को विदा करो। थोड़े समय के लिए तुम्हें सुस्ती पकड़ेगी, उदासी घेरेंगी; क्योंकि तुम्हारे झूठ गिर जाएंगे। और सत्य को आने में और प्रतिष्ठित होने में थोड़ा समय लगेगा। अंतराल का एक समय होगा; उस समय को भी आने दो। भयभीत मत होओ। आतंकित मत होओ। देर-अबेर तुम्हारे मुखौटे गिर जाएंगे। तुम्हारा झूठा व्यक्तित्व विलीन हो जाएगा। और उसकी जगह तुम्हारा असली चेहरा तुम्हारा प्रामाणिक व्यक्तित्व अस्तित्व में आएगा। प्रकट होगा। और उसी प्रामाणिक व्यक्तित्व से तुम ईश्वर को साक्षात्कार कर सकते हो।

इसलिए यह सूत्र कहता है: जैसे मुर्गी अपने बच्चों का पालन पोषण करती है। वैसे ही यथार्थ में विशेष ज्ञान और विशेष कृत्य का पालन-पोषण करो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-45

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—69 (ओशो)

'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है; ये केवल विश्व से भयभीत लोगों के लिए है। यह विश्व मन का प्रतिबिंब है। जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे ही बंधन और मोक्ष को देखो।'

'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है;–शिव

यह बहुत गहरी विधि है; यह गहरी से गहरी विधियों में से एक है। और विरले लोगों ने ही इसका प्रयोग किया है। झेन इसी विधि पर आधारित है। यह विधि बहुत कठिन बात कह रही है—समझने में कठिन, अनुभव करने में कठिन नहीं है। परंतु पहले समझना जरूरी है।

यह सूत्र कहता है, कि हम संसार और निर्वाण दो नहीं है। वे एक ही है। स्वर्ग और नरक दो नहीं है। वे एक ही है। वैसे ही बंधन और मोक्ष दो नहीं है, वे भी एक ही है। यह समझना कठिन है, क्योंकि हम किसी चीज को आसानी से तभी सोच पात है जब वह ध्रुवीय विपरीतता में बंटी हो।
हम कहते है कि यह संसार बंधन है; इससे छूटा जाए और मुक्त हुआ जाए? तब मुक्ति कुछ है जो बंधन के विपरीत है, जो बंधन नहीं है। लेकिन यह सूत्र कहता है कि दोनों एक है, मोक्ष और बंधन एक है। और जब तक तुम दोनों से नहीं मुक्त होते, तुम मुक्त नहीं हो। बंधन तो बाँधता ही है,मोक्ष भी बाँधता है। बंधन तो गुलामी है ही मोक्ष भी गुलामी है।

इसे समझने की कोशिश करो। उस आदमी को देखो जो बंधन के पार जाने की चेष्टा में लगा है। वह क्या कर रहा है। वह अपना घर छोड़ देता है, परिवार छोड़ देता है, धन दौलत छोड़ देता है, संसार की चीजें छोड़ देता है। समाज छोड़ देता है। ताकि बंधन के बाहर हो सके, संसार की ज़ंजीरों से मुक्त हो सके। लेकिन तब वह अपने लिए नयी ज़ंजीरें गढ़ने लगता है। और वे ज़ंजीरें नकारात्मक है। परोक्ष है।

मैं एक संत को मिला जो धन नहीं छूते है। वे बहुत सम्मानित संत है। उनका सम्मान वे लोग जरूर करेंगे जो धन के पीछे पागल है। यह व्यक्ति उनके विपरीत ध्रुव पर चला गया है। अगर तुम उनके हाथ में धन रख दो तो वे उसे ऐसे फेंक देंगे जैसे कि वह जहर हो या कि तुमने उनके हाथ पर सांप रख दिया हो। वे उसे फेंक ही नहीं देंगे, वे आतंकित हो उठेंगे। उनका शरीर कांपने लगेगा।

क्या हुआ है? वे धन से लड़ रहे है। वे पहले जरूर ही लोभी, अति लोभी व्यक्ति रहे होंगे। तभी वे दूसरी अति पर पहूंच गए है। उनकी धन की पकड़ आत्यंतिक रही होगी;वे धन के लिए पागल रहे होंगे। वे धन से ग्रस्त रहे होंगे। वे अब भी धन से ग्रस्त है, लेकिन अब उनकी दिशा बदल गई है। वे पहले धन की तरफ भाग रहे थे; अब वे धन के विपरीत भाग रहे है।

मैं एक संन्यासी को जानता हूं जो किसी स्त्री को नहीं देखता। वे बहुत घबरा जाते है। अगर कोई स्त्री मौजूद हो तो आंखें झुका रखते है। वे सीधे नहीं देखते। क्या समस्या है? निश्चित ही, वे अति कामुक रहे होंगे। कामवासना से बहुत ग्रस्त रहे होंगे। वह ग्रस्तता अभी भी जारी है। लेकिन पहले वे स्त्रियों के पीछे भागते थे अब वे स्त्रियों से दूर भाग रहे है। पर स्त्रियों से ग्रस्तता बनी हुई है; चाहे वे स्त्रियों की और भाग रहे हों या स्त्रियों से दूर भाग रहे हो। उनका मोह बना ही हुआ है।

वे सोचते है कि अब स्त्रियों से मुक्त है, लेकिन यह एक नया बंधन है। तुम प्रतिक्रिया करके मुक्त नहीं हो सकते। जिस चीज से तुम भागोगे वह पीछे के रास्ते से तुम्हें बाँध लेगी; उससे तुम बच नहीं सकते हो। यदि कोई व्यक्ति संसार के विरोध में मुक्त होना चाहता है तो वह कभी मुक्त नहीं हो सकता; वह संसार में ही रहेगा। किसी चीज के विरोध में होना भी एक बंधन है।

यह सूत्र कहता है: 'यथार्थत: बंधन और मोक्ष सापेक्ष है......।'
वे विपरीत नहीं, सापेख है। मोक्ष क्या है? तुम कहते हो, जो बंधन नहीं है। वह मोक्ष है। और बंधन क्या है? तब तुम कहते हो, जो मोक्ष नहीं है वह बंधन है। तुम एक दूसरे से उनकी परिभाषा कर सकते हो। वे गर्मी और ठंडक की भांति है। विपरीत नही है। गर्मी क्या है और ठंडक क्या है? वे एक ही चीज की कम और ज्यादा मात्राएं है— ताप की मात्राएं है। लेकिन चीज एक ही है; गर्मी और ठंडक सापेक्ष है।

तंत्र कहता है, बंधन और मोक्ष संसार और निर्वाण दो चीजें नहीं है; वे सापेक्ष है, वे एक ही चीज की दो अवस्थाएं है। इसलिए तंत्र अनूठा है। तंत्र कहता है कि तुम्हें बंधन से ही मुक्त नहीं होना है, तुम्हें मोक्ष से भी मुक्त होना है। जब तक तुम दोनों से मुक्त नहीं होते, तुम मुक्त नहीं हो।

तो पहली बात कि किसी भी चीज के विरोध में जीने की कोशिश मत करो, क्योंकि ऐसा करके तुम उसी चीज की कोई भिन्न अवस्था में प्रवेश कर जाओगे। वह विपरीत दिखाई पड़ता है। लेकिन विपरीत है नहीं। कामवासना से ब्रह्मचर्य में जाने की चेष्टा करोगे तो तुम्हारा ब्रह्मचर्य कामुकता के सिवाय और कुछ नहीं होगा। लाभ से अलोभ में जाने की चेष्टा मत करो, क्योंकि वह अलोभ भी सूक्ष्म लोभ ही होगा। इसीलिए अगर कोई परंपरा अलोभ सिखाती है तो उसमें भी तुम्हें कुछ लालच देती है।

जो लोग लोभी है, पर लोभ के लोभी है। वे इस उपदेश से बहुत प्रभावित होंगे। वे इसके लालच में बहुत कुछ छोड़ने को तैयार हो जायेंगे। कि 'अगर तुम लोभ को छोड़ दोगे तो तुम्हें परलोक में बहुत मिलेगा'। लेकिन पानी की प्रवृति,पाने की चाह बनी रहती है। अन्यथा लोभी आदमी अलोभ की तरफ क्यों जाएगा? उनके लोभ की सूक्ष्म तृप्ति के लिए कुछ अभिप्राय कुछ हेतु तो चाहिए ही।

तो विपरीत ध्रुवों का निर्माण मत करो। सभी विपरीतताएं परस्पर जुड़ी है। वे एक ही चीज की भिन्न-भिन्न मात्राएं है। ओर अगर तुम्हें इसका बोध हो जाए तो तुम कहोगे कि दोनों ध्रुव एक है। अगर तुम यह अनुभव कर सके, और अगर यह अनुभव तुम्हारे भीतर गहरा हो सके तो तुम दोनों से मुक्त हो जाओगे। तब तुम न संसार चाहते हो न मोक्ष। वस्तुतः तब तुम कुछ भी नहीं चाहते हो; तुमने चाहना ही छोड़ दिया। और उस छोड़ने में ही तुम मुक्त हो गए। इस भाव में ही कि सब कुछ समान है, भविष्य गिर गया। अब तुम कहां जाओगे?

यदि कामवासना और ब्रह्मचर्य एक है, तो कहां जाना है। यदि लोभ और अलोभ एक ही है। हिंसा और अहिंसा एक ही है, तो फिर जाना कहा है? कहीं जाने को न बचा। सारी गति समाप्त हुई; भविष्य ही न रहा। तब तुम किसी चीज की भी कामना, कोई भी कामना नहीं कर सकते, क्योंकि सब कामनाए एक ही है। फर्क केवल परिमाण को होगा। तुम क्या कामना करोगे। तुम क्या चाहोगे?

कभी-कभी मैं लोगों से पूछता हूं, जब मेरे पास आते है। मैं पूछता हूं: 'सच में तुम क्या चाहते हो?' उनकी चाहत उनसे ही पैदा होती है। वे जैसे है उसमें ही उनकी जड़ होती है। अगर कोई लोभी है। तो वह अलोभ की चाह करता है। अगर कोई कामी है तो वह ब्रह्मचर्य की कामना करता है। कामी कामवासना से छूटना चाहता है। क्योंकि वह उससे पीड़ित है। दुःखी है। लेकिन ब्रह्मचर्य की एक कामना की जड़ उसकी कामुकता में की है।

लोग पूछते है: 'इस संसार से कैसे छूटा जाए?'

संसार उन पर बहुत भरी पड़ रहा है। वे संसार के बोझ के नीचे दबे जा रहे है। और वे संसार से बुरी तरह चिपके भी है। क्योंकि जब तक तुम संसार से चिपकते नहीं हो तब तक संसार तुम्हें बोझिल नहीं कर सकता। यह बोझ तुम्हारे सिर में है; और उसका कारण तुम हो बोझ नहीं। तुम इसे ढो रहे हो। लोग सारा संसार उठाए है; और फिर वे दुःखी होते है। और दुःख के इसी अनुभव से विपरीत कामना का उदय होता है। और वे विपरीत के लिए लालायित हो उठते है।

पहले वह धन के पीछे भाग रहे थे; अब वे ध्यान के पीछे भाग रहे है। पहले वह इस लोक में कुछ पाने के लिए भाग दौड़ कर रहे थे; अब वे परलोक में कुछ पाने के लिए भाग दौड़ कर रहे है। लेकिन भाग दौड़ जारी है। और भाग दौड़ ही समस्या है; विषय अप्रासंगिक है। कामना समस्या है; चाह समस्या है। तुम क्या चाहते हो, यह अर्थपूर्ण नहीं है। तुम चाहते हो, यह समस्या है।

और तुम चाह के विषय बदलते रहते हो। आज तुम 'क' चाहते हो, कल 'ख' चाहते हो, और तुम समझते हो कि मैं बदल रहा हूं। और फिर परसों तुम 'ग' चाह करते हो। और तुम सोचते हो कि मैं रूपांतरित हो गया। लेकिन तुम वही हो। तुमने 'क' की चाह की, तुमने 'ख' की चाह की। और तुमने ही 'ग'की चाह की; लेकिन क-ख-ग ये सब तुम नही हो। तुम तो वह हो जो चाहता है। जो कामना करता है। और वह वही का वही रहता है।

तुम बंधन चाहते हो। और फिर उससे निराशा हो जाते हो। ऊब जाते हो। और तब तुम मोक्ष की कामना करने लगते हो। लेकिन तुम कामना करना जारी रखते हो। और कामना बंधन है; इसलिए तुम मोक्ष की कामना नहीं करते। चाह ही बंधन है। इसलिए तुम मोक्ष नहीं चाह सकते। जब कामना विसर्जित होती है तो मोक्ष है; चाह का छूट जाना मोक्ष है।

इसी लिए यह सूत्र कहता है: 'यथार्थतः बंधन और मोक्ष सापेक्ष है।'
तो विपरीत से ग्रस्त मत होओ।

'ये केवल विश्व से भयभीत लोगों के लिए है।'
बंधन और मोक्ष, ये शब्द उनके लिए है जो विश्व से भयभीत है।

'यह विश्व मन का प्रतिबिंब है।'

तुम संसार में जो कुछ देखते हो वह प्रतिबिंब है। अगर वह बंधन जैसा दिखता है तो उसका मतलब है कि वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। और अगर यह विश्व मुक्ति जैसा दिखता है तो भी वह तुम्हारा प्रतिबिंब है।

'जैसे तुम पानी में एक सूर्य के अनेक सूर्य देखते हो, वैसे ही बंधन और मोक्ष को देखा।'
सुबह सूरज ऊगता है। और सरोवर उनके—बड़े और छोटे, सुंदर और कुरूप,अनेक टुकड़े कर देता है। एक ही सूरज इन अनेक छवियों में प्रतिबिंबित होता है। अनेक रूप और आकारों में कहीं गंदा और कही शुद्ध। लेकिन जो प्रतिबिंब को देख कर यथार्थ को देखेगा उसे एक ही सूर्य दिखाई देगा।

जिस संसार को तुम देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब है। अगर तुम कामुक हो तो सारा संसार तुम्हें कामुक मालूम पड़ेगा। और अगर तुम चोर हो तो सारा संसार तुम्हें उसी धंधे में संलग्न मालूम पड़ेगा।

एक बार मुल्ला नसरूद्दीन और उसकी पत्नी, दोनों मछली पकड़ रहे थे। और वह जगह प्रतिबंधित थी। केवल लाइसेंस लेकर ही लोग वहां मछली पकड़ सकत थे। अचानक एक पुलिस का सिपाही वहां आ गया। मुल्ला की पत्नी ने कहा: 'मुल्ला, तुम्हारे पास लाइसेंस है, तुम भागों; इस बीच मैं यहां सक खिसक जाऊगी।' मुल्ला भागने लगा, वह भागता गया। भागता गया। और सिपाही उसका पीछा करता रहा। मुल्ला ने अपनी पत्नी को वही छोड़ दिया और भागने लगा।

दौड़ते-दौड़ते मुल्ला को ऐसा लगा की उसकी छाती फट जाएगी। तभी उस सिपाही ने उसे पकड़ लिया। सिपाही भी पसीने से तरबतर था। उसने मुल्ला से पूछा: 'तुम्हारा लाइसेंस कहां है?' मुल्ला ने लाइसेंस निकाल कर दिखाया। सिपाही ने गौर से लाइसेंस को देखा और उसे सही पाया। और तब उसने पूछा: नसरूद्दीन,फिर तुम भाग क्यों रहे थे? तुम्हारे पास तो लाइसेंस था।

मुल्ला ने कहा: 'मैं एक डाक्टर के पास जाता हूं, और वह कहता है कि भोजन के बाद आधा मील दौड़ करो।' सिपाही ने कहा: 'लेकिन वह तो ठीक है, लेकिन तुम देख रहे थे कि मैं तुम्हारे पीछे भाग रहा हूं, चिल्ला रहा हूं। तब तुम क्यों नहीं रुके'? मुल्ला ने कहा: 'मैं समझा कि शायद तुम भी उसी डाक्टर के पास जाते हो।'

बिलकुल तर्कसंगत है; यही हो रहा है। तुम अपने चारों और जो कुछ देखते हो वह तुम्हारा प्रतिबिंब ज्यादा है। यथार्थ कम है। तुम अपने को ही सब जगह प्रतिबिंबित देख रहे हो। और जिस क्षण तुम बदलते हो, तुम्हारा प्रतिबिंब भी बदल जाता है। और जिस क्षण तुम समग्ररतः: मौन हो जाते हो, शांत हो जाते हो, सारा संसार भी शांत हो जाता है। संसार बंधन नहीं है, बंधन केवल एक प्रतिबिंब है। संसार मोक्ष भी नहीं है। मोक्ष भी प्रतिबिंब है। बुद्ध को सारा संसार निर्वाण में दिखाई पड़ता है। कृष्ण को सारा जगत नाचता-गाता, आनंद में, उत्सव मनाता हुआ दिखाई पड़ता है। उन्हें कही कोई दुःख नहीं दिखाई पड़ता है।

लेकिन तंत्र कहता है कि तुम जो भी देखते हो वह प्रतिबिंब ही है। जब तक सारे दृश्य नहीं विदा हो जाते और शुद्ध दर्पण नही बचता—प्रतिबिंबरहित दर्पण। वही सत्य है। अगर कुछ भी दिखाई देता है तो वह प्रतिबिंब ही है।

सत्य एक है। अनेक तो प्रतिबिंब ही हो सकते है। और एक बार यह समझ में आ जाए—सिद्घांत के रूप में नहीं, अस्तित्वगत, अनुभव के द्वारा—तो तुम मुक्त हो, बंधन और मोक्ष दोनों से मुक्त हो।

इसे इस ढंग से देखो। जब तुम बीमार होते हो तो स्वास्थ्य की कामना करते हो। यह स्वास्थ्य की कामना तुम्हारी बीमारी का ही अंग है। अगर तुम स्वस्थ ही हो तो तुम स्वास्थ्य की कामना नहीं करोगे। कैसे करोगे? अगर तुम सच में स्वस्थ हो तो फिर स्वास्थ्य की चाह कहां है? उसकी जरूरत नहीं है।

अगर तुम यथार्थत: स्वस्थ तो तुम्हें महसूस नहीं होता कि मैं स्वस्थ हूं। सिर्फ बीमार, रोगग्रस्त लोग ही महसूस कर सकते है कि हम स्वस्थ है। उसकी जरूरत क्या है। तुम कैसे महसूस कर सकते हो की तुम स्वस्थ हो। अगर तुम स्वास्थ ही पैदा हुए और कभी नहीं बीमार हुए, तो क्या तुम कभी अपने स्वास्थ को महसूस कर सकोगे?

स्वास्थ तो है, लेकिन उसका अहसास नहीं हो सकता। उसका अहसास तो विपरीत के द्वारा, विरोधी के द्वारा ही हो सकता है। विपरीत के द्वारा ही, उसकी पृष्ठभूमि में ही किसी चीज का अनुभव होता है। अगर तुम बीमार हो तो स्वास्थ का अनुभव कर सकते हो; और अगर तुम्हें स्वास्थ्य का अनुभव हो रहा है तो निश्चित जानो कि तुम अब भी बीमार हो।

तो नरोपा ने कहा: 'हां और नहीं दोनों। हां इसलिए कि अब कोई बंधन नहीं रहा। और नहीं इसलिए कि बंधन के जाने के साथ मुक्ति भी विलीन हो गई। मुक्ति बंधन का ही हिस्सा थी। अब मैं दोनों के पार हूं; न बंधन में हूं, और न मोक्ष में।'

धर्म को चाह मत बनाओ। धर्म को कामना मत बनाओ। मोक्ष को, निर्वाण को कामना का विषय मत बनाओ। वह तभी घटित होता है जब सारी कामनाए खो जाती है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-45

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—70 (ओशो)

'अपनी प्राण शक्ति को मेरुदंड के ऊपर उठती, एक केंद्र की और गति करती हुई प्रकाश किरण समझो, और इस भांति तुममें जीवंतता का उदय होता है।'

'अपनी प्राण शक्ति को मेरुदंड के ऊपर उठती,....शिव

योग के अनेक साधन अनेक उपाय इस विधि पर आधारित है। पहले समझो कि यह क्या है, और फिर इसके प्रयोग को लेंगे।

मेरुदंड, रीढ़ तुम्हारे शरीर और मस्तिष्क दोनों का आधार है। तुम्हारा मस्तिष्क, तुम्हारा सिर तुम्हारे मेरुदंड का ही अंतिम छोर है। मेरुदंड पूरे शरीर की आधारशिला है। और अगर मेरुदंड युवा है तो तुम युवा हो। और अगर मेरुदंड बूढा है तो तुम बढ़े हो। अगर तुम अपने मेरुदंड को युवा रख सको तो बूढा होना कठिन है। सब कुछ इस मेरूदंड पर निर्भर है। अगर तुम्हारा मेरूदंड जीवंत है तो तुम्हारे मन मस्तिष्क में मेधा होगी। चमक होगी। और अगर तुम्हारा मेरूदंड जड़ और मृत है तो तुम्हारा मन भी बहुत जड़ होगा। समस्त योग अनेक ढंग से तुम्हारे मेरूदंड को जीवंत, युवा,ताजा और प्रकाशपूर्ण की चेष्टा करता है।
मेरूदंड के दो छोर है। उसके आरंभ का काम-केंद्र है और उसके शिखर पर सहस्त्रार है—सिर के ऊपर जो सातवां चक्र है। मेरूदंड का जा आरंभ है वह पृथ्वी से जुड़ा है। कामवासना तुम्हारे भीतर सर्वाधिक पार्थिव चीज है। तुम्हारे मेरूदंड के आरंभिक चक्र के द्वारा तुम निसर्ग के संपर्क में आते हो। जिसे सांख्य प्रकृति कहता है—पृथ्वी,पदार्थ। और अंतिम चक्र से सहस्त्रार से तुम परमात्मा के संपर्क में होते हो।

तुम्हारे अस्तित्व के ये दो ध्रुव है। पहला काम केंद्र है, और उसके शिखर पर सहस्त्रार है। अंग्रेजी में सहस्त्रार के लिए कोई शब्द नहीं है। ये ही दो ध्रुव है। तुम्हारा जीवन या तो कामोन्मुख होगा या सहस्त्रोन्मुख होगा। या तो तुम्हारी ऊर्जा काम केंद्र से बहकर पृथ्वी में वापस जाएगी,या तुम्हारी ऊर्जा सहस्त्रार से निकलकर अनंत आकाश में समा जाएगी। तुम सहस्त्रार से ब्रहम में, परम सत्ता में प्रवाहित हो जाते हो। तुम काम केंद्र से पदार्थ जगत में प्रवाहित होते हो। ये दो प्रवाह है; ये दो संभावनाएं है।

जब तक तुम ऊपर की और विकसित नहीं होते, तुम्हारे दुःख कभी समाप्त नहीं होगे। तुम्हें सुख की झलकें मिल सकती है; लेकिन वे झलकें ही होगी और बहुत भ्रामक होंगी। जब ऊर्जा ऊर्ध्वगामी होगी। तुम्हें सुख की अधिकाधिक सच्ची झलकें मिलने लगेंगी। और जब ऊर्जा सहस्त्रार पर पहुँचेगी तुम परम आनंद को उपलब्ध हो जाओगे। वही निर्वाण है। तब झलक नहीं मिलती, तुम आनंद ही हो जाते हो।

योग और तंत्र की पूरी चेष्टा यह है कि कैसे ऊर्जा को मेरूदंड के द्वारा ऊध्र्वगामी बनाया जाए,कैसे उसे गुरूत्वाकर्षण के विपरीत गतिमान किया जाये। काम या सेक्स आसान है, क्योंकि वह गुरूत्वाकर्षण के विपरीत नहीं है। पृथ्वी सब चीजों को अपनी ओर खींच रही है। तुम्हारी काम ऊर्जा को भी पृथ्वी नीचे खींच रही है। तुमने शायद यह नहीं सुना हो, लेकिन अंतरिक्ष यात्रियों ने यह अनुभव किया है कि जैसे ही वे पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण के बाहर निकल जाते है,उनकी कामुकता बहुत क्षण हो जाती है। जैसे-जैसे शरीर का वजन कम होता है। कामुकता विलीन हो जाती है।

पृथ्वी तुम्हारी जीवन-ऊर्जा को नीचे की तरफ खींचती है। और यह स्वाभाविक है। क्योंकि जीवन-ऊर्जा पृथ्वी से आती है। तुम भोजन लेते हो, और उससे तुम अपने भीतर जीवन ऊर्जा निर्मित कर रहे हो। यह ऊर्जा पृथ्वी से आती है। और पृथ्वी उसे वापस खींचती है। प्रत्येक चीज अपने मूल स्त्रोत को लौट जाती है। और अगर यह ऐसे ही चलता रहा, जीवन ऊर्जा फिर-फिर पीछे लौटती रहे, तुम वर्तुल में घुमते रहे। तो तुम जन्मों-जन्मों तक ऐसे ही घूमते रहोगे। तुम इस ढंग से अनंतकाल तक चलते रह सकते हो। यदि तुम अंतरिक्ष यात्रियों की तरह छलांग नहीं लेते। अंतरिक्ष यात्रियों की तरह तुम्हें छलांग लेना है और वर्तुल के पार निकल जाना है। तब पृथ्वी के गुरूत्वाकर्षण का पैटर्न टूट जाता है। यह तोड़ा जा सकता है।

यह कैसे तोड़ा जा सकता है। ये उसकी ही विधियां है। ये विधियां इस बात की फ्रिक करती है कि कैसे ऊर्जा ऊर्ध्व गति करे, नये केंद्रों तक पहुचे; कैसे तुम्हारे भीतर नई ऊर्जा का आविर्भाव हो और कैसे प्रत्येक गति के साथ वह तुम्हें नया आदमी बना दे। और जिस क्षण तुम्हारे सहस्त्रार से, कामवासना के विपरीत ध्रुव से तुम्हारी ऊर्जा मुक्त होती है। तुम आदमी नहीं रह गए; तब तुम इस धरती के न रहे,तब तुम भगवान हो गए।

जब हम कहते है कि कृष्ण या बुद्ध भगवान है तो उसका यही अर्थ है। उनके शरीर तो तुम्हारे जैसे है। उनके शरीर भी रूग्ण होंगे और मरेंगे। उनके शरीरों में सब कुछ वैसा ही होता है जैसे तुम्हारे शरीरों में होता है। सिर्फ एक चीज उनके शरीरों में नहीं होती जो तुम्हारे शरीर में होती है। उनकी ऊर्जा ने गुरूत्वाकर्षण के पैटर्न को तोड़ दिया है। लेकिन वह तुम नहीं देख सकते; वह तुम्हारी आंखों के लिए दृश्य नहीं है।

लेकिन कभी-कभी जब तुम किसी बुद्ध की सन्निधि में बैठते हो तो तुम यह अनुभव कर सकते हो। अचानक तुम्हारे भीतर ऊर्जा का ज्वार उठने लगता है और तुम्हारी ऊर्जा ऊपर की तरफ यात्रा करने लगती है। तभी तुम जानते हो कि कुछ घटित हुआ है। केवल बुद्ध के सत्संग में ही तुम्हारी ऊर्जा सहस्त्रार की तरफ गति करने लगती है। बुद्ध इतने शक्तिशाली है कि पृथ्वी की शक्ति भी उनसे कम पड़ जाती है। उस समय पृथ्वी की ऊर्जा तुम्हारी ऊर्जा को नीचे की तरफ नहीं खींच सकती है। जिन लोगों ने जीसस,बद्ध या कृष्ण की सन्निधि में इसका अनुभव लिया है, उन्होंने ही उन्हें भगवान कहा है। उनके पास ऊर्जा का एक भिन्न स्त्रोत है जो पृथ्वी से भी शक्तिशाली है।

इस पैटर्न को कैसे तोड़ा जा सकता है। यह विधि पैटर्न तोड़ने में बहुत सहयोगी है। लेकिन पहले कुछ बुनियादी बातें ख्याल में ले लो।

पहल बात कि अगर तुमने निरीक्षण किया होगा तो तुमने देखा होगा कि तुम्हारी काम ऊर्जा कल्पना के साथ गति करती है। सिर्फ कल्पना के द्वारा भी तुम्हारी काम-ऊर्जा सक्रिय हो जाती है। सच तो यह है कि कल्पना के बिना वह सक्रिय नहीं हो सकती हे। यही कारण है कि जब तुम किसी के प्रेम में होते हो तो काम-ऊर्जा बेहतर काम करती है। क्योंकि प्रेम के साथ कल्पना प्रवेश कर जाती है। अगर तुम प्रेम में नहीं हो तो बहुत कठिन है; वह काम नहीं करेगी।

इसीलिए पुराने दिनों में पुरूष-वेश्याएं नहीं होती थी। सिर्फ स्त्री वेश्याएं होती थी। पुरूष वेश्या के लिए काम के तल पर सक्रिय होना कठिन है। अगर वह प्रेम में नहीं है। और सिर्फ पैसे के लिए वह प्रेम कैसे कर सकता है। तुम किसी पुरूष को तुम्हारे साथ संभोग में उतरने के लिए पैसे दे सकती हो; लेकिन अगर उसे तुम्हारे प्रति भाव नहीं है। कल्पना नहीं है तो वह सक्रिय नहीं हो सकता। स्त्रियां यह कर सकती है। क्योंकि उनकी कामवासना निष्क्रिय है,सच तो यह है कि उन्हें कोई भी भाव न हो। उनके शरीर लाश की भांति पड़े रहे सकते है। वेश्या के साथ तुम एक जीवित शरीर के साथ नहीं, एक मृत शरीर या लाश के साथ संभोग करते हो। स्त्रियां आसानी से वेश्या हो सकती है। क्योंकि उनकी काम ऊर्जा निष्क्रिय है।

तो काम केंद्र कल्पना से काम करता है। इसीलिए स्वप्नों में तुम्हें इरेक्शन हो सकता हे। और वीर्यपात भी हो सकता है। वहां कुछ भी वास्तविक नहीं है। सब कुछ कल्पना का खेल है। फिर भी देखा गया है कि प्रत्येक पुरूष को, अगर वह स्वस्थ है, रात में कम से कम दस दफा इरेक्श्न होता है। मन की जरा सी गति के साथ, काम का जरा सा विचार उठने से ही इरेक्शन हो जाएगा।

तुम्हारे मन की अनेक शक्तियां है, अनेक क्षमताएं है; और उनमें से एक है संकल्प। लेकिन तुम संकल्प से काम कृत्य में नहीं उतर सकते; काम के लिए संकल्प नपुंसक है। अगर तुम संकल्प से किसी के साथ संभोग में उतरते की चेष्टा करोगे तो तुम्हें लगेगा कि तुम नापुंसग हो गए। कभी चेष्टा मत करो। कामवासना में संकल्प नहीं, कल्पना काम करती है। कल्पना करो, ओर तुम्हारा काम केंद्र सक्रिय हो जाएगा।

तुम्हारे मन की अनेक शक्तियां है, अनेक क्षमताएं है। और उनमें से एक है संकल्प। लेकिन मैं क्यों इस तथ्य पर इतना जौर दे रहा हूं, क्योंकि यदि कल्पना ऊर्जा को गतिमान करने में सहयोगी है तो तुम सिर्फ कल्पना के द्वारा उसे चाहो तो ऊपर ले जा सकते हो। और चाहों तो नीचे ला सकते हो। तुम अपने खून को कल्पना से गतिमान नहीं कर सकते; तुम शरीर में और कुछ कल्पना से नहीं कर सकते। लेकिन काम ऊर्जा कल्पना से गतिमान की जा सकती है। तुम उसकी दिशा बदल सकते हो।

यह सूत्र कहता है: 'अपनी प्राण-शक्ति को प्रकाश किरण समझो।' स्वयं को अपने होने को प्रकाश किरण समझो। योग ने तुम्हारे मेरूदंड को सात चक्रों में बांटा है। पहला काम केंद्र है। और अंतिम सहस्त्रार है। और इन दोनों के बीच पाँच चक्रा है। कोई-कोई साधना पद्धति मेरूदंड को नौ केंद्रों में बाँटती है। कोई तीन में ही और कोई चार में। यह विभाजन बहुत अर्थ नही रखता है। प्रयोग के लिए पाँच केंद्र प्रर्याप्त है। पहला काम-केंद्र है; दूसरा ठीक नाभि के पीछे है; तीसरा ह्रदय के पीछे है। चौथा केंद्र तुम्हारी दोनों भौंहों के बीच में है—ठीक ललाट के बीच में; और अंतिम केंद्र सहस्त्रार तुम्हारे सिर के शिखर पर है। ये पाँच पर्याप्त है।

यह सूत्र कहता है: 'अपने को समझो,' उसका अर्थ है कि भाव करो, कल्पना करो। आंखे बंद कर लो और भाव करो कि मैं बस प्रकाश हूं। यह भाव या कल्पना नहीं है। शुरू-शुरू में कल्पना ही है। लेकिन यथार्थ में भी ऐसा ही है। क्योंकि हरेक चीज प्रकाश से बनी है। अब विज्ञान कहता है कि सब कुछ विद्युत है। तंत्र ने तो सदा से कहा कि सबकुछ प्रकाश कणों से बना है और तुम भी प्रकाश कणों से ही बने हो। इसीलिए कुरान कहता है कि परमात्मा प्रकाश है। तुम प्रकाश हो।

तो पहले भाव करो मैं बस प्रकाश-किरण हूं। और फिर अपनी कल्पना को काम केंद्र के पास ले जाओ। अपने अवधान को वहां एकाग्र करो और भाव करो कि प्रकाश किरणें काम केंद्र से ऊपर उठ रही है। मानों काम केंद्र से ऊपर उठ रही है। मानो काम केंद्र प्रकाश का स्त्रोत बन गया है। और प्रकाश किरणें वहां से नाभि केंद्र की और ऊपर उठ रही है।

विभाजन इस लिए जरूरी है, क्योंकि तुम्हारे लिए काम केंद्र को सीधे सहस्त्रार से जोड़ना कठिन है। छोटे-छोटे विभाजन इसलिए उपयोगी है। यदि तुम सीधे सहस्त्रार से जुड़ सको तो किसी विभाजन की जरूरत नहीं हे। तुम काम केंद्र के ऊपर के सभी विभाजन गिरा दे सकते हो। और उर्जा जीवन शक्ति प्रकाश की भांति सीधे सहस्त्रार की और उठने लगेगी।

जब तुम अनुभव करो कि अब नाभि पर स्थित दूसरा केंद्र प्रकाश का स्त्रोत बन गया है। कि प्रकाश किरणें वहां आकर इकट्ठी होने लगी है। तब ह्रदय केंद्र कीओर गति करो। और ऊपर बढ़ो। और जैसे-जैसे प्रकाश ह्रदय केंद्र पर पहुंचता है, वैसे ही तुम्हारे ह्रदय केंद्र की धड़कने बदल जायेगी। तुम्हारी श्वास गहरी होने लगेगी, और तुम्हारे ह्रदय में गरमाहट पहुंचने लगेगी। तब उससे भी और आगे और ऊपर बढ़ो।

और जैसे-जैसे तुम्हें गरमाहट अनुभव होगी,वैसे-वैसे ही, तुम्हारे भीतर एक जीवंतता का उन्मेष होगा। एक आंतरिक प्रकाश का उदय होगा।

काम-ऊर्जा के दो हिस्से है। एक हिस्सा शारीरिक है और दूसरा मानसिक है। तुम्हारे शरीर में हरेक चीज के दो हिस्से है। तुम्हारे शरीर मन की भांति ही तुम्हारे भीतर प्रत्येक चीज के दो हिस्से है: एक भौतिक है और दूसरा अभौतिक। काम-ऊर्जा के भी दो हिस्से है। वीर्य उसका भौतिक हिस्सा है। वीर्य उपर नहीं उठ सकता। उसके लिए मार्ग नहीं है। इसीलिए पश्चिम के अनेक शरीर शास्त्री कहते है कि तंत्र और योग की साधना बकवास है; वे उन्हें इनकार ही करते है। काम-ऊर्जा ऊपर की और कैसे उठ सकती है। इसके लिए कोई मार्ग नहीं हे। और वह ऊपर नहीं उठ सकती।

वे शरीर शस्त्री सही है। और फिर भी गलत है। काम ऊर्जा का जो भौतिक हिस्सा है, वह जो वीर्य है,वह तो ऊपर नहीं उठ सकता;लेकिन वही सब कुछ नहीं है। सच तो यह है कि वीर्य काम-ऊर्जा का शरीर भर है। वह स्वयं काम ऊर्जा नहीं हे। काम-ऊर्जा तो उकसा अभौतिक हिस्सा है। और यह अभौतिक तत्व ऊपर उठ सकता है। और उसी अभौतिक ऊर्जा के लिए मेरूदंड मार्ग का काम करता है। मेरूदंड और उसके चक्र मार्ग का काम करते है। लेकिन उसका तो अनुभव से जानना होगा। और तुम्हारी संवेदनशीलता मर गई है।

जब कोई हाथ तुम्हें स्पर्श करता है तो हाथ नहीं , दबाव और गरमाहट अनुभव होती है। हाथ तो अनुभव भर है। वह बुद्धि है, भाव नहीं। गरमाहट और दबाव अनुभूतियां है। हमने अनुभूतियां बिलकुल खो दी है। तुम्हें फिर से उसे विकसित करना होगा। केवल तभी इन विधियों को प्रयोग में ला सकते हो। अन्यथा ये विधियां काम नहीं करेंगी। तुम केवल बुद्धि से सोचोगे कि मैं अनुभव करता हूं। और कुछ भी घटित नहीं होगा। यही कारण है कि लोग मेरे पास आते है और कहते है कि यह विधि बहुत महत्व पूर्ण है, लेकिन कुछ घटित नहीं होता।

उन्होंने प्रयोग तो किया है परंतु वह एक आयाम चुक गये। वे अनुभव का आयाम चुक गये। तो तुम्हें पहले इस आयाम को विकसित करना होगा। और उसके कुछ उपाय है जिन्हें तुम प्रयोग में ला सकते हो।

तुम एक काम करो, अगर तुम्हारे घर में कोई छोटा बच्चा है तो प्रतिदिन एक घंटा उसे बच्चे के पीछे-पीछे चलो। बुद्ध के पीछे चलने से उनके पीछे चलना बेहतर है। और कही ज्यादा तृप्ति दायी हो सकता है। बच्चे को अपने चारों हाथ-पाँव पर चलने को कहो, घुटनों के बल चलने को कहो, बच्चे के पीछे तुम भी चलो।

और पहली बार तुम्हें अपने में एक नव जीवन का उन्मेष होगा। तुम फिर बच्चे हो जाओगे। बच्चे को देखो। और उसके पीछे-पीछे चलो। बच्चा घर के कोने-कोने में जाएगा। वह घर की हरेक चीज को स्पर्श करेगा। न

केवल स्पर्श करेगा। वह एक-एक चीज का स्वाद लेगा। वह एक-एक चीज को सूंघेगा। तुम बस उसका अनुकरण करो;वह जो भी करे तुम भी वही करो।

मनुष्य बच्चों से बहुत कुछ सीख सकता है। और देर-अबेर तुम्हारी सच्ची निर्दोषता प्रकट हो जाएगी। तुम भी कभी बच्चे थे। और तुम जानते हो कि बच्चा होना क्या है। सिर्फ उसका विस्मरण हो गया है।

तो अनुभूति के केंद्रों को फिर से विकसित करो। तो ही ये विधियां कारगर हो सकती है। अन्यथा तुम सोचते रहोगे कि ऊर्जा ऊपर उठ रही है। लेकिन उसकी कोई अनुभूति नहीं होगी। और अनुभूति के अभाव में कल्पना व्यर्थ है, बांझ है। अनुभूति भरा भाव ही परिणाम ला सकता है।

तुम और भी कई चीजें कर सकते हो। और उन्हें करने में कोई विशेष प्रयत्न भी नहीं है। जब तुम सोने जाओ तो विस्तर को, तकिए को महसूस, उसकी ठंडक को महसूस करो। तकिए को छुओ उसके साथ खेलो। अपनी आंखें बंद कर लो और सिर्फ एयरकंडीशनर की आवाज को सुनो। घड़ी की आवाज कोया चलती सड़क के शोरगुल को सुनो। कुछ भी सुनो उसे नाम मत दो कुछ कहो ही मत मन का उपयोग की मत करो। बस अनुभूति में जीओं।

सुबह जागने के पहले क्षण में, जब तुम्हें लगे कि नींद जा चुकी है तो तुरंत सोच-विचार मत करने लगो। कुछ क्षणों के लिए तुम फिर से बच्चे हो सकते हो। निर्दोष और ताजे हो सकते हो। तुरंत सोच-विचार में मत लग जाओ। यह मत सोचो कि क्या-क्या करना है। कब दफ्तर के लिए रवाना होना है, कौन सी गाड़ी पकड़नी है। सोच-विचार मत शुरू करो। उन मूढ़ताओं के लिए तुम्हें काफी समय मिलेगा। अभी रुको और अभी कुछ क्षणों के लिए सिर्फ ध्वनियों पर ध्यान दो। एक पक्षी गाता है। वृक्षों से हवाएँ गुजर रही है। कोई बच्चा रोता है या दूध देने वाला आया है। और पुकार रहा है। या वह पतीले में दूध डाल रहा है। जो भी हो रहा है उसे महसूस करो, उसके प्रति संवेदनशील बनो। खुले रहो। उसकी अनुभूति में डुबो। और तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ जायेगी।

जब स्नान करो तो उसे अपने पूरे शरीर पर अनुभव करो; पानी की प्रत्येक बूंद को अपने ऊपर गिरते हुए महसूस करो। उसके स्पर्श को, उसकी शीतलता और उष्णता को महसूस करो। पूरे दिन इसका प्रयोग करो; जब भी अवसर मिले प्रयोग करो। और सब जगह अवसर ही अवसर है। श्वास लेते हुए सिर्फ श्वास को अनुभव करो। भीतर जाती और बाहर आती श्वास को महसूस करो। केवल अनुभव करो1 अपने शरीर को ही महसूस करो। तुमने उसे भी नहीं अनुभव किया है।

हम अपने शरीर से भी इतने ही भयभीत है। कभी अपने शरीर को प्रेमपूर्वक स्पर्श नहीं करता है। क्या तुमने कभी अपने शरीर को ही प्रेम किया है। समूची सभ्यता इस बात से भयभीत है। कोई अपने को स्पर्श करे। क्योंकि बचपन में स्पर्श वर्जित रहा है। अपने को प्रेमपूर्वक स्पर्श करना हस्तमैथुन जैसा महसूस होता है। लेकिन अगर तुम अपने को ही प्रेम से स्पर्श नहीं कर सकते हो। तो तुम्हारा शरीर जड़ हो जाता है। मृत हो जाता है। वह दरअसल जड़ और मृत हो गया है।

अपनी आंखों को स्पर्श करो। तुम्हारी आंखों तुरंत ताजी और जीविंत हो उठेगी। अपने पूरी शरीर को महसूस करो; अपने प्रेमी के शरीर को महसूस करो; अपने मित्र के शरीर को महसूस करो। एक दूसरे को सहलाओ; एक दूसरे की मालिश करो। अपने मित्र के शरीर छुओ, उसकी छूआन को महसूस करो। तुम अधिक संवेदन शील हो जाओगे।

संवेदनशीलता और अनुभूति पैदा करो। तभी तुम इन विधियों का प्रयोग सरलता से कर सकते हो। और तब तुम्हें अपने भीतर जीवन ऊर्जा के ऊपर उठने का अनुभव होगा। इस ऊर्जा को बीच में मत छोड़ो। उसे सहस्त्रार तक जाने दो। स्मरण रहे कि जब भी तूम यह प्रयोग करो तो उसे बीच में मत छोड़ो; उसे पूरा करो। यह भी ध्यान रहे कि इस प्रयोग में कोई तुम्हें बाधा न पहुँचाए। अगर तुम इस ऊर्जा को कहीं बीच में छोड़ दोगे तो उससे तुम्हें हानि हो सकती है। इस ऊर्जा को मुक्त करना होगा। तो उसे सिर तक ले जाओ। और भाव करो कि तुम्हारा सिर एक द्वार बन गया है।

इस देश में हमने सहस्त्रार को हजार पंखुड़ियों वाले कमल के रूप में चित्रित किया है। सहस्त्रार का यही अर्थ है। तो धारणा करो कि हजार पंखुड़ियों वाला कमल खिल रहा है। और उसकी प्रत्येक पंखुडी से यह प्रकाश ऊर्जा ब्रह्मांड में फैल रही है। यह फिर एक अर्थों में संभोग है; लेकिन यह प्रकृति के साथ नहीं , परम के साथ संभोग है। और फिर एक आर्गाज्म घटित होता है।

आर्गाज्म दो प्रकार का होता है। एक सेक्सुअल और दूसरा स्प्रिचुअल सेक्सुअल आर्गाज्म निम्नतम केंद्र से आता है। और स्प्रिचुअल उच्चतम केंद्र से। उच्चतम केंद्र से तुम उच्चतम से मिलते हो और निम्नतम केंद्र से निम्नतम से।

साधारण संभोग में भी तुम यह प्रयोग कर सकते हो। दोनों लोग यह प्रयोग कर सकते हो। ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाओ। और तब संभोग तंत्र साधना बन जाता है। तब वह ध्यान बन जाता है।

लेकिन ऊर्जा को कही शरीर में, किसी बीच के केंद्र मत छोड़ो। कोई व्यक्ति बीच में आ सकता है जिसके साथ तुम्हें व्यावसायिक सरोकार हो, या कोई फोन आ जाए और तुम्हें प्रयोग को बीच में ही छोड़ना पड़े। इसलिए ऐसे समय में प्रयोग करो कि कोई तुम्हें बाधा न दे। और ऊर्जा को किसी केंद्र पर न छोड़ना पड़े। अन्यथा वह केंद्र जहां तुम ऊर्जा को छोड़ोगे धाव बन जाएगा और तुम्हें अनेक मानसिक रूग्णताओं का शिकार होना पड़ेगा।

तो सावधान रहो;अन्यथा यह प्रयोग मत करो। इस विधि के लिए नितांत एकांत आवश्यक है। बाधा रहितता आवश्यक है। और आवश्यक है कि तुम उसे पूरा करो। उर्जा को सिर तक जाना चाहिए। और वहीं से उसे मुक्त होना चाहिए।

तुम्हें अनेक अनुभव होंगे। जब तुम्हें लगेगा कि प्रकाश किरणें काम केंद्र से ऊपर उठने लगी है तो काम केंद्र पर इरेक्शन का ओर उत्तेजना का अनुभव होगा। अनेक लोग बहुत भयभीत और आतंकित स्थिति में मेरे पास आते है। और कहते है कि जब हम ध्यान करते है, जब हम ध्यान में गहरे जाते है। हमें इरेक्शन होता है। और वे चकित होकर पूछते है कि यह क्या है।

वे भयभीत हो जोत है क्योंकि वे सोचते है कि ध्यान मे कामुकता के लिए जगह नहीं होनी चाहिए। लेकिन तुम्हें जीवन के रहस्यों कापता नहीं है। यह अच्छा लक्षण है। यह बताता है। कि ऊर्जा उठ रही है। उसे गति की जरूरत है। तो आतंकित मत होओ। और यह मत सोचो कि कुछ गलत हो रहा है। यह शुभ लक्षण है। जब तुम ध्यान शुरू करते हो तो काम-केंद्र ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा जीवंत, ज्यादा उत्तेजित हो जाएगा। वह बिलकुल शीतल हो जाएगा। अब उष्णता सिर में आ जाएगी।

और यह शारीरिक बात है। जब काम केंद्र-उत्तेजित होता है तो वह गरम हो जाता है। तुम उस गरमाहट को महसूस कर सकत हो। वह शारीरिक है। लेकिन जब ऊर्जा ऊपर उठती है तो काम केंद्र ठंडा होने लगता है। बहुत

ठंडा होने लगता है। और उष्णता सिर पर पहुंच जाती है। तब तुम्हें सिर में चक्कर आने लगेगा। जब ऊर्जा सिर में पहुँचेगी तो तुम्हारा सिर घूमने लगेगा। कभी-कभी तुम्हें घबराहट भी होगी;क्योंकि पहली बार ऊर्जा सिर में पहुंची है। और तुम्हारा सिर उससे परिचित नहीं है। उसे ऊर्जा के साथ सामंजस्य बिठाना पड़ेगा।

सिर में पहुंच जाए तो तुम बेहोश भी हो सकते हो। लेकिन यह बेहोशी एक घंटे से ज्यादा देर तक नहीं रह सकती। घंटे भर के भीतर ऊर्जा अपने आप ही वापस लौट जाएगी। या मुक्त हो जायेगी। तुम उस अवस्था में कभी एक घंटे से ज्यादा देर नहीं रह सकते। मैं कहता तो हूं एक घंटा, लेकिन असल में यह समय अड़तालीस मिनट है। यह उससे ज्यादा नहीं हो सकता,लाखों वर्षों के प्रयोग के दौरान कभी ऐसा नहीं हुआ है।

तो डरो मत; तुम बेहोश भी हो जाओ तो ठीक है। उस बेहोशी के बाद तुम इतने ताजा अनुभव करोगे कि तुम्हें लगेगा। कि मैं पहली बार नींद से, गहनत्म नींद से गुजरा हुं। योग में इसका एक विशेष नाम है; उसे योग-तंद्रा कहा जाता हे। यह बहुत गहरी नींद है। इसमे तुम अपने गहनत्म केंद्र पर सरक जाते हो। लेकिन डरो मत।

और अगर तुम्हारा सिर गरम हो जाए तो यह भी शुभ लक्षण है। ऊर्जा को मुक्त होने दो। भाव करो कि तुम्हारा सिर कमल के फूल की भांति खिल रहा है। भाव करो कि ऊर्जा ब्रह्मांड में मुक्त हो रही है। फैलती जा रही है। और जैसे-जैसे ऊर्जा मुक्त होगी, तुम्हें शीतलता का अनुभव होगा। इस उष्णता के बाद जो शीतलता आती है। उसका तुम्हें कोई अनुभव नहीं है। लेकिन विधि को पूरा प्रयोग करो; उसे कभी आधा अधूरा मत छोड़ा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—71 (ओशो)

प्रकाश-संबंधी दूसरी विधि:

बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।

'या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।
थोड़े से फर्क के साथ यह विधि भी पहली विधि जैसी ही है।

या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।'

एक केंद्र से दूसरे केंद्र तक ताकी हुई प्रकाश-किरणों में बिजली के कौंधने का अनुभव करो—प्रकाश की छलांग का भाव करो। कुछ लोगों के लिए यह दूसरी विधि ज्यादा अनुकूल होगी, और कुछ लोगों के लिए पहली विधि ज्यादा अनुकूल होगी। यही कारण है कि इतना सा संशोधन किया गया है।

ऐसे लोग है जो क्रमश: घटित होने वाली चीजों की धारणा नहीं बना रहते; और कुछ लोग है जो छलाँगों की धारणा नहीं बना सकते। अगर तुम क्रम की सोच सकते हो, चीजों के क्रम से होने की कल्पना कर सकते हो, तो तुम्हारे लिए पहली विधि ठीक है। लेकिन अगर तुम्हें पहली विधि के प्रयोग से पता चले कि प्रकाश-किरणें एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर सीधे छलांग लेती है। तो तुम पहली विधि का प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए यह दूसरी विधि बेहतर है।

'यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।'

भाव करो कि प्रकाश की एक चिनगारी एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर छलांग लगा रही है। और दूसरी विधि ज्यादा सच है, क्योंकि प्रकाश सचमुच छलांग लेता है। उसमें कोई क्रमिक, कदम-ब-कदम विकास नहीं होता। प्रकाश छलांग है।

विद्युत के प्रकाश को देखो। तुम सोचते हो कि यह स्थिर है; लेकिन वह भ्रम है। उसमें भी अंतराल है; लेकिन वे अंतराल इतने छोटे है कि तुम्हें उनका पता नहीं चलता है। विद्युत छलाँगों में आती है। एक छलांग, और उसके बाद अंधकार का अंतराल होता है। फिर दूसरी छलांग, और उसके बाद फिर अंधकार का अंतराल होती हे। लेकिन तुम्हें कभी अंतराल का पता नहीं चलता है। क्योंकि छलांग इतनी तीव्र है। अन्यथा प्रत्येक क्षण अंधकार आता है; पहले प्रकाश की छलांग और फिर अंधकार। प्रकाश कभी चलता नहीं, छलांग ही लेता है। और जो लोग छलांग की धारणा कर सकते है। यह दूसरी संशोधित विधि उनके लिए है।

'या बीच के रिक्त स्थानों में यह बिजली कौंधने जैसा है—ऐसा भाव करो।'

प्रयोग करके देखो। अगर तुम्हें किरणों का क्रमिक ढंग से आना अच्छा लगता है। तो वही ठीक है। और अगर वह अच्छा न लगे। और लगे कि किरणें छलांग ले रही है। तो किरणों की बात भूल जाओ और आकाश में कौंधने वाली विद्युत की, बादलों के बीच छलांग लेती विद्युत की धारणा करो।

स्त्रियों के लिए पहली विधि आसान होगी और पुरूषों के लिए दूसरी । स्त्री–चित क्रमिकता की धारणा ज्यादा आसानी से बना सकता है और पुरूष-चित ज्यादा आसानी से छलांग लेगा सकता है। पुरूष चित उछलकूद पसंद करता है; वह एक से दूसरी चीज पर छलांग लता है। पुरूष-चित में एक सूक्ष्म बेचैनी रहती है। स्त्री-चित में क्रमिकता की एक प्रक्रिया है। स्त्री-चित उछलकूद नहीं पसंद करता है। यही वजह है कि स्त्री और पुरूष के तर्क इतने अलग होते है। पुरूष एक चीज से दूसरी चीज पर छलांग लगाता रहता है। स्त्री को यह बात बड़ी बेबूझ लगती है। उसके लिए विकास क्रमिक विकास जरूरी है।

लेकिन चुनाव तुम्हारा है। प्रयोग करो, और जो विधि तुम्हें रास आए उसे चुन लो।

इस विधि के संबंध में और दो-तीन बातें। बिजली कौंधने के भाव के साथ तुम्हें इतनी उष्णता अनुभव हो सकती है। जो असहनीय मालूम पड़े। अगर ऐसा लगे तो इस विधि को असहनीय है तो इसका प्रयोग मत करो। तब तुम्हारे लिए पहली विधि है। अगर वह तुम्हें रास आए। अगर बेचैनी महसूस हो तो दूसरी विधि का प्रयोग मत करो। कभी-कभी विस्फोट इतना बड़ा हो सकता है। तुम भयभीत हो जा सकते हो। और यदि तुम एक दफा डर गए तो फिर तुम दुबारा प्रयोग न कर सकोगे। तब भय पकड़ लेता है।

तो सदा ध्यान रहे कि किसी चीज से भी भयभीत नहीं होना है। अगर तुम्हें लगे कि भय होगा ओर तुम बरदाश्त न कर पाओगे तो प्रयोग मत करो। तब प्रकाश किरणों वाली पहली विधि सर्वश्रेष्ठ है।

लेकिन यदि पहली विधि के प्रयोग में भी तुम्हें लगे कि अतिशय गर्मी पैदा हो रही है—और ऐसा हो सकता है। क्योंकि लोग भिन्न-भिन्न है—तो भाव करो कि प्रकाश किरणें शीतल है, ठंडी है। तब तुम्हें सब चीजों में उष्णता की जगह ठंडक महसूस होगी। वह भी प्रभावी हो सकता है। तो निर्णय तुम पर निर्भर है; प्रयोग करके निर्णय करो।

स्मरण रहे, चाहे इस विधि के प्रयोग में चाहे अन्य विधियों के प्रयोग में, यदि तुम्हें बहुत बेचैनी अनुभव हो या कुछ असहनीय लगे। तो मत करो। दूसरे उपाय भी है; दूसरी विधियां भी है। हो सकता है, यह विधि तुम्हारे लिए न हो। अनावश्यक उपद्रवों में पड़कर तुम समाधान की बजाय समस्याएं ही ज्यादा पैदा करोगे।

इसीलिए भारत में हमने एक विशेष योग का विकास किया जिसे सहज योग कहते है। सहज का अर्थ है सरल, स्वाभाविक, स्वत: स्फूर्त। सहज को सदा याद रखो। अगर तुम्हें महसूस हो कि कोई विधि सहजता से तुम्हारे अनुकूल पड़ रही है। अगर वह तुम्हें रास आए अगर उसके प्रयोग से तुम ज्यादा स्वस्थ,ज्यादा जीवंत,ज्यादा सुखी अनुभव करो, तो समझो कि वह विधि तुम्हारे लिए है। तब उसके साथ यात्रा करो; तुम उस पर भरोसा कर सकते हो। अनावश्यक समस्याएं मत पैदा करो। आदमी की आंतरिक व्यवस्था बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत जटिल है। अगर तुम कुछ भी जबरदस्ती करोगे तो तुम बहुत सी चीजें नष्ट कर दे सकते हो। इसलिए अच्छा है कि किसी ऐसी विधि के साथ प्रयोग करो जिसके साथ तुम्हारा अच्छा तालमेल हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-47

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—72 (ओशो)

प्रकाश-संबंधी तीसरी विधि—
''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

अगर तुमने एल. एस. डी. या उसी तरह के मादक द्रव्य का सेवल किया हो, तो तुम्हें पता होगा कि कैसे तुम्हारे चारों और का जगत प्रकाश ओर रंगों के जगत में बदल जाता है। जो कि बहुत पारदर्शी और जीवंत मालूम पड़ता है।

यह एल. एस. डी. के कारण नहीं है। जगत ऐसा ही है। लेकिन तुम्हारी दृष्टि धूमिल और मंद पड़ गई है। एल. एस. डी. तुम्हारे चारों रंगीन जगत नहीं निर्मित करता है, जगत पहले से ही रंगीन है, उसमें कोई भूल नहीं है। यह रंगों के इंद्रधनुष जैसा है; इसीलिए तुम्हें कभी नहीं प्रतीत होता है। कि जगत इतना रंग-भरा है। एल. एस. डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों से धुंध को हटा देता है। वह जगत को रंगीन नहीं बनाता। एल. एस. डी. सिर्फ तुम्हारी आंखों धुंध को हटा देता है। वह जगत को रंगीन नहीं बनाता।
एक बिलकुल नया जगत तुम्हारे सामने होता है। एक मामूली कुर्सी भी चमत्कार बन जाती है। फर्श पर पडा जूता नए रंगों से, नई आभा से भर जाता है। सज जाता है; तब यातायात का मामूली शोर गूल भी संगीत पूर्ण हो उठता है। जिन वृक्षों को तुमने बहुत बार देखा होगा और फिर भी नहीं देखा होगा, वे मानों नया जन्म ग्रहण कर लेते है। यद्यपि तुम बहुत बार उनके पास गूजरें हो और तुम्हें ख्याल है कि तुमने उन्हें देखा है। वृक्ष का पत्ता-पत्ता एक चमत्कार बन जाता है।

और यथार्थ ऐसा ही है; एल. एस. डी. एक यथार्थ का निर्माण नहीं करता है। एल. एस डी तुम्हारी जड़ता को, तुम्हारी संवेदनहीनता को मिटा देता है। और तब तुम जगत को ऐसे देखते हो जैसे तुम्हें सच में उसे देखना चाहिए।

लेकिन एल एस डी तुम्हें सिर्फ एक झलक दे सकता है। और अगर तुम एल एस डी पर निर्भर रहने लगे, देर-अबेर वह भी तुम्हारी आंखों से धुंध का हटाने में असमर्थ हो जाएगा। फिर तुम्हें उसका अधिक मात्रा की जरूरत पड़ेगी, और मात्रा बढ़ती जायेगी और उसका असर करम होता जायेगा। फिर तुम्हें यदि एल एस डी या उस तरह की चीजें लेना छोड़ दोगे तो जगत तुम्हारे लिए पहले से भी ज्यादा उदास आरे फीका मालूम पड़ेगा। तब तुम और भी संवेदनहीन हो जाओगे।

अभी कुछ दिन पहले एक लड़की मुझसे मिलने आई । उसने कह कि मुझे संभोग में आर्गाज्म का कोई अनुभव नहीं होता है। उसने अनेक पुरूषों के साथ प्रयोग किया; लेकिन आर्गाज्म का कभी अनुभव नहीं हुआ। वह शिखर कभी आता ही नहीं। और वह लड़की बहुत हताश हो गई।

तो मैंने उस लड़की से कहा कि मुझे अपने प्रेम और काम जीवन के संबंध में विस्तार से बताओ, पूरी कहानी कहो। और तब मुझे पता चला कि वह संभोग के लिए बिजली के एक यंत्र का ,इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर का उपयोग कर रही थी। आजकल पशिचम में इसका बहुत उपयोग हो रहा है। लेकिन तुम अगर एक बार पुरूष जननेंद्रिय के लिए इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर का उपयोग कर लोगे, तो कोई भी पुरूष तुम्हें तृप्त नहीं कर पाएगा। क्योंकि इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर आखिर इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर ही है। तुम्हारी जननेंद्रियां जड़ हो जाएंगी। गुर्दा हो जाएगी। उस हालत मे आर्गाज्म, काम का शिखर अनुभव असंभव हो जाएगा। तुम्हें काम संभोग का शिखर कभी प्राप्त न हो सकेगा। और तब तुम्हें पहलेसे ज्यादा शक्तिशाली इलेक्ट्रानिक वाईब्रेटर की जरूरत पड़ेगी। और यह प्रक्रिया उस अति तक जा सकती है कि तुम्हारा पूरा काम यंत्र पत्थर जैसा हो जाये।

और यही दुर्घटना हमारी प्रत्येक इंद्रिय के साथ घट रही है। अगर तुम कोई बाहरी उपाय; कृत्रिम काम में लाओगे, तो तुम जड़ हो जाओगे। एल एस डी तुम्हें अंततः जड़ बना देगा; क्योंकि उससे तुम्हारे विकास नहीं होता है, तुम ज्यादा संवेदनशील नहीं होते हो।

अगर तुम विकसित होते हो तो यह एक भिन्न प्रक्रिया है। तब तुम ज्यादा संवेदनशील होगे। और जैसे-जैसे तुम ज्यादा संवेदनशील होते हो, वैसे-वैसे जगत दूसरा होता जाता है। अब तुम्हारी इंद्रियाँ ऐसी अनेक चीजें अनुभव कर सकती है जिन्हें उन्होंने अतीत में कभी नहीं अनुभव किया था। क्योंकि तुम उनके प्रति खुले नहीं थे। संवेदनशील नहीं थे।

यह विधि आंतरिक संवेदनशीलता पर आधारित है। पहले संवेदनशीलता को बढ़ाओं। अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लो। कमरे में अँधेरा कर लो, और फिर एक छोटी सी मोमबत्ती जलाओ। और उस मोमबत्ती के पास प्रेमपूर्ण मुद्रा में बल्कि प्रार्थना पूर्ण भाव दशा में बैठो और ज्योति से प्रार्थना करो: ''अपने रहस्य को मुझ पर प्रकट करो।'' स्नान कर लो, अपनी आंखों पर ठंडा पानी छिड़क लो और फिर ज्योति के सामने अत्यंत प्रार्थना पूर्ण भाव दशा में होकर बैठो। ज्योति को देखो ओर शेष सब चीजें भूल जाओ। सिर्फ ज्योति को देखो। ज्योति को देखते रहो।

पाँच मिनट बाद तुम्हें अनुभव होगा कि ज्योति में बहुत चीजें बदल रही है। लेकिन स्मरण रहे, यह बदलाहट ज्योति में नहीं हो रही है; दरअसल तुम्हारी दृष्टि बदल रही है।

प्रेमपूर्ण भाव दशा में सारे जगत को भूलकर, समग्र एकाग्रता के साथ, भावपूर्ण ह्रदय के साथ ज्योति को देखते रहो, तुम्हें ज्योति के चारों और नए रंग, नई छटाएं दिखाई देंगी। जो पहले कभी नही दिखाई दी थी। वे रंग, वे छटाएं सब वहां मौजूद है; पूरा इंद्रधनुष वहां उपस्थिति है। जहां-जहां भी प्रकाश है, वहां-वहां इंद्रधनुष है। क्योंकि प्रकाश बहुरंगी है उसमें सब रंग है। लेकिन उन्हें देखने के लिए सूक्ष्म संवेदना की जरूरत है। उसे अनुभव करो और देखते रहो। यदि आंसू भी बहने लगें तो भी देखते रहो। वे आंसू तुम्हारी आंखों को निखार देंगे, ज्यादा ताजा बना जायेंगे।

कभी-कभी तुम्हें प्रतीत होगा कि मोमबत्ती या ज्योति बहुत रहस्यपूर्ण हो गई है। तुम्हें लगेगा कि यह वही साधारण मोमबत्ती नहीं है जो मैं आपने साथ लाया था। उसने एक नई आभा एक सूक्ष्म दिव्यता, एक भगवत्ता प्राप्त कर ली है। इस प्रयोग को जारी रखो। कई अन्य चीजों के साथ भी तुम इसे कर सकते हो।

मेरे एक मित्र मुझे कह रहे थे कि वे पाँच-छह मित्र पत्थरों के साथ एक प्रयोग कर रहे थे। मैंने उन्हें कहा था कि कैसे प्रयोग करना, और लोट कर मुझे पूरी बात कह रह थे। वे एकांत में एक नदी के किनारे पत्थरों के साथ प्रयोग कर रहे थे। वे उन्हें फील करने की कोशिश कर रह थे—हाथों से छूकर, चेहरे से लगा कर। जीभ से चक्कर, नाक से सूंघकर—वे उन पत्थरों का हर तरह सक फील करने कि कोशिश कर रहे थे। साधारण से पत्थर, जो उन्हें नदी किनारे मिल गये थे।

उन्होंने एक घंटे तक यह प्रयोग किया—हर व्यक्ति ने एक पत्थर के साथ। और मेरे मित्र मुझे कह रहे थे एक बहुत अद्भुत घटना घटी। हर किसी ने कहा: ''क्या यह पत्थर मैं अपने पास रख सकता हूं।'' मैं इसके प्रेम में पड़ गया हूं।

एक साधारण सा पत्थर, अगर तुम सहानुभूतिपूर्ण ढंग से उससे संबंध बनाते हो तो तुम प्रेम में पड़ जाओगे। और अगर तुम्हारे पास इतनी संवेदनशीलता नहीं है। तो सुंदर से सुंदर व्यक्ति के पास होकर भी तुम पत्थर के पास ही हो; तुम प्रेम में नहीं पड़ सकते हो।

तो संवेदनशीलता को बढ़ाना है। तुम्हारी प्रत्येक इंद्रिय को ज्यादा जीवंत होना है। तो ही तुम इस विधि का प्रयोग कर सकते हो।

''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

सर्वत्र प्रकाश है; अनेक-अनेक रूपों और रंगों में प्रकाश सर्वत्र व्याप्त है। उसे देखो। सर्वत्र प्रकाश है। क्योंकि सारी सृष्टि प्रकाश की आधारशिला पर खड़ी है। एक पत्ते को देखा एक फूल को देखो या एक पत्थर को देखा। आरे देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि उससे प्रकाश की किरणें निकल रही है। बस धैर्य से प्रतीक्षा करो। ज्यादा जल्द मत करो। क्योंकि जल्दी बाजी में कुछ भी प्रकट नहीं होता। तुम जब जल्दी में होते हो तो तुम जड़ हो जाते हो। किसी भी चीज के साथ धीरज से प्रतीक्षा करो। और तुम्हें एक अद्भुत तथ्य से साक्षात्कार होगा। जो सदा से मौजूद था, लेकिन जिसके प्रति तुम सजग नहीं थे। सावचेत नहीं थे।

''भाव करो कि ब्रह्मांड एक पारदर्शी शाश्वत उपस्थिति है।''

और जैसे ही तुम्हें इस शाश्वत अस्तित्व की उपस्थिति अनुभव होगी वैसे ही तुम्हारा चित बिलकुल मौन और शांत हो जाएगा। तुम तब उसके एक अंश भर होगे। किसी अद्भुत संगीत में एक स्वर भर। फिर कोई चिंता नहीं है। फिर कोई तनाव नहीं है। बूंद समुद्र में गिर गई, खो गई।

लेकिन आरंभ में एक बड़ी कल्पना की जरूरत होगी। और अगर तुम संवेदनशीलता बढ़ाने के अनय प्रयोग करते हो, तो वह सहयोगी होगा। तुम कई तरह के प्रयोग कर सकते हो। किसी का हाथ अपने हाथ में ले लो। आंखें बंद कर लो। और दूसरे के भीतर के जीवन को महसूस करो; उसे महसूस करो उसे अपनी और बहने दो; गति करने दो। फिर अपने जीवन को महसूस करो, और उसे दूसरे की और प्रवाहित होने दो। किसी वृक्ष के निकट बैठ जाओ और उसकी छाल को छुओ,स्पर्श करो। अपनी आंखें बंद कर लो। और वृक्ष में उठते-जीवन तत्व को अनुभव करो। और स्पर्श करो। तुम्हें तुरंत बदलाहट अनुभव करोगे।

मैंने एक प्रयोग के बारे में सुना है। एक डाक्टर कुछ लोगों पर प्रयोग कर रहा था कि क्या भाव दशा से शरीर में रासायनिक परिवर्तन होते है। अब उसके निष्कर्ष निकाला है कि भाव दशा से शरीर में तत्काल रासायनिक परिवर्तन होते है।

उसने बारह लोगों के समूह पर यह प्रयोग किया। उसने प्रयोग के आरंभ में उन सबकी पेशाब की जांच की। और सबकी पेशाब साधारण,सामान्य पाई गई। फिर हर व्यक्ति को एक भाव दशा के प्रयोग में रखा गया। एक को क्रोध, हिंसा, हत्या, मार-पीट से भरी फिल्म दिखाई गई। तीस मिनट तक उसे भयावह फिल्म दिखाई गई। वह मात्र फिल्म थी। लेकिन वह व्यक्ति उस भाव दिशा में रहा। दूसरे को एक हंसी खुशी की, प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह आनंदित रहा। और उसी तरह से बाहर लोगों पर प्रयोग किया।

फिर प्रयोग के बाद उनकी पेशाब की जांच की गई; और अब सबकी पेशाब अलग थी। शरीर में रसायनिक परिवर्तन हुए थे। जो हिंसा और भय की भाव दशा में रहा वह अब बुझा-बुझा, बीमार था। और हंसी-खुशी की प्रसन्नता की फिल्म दिखाई गई। वह प्रफुल्ल था। उसकी पेशाब अलग थी। उसके शरीर की रासायनिक व्यवस्था अलग थी।

तुम्हें बोध नहीं है। तुम अपने साथ कर रहे हो। जब तुम कोई खून ख़राबे की फिल्म देखने जाते हो तो तुम नहीं जानते हो कि तुम क्या कर रहे हो। तुम अपने शरीर की रसायनिक व्यवस्था बदल रहे हो। जब तुम कोई जासूसी उपन्यास पढ़ते हो। तुम अपनी हत्या स्वयं कर रहे हो। तुम उत्तेजित हो जाओगे; तुम भयभीत हो जाओगे। तुम तनाव से भर जाओगे। जासूसी उपन्यास का यही तो मजा है। तुम जितने उत्तेजित होते हो, तुम उसका उतना ही सूख लेते हो। आगे क्या घटित होने वाला है, इस बात को लेकर जितना सस्पेंस होगा; तुम उतने ही अधिक उत्तेजित होगे। और इस भांति तुम्हारे शरीर का रसायन बदल रहा है।

ये सारी विधियां भी तुम्हारे शरीर का रसायन बदलती है। अगर तुम सारे जगत को जीवन और प्रकाश से भरा अनुभव करते हो, तो तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है। और यह एक चेन रिएक्शन है, इस बदलाहट की एक शृंखला बन जाती है। जब तुम्हारे शरीर का रसायन बदलता है और तुम जगत को देखते हो। तो वही जगत ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है। और जब वह ज्यादा जीवंत दिखाई पड़ता है तो तुम्हारे शरीर का रासायनिक व्यवस्था और भी बदलती है। ऐसे एक शृंखला निर्मित हो जाती है।

यदि यह विधि तीन महीने तक प्रयोग की जाए, तो तुम भिन्न ही जगत में रहने लगोगे। क्योंकि अब तुम ही भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-तीन

प्रवचन-47